संस्कृत-व्याकरण

लेखक—

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य,

एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी), एम.ओ.एल., डी. फिल्. (प्रयाग), पी. ई. एस.,

विद्याभास्कर, साहित्यरत्न, व्याकरणाचार्य,

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,

गवर्नमेंट कालेज, ज्ञानपुर (वाराणसी)।

प्रणेता—अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, प्रौढ-रचनानुवाद-कौमुदी, रचनानुवादकौमुदी आदि।

विश्वविद्यालय प्रकाशन

वाराणसी

मूल्य—बारह रुपए पचास पैसे
प्रथम संस्करण—३००० प्रतियाँ
सन् १९६७

प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, भैरवनाथ, वाराणसी।
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी–[illegible]।

समर्पण

संस्कृत और हिन्दी के प्रबल समर्थक,

माननीय

श्री रामप्रकाश गुप्त,

उपमुख्यमन्त्री एवं शिक्षामन्त्री,

उत्तरप्रदेश

को

सादर सस्नेह समर्पित ।

कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

आत्म-निवेदन

बहुत समय से संस्कृत-व्याकरण की ऐसी पुस्तक की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, जो भारत के सभी विश्वविद्यालयों की बी० ए० और एम० ए० (संस्कृत) कक्षाओं के छात्रों की व्याकरण-सम्बन्धी आवश्यकता को शत-प्रतिशत पूर्ण कर सके। साथ ही उसकी लेखन-शैली ऐसी हो जो संस्कृत व्याकरण को 'व्याकरणं व्याधिकरणम्' दुःखदायी न बनाकर अत्यन्त सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत करे। यह ग्रन्थ उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए लिखा गया है। प्रयत्न किया गया है कि पुस्तक में कहीं पर भी कोई दुरूहता न आने पावे। छात्रों की प्रत्येक कठिनाई का उसमें यथास्थान निराकरण होता जाए। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित विषयों का समावेश किया गया है—

(१) भूमिका—भूमिका में व्याकरणशास्त्र के उद्भव और विकास का इतिहास विस्तार से दिया गया है। पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्यों, आचार्य पाणिनि तथा उत्तर-पाणिनि वैयाकरणों का जीवन-चरित, समय तथा रचनाओं आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। संक्षेप के साथ यह सर्वत्र ध्यान रखा गया है कि कोई आवश्यक विवरण छूटने न पावे।

(२) लघुसिद्धान्तकौमुदी—सम्पूर्ण लघुकौमुदी पूर्ण विवरण और व्याख्या के साथ दी गई है। अब तक उपलब्ध सभी टीकाओं, भाष्य और व्याख्याओं का इसमें उपयोग किया गया है। छात्रों की सुविधा के लिए अष्टाध्यायी के सूत्र १६ प्वाइंट काले में दिए गए हैं। लघुकौमुदी के सूत्रों की संस्कृत में दी गई वृत्ति का प्रायः विशेष उपयोग नहीं होता है, अतः उसे हटा दिया गया है। सूत्रों का अर्थ सरल हिन्दी में दिया गया है। शब्दरूपों, धातुरूपों आदि को समझाने के लिए नवीन पद्धति अपनाई गई है। प्रत्येक प्रकरण के प्रारम्भ में कुछ आवश्यक निर्देश दिए गए हैं, उन्हें सावधानी से समझ लेना चाहिए। आवश्यक निर्देशों में उस प्रकरण से संबद्ध सभी आवश्यक बातें संक्षेप में, किन्तु बहुत स्पष्ट रूप से, समझा दी गई हैं। यदि इन आवश्यक निर्देशों को सावधानी से समझ लिया जाएगा तो उस प्रकरण को समझने में कोई कठिनाई न होगी। आवश्यक निर्देशों में उस प्रकरण से संबद्ध पारिभाषिक शब्द आदि भी वहाँ पर सावधानी से समझा दिए गए हैं। शब्दरूपों और धातुरूपों में 'सूचना' के द्वारा यह स्पष्ट रूप से समझाया गया है कि अन्य शब्दों या धातुओं से उस शब्द या धातु में मुख्य रूप से क्या अन्तर होते हैं। भ्वादिगण के प्रारम्भ में धातुरूप सिद्ध करने के लिए ३० पृष्ठों में सभी आवश्यक बातें दे दी गई हैं।

(३) सिद्धान्तकौमुदी—कारकप्रकरण—लघुकौमुदी में कारकप्रकरण बहुत अधिक संक्षिप्त है, अतः उपयोगिता की दृष्टि से कारकप्रकरण सिद्धान्तकौमुदी से दिया गया

है। कारकप्रकरण की सर्वांगीण और सुबोध व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में कारकप्रकरण सिद्धान्तकौमुदी से ही निर्धारित किया गया है।

(४) संक्षिप्त वैदिक-व्याकरण—यह अंश कठिन परिश्रम से सरल और सुबोधरूप से प्रस्तुत किया गया है। सिद्धान्तकौमुदी की वैदिक-प्रक्रिया और स्वर-प्रक्रिया तथा मैकडानल के वैदिक व्याकरण के प्रायः सभी उपयोगी और आवश्यक अंशों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए समन्वित रूप में प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत-व्याकरण और वैदिक व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन भी दिया गया है। संहितापाठ से पदपाठ बनाना, पदपाठ से संहितापाठ बनाना, स्वर-संचार, स्वर-चिह्न लगाना, अवग्रह-चिह्न और इति शब्द लगाना तथा वैदिक छन्दों का विस्तृत परिचय इस प्रकरण में विशेष विस्तार के साथ दिया गया है। वैदिक पाठ्य-ग्रन्थों को ठीक ढंग से समझने के लिए इस प्रकरण का ज्ञान अनिवार्य है।

(५) संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण—प्राकृत-व्याकरण का प्रायः सभी उपयोगी और आवश्यक विवरण इस प्रकरण में सरल और संक्षिप्त रूप में दिया गया है। संस्कृत के नाटकों में आने वाले प्राकृत के अंश को ठीक समझने के लिए इस अंश का ज्ञान अनिवार्य है।

(६) पारिभाषिक शब्दकोश—संस्कृत-व्याकरण के ज्ञान के लिए जिन पारिभाषिक शब्दों का जानना अनिवार्य है, वे सभी पारिभाषिक शब्द इस कोश में विस्तृत व्याख्या के साथ दिए गए हैं।

(७) परिशिष्ट—४ परिशिष्टों में क्रमशः सूत्रों की अकारादिक्रम सूची, वार्तिक-सूची, पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी में नाम तथा अन्त में विषयानुक्रमणिका दी गई है।

(८) छपाई एवं संकेताक्षर—छपाई में टाइप की कठिनाई के कारण ह्रस्व ऋ को ऋ कर दिया गया है और दीर्घ को ॠ। इसका ध्यान रखें। प्रथम पुरुष आदि के लिए प्रायः प्रथम वर्ण प्र०, म०, उ० दिए गए हैं। संक्षेप के लिए एकवचन, द्विवचन और बहुवचन के लिए क्रमशः १, २, ३ संख्याएँ दी हैं।

(९) कृतज्ञताप्रकाशन--पुस्तक के विविध प्रकरणों को लिखने में जिन ग्रन्थों से विशेष सहायता ली है, उनका यथास्थान निर्देश कर दिया है। सभी सहायक ग्रन्थों के लेखकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। सामग्री-संकलन, प्रूफशोधन और प्रकाशन में इनसे विशेष सहायता प्राप्त हुई है, सदर्थ इन्हें धन्यवाद है—श्रीमती ओमशान्ति द्विवेदी, चि० भारतेन्दु, चि० गिरीन्दु, चि० आर्येन्दु, श्री पुरुषोत्तमदास मोदी एवं श्री ओमप्रकाश कपूर (मैनेजर, ज्ञानमण्डल प्रेस, वाराणसी)।

विद्वज्जनों से निवेदन है कि वे पुस्तक के विषय में जो भी संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन आदि का विचार भेजेंगे, वह सादर कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया जाएगा।

ज्ञानपुर, वाराणसी
ता० १-६-१९६७

कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

भूमिका

संस्कृत व्याकरणशास्त्र का उद्भव और विकास

भाषा का महत्त्व

भाषा मानवमात्र के भावों और विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के माध्यम से ही वह अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। मनुष्य में भाषणशक्ति ईश्वरीय देन है। इसके द्वारा ही वह संसार के सभी जीवों में सर्वोत्तम है। यदि संसार में भाषा जैसी वस्तु न होती तो संसार का काम ही नहीं चल सकता था। अतएव दण्डी का कथन सत्य है कि 'वाणी के बिना संसार का काम नहीं चल सकता है। यदि शब्द-नामक ज्योति संसार को प्रकाशित न करती तो यह सारा संसार अविद्या के अन्धकार से व्याप्त हो जाता।'[1]

भाषा शब्द भाष् (भाष व्यक्तायां वाचि, स्पष्ट बोलना) धातु से बना है। भाषा का अर्थ है व्यक्त वाणी, अर्थात् जिसमें वर्णों का स्पष्ट उच्चारण होता है।

व्याकरण का अर्थ, उद्देश्य और महत्त्व

व्याकरण शब्द वि आ उपसर्गपूर्वक कृ धातु से ल्युट् (अन) प्रत्यय से बनता है। व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते प्रकृतिप्रत्ययादयो यत्र तद् व्याकरणम्, जिसमें शब्दों के प्रकृति (मूल शब्द या धातु) और प्रत्ययों आदि का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहते हैं।

व्याकरण का उद्देश्य है—साधु या शिष्ट-प्रयोगोचित शब्दों का ज्ञान कराना[2], असाधु शब्दों का निराकरण, भाषा के स्वरूप पर नियन्त्रण रखना और प्रकृति-प्रत्यय के बोध के द्वारा शब्दों के वास्तविक रूप का स्पष्टीकरण। पतंजलि ने व्याकरण के मुख्य रूप से पाँच उद्देश्य बताए हैं।

रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्। (महाभाष्य नवा० १)

सूचना—इस भूमिका के लिखने में निम्नलिखित ग्रन्थों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है:—(क) संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—युधिष्ठिर मीमांसक, (ख) Systems of Sanskrit Grammar—S. K. Belvalkar, (ग) पाणिनि—T. Goldstucker.

१. इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥ काव्यादर्श १।३-४

२. साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः। वाक्यपदीय १—१४३

(१) रक्षा—वेदों की रक्षा के लिए, (२) ऊह (तर्क)—यथास्थान विभक्ति-परिवर्तन, वाच्य परिवर्तन आदि के लिए, (३) आगम—'ब्राह्मण को निष्काम भाव से षडंग वेद पढ़ना चाहिए' इस आदेश की पूर्ति के लिए, (४) लघु—संक्षिप्त ढंग से शब्दज्ञान के लिए, (५) असन्देह—शब्द और अर्थ के असन्दिग्ध रूप को जानने के लिए तथा सन्देह के निवारणार्थ। पतंजलि ने प्राचीन परम्परा का उल्लेख किया है कि प्रत्येक ब्राह्मण को निष्काम भाव से ६ अंगों सहित वेद पढ़ना चाहिए और जानना चाहिए। ६ अंगों में भी व्याकरण मुख्य है, अतः व्याकरण का अध्ययन अनिवार्य है।

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।
प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्। (महाभाष्य नवा० १)

व्याकरण का महत्त्व—मानव-जीवन में व्याकरण का बहुत महत्त्व है। व्याकरण ही शब्दों का शुद्ध उच्चारण सिखाता है, प्रकृति और प्रत्यय का बोध कराता है, विभिन्न प्रत्ययों के द्वारा शब्द-रचना का मार्ग बताता है, शब्दों के साधुत्व और असाधुत्व का ठीक-ठीक बोध कराता है। इतना ही नहीं, व्याकरण शब्द-संस्कार के द्वारा मन को संस्कृत और परिशुद्ध करता है तथा शब्द-ब्रह्म (परमात्मा) का ज्ञान कराता है। अतएव प्राचीन समय में व्याकरण के अध्ययन पर इतना बल दिया गया था। इसीलिए कहा है कि—

यद्यपि बहु नाधीषे, तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत्, सकलं शकलं सकृत् शकृत्॥

यदि अधिक नहीं पढ़ते हो तो भी थोड़ा व्याकरण अवश्य पढ़ लेना चाहिए। जिससे स् और श् का अन्तर ज्ञात रहे। स् को श् बोल देने से स्वजन (अपने परिवार के व्यक्ति) का श्वजन (कुत्ता) हो जाता है, सकल (सब) का शकल (भाग) और सकृत् (एकबार) का शकृत् (शौच, विष्ठा) हो जाता है।

व्याकरण का उद्भव और विकास

वैदिक-युग—वेदों के आविर्भाव के साथ ही हमें व्याकरण के स्वरूप का दर्शन होता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में कितने ही मन्त्र ऐसे मिलते हैं, जिनमें शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्टरूप से दी गई है। अमुक शब्द का किस अर्थ में प्रयोग होता है, उसमें क्या धातु है और उस शब्द के नामकरण का क्या आधार है, इसपर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। पाद-टिप्पणी में निर्दिष्ट मन्त्रों में यज्ञ, सदस्, सुसदन, वेणु, नदी, आपः, वार् (जल), उदक और तीर्थ शब्दों की व्युत्पत्ति पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है[1]।

---

१. (क) यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः (ऋग्० १-१६४-५०, यजु० ३१-१६) (यज्ञ < यज् धातु)।

वेदोंके आविर्भावके बाद ही इस बातकी अत्यन्त आवश्यकता अनुभव की गई कि वेदों की पूर्ण रूप से सुरक्षा का प्रबन्ध हो। वेदों की सुरक्षा, मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण, उनके अर्थ का ठीक-ठीक निर्धारण और परिज्ञान तथा उनके विनियोग आदिके लिए ६ अंगों की उत्पत्ति हुई। उनके नाम हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। इनमें भी व्याकरण को वेदरूपी पुरुष का मुख माना गया है। 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'। जिस प्रकार मुख व्यक्ति के भावों और विचारों का प्रकाशन करता है, उसी प्रकार व्याकरण वेद-मन्त्रों के भावों को स्पष्ट करता है।

ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्रों का पतञ्जलि ने (महा० आ० १) व्याकरण-विषयक अर्थ किया है।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति, महो देवो मर्त्यां आ विवेश ॥ (ऋ० ४-५८-३)

शब्द (व्याकरण)-रूपी वृषभ के चार सींग हैं—नाम, आख्यात (क्रिया), उपसर्ग और निपात। इसके तीन पैर हैं—भूत, वर्तमान और भविष्य। इसके दो सिर हैं—सुप् और तिङ्। इसके सात हाथ हैं—प्रथमा आदि सात विभक्तियाँ। यह तीन स्थानों पर बँधा हुआ है—उर (छाती), कण्ठ और शिर। यह शब्द महादेव है और मनुष्यों में व्याप्त है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ (ऋग्१०-७१-४)

जो व्याकरणको नहीं जानता और अनभिज्ञ है, वह वाक्तत्त्व को देखते हुए भी नहीं देखता है और उसे सुनते हुए भी नहीं सुनता है। परन्तु जो वाक्तत्त्व को जानता है और शब्दवित् है, उसके लिए वाणी अपने स्वरूप को इसी प्रकार प्रकट करती है, जैसे स्त्री अपने स्वरूप को अपने पति के लिए।

(ख) ये सहांसि सहसा सहन्ते (ऋग्० ६-६६-९) (सहस् < सह्)
(ग) वृत्र ... हनति वृत्रहा (यजु० ३३-९६) (वृत्रहन् < वृत्र + हन्)
(घ) केतपूः केतं नः पुनातु (यजु० ११-७) (केतपू < केत + पू)
(ङ) यददः संप्रयतीरहावनदता हते। तस्मादा नद्यो नाम स्थ (अथर्व० ३-१३-१) (नदी < नद् धातु)
(च) तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन। (अ० ३-१३-२) (आपः < आप्)
(छ) अवीवरत वो हि कम् ... तस्माद् वार्नाम० (अ० ३-१३-३) (वार् < वृ धातु)
(ज) उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते (अ० ३-१३-४) (उदक < उद् + अन्)
(झ) तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति (अ० १८-४-७) (तीर्थ < तॄ)

इससे शब्दशास्त्र के गहन अध्ययन का महत्त्व स्पष्ट होता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य (आह्निक १) में निम्नलिखित मन्त्रों का भी व्याकरण-परक अर्थ किया है—चत्वारि वाक्० (ऋ० १–१६४–४५), सक्तुमिव० (ऋ० १०–७१–२), सुदेवोऽसि० (ऋ० ८–६९–१२)। चत्वारि वाक्० का यास्क ने भी व्याकरण-परक अर्थ किया है।

मन्त्रोंके स्वर और वर्णोंके ठीक-ठीक उच्चारण पर बहुत अधिक बल दिया गया था। थोड़ी-सी भूल या अशुद्धि हो जाने से अर्थ का अनर्थ हो जाता था। अतः कहा है कि मन्त्र के उच्चारण में यदि स्वर या वर्ण की थोड़ी भी त्रुटि होगी तो वह अपने अर्थ को प्रकट नहीं करेगा और उल्टे अनर्थ का कारण हो जाएगा। 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' में केवल स्वर की अशुद्धि के कारण वृत्र मारा गया।[4] वृत्र ने इन्द्र के वध के लिए यज्ञ किया था। उसमें पुरोहितों ने इन्द्रशत्रुः में स्वर का ठीक उच्चारण नहीं किया, अतः इन्द्र के नाश के स्थान पर यजमान वृत्र का ही नाश हो गया।

वेदों की उच्चारण-सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए शिक्षा ग्रन्थों का प्रारम्भ हुआ। शिक्षा-ग्रन्थ स्वरों और वर्णों आदि के उच्चारण की शिक्षा देते हैं, अतः उनका नाम शिक्षा पड़ा। वेदों की अर्थ-सम्बन्धी आवश्यकता को निरुक्त ने पूरा किया। निरुक्त में शब्दों की निरुक्ति, निर्वचन या व्युत्पत्ति बताई गई है। कौन सा शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त होता है और वह किस धातु से बना है। इस प्रकार निरुक्त वेदों के अर्थज्ञान में सहायक होता है। व्याकरण, शिक्षा और निरुक्त, ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं। शिक्षा और निरुक्त व्याकरण के पूरक अङ्ग हैं। व्याकरण प्रकृति-प्रत्यय के विभाजन के द्वारा शब्द के शुद्ध स्वरूप को बताता है, शिक्षा-ग्रन्थ शब्दों के उच्चारण को बताते हैं और निरुक्त उनके अर्थ को स्पष्ट करता है। इस प्रकार वैदिक काल के प्रारम्भ से ही भाषा-शास्त्र या भाषा-विज्ञान के सूक्ष्म अध्ययन का भी सूत्रपात दृष्टिगोचर होता है।

सर्वप्रथम वि+आ+कृ का व्याकरण, विवेचन या विश्लेषण अर्थ में प्रयोग यजुर्वेद में प्राप्त होता है।

> दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
> अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥ (यजु० १९-७७)

प्रथम वैयाकरण प्रजापति है। उसने सर्वप्रथम सत्य और अनृत का व्याकरण (विवेचन, विश्लेषण) किया। तात्त्विक दृष्टि के द्वारा उसने सत्य में श्रद्धा (आस्था) और अनृत या असत्य में अश्रद्धा (अनास्था या हेयता) रखी। यही सत्य और असत्य का विश्लेषण बाद में प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण होकर व्याकरण बना। यही प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण प्रकृति (प्रातिपदिक तत्त्व, धातु का अंश या स्वरूप

---

४. मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥
(पाणिनीय शिक्षा-५२, महाभाष्य आह्निक १)

तत्त्व) और प्रत्यय (ज्ञान, सूक्ष्म तत्त्व) का दार्शनिक विश्लेषण होकर व्याकरण-दर्शन को जन्म देता है। इसमें शब्दब्रह्म, वाक्य और पद का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।[५]

ब्राह्मण-युग—व्याकरण का जो सूत्रपात वैदिक युग में हुआ था, उसका पर्याप्त विकास ब्राह्मण-युग में हुआ। इस युग में बहुत से पारिभाषिक शब्द विकसित हुए, जिनका पाणिनि-व्याकरण में प्रयोग प्राप्त होता है। गोपथब्राह्मण मे निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है—धातु, प्रातिपदिक, आख्यात, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, निपात, व्याकरण, विकार, मात्रा, वर्ण, अक्षर, पद, संयोग, स्थान, नाद आदि।[६]

मैत्रायणी संहिता मे विभक्ति संज्ञा का उल्लेख मिलता है और उनकी संख्या ६ बताई गई है।[७] ऐतरेय ब्राह्मण में वाणी का ७ मार्गों (विभक्तियों) में विभाजन का वर्णन मिलता है।[८] ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्दो के निर्वचन के सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं तथा इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनौ आदि के अनेक पारिभाषिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ मिलते हैं। इस आधार पर हम ब्राह्मणग्रन्थोंको निरुक्त का आधार-ग्रन्थ कह सकते है। निर्वचन, व्युत्पत्ति और अर्थ-मीमांसा का इस युग में बहुत विकास हुआ। अतः व्याकरण का स्वरूप भी बहुत विकसित हुआ।

इसके पश्चात् वेदों की प्रत्येक शाखा के लिए 'प्रातिशाख्य' नामक व्याकरण के ग्रन्थ लिखे गये। प्रति (प्रत्येक) शाखा से 'प्रातिशाख्य' शब्द बना। प्रातिशाख्यों में प्रत्येक वेद की विभिन्न शाखा के लिए व्याकरण के नियम दिए गए हैं। इनमें वर्णोच्चारण-शिक्षा, संहिता-पाठ को पदपाठ मे बदलना और पदपाठ को संहिता-पाठ में बदलना, संधि-विधान, उदात्त आदि स्वरों का विधान, समस्त पदों का विभाजन, स्वर-सचार तथा शाखा-विशेष से संबद्ध सभी विषयों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इसी समय शाकल्य मुनि ने संहिताग्रन्थों के पद-पाठ का क्रम प्रस्तुत किया।

प्रातिशाख्यों को व्याकरण का प्रारम्भिक रूप समझना चाहिए। प्रातिशाख्यों मे व्याकरण के जो पारिभाषिक शब्द मिलते हैं, उनमें से अधिकाश पारिभाषिक शब्दों

---

५. व्याकरण के दार्शनिक पक्ष के विवेचन के लिए देखो—(क) भर्तृहरि-रचित वाक्यपदीय, (ख) लेखक-रचित 'अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन'।

६. ओंकारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रातिपदिकं, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वर उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणं, को विकारः, को विकारी, कतिमात्रः, कतिवर्णः, कत्यक्षरः, कतिपदः, कः संयोगः, किं स्थाननादानुप्रदानानुकरणम्०। (गोपथ० पू० १-२४)

७. तस्मात् षड् विभक्तयः। (मैत्रायणी संहिता १-७-३)

८. सप्तधा वै वागवदत् (ऐ० ब्रा० ७-७) सप्त विभक्तय इति भट्टभास्करः।

को परकालीन वैयाकरणों ने उसी रूप में अपने ग्रन्थों में स्वीकार कर लिया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में शुक्लयजुःप्रातिशाख्य के उपधा, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और आम्रेडित आदि शब्दों को जैसे का तैसा स्वीकार कर लिया है और उसके कुछ सूत्रों को भी थोड़े परिवर्तन के साथ स्वीकार किया है। इस प्रातिशाख्य को पाणिनि से पूर्ववर्ती माना जाता है। प्रातिशाख्यों में ऋक्प्रातिशाख्य को सबसे प्राचीन माना जाता है और यह पाणिनि से पूर्ववर्ती है। कुछ प्रातिशाख्य यास्क से भी प्राचीन हैं।

इसके पश्चात् विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ यास्क का निरुक्त है। यह 'निघण्टु' नामक वैदिक शब्दों के संग्रह पर एक विवेचनात्मक ग्रन्थ है। इसमें निर्वचन के नियमों का विशेष विस्तार के साथ प्रतिपादन किया गया है। निघण्टु के प्रत्येक शब्द की व्याख्या के लिए वे वैदिक मन्त्र प्रस्तुत करते हैं और निर्वचन-मूलक उनका अर्थ करते हैं। साथ ही विशिष्ट शब्दों का निर्वचन प्रस्तुत करते हैं। इसमें सैकड़ों शब्दों के निर्वचन दिए गए हैं। कहीं कहीं पर एक शब्द के अनेक निर्वचन भी दिए हैं। यास्क का मत है कि सभी संज्ञा-शब्द धातुज हैं अर्थात् वे किसी न किसी धातु में कुछ विशेष प्रत्यय करके बने हैं। यास्क ने अपने पूर्ववर्ती कई आचार्यों शाकटायन, शाकल्य, शाकपूणि, औदुम्बरायण आदि का उल्लेख भी किया है। भाषा की प्राचीनता के आधार पर यास्क का समय पाणिनि से पूर्व माना जाता है। यास्क का समय ईसा-पूर्व अष्टम शताब्दी के बाद नहीं रखा जा सकता है।

पाणिनि से पूर्व अनेक वैयाकरण आचार्य हो चुके थे। इनके ग्रन्थों का आश्रय लेकर पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना की है। अतः सुविधा के लिए निम्नलिखित रूप से तीन भागों में इनका विभाजन किया जा सकता है:—

(क) पूर्व-पाणिनि वैयाकरण।

(ख) आचार्य पाणिनि।

(ग) उत्तर-पाणिनि वैयाकरण।

(क) पूर्व-पाणिनि वैयाकरण

८५ पूर्व-पाणिनि वैयाकरण

पाणिनि से प्राचीन ८५ वैयाकरणों के नाम हमें प्राप्त होते हैं। इनमें से १० वैयाकरणों के नाम पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में दिए हैं। पाणिनि से प्राचीन १५ आचार्यों का उल्लेख अन्य प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। १० प्रातिशाख्य और ७ अन्य वैदिक-व्याकरण प्राप्त या ज्ञात हैं। प्रातिशाख्यों आदि में ५९ प्राचीन आचार्यों का उल्लेख मिलता है। पुनरुक्त नामों को छोड़ देने पर ८५ वैयाकरणों का हमें ज्ञान होता है।

(क) पाणिनीय अष्टाध्यायी में उल्लिखित १० आचार्य:—१. आपिशलि, २. काश्यप, ३. गार्ग्य, ४. गालव, ५. चाक्रवर्मण, ६. भारद्वाज, ७. शाकटायन, ८. शाकल्य, ९. सेनक, १०. स्फोटायन।

(ख) प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित १५ आचार्य :—१. शिव (महेश्वर), २. बृहस्पति, ३. इन्द्र, ४. वायु, ५. भरद्वाज, ६. भागुरि, ७. पौष्करसादि, ८. काशकृत्स्न, ९. रौढि, १०. चारायण, ११. माध्यन्दिनि, १२. वैयाघ्रपद्य, १३. शौनकि, १४. गौतम, १५. व्याडि।

(ग) १० प्रातिशाख्य :—१. ऋक्प्रातिशाख्य (शौनककृत), २. वाजसनेयप्राति० (कात्यायनकृत), ३. सामप्रातिशाख्य (पुष्पसूत्र), ४. अथर्वप्राति०, ५. तैत्तिरीयप्राति०, ६. मैत्रायणीय०, ७. आश्वलायन०, ८. बाष्कल०, ९. शांखायन०, १०. चारायण०।

(घ) ७ अन्य वैदिक व्याकरण :—१. ऋक्तन्त्र (शाकटायन या औदव्रजिकृत), २. लघु ऋक्तन्त्र, ३. अथर्वचतुरध्यायी (शौनक या कौत्स-कृत), ४. प्रतिज्ञासूत्र (कात्यायनकृत), ५. भाषिकसूत्र (कात्यायनकृत), ६. सामतन्त्र (औदव्रजि या गार्ग्य कृत), ७. अक्षरतन्त्र (आपिशलिकृत)।

(ङ) प्रातिशाख्य आदि में उद्धृत ५९ आचार्य[9] :—इनमें विशेष उल्लेखनीय आचार्य ये हैं :—१. अग्निवेश्य, २. आगस्त्य, ३. आत्रेय, ४. इन्द्र, ५. औदव्रजि, ६. कात्यायन, ७. काण्व, ८. काश्यप, ९. कौण्डिन्य, १०. गार्ग्य, ११. गौतम, १२. जातूकर्ण्य, १३. तैत्तिरीयक, १४ पंचाल, १५. पाणिनि, १६. पौष्करसादि, १७. बाभ्रव्य, १८. बृहस्पति, १९. ब्रह्मा, २०. भरद्वाज, २१. भारद्वाज, २२. माण्डूकेय, २३. माध्यन्दिन, २४. मीमांसक, २५. यास्क, २६. वाल्मीकि, २७. वेदमित्र, २८. व्याडि, २९. शाकटायन, ३०. शाकल, ३१. शाकल्य, ३२. शाखायन, ३३. शौनक, ३४. हारीत।

इनमें से कुछ नाम पुनरुक्त हैं, उनकी गणना नहीं की गई है। इनमें से अधिकांश का केवल नामोल्लेख मिलता है। विशेष कुछ भी विवरण प्राप्त नहीं होता है।

८ प्रकार के व्याकरण

प्राचीन समय में ८ प्रकार के व्याकरण प्रचलित थे, ऐसा अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है—व्याकरणमष्टप्रभेदम् (दुर्ग, निरुक्तवृत्ति पृ० ७४)। परन्तु ये ८ प्रकार के व्याकरण कौन से थे, इस विषय में ऐकमत्य नहीं है। एक स्थान पर निम्नलिखित ८ व्याकरणों का उल्लेख मिलता है—ब्राह्म, ऐशान, ऐन्द्र, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, त्वाष्ट्र, आपिशल और पाणिनीय[10]। वोपदेव ने कविकल्पद्रुम के प्रारम्भ में

---

९. विशेष विवरण के लिये देखो—संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग, १, पृष्ठ ६९ से ७२

१०. ब्राह्ममैशानमैन्द्रं च प्राजापत्यं बृहस्पतिम्।
त्वाष्ट्रमापिशलं चेति पाणिनीयमथाष्टमम्॥
(हैमबृहद्वृत्त्यवचूर्णि, पृष्ठ ३)

निम्न आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है :—इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनेन्द्र (पूज्यपाद, देवनन्दी)।[११]

९ प्रकार के व्याकरण

वाल्मीकिरामायण में ९ प्रकार के व्याकरणों का उल्लेख है।[१२] इसमें इन व्याकरणों का नाम नहीं दिया गया है। एक वैष्णव ग्रन्थ श्रीतत्त्वविधि में निम्न ९ व्याकरणों का उल्लेख है :—ऐन्द्र, चान्द्र, काशकृत्स्न, कौमार, शाकटायन, सारस्वत, आपिशल, शाकल्य और पाणिनीयक।[१३]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सभी ने ऐन्द्र व्याकरण को प्रमुखता दी है और इन्द्र को व्याकरण का सर्वप्रमुख आचार्य माना है। इन्द्र से प्राचीन दो आचार्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। वे हैं—ब्रह्मा और बृहस्पति।

१. ब्रह्मा—भारतीय परम्परा में ब्रह्मा को सभी विद्याओं का आदि प्रवक्ता कहा गया है। ऋक्तन्त्र में शाकटायन का कथन है कि ब्रह्मा ने बृहस्पति को व्याकरण का ज्ञान दिया, बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने ऋषियों को और ऋषियों ने ब्राह्मणों को।[१४] इस प्रकार ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त ज्ञान परम्परया ब्राह्मणों तक पहुँचा। ब्रह्मा के प्रवचन को 'शास्त्र' या 'शासन' नाम दिया गया। इसके परवर्ती व्याख्यानों को 'अनुशासन' कहा गया।

२. बृहस्पति—द्वितीय वैयाकरण बृहस्पति हैं। ये अंगिरस् के पुत्र होने से आंगिरस भी कहे जाते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों आदि में इन्हें देवों का गुरु और देवों का पुरोहित कहा गया है।[१५] बृहस्पति को अर्थशास्त्र का रचयिता भी माना जाता है। महाभारत के अनुसार इसमें तीन सहस्र अध्याय थे।[१६] बृहस्पति ने इन्द्र को व्याकरण की शिक्षा दी और एक हजार दिव्य-वर्ष तक प्रत्येक पद का पृथक् विवेचन बताते रहे। फिर भी व्याकरण समाप्त नहीं हुआ।[१७] इन्होंने जो व्याकरण बनाया था,

---

११. इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥

१२. सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता (वा० रा० उत्तरकाण्ड ३६-४१)

१३. ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम्॥

१४. ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः। (ऋक्तन्त्र १-४)

१५. बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहितः (ऐ० ब्रा० ८-२६)

१६. अध्यायानां सहस्रैस्तु त्रिभिरेव बृहस्पतिः (५९-८४)

१७. बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच। (महाभाष्य १-१-१)

ा नाम 'शब्दपारायण' था ।[18] इसमें प्रत्येक शब्द की अलग-अलग व्याख्या की
ी थी, अतः व्याकरण के अध्ययन में बहुत अधिक समय लगता था ।

३. इन्द्र—इन्द्र प्रथम वैयाकरण हैं, जिन्होंने शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय का विभाजन
के व्याकरण को सरल और सुगम बनाया ।[19] उनसे पहले केवल प्रतिपद-पाठ का
लन था । प्रकृति-प्रत्यय के विभाजन के द्वारा व्याकरण थोड़े नियमों में पूरा हो
ा और थोड़े समय में सीखा जाने लगा । इसका सारा श्रेय इन्द्र को है । ऋक्तन्त्र
:-४) के अनुसार इन्द्र ने भरद्वाज को शब्दशास्त्र की शिक्षा दी । यह व्याकरण
आगे ऐन्द्र व्याकरण के नाम से प्रचलित हुआ ।

ऐन्द्र व्याकरण

ऐन्द्र व्याकरण आजकल प्राप्त नहीं होता है, किन्तु अनेक ग्रन्थों में इसका उल्लेख
लता है । जैनशाकटायन व्याकरण (१-२-३७), लङ्कावतारसूत्र, सोमेश्वर
रे-रचित यशस्तिलकचम्पू (आश्वास १, पृष्ठ ९०), अल्बेरूनी की *भारतयात्रा का*
ान[20] आदि में ऐन्द्र व्याकरण का निर्देश मिलता है । कथासरित्सागर के अनुसार
द्र व्याकरण प्राचीन समय में ही नष्ट हो गया था ।[21] ऐन्द्रव्याकरण के कुछ सूत्रों
ादि का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है ।[22] ऐन्द्र व्याकरण ग्रन्थ अत्यन्त विस्तृत
ा । तिब्बतीय ग्रन्थों के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण का परिमाण २५ हजार श्लोक था ।
ाणिनीय व्याकरण का परिमाण लगभग १ हजार श्लोक है । इस प्रकार पाणिनीय
ाकरण से यह व्याकरण लगभग २५ गुना बड़ा होगा । इसकी परिभाषाएँ पाणिनि
अधिक सरल थीं । जैसे—अर्थः पदम्—सार्थक वर्णसमुदाय को पद कहते हैं । इस
ाकरण का दक्षिण में अधिक प्रचार था । तमिल भाषा के व्याकरण 'तोलकाप्पियं'पर
न्द्र -व्याकरण का बहुत प्रभाव है । इसमें पाणिनीय शिक्षा के श्लोकों का पद्यानुवाद है ।

पूर्वपाणिनि १५ आचार्य

प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित १५ आचार्यों के विषय में जो कुछ थोड़ा बहुत ज्ञात
, संक्षेप में उसका विवरण दिया जा रहा है :—

---

१८. शब्दपारायणशब्दो योगरूढः शास्त्रविशेषस्य (कैयट, प्रदीप नवा., पृष्ठ ५१)

१९. वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत् । ते देवा इन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति···
तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् । (तैत्तिरीयसंहिता ६-४-७)

२०. अल्बेरूनी का भारत, भाग २, पृष्ठ ४०

२१. प्रारम्भ से तरंग ४, श्लोक २४, २५ ।

२२. (क) अथ वर्णसमूहः, इति ऐन्द्रव्याकरणस्य (भट्टारक हरिचन्द्र कृत चरक-
व्याख्या) । (ख) *अर्थः पदम्*, इत्यैन्द्राणाम् (दुर्गाचार्य, निरुक्तवृत्ति का
प्रारम्भ) । (ग) संप्रयोगप्रयोजनम् ऐन्द्रेऽभिहितम् (नाट्यशास्त्र १४-२२
की टीका में अभिनवगुप्त) । (घ) तथा चोक्तमिन्द्रेण० (नन्दिकेश्वर की
काशिका पर महत्त्वविमर्शिनी टीका)

१. शिव (महेश्वर)—महाभारत में शिव को वेदांगों का प्रवर्तक कहा गया है।[२३] महाभारत में ही शिव को सांख्य-योग का प्रवर्तक, गीत और वाद्य का तत्त्वज्ञ, शिल्पियों में श्रेष्ठ और सारे शिल्पों का प्रवर्तक कहा गया है।[२४] शिव को १४ माहेश्वर सूत्रों (अइउण् आदि) का प्रणेता माना जाता है।[२५] शिव के व्याकरण को ऐशान (ईशान = शिव) व्याकरण कहा जाता था।

२. बृहस्पति, ३. इन्द्र—इनका वर्णन किया जा चुका है।

४. वायु—तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख है कि इन्द्र ने व्याकरण की रचना में वायु का सहयोग लिया था।[२६]

५. भरद्वाज—भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र हैं। ऋक्तन्त्र (१-४) के अनुसार भरद्वाज ने इन्द्र से व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की थी।

६. भागुरि—*बृहत्संहिता (४७-२) के अनुसार भागुरि बृहद्गर्ग का शिष्य था।* भागुरि के स्फुट वचन प्राप्त होते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि भागुरि बहुत सुलझा हुआ वैयाकरण था। भागुरिके वचन श्लोकबद्ध मिलते हैं, इससे अनुमान है कि संभवतः भागुरिका व्याकरण श्लोकबद्ध रहा हो। भागुरि का प्रसिद्ध श्लोक है :—

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा॥

७. पौष्करसादि—महाभाष्य (८-४-४८) के एक वार्तिक में पौष्करसादि का उल्लेख मिलता है।[२७] तैत्तिरीय और मैत्रायणीय प्रातिशाख्य में पौष्करसादि के अनेक मत उद्धृत हैं।[२८]

८. काशकृत्स्न—महाभाष्य (प्रथम आह्निक) में आपिशल और पाणिनीय शब्दानुशासन के साथ काशकृत्स्नके शब्दानुशासन का उल्लेख है।[२९] वोपदेव ने प्रसिद्ध आठ वैयाकरणों में काशकृत्स्न का नाम लिखा है[३०] तथा श्रीवत्सविधि में ९ वैयाकरणों में उसका नामोल्लेख है। कैयट ने महाभाष्य की टीका प्रदीप में (२-१-५०) तथा

---

२३. वेदात् षडङ्गान्युद्धृत्य (महाभारत शान्ति० २८४-९२)

२४. सांख्ययोगप्रवर्तिने (११४), गीतवादित्रतत्त्वज्ञो० (१४२), शिल्पिकः शिल्पिनां श्रेष्ठः, सर्वशिल्पप्रवर्तकः (१४८) (महा० शान्ति० अ० २८४)

२५. येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्० (पाणिनीयशिक्षा)

२६. वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्विति। सोऽब्रवीद् वरं वृणे, मह्यं चैव वायवे च सह गृह्याता इति। (तैत्ति० ६-४-७)

२७. चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः (महा० ८-४-४८)

२८. तै० प्रा० ५-३७, ३८। मै० प्रा० ५-३९, ४०।

२९. पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, आपिशलम्, काशकृत्स्नम्।

३०. देखो पादटिप्पणी-संख्या ११, १२।

वृषभदेव ने वाक्यपदीय की टीका (पृष्ठ ४१) में इसके सूत्रों का उल्लेख किया है। इसका ही नाम काशकृत्स्नि भी है।

९. रौढि—आचार्य रौढि का नाम काशिका (६-२-३६) में उदाहरण के रूप में मिलता है—**पाणिनीय-रौढीयाः, रौढीयकाशकृत्स्नाः**। रौढि भी पाणिनि और काशकृत्स्न के सदृश वैयाकरण थे। महाभाष्य (१-१-७३) में पतंजलि ने घृतरौढीयाः उदाहरण दिया है। काशिका (१-१-५३) में इसकी व्याख्या दी है कि आचार्य रौढि बड़े संपन्न व्यक्ति थे। वे अपने छात्रों के लिए घी की व्यवस्था रखते थे। कुछ छात्र घी खाने के लिए ही उनके यहाँ विद्यार्थी बनते थे।

१०. चारायण—महाभाष्य (१-१-७३) में आचार्य चारायण का उल्लेख **कम्बलचारायणीयाः** उदाहरणमें मिलता है। ये छात्रों को कम्बल देते थे, अतः कुछ छात्र कम्बल के लोभ से ही इनके छात्र बनते थे। चारायण कृष्ण यजुर्वेद की चारायणीय शाखा के प्रवक्ता हैं। 'चारायणीय संहिता' इनका ग्रन्थ था। यह अप्राप्य है। डा० कीलहार्न ने काश्मीर से प्राप्त 'चारायणी शिक्षा' का उल्लेख किया है।

११. माध्यन्दिनि—काशिका (७-१-९४) में एक कारिका में इनका उल्लेख है।[३१] इनके पिता मध्यन्दिन थे। इन्होंने शुक्लयजुर्वेद का पदपाठ किया था, जिसके कारण शुक्लयजुर्वेद को माध्यन्दिनी संहिता कहते हैं। माध्यन्दिनी संहिता के शुक्लयजुः-प्रातिशाख्य से पाणिनि ने बहुत से पारिभाषिक शब्द आदि ग्रहण किए हैं। दो माध्यान्दिनी शिक्षाएँ (एक लघु, दूसरी बृहत्) प्राप्त होती हैं।

१२. वैयाघ्रपद्य—काशिका (७-१-९४) में इनका उल्लेख है।[३१] इनके पिता या मूलपुरुष व्याघ्रपाद् थे। महाभारत (अनुशासन पर्व, ५३-३०) में व्याघ्रपाद् को महर्षि वसिष्ठ का पुत्र बताया है। काशिका (५-१-५८) में 'दशकं वैयाघ्रपदीयम्' कहा है। इससे ज्ञात होता है कि इनके व्याकरण में १० अध्याय थे।

१३. शौनकि—शौनकि का विशेष विवरण अप्राप्त है। भट्टि की जयमंगला टीका (३-४७) में शौनकि का एक वचन उद्धृत है।[३२] ज्योतिष ग्रन्थोंमे इसके मतोंका उल्लेख मिलता है।

१४. गौतम—महाभाष्य (६-२-३६) में आचार्य गौतम का नाम मिलता है।[३३] इसमें आपिशलि, पाणिनि और व्याडि के साथ गौतम का नामोल्लेख है। तैत्तिरीय और मैत्रायणीय प्रातिशाख्यों में गौतम के मत दिए गए हैं।[३४] गौतमप्रोक्त एक गौतमी शिक्षा संप्रति उपलब्ध है।

---

३१. माध्यन्दिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते, नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः।

३२. धाञ्धातोस्तनिनह्योश्च बहुलत्वेन शौनकिः।

३३. आपिशलपाणिनीयव्याडीयगौतमीयाः।

३४. तै० प्रा० ५-३८। मै० प्रा० ५-४०।

१५. व्याडि—आचार्य व्याडि प्राचीन महावैयाकरण हैं। ऋक्प्रातिशाख्य में आचार्य शौनक ने व्याडि के अनेक मत उद्धृत किए हैं।[३५] शौनक ने ही शाकल्य और गार्ग्य के साथ ही व्याडि का भी उल्लेख किया है।[३६] महाभाष्य (६-२-३६) में आपिशलि और पाणिनिके शिष्योंके साथ व्याडि के शिष्योंका भी उल्लेख है। व्याडि के ही अन्य दो नाम दाक्षायण और दाक्षि हैं।[३७] इनकी बहिन दाक्षी थी। पाणिनि दाक्षीपुत्र होने से इनकी बहिन के पुत्र हैं, अर्थात् व्याडि पाणिनि के मामा हैं और पाणिनि इनके भानजा। व्याडि का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संग्रह' था। पतंजलि आदि ने भी इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[३८] यह वाक्यपदीय के ढंग का प्राचीन व्याकरण-दर्शन का ग्रन्थ था। इसमें व्याकरण का दार्शनिक विवेचन था। पतंजलि (महा० १-२-६४) में व्याडि को द्रव्यपदार्थवादी बताया है। 'द्रव्याभिधानं व्याडिः'। नागेश ने और वाक्यपदीय के टीकाकार पुण्यराज ने संग्रह ग्रन्थ का परिमाण एक लाख श्लोक माना है।[३९]

इन १५ आचार्यों के समय के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ये पाणिनि से पूर्ववर्ती हैं। इससे आगे केवल अनुमान का विषय है। इस विषयमें प्रामाणिक सामग्री का अभाव है।

अष्टाध्यायी में उल्लिखित १० आचार्य

१. आपिशलि—पाणिनि ने एक सूत्र में आचार्य आपिशलि का उल्लेख किया है।[४०] महाभाष्य (४-२-४५) में आपिशलि का मत प्रमाण के रूप में उद्धृत किया गया है। वामन, कैयट आदि ने इसके अनेक सूत्र उद्धृत किए हैं। आपिशलि पाणिनि से कुछ वर्ष ही प्राचीन ज्ञात होते हैं। आपिशलि बहुत प्रसिद्ध वैयाकरण थे, अतः उस समय व्याकरण की पाठशालाओं को आपिशलि-शाला कहते थे। पदमंजरीकार हरदत्त के लेख से ज्ञात होता है कि पाणिनि से ठीक पहले आपिशलि का ही व्याकरण प्रचलित था।[४१] महाभाष्य (४-१-१४) से ज्ञात होता है कि कात्यायन और पतंजलि के समय में भी आपिशल व्याकरण का पर्याप्त प्रचार था। कन्याएँ भी आपि-

---

३५. ऋक्प्रा० २-२३-२८। ६-४३।

३६. व्याडिशाकल्यगार्ग्याः (ऋक्प्रा० १३-३१)

३७. तत्रभवान् दाक्षायणः, दाक्षिर्वा (काशिका ४-१-१७)

३८. शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः। (महाभाष्य २-३-६६)

३९. व्याड्युपरचितं लक्षग्रन्थपरिमाणं संग्रहाभिधानं निबन्धमासीत्। (वाक्यपदीय टीका, पृ० २८३)। संग्रहो व्याडिकृतो लक्षश्लोकसंख्यो ग्रन्थ इति प्रसिद्धिः (नवाह्निक, उद्योत)।

४०. वा सुप्यापिशलेः (अष्टा० ६-१-९२)

४१. पदमंजरी, भाग १, पृष्ठ ६।

शल व्याकरण पड़ती थीं।[४२] आपिशल व्याकरण पाणिनीय व्याकरण का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। पाणिनि ने इससे अनेक संज्ञाएँ, प्रत्यय, प्रत्याहार आदि लिए हैं। इसके व्याकरण में भी ८ अध्याय थे। इसके कुछ सूत्र उदाहरणार्थ ये हैं–**१. विभक्त्यन्तं पदम्, २. मन्यकर्मण्यनादरे उपमाने विभाषा प्राणिषु, ३. शब्विकरणे गुणः, ४. करोतेश्च, ५. भिदेश्च।** आपिशल व्याकरण के अतिरिक्त इसके अन्य ग्रन्थ ये हैं:–धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र, आपिशलशिक्षा, अक्षरतन्त्र।

२. काश्यप—पाणिनि ने काश्यप का दो स्थानों पर उल्लेख किया है।[४३] वाजसनेय प्रातिशाख्य (४–५) में भी काश्यप का उल्लेख है। इनके व्याकरण का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता है।

३. गार्ग्य—पाणिनि ने तीन सूत्रों में गार्ग्य का उल्लेख किया है।[४४] ऋक्प्रातिशाख्य, वाजसनेय प्रातिशाख्य और यास्क के निरुक्त में गार्ग्य का उल्लेख मिलता है। वैयाकरण गार्ग्य और नैरुक्त गार्ग्य संभवतः एक ही व्यक्ति हैं। गार्ग्य का व्याकरण प्राप्त नहीं है। अष्टाध्यायी और प्रातिशाख्यों में प्राप्त गार्ग्य के मतों से ज्ञात होता है कि गार्ग्य का व्याकरण सर्वाङ्गपूर्ण था। गार्ग्य का मत था कि उन शब्दों को ही धातुज मानना चाहिए,जिनमें धातु और प्रत्यय स्पष्टरूप से बताया जा सके। सभी शब्द धातुज नहीं हैं।

४. गालव—पाणिनि ने चार सूत्रों में गालव का उल्लेख किया है।[४५] पुरुषोत्तमदेव ने भाषावृत्ति में गालव के मत का उल्लेख किया है।[४६] व्याडि, काश्यप और गार्ग्य जैसे वैयाकरणों के साथ उसके मत का उल्लेख है, इससे ज्ञात होता है कि गालव उच्चकोटि के वैयाकरण थे और उनका कोई व्याकरण था। महाभारत में गालव को पांचाल बताया गया है और उसका गोत्र बाभ्रव्य। उसे क्रमपाठ और शिक्षा-ग्रन्थ का प्रणेता भी कहा गया है।[४७] निरुक्त, बृहद्देवता, ऐतरेय आरण्यक, वायुपुराण और चरकसंहिता में गालव के मत उद्धृत हैं।

---

४२. आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला ब्राह्मणी (महा० ४–१–१४)

४३. तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य (१–२–२५)। नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् (८–४–६७)।

४४. अङ् गार्ग्यगालवयोः (७–३–९९)। ओतो गार्ग्यस्य (८–३–२०)। नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्य० (८–४–६७)

४५. इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य (६–३–६१), तृतीयादिषु...गालवस्य (७–१–७४), अङ् गार्ग्यगालवयोः (७–३–९९), नोदात्त० (८–४–६७)

४६. इकां यण्भिर्व्यवधानं व्याडिगालवयोरिति वक्तव्यम्। दधियत्र, दध्यत्र। मधुवत्र, मध्वत्र। (भाषावृत्ति ६–१–७७)

४७. पाञ्चालेन क्रमः प्राप्तः...बाभ्रव्यगोत्रः स बभूव...। क्रमं प्रणीय शिक्षां च प्रणयित्वा स गालवः॥ महा० शान्ति० ३४२–१०३, १०४।

५. चाक्रवर्मण—चाक्रवर्मण का नाम अष्टाध्यायी में एक सूत्र में आया है।[४८] उणादिसूत्रों में भी इनका नाम आया है। शब्दकौस्तुभ में भट्टोजिदीक्षितने चाक्रवर्मण-व्याकरण का उल्लेख किया है।[४९]

६. भारद्वाज—अष्टाध्यायी में भारद्वाज का नाम एक सूत्र में है।[५०] कृकणपर्णाद् भरद्वाजे (४-२-१४५) में भी भरद्वाज है, पर काशिकाकार उसे देशवाचक मानते हैं। संभवतः यह इन्द्र के शिष्य भरद्वाज के वंशज हैं। इनके व्याकरण का विवरण अप्राप्त है।

७. शाकटायन—पाणिनि ने तीन सूत्रों में शाकटायन का उल्लेख किया है।[५१] वाजसनेय प्रातिशाख्य और ऋक्प्रातिशाख्य में अनेक स्थानों पर शाकटायन का उल्लेख है।[५२] यास्क ने निरुक्त में वैयाकरण शाकटायन का मत उद्धृत किया है कि शाकटायन सभी शब्दों को धातुज मानते हैं।[५३] पतंजलि ने शाकटायन को व्याकरण का आचार्य माना है। इनके पिता का नाम शकट था, अतः पतंजलि ने इन्हें शकट-तोक या शकट-पुत्र कहा है।[५४] शाकटायन महान् वैयाकरण और उच्चकोटि के साधक तथा योगी थे। पतंजलि ने उल्लेख किया है कि—एक बार इनके सामने से गाड़ियों का समूह निकल गया, पर इन्हें कुछ नहीं पता लगा। ये अपने ध्यान में मग्न रहे।[५५] काशिकाकार ने शाकटायन को सर्वोच्च वैयाकरण मानते हुए कहा है—अनुशाकटायनं वैयाकरणाः। उपशाकटायनं वैयाकरणाः (सब वैयाकरण शाकटायन से हीन हैं)।[५६] निरुक्त (१-१२) से ज्ञात होता है कि शाकटायन ही ऐसे साहसी वैयाकरण थे, जो सारे शब्दों को धातुज मानते थे। उन्होंने सत्य आदि की सिद्धि के लिए एक से अधिक धातुओं को अपनाया है। अतः निरुक्त (१-१३) में इनकी आलोचना भी की गई है। इनका व्याकरणग्रन्थ अप्राप्त है। नागेश ने इनको ऋक्तन्त्र का प्रणेता भी माना है।

---

४८. ई चाक्रवर्मणस्य (६-१-१३०)

४९. यत्तु कश्चिदाह चाक्रवर्मणव्याकरणे॰ (शब्दकौ॰ १-१-२७)

५०. ऋतो भारद्वाजस्य (७-२-६३)

५१. लङः शाकटायनस्यैव (३-४-१११)। व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य (८-३-१८)। त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य (८-४-५०)

५२. वा. प्रा. ३-९, १२, ८७। ऋक्॰ १-१६, १३-३९,

५३. तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च। (निरुक्त १-१२)

५४. व्याकरणे शकटस्य च तोकम् (महा॰ ३-२-१)। वैयाकरणानां शाकटायनो॰ (महा॰ ३-२-११५)

५५. वैयाकरणानां शाकटायनो रथमार्ग आसीनः शकटसार्थं यान्तं नोपलेभे (महा॰ ३-२-११५)

५६. काशिका (१-४-८६ और १-४-८७)

८. शाकल्य—अष्टाध्यायी में चार सूत्रों में शाकल्य का उल्लेख है।[57] शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य में और कात्यायन ने वाजसनेय प्रातिशाख्य में शाकल्य के मतों का उल्लेख किया है।[58] ऋक्प्रातिशाख्य में शाकल्य के नियमों का शाकल के नाम से उल्लेख है। पतंजलि ने (६-१-१२७) में शाकल के नाम से शाकल्य का उल्लेख किया है। शाकल्य के व्याकरण में लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों का विवेचन था। शाकल्य ने ऋग्वेद के पदपाठ की रचना की और वात्स्य आदि को इसके संहिता, पद, क्रमपाठ आदि की शिक्षा दी।

९. सेनक—पाणिनि ने एक सूत्र में सेनक का उल्लेख किया है।[59] इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

१० स्फोटायन—स्फोटायन का नाम भी अष्टाध्यायी में एक बार आया है।[60] पदमंजरीकार हरदत्त ने काशिका (६-१-१२३) की व्याख्या में स्फोटायन की व्याख्या की है कि स्फोटसिद्धान्त के प्रतिपादन करने वाले वैयाकरणाचार्य।[61] यन्त्र-सर्वस्व के रचयिता भरद्वाज ने 'चित्रिण्येवेति स्फोटायनः' सूत्र के द्वारा स्फोटायन को विमान का विशेषज्ञ वैज्ञानिक बताया है। स्फोट-सिद्धान्त के आदि-प्रवक्ता होने का श्रेय स्फोटायन आचार्य को ही है। इनका अन्य विवरण अप्राप्त है।

(ख) आचार्य पाणिनि

संस्कृत व्याकरण के इतिहास में आचार्य पाणिनि का नाम अमरज्योति के तुल्य देदीप्यमान है। पाणिनि का व्याकरण इतना सर्वांगपूर्ण है कि इसके सामने प्राचीन सारे व्याकरण के ग्रन्थ लुप्तप्राय हो गए हैं। सूर्य के तेज के सामने तारों की ज्योति के तुल्य प्राचीन व्याकरणों की आभा पाणिनि के व्याकरण के सन्मुख सर्वथा क्षीण हो गई। यही कारण है कि संप्रति सभी प्राचीन व्याकरणों के केवल नाममात्र शेष रह गए हैं। पाणिनि के बाद उसके टीकाकार, भाष्यकार और व्याख्याकार ही व्याकरण-जगत् में ख्याति प्राप्त कर सके। वार्तिककार कात्यायन और भाष्यकार पतंजलि ने उसके नाम को अमर बना दिया है।

वैदिक भाषा और पाणिनि-कालीन भाषा में पर्याप्त अन्तर हो गया था। पाणिनि ने वैदिक भाषा के लिए छन्दस् शब्द का प्रयोग किया है और लोक-प्रचलित भाषा

---

५७. संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (१-१-१६)। इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य० (६-१-१२७)। लोपः शाकल्यस्य (८-३-१९)। सर्वत्र शाकल्यस्य (८-४-५१)

५८. ऋक् प्रा० ३-१३। ४-१३। वा. प्रा. ३-१०।

५९. गिरेश्च सेनकस्य (५-४-११२)

६०. अवङ् स्फोटायनस्य (६-१-१२३)

६१. स्फोटोऽयनं परायणं यस्य स स्फोटायनः, स्फोटप्रतिपादनपरो वैयाकरणाचार्यः।

के लिए भाषा शब्द का ।[६२] यास्क ने भी ॰किक संस्कृत के लिए भाषा शब्द का प्रयोग किया है ।[६३] भाषा शब्द से स्पष्ट होता है कि यास्क और पाणिनि के समय में संस्कृत का जनसाधारण में प्रचलन था और यह शिष्ट-वर्ग के दैनिक व्यवहार की भाषा थी ।

पाणिनि ने मध्यदेश में शिष्ट-जन-प्रयुक्त भाषा को ही आधार मानकर अष्टाध्यायी की रचना की है । पूर्वी और उत्तरी क्षेत्रों में प्रयुक्त रूपों के लिए उन्होंने प्राचाम्, उदीचाम् आदि शब्दों का प्रयोग करके अन्तर स्पष्ट किया है ।[६४]

संस्कृत के साथ ही साथ जन-साधारण (प्रकृत-जन) में प्राकृत भाषा का प्रयोग होता था । बाद में 'प्राकृत' (जनसाधारण या आम जनता में प्रयुक्त) से अन्तर स्पष्ट करने के लिए 'संस्कृत' (शिष्ट-जन-प्रयुक्त) नाम अधिक प्रचलित हो गया । जिस प्रकार आजकल खड़ी बोली हिन्दी और भोजपुरी, अवधी, ब्रजभाषा आदि में अन्तर है, उसी प्रकार उस समय संस्कृत और प्राकृत में अन्तर था । दोनों का ही समानान्तर प्रचलन था ।

पतंजलि ने 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' तथा 'लोकतोऽर्थप्रयुक्ते॰' वार्तिकों की व्याख्या से स्पष्ट किया है कि पाणिनि ने लोक-व्यवहार में प्रचलित शब्दों को लेकर अपना व्याकरण बनाया है । इसका उद्देश्य है—भाषा में असाधु शब्दों के प्रचलन को रोकना, भाषा की अनियमता और असंयतता को दूर करना और भाषा की एकरूपता को बनाए रखना । यही कारण है कि ढाई सहस्र वर्ष बाद भी संस्कृत का एकरूप ही सारे भारतवर्ष में दृष्टिगोचर होता है ।

पाणिनि का जीवन-चरित

पाणिनि के जीवन-चरित के विषय में प्रामाणिक सामग्री का अत्यन्त अभाव है । सोमदेव के कथासरित्सागर, राजशेखर की काव्यमीमांसा, पतंजलि के महाभाष्य और मंजुश्रीमूलकल्प में कुछ स्फुट विवरण प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर पाणिनि के विषय में कुछ कहा जा सकता है । संक्षेप में उसका विवरण निम्नलिखित है :—

इनका प्रचलित नाम पाणिनि है । त्रिकाण्डशेष में पुरुषोत्तमदेव ने पाणिनि के पाँच पर्यायवाचक शब्द दिए हैं[६५] :—१. पाणिन, २. पाणिनि, ३. दाक्षीपुत्र, ४. शालंकि,

---

६२. छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् (१-२-६१), छन्दसि परेऽपि (१-४-८१), बहुलं छन्दसि (२-४-३९), गुपेश्छन्दसि (३-१-५०) । भाषायां सद-वसश्रुवः (३-२-१०८)

६३. भाषायामन्वध्यायं च (निरुक्त १-४)

६४. प्राचां ष्फ तद्धितः (४-१-१७), उदीचामातः स्थाने॰ (७-३-४६)

६५. पाणिनिस्त्वाहिको दाक्षीपुत्रः शालङ्किपाणिनौ ।
शालोत्तरीयः॰ ॥

५. शालातुरीय, ६. आहिक । पाणिनि शब्द की व्युत्पत्ति कैयट ने इस प्रकार दी है :—पणिन् का पुत्र पाणिन और पाणिन का पुत्र पाणिनि।[६६] इस व्युत्पत्तिके अनुसार पाणिनि के पिता का नाम पाणिन है। दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार इनके पिता का नाम पणिन् या पणिन है।[६७] श्री युधिष्ठिर मीमांसक दूसरे मत को अधिक उपयुक्त और प्रामाणिक मानते हैं तथा पाणिनि के पिता का नाम पणिन् मानते हैं। पणिन् को ही पणिन भी कहते हैं।

पतंजलि के महाभाष्य (१-१-२०) में पाणिनि को दाक्षीपुत्र कहा है।[६८] इससे ज्ञात होता है कि इनकी माता का नाम दाक्षी था। दक्ष-कुल की होने से माता का नाम दाक्षी था। संग्रहकार व्याडि के नाम दाक्षि और दाक्षायण हैं। इससे ज्ञात होता है कि व्याडि पाणिनि के मामा थे। षड्गुरुशिष्य ने वेदार्थदीपिका में छन्दःशास्त्र के प्रणेता पिङ्गल को पाणिनि का छोटा भाई बताया है।[६९] संक्षेप में वंशक्रम यह है:—व्यड से दाक्षि (व्याडि) और दाक्षी (पति पणिन्), दाक्षी और पणिन् दोनों के २ पुत्र > पाणिनि और पिंगल।

कथासरित्सागर में पाणिनि के गुरु का नाम वर्ष दिया है।[७०] इसमें ही कात्यायन, व्याडि और इन्द्रदत्त को पाणिनि का सहपाठी बताया है। कात्यायन कई शताब्दी परकालीन हैं, अतः कथासरित्सागर का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। पाणिनि को जडबुद्धि मानना भी विश्वसनीय नहीं है। परम्परा महेश्वर को पाणिनि का गुरु मानती है। इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि महेश्वर या शिव की भक्ति से इन्हें ज्ञानालोक हुआ हो।

पतंजलि ने पाणिनि की प्रशंसा में कहा है कि पाणिनि ने इतने कठोर परिश्रम से एक एक सूत्र बनाया है कि उनमें एक वर्ण भी निरर्थक नहीं हो सकता है।[७१] काशिका में जयादित्य ने पाणिनि की सूक्ष्मदृष्टि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[७२] पाणिनि की दृष्टि इतनी सूक्ष्म थी कि छोटी-से-छोटी बातें भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो सकी हैं।

---

६६. पणिनोऽपत्यमित्यण् पाणिनः। पाणिनस्यापत्यं युवेति इञ् पाणिनिः। कैयट, प्रदीप १-१-७३।

६७. पणिनः मुनिः। पणिनस्य पुत्रः पाणिनिः।

६८. सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः।

६९. भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन० (पृ० ७०)

७०. अथ कालेन वर्षस्य शिष्यवर्गो महानभूत्।
तत्रैकः पाणिनिर्नाम जडबुद्धितरोऽभवत्॥ (१-४-२०)

७१. प्रमाणभूत आचार्यो...महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म।
तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्। (महा० १-१-१)

७२. महती सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य। (काशिका ४-२-७४)

काव्यमीमांसा में राजशेखर का कथन है कि पाटलिपुत्र में जिन विद्वानों की शास्त्रपरीक्षा हुई, उनमें पाणिनि भी हैं। तत्पश्चात् उनकी ख्याति हुई।[७३] महाभाष्य (३–२–१०८) में पाणिनि के एक शिष्य कौत्स का उल्लेख है। 'उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्'। अथर्ववेद की शौनकीय चतुरध्यायी कौत्सकृत मानी जाती है। यह कौत्स कालिदासद्वारा निर्दिष्ट वरतन्तुशिष्य कौत्स (रघुवंश ५–१) से भिन्न है।

पाणिनि का एक नाम 'शालातुरीय' है। शालातुरीय का अर्थ है—जिसके पूर्वज शलातुर-ग्राम के निवासी थे।[७४] पाणिनि के पूर्वज शलातुर के निवासी थे। पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार पेशावर में अटक के समीप 'लाहुर' ग्राम ही प्राचीन शालातुर है।

पाणिनि अत्यन्त सम्पन्न परिवार के थे। वे छात्रों के भोजन आदि की भी व्यवस्था करते थे। कुछ छात्र केवल भोजन के लोभ से ही उनके शिष्य होते थे, उन्हें 'ओदनपाणिनीयाः' (महाभाष्य १–१–७३) कहते थे। इसका अर्थ है—ओदन या भोजन के लिए ही पाणिनीय व्याकरण पढ़ने वाले। यह निन्दापरक शब्द है।

पाणिनि की मृत्यु के विषय में पंचतन्त्र में उद्धृत एक श्लोक के आधार पर किंवदन्ती है कि वैयाकरण पाणिनि को एक शेर ने मारा था।[७५] इस श्लोक में जैमिनि की मृत्यु हाथी से और पिंगल की मृत्यु मगर से बताई है। किंवदन्ती है कि पाणिनि की मृत्यु त्रयोदशी को हुई थी, अतः वैयाकरण त्रयोदशी को अनध्याय रखते हैं। इस विषय में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है।

पाणिनि की रचनाएँ

१. अष्टाध्यायी—पाणिनि की सर्वोत्कृष्ट रचना अष्टाध्यायी है। यह लौकिक संस्कृत का प्रथम सर्वोत्कृष्ट व्याकरण है। इसमें साथ-ही-साथ वैदिक व्याकरण भी दिया गया है। यह सूत्र-पद्धति से लिखा गया है, अतः पाणिनि को 'सूत्रकार' भी कहा जाता है। ये सूत्र इतने सुगठित हैं कि इनमें एक वर्ण या एक मात्रा का भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ढाई सहस्र वर्ष बाद भी अष्टाध्यायी में कोई पाठभेद आदि नहीं मिलते हैं।

---

७३. पाटलिपुत्रे शास्त्रपरीक्षा—
अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः।
वररुचिपतंजली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः॥

काव्यमीमांसा—अध्याय १०

७४. शलातुरो नाम ग्रामः, सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीयः तत्रभवान् पाणिनिः (गणरत्नमहोदधि पृष्ठ १)

७५. सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः। (पंचतन्त्र, मित्रसंप्राप्ति, श्लोक ३६)।

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। प्रत्येक पाद के सूत्रों की संख्या में पर्याप्त भेद है। इसको अष्टाध्यायी, अष्टक और पाणिनीय भी कहते हैं, किन्तु प्रचलित नाम अष्टाध्यायी ही है। १४ प्रत्याहारसूत्रों को लेकर इसकी सूत्र संख्या ३९९५ मानी जाती है और सभी लेखकों ने इतनी ही संख्या लिखी है। वास्तविक गणना से ज्ञात होता है कि १४ प्रत्याहारसूत्रों (अइउण् आदि) को लेकर कुल सूत्रसंख्या ३९९७ है, न कि ३९९५। अध्यायों के क्रम से सूत्र संख्या इस प्रकार है :—(१) ३५१, (२) २६८, (३) ६३१, (४) ६३५, (५) ५५५, (६) ७३६, (७) ४३८, (८) ३६९ = ३९८३ + १४ प्रत्याहार सूत्र = ३९९७ सूत्र संख्या। सूत्रसंख्या की दृष्टि से अष्टाध्यायी के अध्यायों का क्रम होगा :—१. (६) ७३६, २. (४) ६३५, ३. (३) ६३१, ४. (५) ५५५, ५. (७) ४३८, ६. (८) ३६९, ७. (१) ३५१, ८. (२) २६८। (क) सबसे अधिक एक पाद में सूत्र—अध्याय ६ पाद १ में २२३ सूत्र हैं, (ख) सबसे कम एक पाद में सूत्र—अध्याय २ पाद २ में ३८ सूत्र। प्रत्येक अध्याय में संक्षेप में निम्नलिखित विषय दिए गए हैं—(१) परिभाषाएँ, परस्मैपद और आत्मनेपद प्रक्रियाएँ, कारक—चतुर्थी, पंचमी। (२) समास, कारक—तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी। (३) कृत्य और कृत् प्रत्यय। (४) और (५) तद्धित प्रत्यय, (६) तिङन्त, सन्धि, स्वर, अंगाधिकार प्रारम्भ। (७) अंगाधिकार (सुबन्त, तिङन्त)। (८) द्विरुक्त, स्वर-प्रक्रिया, संधि-प्रकरण, षत्व, णत्व।

अष्टाध्यायी की विशेषताएँ

(१) प्रत्याहार—अष्टाध्यायी प्रत्याहार या माहेश्वर-सूत्रों को आधार मानकर चली है। पाणिनि ने प्रथम और अन्तिम अक्षरों को लेकर अनेक प्रत्याहार बनाए हैं। ये प्रत्याहार मध्यगत सभी प्रत्ययों आदि के ग्राहक होते हैं। जैसे—सुप् (प्र० १ से स० ३ तक सभी प्रत्यय), तिङ् (सभी पर० और आ० तिङ् प्रत्यय)। (२) अधिकारसूत्र—अष्टाध्यायी में बीच-बीच में अधिकार-सूत्र दिए गए हैं। निर्दिष्ट स्थान तक अधिकारसूत्रों का अधिकार चलता है। उतने बीच में सर्वत्र उन सूत्रों की अनुवृत्ति होगी। जैसे—कृत्याः (३-१-९५) का अधिकार ण्वुल्तृचौ (३-१-१३३) तक है। धातोः (३-१-९१) का अधिकार तीसरे अध्याय के अन्त तक है। तद्धिताः (४-१-७७) का अधिकार पाँचवे अध्याय की समाप्ति तक है। (३) गणपाठ—संक्षेप के लिए पाणिनि ने गणपाठों का उपयोग किया है। यदि एक ही कार्य अनेक शब्दों से होता है तो सभी शब्दों को न देकर 'आदि' शब्द लगाकर गण बना दिया है। उसका अर्थ होता है कि इस शब्द से तथा इस प्रकार के अन्य शब्दों से यह प्रत्यय या यह कार्य होता है। जैसे—दण्डादिभ्यो यत् (५-१-६६) दण्ड आदि से यत् (य) प्रत्यय होता है। दण्ड आदि गण में १५ शब्द हैं। अष्टाध्यायी में २५८ गणपाठ वाले सूत्र हैं। (४) लौकिक और वैदिक व्याकरण—पाणिनि-व्याकरण मुख्यतया लौकिक संस्कृत के लिए है, परन्तु साथ ही साथ वैदिक

व्याकरण भी पूरा दिया गया है। जहाँ पर लौकिक संस्कृत से अन्तर होता है, वहाँ पर उसके बाद तुरन्त वे वैदिक व्याकरण का सूत्र देते हैं। जैसे—प्रेष्यब्रुवो० (२-३-६१) के बाद चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि (२-३-६२) वेद में चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी भी होती है। लौकिक संस्कृत के लिए 'भाषायाम्' और वैदिक के लिए 'छन्दसि' पद दिया है। (५) *शब्दों के तीन भेद*—सुबन्त, तिङन्त और अव्यय। *'अपदं न प्रयुञ्जीत'* सुबन्त या तिङन्त पद का ही प्रयोग हो सकता है, केवल शब्द या धातु का नहीं। सार्थक शब्द को प्रातिपदिक नाम दिया है। अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (१-२-४५) सूत्र से पाणिनि ने सिद्ध किया है कि वाक्य ही सार्थक तत्त्व है। वाक्य के विश्लेषण से ही नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात होते हैं। (६) ध्वनियों का वर्गीकरण—ध्वनियों का वर्गीकरण पाणिनि की भाषाशास्त्र को महत्त्वपूर्ण देन है। सिद्धान्तकौमुदी संज्ञाप्रकरण में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है।

२. धातुपाठ—पाणिनि की अन्य रचनाओं में धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र और *लिङ्गानुशासन की भी गणना है। अष्टाध्यायी की पूर्णता के लिए इन चारों की रचना* भी अनिवार्य थी। धातुपाठ में धातुओं के साथ जो अनुबन्ध लगे हैं, तदनुसार ही पाणिनि ने सूत्र भी बनाए हैं। धातुपाठ में धातुएँ दी गई हैं और साथ में उनका अर्थ *दिया है। आवश्यकतानुसार धातुओं के आदि या अन्त में अनुबन्ध लगाए गए हैं।* वे अनुबन्ध सार्थक हैं। जैसे—भू सत्तायाम्, डुकृञ् करणे, डुदाञ् दाने, टुओश्वि गतिवृद्ध्योः। डु इत् होने से ड्वितः क्त्रिः (३-३-८८) से क्त्रि प्रत्यय होता है, जैसे—कृ=कृत्रिम। ञ् हटने से धातु उभयपदी होती है। ङ् हटने से आत्मनेपदी होती है। टु हटने से ट्वितोऽथुच् (३-३-८९) से अथु प्रत्यय होता है, जैसे—श्वि> श्वयथुः (सूजन)। ओ हटने से ओदितश्च (८-२-४५) से क्त के त को न। श्वि + क्त = शूनः। धातुपाठ १० गणों में विभक्त है और कुल १९४४ धातुएँ धातुपाठ में हैं।

३. गणपाठ—गणपाठ भी पाणिनि की कृति है। जिन शब्दों में एक कार्य (प्रत्यय आदि) होता है, उन्हें एक गण में रखा गया है। इस प्रकार सभी शब्दों की गणना की आवश्यकता नहीं होती है। एक शब्द के बाद 'आदि' शब्द लगा देने से काम चल जाता है। अष्टाध्यायी में २५८ गणों का उल्लेख है। चादयोऽसत्त्वे (१-४-५७) च आदि की निपात संज्ञा होती है, अतः ये अव्यय हैं। च आदि गण में पाणिनि ने १४० शब्द गिनाए हैं। इसी प्रकार अनेक गणों में १०० से अधिक शब्द हैं। इस प्रक्रिया से पाणिनि को अपने सूत्र संक्षिप्त करने में बहुत अधिक सहायता मिली है।

४. उणादिसूत्र—यह कृत्-प्रकरण का एक अंश है। इसमें धातु से कुछ प्रत्यय लगाकर संज्ञा, विशेषण आदि शब्द बनाए जाते हैं। इसका पहला सूत्र 'कृवापाजिमि-स्वदिसाध्यशूभ्य उण् (उ) प्रत्यय करता है, अतः इसे उणादि-सूत्र कहा जाता है। इसमें ५ अध्याय हैं और ७५९ सूत्र हैं। पाणिनि ने 'उणादयो बहुलम्' (३-३-१)

सूत्र से उणादिसूत्रों को स्वीकार किया है। उणादिसूत्रों से बने शब्द कृदन्त होते हैं। शब्दोंको धातुज मानने वालों के लिए उणादि प्रत्यय अमोघ अस्त्र सिद्ध होते हैं। इसमें शब्द-निर्माण के लिए यहाँ तक छूट दी गई है कि अर्थ या सादृश्य के आधार पर कोई धातु ढूँढ़ ले और आवश्यकतानुसार उससे प्रत्यय लगा दें। यदि गुण, वृद्धि आदि या लोप करना हो तो वैसा ही अनुबन्ध लगा दें और रूप बना लें। इसका नियम है :—

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद् विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु॥

उणादि का आश्रय लेकर वैयाकरण मियाँ, मौलाना जैसे शब्दों को भी धातुज मानकर 'मीञ् हिंसायाम्' से डियाँ, डौलाना प्रत्यय करके डित् होने से मी के ई का लोप करके सिद्ध करने का साहस करते हैं। वैयाकरण उणादि के सहारे ही सभी शब्दों को धातुज कहने का साहस करते हैं।

५. लिङ्गानुशासन—इसमें शब्दों के लिंग के विषय में विस्तृत शिक्षा दी है। इसमें १८८ सूत्र हैं। इनको ६ भागों में बाँटा है—१. स्त्रीलिंग शब्द, २. पुंलिंग, ३. नपुंसकलिंग, ४. स्त्रीलिंग-पुंलिंग, ५. पुंलिंग-नपुंसक, ६. विविध। उदाहरणार्थ—(क्तिन्नन्तः) क्तिन् (ति)-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं—गतिः, मतिः, रतिः, भूतिः। (घञबन्तः) घञ् और अप्-प्रत्ययान्त पुंलिंग होते हैं—प्रकारः, प्रहारः, आधारः, करः, यवः। (भावे ल्युडन्तः) ल्युट् (अन)-प्रत्ययान्त नपुंसकलिंग होते हैं—करणम्, गमनम्, हसनम्।

धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र और लिङ्गानुशासन, ये चारों अष्टाध्यायी के ४ परिशिष्ट के रूप में हैं, अतः इनके प्रणेता पाणिनि ही हैं।

६. पाणिनीयशिक्षा—इसके दो संस्करण प्राप्त होते हैं—एक लघु और दूसरा बृहत्। लघु याजुष पाठ कहलाता है, इसमें ३५ श्लोक हैं। बृहत् आर्च पाठ कहलाता है। इसमें ६० श्लोक हैं। बृहत् संस्करण अधिक प्रचलित है। इसमें वर्णों के उच्चारण आदि की विस्तृत शिक्षा दी गई है।

७. द्विरूपकोश—श्री युधिष्ठिरमीमांसक ने उल्लेख किया है कि लन्दन की इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में द्विरूपकोश की एक हस्तलिखित प्रति है। यह कोश ६ पत्रों में पूर्ण हुआ है। पुस्तक के अन्त में लिखा है-'इति पाणिनिमुनिना कृतं द्विरूपकोशं सम्पूर्णम्'।[७६] यह वैयाकरण पाणिनि की रचना है या अन्य की, यह अभी अज्ञात है।

(८) जाम्बवतीविजय या पातालविजय—यह एक महाकाव्य है। इसमें श्रीकृष्ण का पाताल में जाकर जाम्बवती के विजय और परिणय की कथा वर्णित है। डा० पीटर्सन और डा० भाण्डारकर पाणिनि को जाम्बवतीविजय का रचयिता नहीं मानते। इसके विपरीत डा० पिशेल इसको वैयाकरण पाणिनि की ही रचना मानते हैं।

---

७६. सं० व्या० का इतिहास, पृष्ठ २२९

पाणिनि महाकाव्यकार थे, इस विषय में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भारतीय विद्वानों ने इसको पाणिनि की ही रचना माना है और २६ ग्रन्थों में इस महाकाव्य के उद्धरण प्राप्त होते हैं। पुरुषोत्तमदेव (१२वीं शताब्दी वि०) ने अपनी 'भाषावृत्ति' में अष्टाध्यायी (२-४-७४) की व्याख्या में[७७] तथा शरणदेव (१२वीं शताब्दी वि०) ने अपनी दुर्घट वृत्ति में जाम्बवतीविजय को पाणिनि की रचना बताया है और उसके उद्धरण दिए हैं।[७८] शरणदेव ने १८वें सर्ग से उद्धरण लिया है, इससे ज्ञात होता है कि इस महाकाव्य में कम से कम १८ सर्ग थे। श्रीधरदास (१२वीं शताब्दी वि०) ने सदुक्तिकर्णामृत में कालिदास, भारवि, भवभूति आदि के साथ दाक्षीपुत्र (पाणिनि) की कविरूप में गणना की है।[७९] क्षेमेन्द्र (११वीं शताब्दी विक्र०) ने 'सुवृत्ततिलक' छन्दोग्रन्थ में पाणिनि के उपजाति छन्द की बहुत प्रशंसा की है और इन्हें चमत्कारपूर्ण बताया है।[८०] राजशेखर (१०वीं शताब्दी वि०) ने व्याकरण-कर्ता पाणिनि को ही 'जाम्बवती-विजय' या जाम्बवतीजय का कर्ता माना है।

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्॥

समुद्रगुप्त (४र्थ शताब्दी वि०) ने कृष्णचरित के प्रारम्भ में कात्यायन की प्रशंसा में लिखा है कि उसने काव्य-रचना में भी पाणिनि का अनुकरण किया था।[८१]

पतंजलि ने भी महाभाष्य (१-४-५१) में पाणिनि को कवि कहा है:—

सुविशासिगुणेन च यत् सचते, तदकीर्तितमाचरितं कविना।

इससे निश्चित होता है कि जाम्बवतीविजय का कर्ता आचार्य पाणिनि ही है। भामह के काव्यालंकार की एक टीका में समासोक्ति का पाणिनिकृत यह श्लोक उदाहरण में दिया है—

उपोपरागेण विलोलतारकं, तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया, पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम्॥

---

७७. इति पाणिनेर्जाम्बवतीविजयकाव्यम्।

७८. त्वया सहार्जितं यच्च यच्च सख्यं पुरातनम्। चिराय चेतसि पुरस्तरुणीकृतमद्य मे (इत्युदाहृतो) दुर्घटवृत्ति ४-३-२३, पृष्ठ ८२।

७९. सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते,
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम्।

८०. स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव जातिभिः॥

८१. न केवलं व्याकरणं पुपोष, दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः।
काव्येऽपि भूयोऽनुचकार तं वै, कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्षः॥

पाणिनि का समय

पाणिनि ने अपने विषय में कहीं पर भी कुछ नहीं लिखा है। अन्य किसी प्रामाणिक लेखक ने भी पाणिनि के समय के विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, अतः इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' में विस्तृत विवेचन के बाद पाणिनि का समय २९०० विक्रमपूर्व (लगभग २८५० ई० पू०) निर्धारित किया है।[८२] डा० गोल्डस्टूकर ने अपनी पुस्तक 'पाणिनि' में पाणिनि का समय ७वीं शती ई० पू० निश्चित किया है।[८३] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने प्रसिद्ध शोध-प्रबन्ध 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' में अबतक उपलब्ध सभी मतों की विस्तृत आलोचना करते हुए पाणिनि का समय ४५० ई० पू० से ४०० ई० पू० के मध्य अर्थात् ५वीं शती ई० पू० माना है।[८४]

डा० अग्रवाल ने पाणिनि के समय के विषय में जिन मतों की चर्चा की है, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:—

१. डा. गोल्डस्टूकर—७वीं शती ई० पू०। २. श्री रामकृष्ण गोपाल भंडारकर तथा श्री पाठक—७वीं शती ई० पू०। ३. श्री देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर—६वीं शती ई० पू० का मध्य। ४. श्री शारपेंतिए—५०० ई० पू० के लगभग। ५. श्री रायचौधरी—५वीं शती ई० पू०। ६. डा० ग्रियर्सन—४०० ई० पू० के लगभग। ७. डा० मैकडानल—५०० ई० पू०। ८. डा० बॉटलिंक—३५० ई० पू० के लगभग। प्रो० मैक्समूलर, डा० कीथ और प्रो० वेबर भी ३५० ई० पू० के लगभग मानते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि प्रायः सभी विद्वान् पाणिनि का समय ४र्थ शती ई० पू० से ७वीं शती ई० पू० के मध्य में मानते हैं। डा० गोल्डस्टूकर (Goldstucker) ने प्रो० मैक्समूलर (Max Muller) और डा० बॉटलिंक (Boehtlingk) के मन्तव्य का खंडन विस्तारपूर्वक अपने ग्रन्थ 'पाणिनि' में किया है। कथासरित्सागर में वर्णित कथाको आधार मानकर मैक्समूलर और बॉटलिंक ने पाणिनि तथा कात्यायन को समकालीन माना है। गोल्डस्टूकर ने कथासरित्सागर की प्रामाणिकता को सर्वथा अस्वीकार किया है। गोल्डस्टूकर द्वारा पाणिनि को ७वीं शती में मानने का मुख्य आधार यह है कि ऋग्वेद, कृष्ण यजुर्वेद और सामवेद के अतिरिक्त शेष वैदिक साहित्य (शुक्लयजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आदि) पाणिनि को अज्ञात था। प्रो० थीमे ने सिद्ध किया है कि पाणिनि को ऋग्, यजुः, साम, ऋग्वेद के पदपाठ, अथर्ववेद, अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा आदि ज्ञात थे।[८५] इससे आगे बढ़कर डा० अग्रवाल ने सिद्ध किया है कि पाणिनि को समस्त वैदिक साहित्य, कल्पसूत्र,

---

८२. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भाग १ (पृष्ठ १८५ से १९८)

८३. पाणिनि (पृष्ठ ८७ से ९६)

८४. पाणिनिकालीन भारतवर्ष (पृष्ठ ४६७ से ४८०)

८५. थीमे-कृत 'पाणिनि और वेद' १९३५, पृष्ठ ६३।

धर्मसूत्र, ६ वेदांग, महाभारत का मूल और उपबृंहित रूप, नटसूत्र, शिशुक्रन्दीय यमसभीय और इन्द्रजननीय जैसे लौकिक काव्यों का भी ज्ञान था।[८६] अतः पाणिनि का समय इन ग्रन्थों की रचना के बाद ही रखा जा सकता है। डा० अग्रवाल के अनुसार ऐसा समय ५वीं शती ई० पू० ही है।

श्री पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने पाणिनि का समय १२ वीं शती ई० पू० माना है और तर्क दिया है कि पाणिनि कात्यायन और पतंजलि के कालों की भाषा में इतने अधिक परिवर्तन हुए हैं कि उसके लिए कम से कम ५०० वर्षों का अन्तर मानना आवश्यक है। यदि पतंजलि का समय २य शती ई० पू० मानें तो कात्यायन का ७म शती ई० पू० और पाणिनि का १२वीं शती ई० पू०।[८७] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि में पर्याप्त समय का अन्तर होना अनिवार्य है, परन्तु वह समय ५०० वर्ष ही होना चाहिए, इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया गया है। साथ ही १२वीं शती ई० पू० समय ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता है।

श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने पर्याप्त तर्क और प्रमाणों के आधार पर पाणिनि का समय २९०० विक्रम पूर्व (२८५० ई० पू०) निर्धारित किया है[८८]। श्री मीमांसकजी का कथन है कि ऐतरेय आदि प्राचीन मुनि-प्रोक्त शाखाओं के अतिरिक्त सब शाखाओं का प्रवचन-काल महाभारत युद्ध से लगभग एक शताब्दी पूर्व से लेकर एक शताब्दी बाद तक है। सभी प्राप्त शाखाएँ, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, कल्पसूत्र, निरुक्त, व्याकरण आदि प्रायः इसी समय की रचना है। पाणिनि का समय महाभारत युद्ध से लगभग २०० वर्ष पश्चात् है।[८८] श्री मीमांसकजी ने जो ऐतिहासिक और शास्त्रीय सामग्री एकत्र की है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है। हम भी पाणिनि को इतने प्राचीन समय में ले जाना चाहते हैं, परन्तु ऐतिहासिक तथ्य हमारा साथ नहीं देते हैं। इस विषय में यह भी वक्तव्य है कि सारे वैदिकवाङ्मय (ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, कल्पसूत्र आदि) तथा निरुक्त, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद और व्याकरण आदि महाभारत-युद्ध से १०० वर्ष पूर्व और १०० वर्ष बाद अर्थात् महाभारत युद्ध के बाद ५ हजार वर्षों के इतिहास में केवल २ सौ वर्षों में ही सारे आर्य वैदिक वाङ्मय की रचना मानना औचित्य-पूर्ण नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से सारे प्रमुख वाङ्मय की रचना २०० वर्षों में ही मान लेना उचित नहीं है। श्री मीमांसक जी का मत स्थूल होते हुए भी ऐतिहासिक तथ्यों की तुला पर ठीक न उतरने से ग्राह्य नहीं है।

डा० अग्रवाल के पाणिनि-काल-विषयक तर्कों का सारांश

डा० अग्रवाल पाणिनि को नन्दवंशी महानन्दिन् (लगभग ४४५ ई० पू० से ४०३ ई० पू०) का समकालीन मानते हैं। महानन्दिन् का नाम महानन्द या नन्द

८६. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, अध्याय ८, पृष्ठ ४६९

८७. श्री चतुर्वेदी-कृत महाभाष्य-भाष्य की भूमिका

८८. सं० व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृष्ठ १९८

भी था। यह पाणिनि का समकालीन, मित्र एवं संरक्षक मगधवंशी सम्राट् था। बौद्ध ग्रन्थ मंजुश्रीमूलकल्प (८ वीं शती ई०) में नन्दराजा का मित्र पाणिनि बताया गया है[८९]। डा० अग्रवाल ने इस विषय में जो युक्ति-प्रमाण उपस्थित किए हैं, वे संक्षेप में निम्न हैं :—

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्राप्त कितने ही शब्दों और संस्थाओं का उल्लेख अष्टाध्यायी में मिलता है।

२. महाभारत, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, पालि साहित्य तथा अर्धमागधी आगमसाहित्य में उल्लिखित विविध संस्थाओं के नाम अष्टाध्यायी में मिलते हैं।

३. भारतीय अनुश्रुति—बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य में अनुश्रुति है कि पाणिनि नन्दवंशी राजा के समकालीन थे। सोमदेव के कथासरित्सागर और क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी में उल्लेख है कि पाणिनि नन्द की सभा में पाटलिपुत्र गए थे। मंजु-श्रीमूलकल्प में भी इसका समर्थन है। ह्यूआन् चुआङ् ने लिखा है कि पाणिनि अपनी रचना लेकर तत्कालीन सम्राट् की सभा में गए।

४. साहित्यिक उल्लेखों की साक्षी—डा० थीमे और डा० अग्रवाल ने सोदाहरण सिद्ध किया है कि पाणिनि को समस्त वैदिक वाङ्मय, वेदांग, महाभारत के मूल और उपबृंहितरूप, नटसूत्र तथा कतिपय काव्यग्रन्थ ज्ञात थे।

५. पाणिनि और बुद्ध—पाणिनि बुद्ध के परवर्ती हैं। पाणिनि ने निर्वाण, कुमारी-श्रमणा, संचीवरयते (अष्टा० ३-१-२०) और निकाय नामक धार्मिक संघ का उल्लेख किया है। ये बौद्धधर्म से संबद्ध शब्द हैं।

६. श्रविष्ठा नक्षत्र—पाणिनि ने श्रविष्ठाफल्गुनी० (४-३-३४) सूत्र में श्रविष्ठा को प्रथम नक्षत्र माना है। ४०५ ई० पू० तक श्रविष्ठा को प्रथम नक्षत्र माना जाता था। उसके बाद श्रवण को प्रथम नक्षत्र माना गया है। 'श्रवणादीनि ऋक्षाणि।'

७. राजनैतिक सामग्री—पाणिनि ने स्वाधीन एकराज जनपदों का उल्लेख किया है। यह स्थिति महानन्दिन् (४४५-४०३ ई० पू०) के समय में ही सम्भव थी। बाद में महापद्म (४०३-३७५ ई० पू०) सारे क्षत्रियों का नाश करके एकराट् हो गया था।

८. यवनानी—पाणिनि ने आयोनिया और वहाँ के निवासियों के लिए ईरानी सम्राट् दारा (५२१-४८६ ई० पू०) के लेखों में प्रयुक्त यौन (यवन) शब्द को अपनाया है। सिकन्दरकालीन यवनों को नहीं। पाणिनि को यवनानी लिपि का ज्ञान यूनानियों की प्राचीन परम्परा से प्राप्त हुआ था।

---

८९. तस्याप्यनन्तरो राजा नन्दनामा भविष्यति।···
तस्याप्यन्यतमः सख्यः पाणिनिर्नाम माणवः॥
(मञ्जुश्रीमूलकल्प, पटल ५३, पृष्ठ ६११-१२)

९. क्षुद्रक-मालव—पाणिनि और यूनानी लेखक दोनों के अनुसार संयुक्त क्षौद्रक-माल्वी सेना का अस्तित्व सिकन्दर से पूर्व था।

१०. संघराज्य—अष्टाध्यायी में निर्दिष्ट संघराज्य चन्द्रगुप्तमौर्य से पूर्व की राजनैतिक स्थिति को बताते हैं।

११. पाणिनि और कौटिल्य—कौटिल्य की भाषा और पाणिनि की शब्दावली में घनिष्ट सम्बन्ध है। कभी-कभी पाणिनि की शब्दावली की सर्वोत्तम व्याख्या कौटिलीय अर्थशास्त्र से ही प्राप्त होती है। जैसे—मैरेय, कापिशायन, आक्रन्द, विनय, दैनदिन, परिषद्, अपडक्षीण, व्युष्ट, अध्यक्ष, युक्त, आर्यकृत, देवपथ, पुरुष-प्रमाण आदि शब्द।

१२. पाणिनीय मुद्राओं की साक्षी—मुद्राओं के विषय में अष्टाध्यायी की सामग्री अर्थशास्त्र से प्राचीन युग की है। पाणिनि ने निष्क, सुवर्ण, शाण, शतमान नामक पुराने सिक्कों का उल्लेख किया है। ये कौटिल्य को अविदित थे। विंशतिक और त्रिंशत्क नामक दो महत्त्वपूर्ण सिक्कों का पाणिनि ने उल्लेख किया है, जो उस समय चालू थे। इनका पता कौटिल्य को नहीं है। विंशतिक बीस माशे या ४० रत्ती तोल का भारी सिक्का था। यह बिम्बिसार के समय (६ठी शती ई० पू०) में प्रचलित था। कार्षापण १६ माशे या ३२ रत्ती तोल का सिक्का था। भारतीय मुद्राओं के इतिहास की दृष्टि से केवल ५ वीं शती ई० पू० में ही विंशतिक और कार्षापण दोनों सिक्के एक साथ चालू थे। 'नन्दोपक्रमाणि मानानि' (काशिका २-४-२१) नन्दों ने नाप-तोल में भी सुधार किया था। सिक्कों के क्षेत्र में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए थे। मुद्रा-सम्बन्धी सामग्री ५ वीं शती ई० पू० का मध्यभाग समय बताती है।

१३. पाणिनि और जातक—पाणिनि की भाषा जातकों से प्राचीन है। किन्तु दोनों में आश्चर्यजनक सादृश्य है। जैसे—द्वैप, वैयाघ्र और पाण्डुकम्बल शब्द दोनों में मिलते हैं। ये शब्द प्राचीन जातकों में हैं। दोनों की भाषा का सामीप्य पाणिनि को ५ वीं शती ई० पू० में होना सिद्ध करता है।

(ग) उत्तर-पाणिनि वैयाकरण

(१) कात्यायन (४ थी शती ई० पू०)

उत्तर-पाणिनि वैयाकरणों में प्रथम स्थान कात्यायन का है। कात्यायन ने अष्टाध्यायी के सूत्रों पर वार्तिकों की रचना की है। अष्टाध्यायी के सूत्रों में आवश्यक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन के लिए कात्यायन ने जो नियम बनाए हैं, उन्हें 'वार्तिक' कहते हैं। वार्तिक का लक्षण है—

उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्तिकम् (काव्यमीमांसा, पृष्ठ ५)

वार्तिक का अर्थ है—जहाँ पर (उक्त) वर्णित नियमों के अपवाद-नियमों आदि का वर्णन हो। (अनुक्त) जिस विषय में कोई नियम नहीं बताया है, उसका वर्णन करना। (दुरुक्त) यदि किसी नियम में कोई भूल-चूक है तो उसको सुधारना। अथवा—'सूत्रेऽनुक्तव्याख्यानं वार्तिकम्' सूत्रों के तात्पर्य को बताने वाली व्याख्या को वार्ति

कहते हैं और उस वृत्ति के विशद विवेचन को वार्तिक कहते हैं। इन लक्ष्यों की पूर्ति कात्यायन के वार्तिकों में है।

महाभाष्य में अन्य आचार्यों के रचित वार्तिक भी हैं, अतः कात्यायन-कृत वार्तिकों की ठीक संख्या बताना कठिन है। पतंजलि ने इन्हीं वार्तिकों की व्याख्या महाभाष्य में की है।

जीवन-वृत्त—कात्यायन के कात्य, कात्यायन, वररुचि भी नाम मिलते हैं। पतंजलि ने महाभाष्य (३-२-३) में 'प्रोवाच भगवान् कात्यः०' के द्वारा कात्य नाम दिया है। इनके मूल पुरुष का नाम 'कत' ज्ञात होता है। पतंजलि ने इन्हें दाक्षिणात्य कहा है।[९०] दाक्षिणात्य तद्धित-प्रयोग को पसन्द करते हैं, अतः इन्होंने लोके वेदे के स्थान पर लौकिकवैदिकेषु प्रयोग किया है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने इस वररुचि कात्यायन को याज्ञवल्क्य का पौत्र और श्रौतसूत्र आदि तथा शुक्लयजुःप्रातिशाख्य के रचयिता कात्यायन का पुत्र माना है।[९१] अन्य विवरण अज्ञात है।

समय—कथासरित्सागर में कात्यायन को पाणिनि का समकालीन बताया गया है। मैक्समूलर और बॉटलिंक ने इसी आधार पर इसका समय ३५० ई० पू० माना है। एगलिंग ने शतपथ-ब्राह्मण के अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि—मैं श्री ब्यूलर के इस मत से सहमत हूँ कि कात्यायन का अधिकतम संभव समय चौथी शती ई० पू० और पतंजलि का दूसरी शती ई० पू० था।

कात्यायन का समय चतुर्थ शती ई० पू० (३५० ई० पू० के लगभग) मानना उचित है। पाणिनि के लगभग १०० वर्ष बाद उसकी रचनाएँ हैं। श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने कात्यायन का समय ७वीं शती ई० पू० संभव बताया है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने कात्यायन को पाणिनि का साक्षात् शिष्य मानकर उसका समय लगभग २९०० वि० पू० माना है, अर्थात् वह पाणिनि का समकालीन था।

रचनाएँ—कात्यायन की मुख्य कृतियाँ ये हैं—१. अष्टाध्यायी पर वार्तिक, २. स्वर्गारोहण काव्य, ३. भ्राज-श्लोक, ४. कात्यायनस्मृति, ५. उभयसारिका भाण (उभयसारिका नामक नाटक)। कात्यायन ने पाणिनि के 'पातालविजय' की होड़ पर 'स्वर्गारोहण' काव्य बनाया था, अर्थात् पाणिनि पाताल की ओर जाते हैं तो मैं स्वर्ग की ओर जाता हूँ। पतञ्जलि ने महाभाष्य (४-३-१०१) में 'वाररुचं काव्यम्' कहकर इस काव्य की ओर निर्देश किया है। महाराज समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित के मुनिकविवर्णन में इसको स्वर्गारोहण काव्य का लेखक बताया है।[९२] कात्यायन ने

---

९०. प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः। यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिकवैदिकेषु प्रयुज्यते। (महा० १-१-१)

९१. सं० व्या० इति०, भाग १, पृष्ठ २८७।

९२. (क) यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः॥

कुछ स्फुट श्लोक बनाए थे, इन्हें 'भ्राज' कहते थे। इनमें से एक श्लोक 'यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे०' महाभाष्य (१-१-१) में उद्धृत है।

(२) पतञ्जलि (१५० ई० पू० के लगभग)

व्याकरणशास्त्र के इतिहास में पतंजलि का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। पाणिनि की अष्टाध्यायी पर वार्तिकों की रचना करके कात्यायन ने उसे परिष्कृत किया और पतंजलि ने वार्तिकों का आश्रय लेते हुए अष्टाध्यायी की सर्वांगीण व्याख्या 'महाभाष्य' में करके अष्टाध्यायी को व्याकरण-मन्दिर में सुप्रतिष्ठित किया है। पतंजलि ने व्याकरण जैसे शुष्क और दुरूह विषय को सरल, सरस और मनोज्ञ बना दिया है। इनकी भाषा में छोटे-छोटे अत्यन्त सरल सुबोध वाक्य हैं। भाषा की सरलता, विशदता, स्वाभाविकता तथा विषय-प्रतिपादन की उत्कृष्ट शैली के कारण 'महाभाष्य' सारे संस्कृत-वाङ्मय में आदर्श ग्रन्थ है। यह केवल व्याकरण का ही ग्रन्थ न होकर एक विश्वकोश है। इसमें तत्कालीन ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तथ्यों का भण्डार है। इसकी शैली प्रसाद और माधुर्यगुण-युक्त, प्रौढ और प्रवाहशालि है। **'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्'** से सिद्ध होता है कि पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि में पतंजलि ही सर्वोत्तम प्रमाण हैं।

जीवनवृत्त—पतंजलि के जीवन के विषय में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है। पतंजलि के प्रचलित नामों से उनके जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। प्राचीन-ग्रन्थों में पतंजलि के ये नाम मिलते हैं—गोणिकापुत्र, गोनर्दीय, अहिपति, फणिभृत्, शेषाहि आदि। पतंजलि ने महाभाष्य (१-४-५१) में 'उभयथा गोणिकापुत्र इति' वाक्य लिखा है। नागेश ने लिखा है कि 'गोणिकापुत्रो भाष्यकार इत्याहुः' अर्थात् कुछ आचार्यों के अनुसार गोणिकापुत्र पतंजलि हैं। यदि ऐसा माना जाए तो पतंजलि की माता का नाम गोणिका था। श्री युधिष्ठिर मीमांसक दोनों को पृथक् व्यक्ति मानते हैं। महाभाष्य में अनेक स्थानों पर गोनर्दीय का उल्लेख है—गोनर्दीयस्त्वाह (महा० १-१-२१, १-१-२९, ७-२-१०१), इष्टमेवैतद् गोनर्दीयस्य (महा० ३-१-९२)। कैयट, राजशेखर और वैजयन्तीकोषकार गोनर्दीय पतंजलि का नाम मानते हैं। एङ् प्राचां देशे (१-१-७५) सूत्र में गोनर्द को पूर्व-देश माना है। आधुनिक विद्वान् गोनर्द वर्तमान 'गोंडा' को मानते हैं। इस दृष्टि से पतंजलि गोंडा के निवासी थे। डा० कीलहार्न गोनर्दीय को पतंजलि से भिन्न मानते हैं। श्री मीमांसक का भी यही मत है। ये पतंजलि को काश्मीर-देशज मानते हैं। एङ्प्राचां० सूत्र से स्पष्ट होता है कि गोनर्द गोंडा को ही मानना उचित है। अहिपति, फणभृत्, शेषादि आदि शब्दों से स्पष्ट

(ख) न केवलं व्याकरणं पुपोष, दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः।
काव्येऽपि भूयोऽनुचकार तं वै, कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्षः॥

होता है कि पतंजलि को बहुमुखी प्रतिभा के कारण उन्हें शेषनाग का अवतार माना जाता था।

रचनाएँ—पतंजलि की प्रमुख रचनाएँ ये हैं :—(१) महाभाष्य (अष्टाध्यायी की विस्तृत व्याख्या), (२) पातंजल-योगसूत्र (योगदर्शन), (३) सामवेदीय निदानसूत्र, (४) महानन्द-काव्य, (५) चरकसंहिता का परिष्कार। पतंजलि-कृत शब्दकोष, सांख्य-शास्त्र (*आर्यापञ्चशती या परमार्थसार*), *रसशास्त्र और लोहशास्त्र* का भी उल्लेख मिलता है, परन्तु इनकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ कहना संभव नहीं है। मैक्समूलर ने षड्गुरुशिष्य का एक वचन उद्धृत किया है कि योगदर्शन और निदानसूत्र पतंजलि की ही रचनाएँ हैं।[९३] समुद्रगुप्तने कृष्णचरित की प्रस्तावना में लिखा है कि पतंजलि ने वाणी की शुद्धि के लिए 'महाभाष्य' लिखा, शरीर-शुद्धि के लिए चरकसंहिता में कुछ धर्माविरुद्ध नए योगों का संनिवेश किया, योगशास्त्र की व्याख्या के रूप में 'महाकाव्य' लिखा और चित्तशुद्धि के लिए अद्भुत 'योगदर्शन' लिखा।[९४] श्री युधिष्ठिर मीमांसक पतंजलि का ही एक नाम 'चरक' मानते हैं।[९५] अन्य लेखकोंने भी वाणी, चित्त और शरीर की शुद्धि के लिए क्रमशः महाभाष्य, योगदर्शन और चरक (या परिष्कृत चरक) का रचयिता पतंजलि को माना है। इन श्लोकों में पतंजलि को अहिपति फणभृत् आदि नामों से भी सम्बोधित किया गया है।[९६] श्रीगुरुपद हाल्दार ने 'वृद्धत्रयी' (पृष्ठ २९-३१) में लिखा है कि पतंजलि ने चरकसंहिता पर कोई वार्तिक ग्रन्थ भी लिखा था।

समय—पतञ्जलि ने महाभाष्य में कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया है।

---

९३. योगाचार्यः स्वयं कर्ता योगशास्त्रनिदानयोः। A.S.L. पृष्ठ २३९ में उद्धृत।

९४. विद्ययोद्रिक्तगुणतया भूमावमरतां गतः।
पतंजलिर्मुनिवरो नमस्यो विदुषां सदा॥
कृतं येन व्याकरणभाष्यं वचनशोधनम्।
धर्मावियुक्ताश्चरके योगा रोगमुषः कृताः॥
महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्भुतम्।
योगव्याख्यानभूतं तद् रचितं चित्तदोषहम्॥

सं० व्या० इति०, भाग० १, पृष्ठ ३१७

९५. सं० व्या० इति० पृष्ठ ३३५

९६. (क) वाक्चेतोवपुषां मलाः फणभृतां भर्त्रेव येनोद्धृताः।
(योगसूत्रवृत्ति के प्रारम्भ में भोजराज) सं० व्या० इति०, पृ० ३१२

(ख) पातञ्जलमहाभाष्य–चरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हन्त्रेऽहिपतये नमः॥
(चरक की टीका के प्रारम्भ में चक्रपाणि)। सं० व्या० इति०, पृ० ३१२

(ग) योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥ (भोजराज)

उससे पतञ्जलि का समय निश्चित करने में सहायता मिलती है। पतंजलि ने तीन स्थानों पर मौर्यों का उल्लेख किया है—वृषल (मौर्य), वृषलकुलम् और मौर्य[१७]। मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः (महा० ५-३-९९)। नागेश—'विक्रेतुं प्रतिमाशिल्पवन्तः'। इसमें मौर्यों का स्पष्ट उल्लेख है। इस उद्धरण से यह भी ज्ञात होता है कि मौर्यराजाओं ने राजकीय आय बढ़ाने के लिए सुवर्ण-संग्रहार्थ देव-प्रतिमाओं की रचना कराई और मूर्तिपूजा का प्रारम्भ किया। अतः पतंजलि का समय मौर्यों के बाद होना चाहिए। अनद्यतने लङ् (३-२-१११) सूत्र की व्याख्या में पतंजलि ने दो उदाहरण लङ् के दिए हैं—अरुणद् यवनः साकेतम्। अरुणद् यवनो माध्यमिकाम्[१८]। (*यवनों ने अयोध्या और माध्यमिका को घेरा*)। *अनद्यतन भूत समीपवर्ती भूतकाल के लिए* आता है, अतः यह घटना पतंजलि के समय की होनी चाहिए। सिकन्दर और सिल्यूकस अयोध्या और माध्यमिका तक नहीं पहुँचे थे। तृतीय आक्रमण पुष्यमित्र के समय में मिनेंडर (महेन्द्र) ने किया था। उसकी एक सेना ने अयोध्या को घेरा था और दूसरी ने माध्यमिका को। अतः पतंजलि शुंगवंशी पुष्यमित्र के समकालीन सिद्ध होते हैं। पतंजलि ने पुष्यमित्र का स्पष्ट उल्लेख किया है और उसका वर्तमान काल (लट्) में प्रयोग किया है। इह पुष्यमित्रं याजयामः (महा० ३-२-१२३), पुष्यमित्रो यजते, याजका याजयन्ति (३-१-२६), पुष्यमित्रसभा, चन्द्रगुप्तसभा (१-१-६८)। इससे ज्ञात होता है कि पतंजलि पुष्यमित्र (१५० ई० पू०) के समय में हुए थे। कतिपय विद्वानों का मत है कि पुष्यमित्र के अश्वमेध में पतंजलि ऋत्विज् थे।

अष्टाध्यायी के व्याख्याकार

पतंजलि के पश्चात् वैयाकरणों ने जो कुछ कार्य किया है, उसे मुख्यतया तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) अष्टाध्यायी के व्याख्याकार या टीकाकार, (२) महाभाष्य के व्याख्याकार तथा दार्शनिक वैयाकरण। इन्होंने महाभाष्य की व्याख्या की है तथा व्याकरण का दार्शनिक विवेचन किया है। (३) कौमुदी-परंपरा वाले वैयाकरण। इन्होंने व्याकरण को सरल और क्रमबद्ध बनाने के लिए अष्टाध्यायी के सूत्रों को प्रकरण के हिसाब से उलट फेर करके रखा है। इसमें एक प्रकरण से संबद्ध सूत्र एक स्थान पर दिए गए हैं।

(४.५) जयादित्य और वामन (६०० से ६६० ई० के लगभग)

काशिका—जयादित्य और वामन ने सम्मिलित रूप से अष्टाध्यायी की वृत्ति (टीका, व्याख्या) लिखी है। यह 'काशिका' नाम से प्रसिद्ध है। यह अष्टाध्यायी की

---

१७. सेयो वृषलः (महा० १-१-५०)। कापोतभूतं वृषलकुलम् (६-३-६१)।

१८. माध्यमिका चित्तौड़गढ़ से ८ मील पूर्वोत्तर दिशा में है। सम्प्रति 'नागरी' नाम से प्रसिद्ध है।

सबसे प्रसिद्ध टीका है। भाषावृत्ति की व्याख्या में सृष्टिधराचार्य ने काशिका का अर्थ किया है—काशयति प्रकाशयति सूत्रार्थमिति काशिका—अर्थात् जो सूत्रों का अर्थ प्रकाशित या स्पष्ट करती है। सम्भवतः काशी में लिखी जाने के कारण इसका नाम काशिका पड़ा है[99]। श्री युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि प्राचीन ग्रन्थकारों ने जयादित्य और वामन के नाम से काशिका के जो उद्धरण दिए हैं, उनसे विदित होता है कि प्रथम ५ अध्याय जयादित्य-विरचित हैं और अन्तिम ३ वामन-कृत। काशिका की शैली के पर्यवेक्षण से भी यही निष्कर्ष निकलता है। जयादित्य की अपेक्षा वामन का लेख अधिक प्रौढ़ है।[100] ईत्सिंग (७१९–७२२ वि०) ने अपनी भारतयात्रा के विवरण में (पृष्ठ २७०) में इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि का उल्लेख किया है। ईत्सिंग के अनुसार जयादित्य की मृत्यु ७१८ वि० (लगभग ६६० ई०) के लगभग हुई थी। इससे ज्ञात होता है कि काशिका ६५० ई० तक बन चुकी थी और जयादित्य का समय लगभग ६०० से ६६० ई० है। वामन का भी प्रायः यही समय है।

काशिका में अनेक प्राचीन वैयाकरणों के मतों के उल्लेख हैं। इस दृष्टि से काशिका का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। यह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध हुआ कि इस पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गईं। इनमें से आचार्य जिनेन्द्र बुद्धि (७२५–७५० ई०) कृत 'काशिका-विवरणपंजिका' या 'न्यास' तथा हरदत्त मिश्र (१११५ वि०) कृत 'पदमंजरी' टीकाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

महाभाष्य के व्याख्याकार

(६) भर्तृहरि (४र्थ शती ई०, ३४० ई० के लगभग)

महाभाष्य की प्रसिद्धि के साथ ही उस पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं। भर्तृहरि ने अन्ये, अपरे, केचित् आदि शब्दों के द्वारा उनके पाठ उद्धृत किए हैं। उन टीकाओं के लेखकों आदि का विवरण अज्ञात है। इस समय उपलब्ध टीकाओं में भर्तृहरि-कृत 'महाभाष्यदीपिका' ही सबसे प्राचीन टीका है। भर्तृहरि के जीवन-चरित के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। पुण्यराज ने भर्तृहरि के गुरु का नाम वसुरात लिखा है। भारतीय जनश्रुति के अनुसार भर्तृहरि विक्रम का सगा भाई था। विक्रम की राजधानी उज्जैन में भर्तृहरि की प्रसिद्ध गुफा है। चुनारगढ़ के किले में भी भर्तृहरि की गुफा है। यह किला विक्रमादित्य ने बनवाया था, ऐसी जनश्रुति है। अतः विक्रमादित्य और भर्तृहरि का कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है। चीनी यात्री ईत्सिंग ने भर्तृहरि को बौद्ध लिखा है, पर श्री मीमांसक का मत है कि ईत्सिंग ने भागवृत्तिकार विमलमति (उपनाम भर्तृहरि)

---

९९. काशिका देशतोऽभिधानम्, काशीषु भवा (काशिका के टीकाकार हरदत्त मिश्र और रामदेव मिश्र)।

१००. सं० व्या० इति०, पृष्ठ ४२४, ४२५

की व्याख्या)। लिंगानुशासन पर 'लिंगानुशासनवृत्ति' टीका और दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादनार्थ 'वैयाकरणमतोन्मज्जन' नामक काव्यग्रन्थ भी इनकी ही कृति माने जाते हैं। भट्टोजि की सर्वप्रथम रचना शब्दकौस्तुभ है। यह पूरी अष्टाध्यायी पर था। सिद्धान्तकौमुदी उत्तरकृदन्त के अन्त में इन्होंने लिखा है—'विस्तरस्तु यथाशास्त्रं दर्शितः शब्दकौस्तुभे।' इस समय इसके प्रारम्भ के ढाई अध्याय और चतुर्थ अध्याय प्राप्त होते हैं।

जीवन-चरित—भट्टोजिदीक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था और छोटे भाई का नाम रंगोजि भट्ट था। इन्होंने प्रसिद्ध वैयाकरण शेषकृष्ण से कई वर्ष तक व्याकरण पढ़ा था और अप्पयदीक्षित से वेदान्त शास्त्र। शेषकृष्ण ने प्रक्रियाकौमुदी ग्रन्थ बनाया था। इसकी व्याख्या की एक पांडुलिपि १५१४ वि० की भण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना में है। विट्ठल-रचित प्रक्रियाप्रसाद नामक टीका की १५३६ वि० की एक प्रति लन्दन में है। विट्ठल ने शेषकृष्ण के पुत्र रामेश्वर से व्याकरण पढ़ा था। शेषकृष्ण का स्वर्गवास लगभग १५२५ वि० में हुआ था। अतः भट्टोजि का जन्म १६वीं शती वि० की प्रथम दशति मे मानना चाहिए।[१०६]

सिद्धान्तकौमुदी की प्रसिद्धि के कारण इस पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं। स्वयं भट्टोजि ने प्रौढमनोरमा टीका लिखी। इनके पौत्र हरिदीक्षित ने बृहच्छब्दरत्न और लघुशब्दरत्न दो टीकाएँ लिखीं। ज्ञानेन्द्र सरस्वती (१५५०-१५६० वि०) ने कौमुदी की तत्त्वबोधिनी टीका लिखी। यह प्रायः प्रौढमनोरमा का संक्षेप है। ये भट्टोजि के समकालीन हैं। ज्ञानेन्द्र सरस्वती के शिष्य नीलकण्ठ वाजपेयी (१६००-१६५० के मध्य) ने कौमुदी पर सुखबोधिनी टीका लिखी। रामानन्द (१६८०-१७२० वि०) ने कौमुदी पर तत्त्वदीपिका टीका लिखी।

(९) नागेश भट्ट (१६७० ई०–१७५० ई० के मध्य)

नागेश व्याकरण-जगत् के उज्ज्वल मणि हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। ये अपने समय के अद्वितीय प्रकाड विद्वान् थे। ये भट्टोजि दीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित के शिष्य थे। ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनका दूसरा नाम नागोजी भट्ट भी है। इनके पिता का नाम शिव भट्ट और माता का नाम सतीदेवी था[१०७]। ये व्याकरण, साहित्य, अलंकार, दर्शन, ज्योतिष आदि अनेक विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। व्याकरणजगत् में भर्तृहरि के बाद यही प्रामाणिक व्यक्ति माने जाते हैं।

रचनाएँ—इन्होंने केवल व्याकरण पर लगभग १ दर्जन ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ ये हैं :—१. प्रदीपोद्योत या उद्योत (महाभाष्य पर प्रदीप की टीका), २. लघुशब्देन्दुशेखर (प्रौढमनोरमा की व्याख्या), ३. बृहच्छब्देन्दुशेखर (प्रौढ-

---

१०६. सं० व्या० इति० भाग १ पृ० ४४६।

१०७. इति श्रीमदुपाध्यायोपनामकशिवभट्टसुतसतीगर्भजनागेशभट्टविरचितलघुशब्देन्दुशेखरे······।

मनोरमा की विस्तृत व्याख्या)। ये दोनों एक ही ग्रन्थ के लघु और बृहत् रूप हैं। ४. परिभाषेन्दुशेखर (पाणिनीय व्याकरण की परिभाषाओं की व्याख्या करने वाला प्रामाणिक ग्रन्थ), ५. मंजूषा, ६. लघुमंजूषा, ७. परमलघुमंजूषा (इन तीनों में व्याकरण के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है)। ८. स्फोटवाद (इसमें स्फोटवाद का विवेचन है)। ९. महाभाष्यप्रत्याख्यानसंग्रह।

श्री मीमांसक ने विविध प्रमाणों के आधार पर इनका समय १७३० से १८१० वि० के मध्य स्वीकार किया है।[१०८]

नागेश भट्ट के बाद भी कौमुदी पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं। इनमें विशेष उल्लेखनीय ये हैं :—१. वैद्यनाथ पायगुण्ड (१७५०–१८०० वि०)-कृत उद्योत की छाया टीका तथा कौमुदी की टीका। २. वासुदेव वाजपेयी (१७४०–१८०० वि०)-कृत कौमुदी की 'बालमनोरमा' टीका। यह सरल होने से बहुत प्रचलित हुई है। कृष्णमित्र-कृत 'रत्नार्णव'। कुछ विद्वानों ने प्रौढमनोरमा का खंडन भी किया है। श्री शेषवीरेश्वर के पुत्र ने और पंडितराज जगन्नाथ ने प्रौढमनोरमा का खंडन किया है। पं० जगन्नाथ ने ग्रन्थ का नाम 'कुचमर्दन' रखा है।

(१०) वरदराज (१४७५ ई० के लगभग)

वरदराज श्री भट्टोजि दीक्षित के शिष्य हैं। मध्यसिद्धान्तकौमुदी में इन्होंने भट्टोजि दीक्षित को नमस्कार किया है। इन्होंने सिद्धान्तकौमुदी को भी सरल बनाने के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी और मध्यसिद्धान्तकौमुदी दो बालोपयोगी व्याकरण के ग्रन्थ लिखे हैं। लघुकौमुदी में १२७७ सूत्र हैं तथा मध्यसिद्धान्तकौमुदी में २३१५ सूत्र हैं। लघुकौमुदी सिद्धान्तकौमुदी का केवल संक्षिप्त संस्करण ही नहीं है, अपितु इसमें प्रकरण-विन्यास के क्रम में भी अन्तर है। लघुकौमुदी का क्रम अधिक युक्तिसंगत है। लघुकौमुदी का क्रम है—१. संज्ञाप्रकरण, २, संधि, ३. सुबन्त, ४, अव्यय, ५. तिङन्त, ६. प्रक्रियाएँ, ७. कृदन्त, ८. कारक, ९. समास, १०. तद्धित, ११. स्त्रीप्रत्यय। लघुकौमुदी में कारक-प्रकरण बहुत अधिक संक्षिप्त दिया है, यह विशेष खटकने वाली बात है। अतः इस व्याकरण में कारक-प्रकरण सिद्धान्त-कौमुदी से दिया गया है। वरदराज भट्टोजिदीक्षित के शिष्य हैं, अतः इनका समय भी लगभग २५ वर्ष बाद का समझना चाहिए। वरदराज के पिता का नाम दुर्गातनय था। अन्य विवरण अज्ञात है।

(११) अन्य वैयाकरण

कतिपय अन्य वैयाकरण भी हैं। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

१. वृषभदेव—वाक्यपदीय के प्रथमकांड (ब्रह्मकांड) पर टीका लिखी है।

२. पुण्यराज—(११वीं शती ई०)—वाक्यपदीय के द्वितीय कांड पर टीका लिखी है।

---

१०८. सं० व्या० इति०, पृष्ठ ३९३।

३. हेलाराज—(११वीं शती ई०)—वाक्यपदीय के तीनों कांडों पर टीका लिखी थी, परन्तु संप्रति केवल तृतीय कांड की टीका प्राप्त है।

४. मण्डनमिश्र—(६९५ वि. से पूर्व)—स्फोटवाद पर 'स्फोटसिद्धि' नामक एक प्रौढ ग्रन्थ लिखा है। अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनका शंकराचार्य से शास्त्रार्थ भी हुआ था। शंकराचार्य से हारकर अद्वैतवादी बनकर सुरेश्वराचार्य नाम से प्रसिद्ध हुए।

५. कौण्डभट्ट—(१५५०–१६०० वि०)—ये वैयाकरणभूषण और वैयाकरण-भूषणसार के रचयिता हैं। मूलग्रन्थ कारिकाओं में था। भट्टोजिदीक्षितकृत कारिकाओं की व्याख्या के रूप में ये ग्रन्थ हैं। वैयाकरणभूषणसार प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

६. भट्टि—भट्टि-काव्य के रचयिता भट्टि को भर्तृहरि भी कुछ स्थानों पर कहा गया है। भट्टिकाव्य का वास्तविक नाम 'रावणवध' है।

७. स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८८१–१९४० वि०)—अष्टाध्यायी पर 'अष्टाध्यायीभाष्य' नाम की विस्तृत व्याख्या लिखी है। ये औदीच्य ब्राह्मणकुल में टंकारा (काठियावाड़) में उत्पन्न हुए थे। पिता का नाम कर्शन जी तिवाड़ी था। ये आर्य-पद्धति के प्रबल समर्थक और आर्यसमाज के संस्थापक थे। इनकी अन्य मुख्य पुस्तकें हैं—ऋग्वेदभाष्य, यजुर्वेदभाष्य, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश, संस्कार-विधि आदि।

ओम्

लघुसिद्धान्त-कौमुदी

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥

अन्वय–अहं शुद्धां गुण्यां सरस्वतीं देवीं नत्वा
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदी करोमि।

अर्थ—मैं (वरदराज) शुद्ध और उत्तम गुणों से युक्त सरस्वती देवी को प्रणाम करके पाणिनि-मुनि-विरचित व्याकरणशास्त्र में (विद्यार्थियों के) प्रवेश के लिए 'लघु-सिद्धान्तकौमुदी' ग्रन्थ को बनाता हूँ।

अथ संज्ञा-प्रकरणम्

अइउण् १। ऋलृक् २। एओङ् ३। ऐऔच् ४। हयवरट् ५। लण् ६। ञमङणनम् ७। झभञ् ८। घढधष् ९। जबगडदश् १०। खफछठथचटतव् ११। कपय् १२। शषसर् १३। हल् १४।

ये १४ सूत्र माहेश्वर (महेश्वर अर्थात् शिव से प्राप्त) सूत्र कहे जाते हैं। अण् आदि प्रत्याहारों को बनाने में इनका उपयोग होता है। इन १४ सूत्रों के अन्तिम वर्ण (ण्, क्, ङ्, च् आदि) इत् होते हैं अर्थात् उनका लोप हो जाता है। 'हयवरट्' के ह आदि में अ केवल उच्चारण के लिए है। 'लण्' सूत्र में अ की इत् संज्ञा होती है, अतः उसका लोप हो जाता है।

१. हलन्त्यम् (१-३-३)

पाणिनि आदि आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट धातु, सूत्र आदि में अन्तिम हल् (व्यंजन) की इत् संज्ञा होती है।

टिप्पणी—पाणिनि मुनि ने प्रत्येक सूत्र में पूरे पद नहीं दिए हैं। सूत्रों का अर्थ पूरा करने के लिए पूर्वोक्त सूत्रों से कुछ पदों को अगले सूत्रों में ले आते हैं। इस कार्य को 'अनुवृत्ति' कहते हैं। आवश्यकतानुसार पूर्वोक्त सूत्रों से कुछ पदों की अनुवृत्ति होती है। इस सूत्र में 'उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१-३-२)' सूत्र से उपदेशे और इत् इन दो पदों की अनुवृत्ति है। अतः अर्थ होता है—उपदेश में अन्तिम हल् की इत् संज्ञा होती है। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के उच्चारण को उपदेश कहते हैं। धातु, सूत्र, गण, उणादि, लिंगानुशासन, आगम, प्रत्यय और आदेश, इनको उपदेश कहते

हैं। (धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम्। आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥) । धातुपाठ आदि की सर्वप्रथम कल्पना पाणिनि मुनि ने की थी। धातुपाठ, सूत्रपाठ (अष्टाध्यायी), गणपाठ, उणादिपाठ और लिङ्गानुशासन, ये पाँच मिलकर व्याकरण कहे जाते हैं।

२. अदर्शनं लोपः (१-१-६०)

किसी भी प्राप्त वर्ण आदि के न दिखाई पड़ने या न सुने जाने को लोप कहते हैं।

३. तस्य लोपः (१-३-९)

जिन वर्णों की इत् संज्ञा होती है, उनका लोप हो जाता है।

टिप्पणी—अइउण् आदि सूत्रों में ण् आदि इत्संज्ञक होने से लुप्त हो जाते हैं। ये ण् आदि अण् आदि प्रत्याहार बनाने के साधन हैं। जिस प्रत्यय आदि में से इत् संज्ञा होकर जिस वर्ण का लोप हो जाता है, उसके आधार पर ही उस प्रत्यय को णित्, कित् आदि कहा जाता है। जैसे-अण् प्रत्यय में से ण् इत् होकर लुप्त हो जाता है, अतः अण् णित् प्रत्यय है। क प्रत्यय का क् हटता है, अतः वह कित् है।

४. आदिरन्त्येन सहेता (१-१-७१)

अन्तिम इत्-संज्ञक वर्ण के साथ आदि-वाला वर्ण अपनी और बीच के सभी वर्णों की प्रत्याहार-संज्ञा करता है। जैसे—अण् कहने से अ इ उ वर्णों की संज्ञा होती है।

टिप्पणी—यह प्रत्याहार बनाने वाला सूत्र है। 'प्रत्याहार' का अर्थ है—संक्षेप में कथन। अ इ उण् आदि १४ सूत्रों से प्रत्याहार बनाए जाते हैं। व्याकरण में इन प्रत्याहारों का बहुत अधिक उपयोग होता है। अतः प्रत्याहार बनाने का ढंग ठीक समझ लेना चाहिए। प्रत्याहार बनाने के नियम ये हैं-(क) अइउण् आदि सूत्रों के अन्तिम अक्षर (ण्, क् आदि) प्रत्याहार में नहीं गिने जाते हैं। अन्तिम अक्षर केवल प्रत्याहार बनाने के साधन हैं। (ख) जो प्रत्याहार बनाना हो, उसके लिए प्रथम अक्षर सूत्रों में जहाँ हो, वहाँ ढूँढ़ना चाहिए। अन्तिम अक्षर सूत्रों के अन्तिम अक्षरों में ढूँढ़िए। बीच के सारे अक्षर उस प्रत्याहार में माने जाएँगे। जैसे-अण्—अ से लेकर अइउण् के ण् तक अर्थात् अ, इ, उ। अल्—अ से लेकर हल् के ल् तक, अर्थात् पूरी वर्णमाला। अच्—अ से ऐऔच् के च् तक, अर्थात् सारे स्वर। हल्—ह से लेकर हल् के ल् तक, अर्थात् सारे व्यंजन। इसी प्रकार अन्य प्रत्याहार बनावें।

इन सूत्रों से ४२ प्रत्याहार बनते हैं। उनके नाम और उदाहरण छात्रों की सुविधा के लिए अकारादि क्रम से नीचे दिए जाते हैं :—

१. अण्—अ इ उ।

२. अक्—अ इ उ ऋ ऌ।

३. अच्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ।

४. अट्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र।
५. अण्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
६. अम्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।
७. अश्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
८. अल्—अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
९. इक्—इ उ ऋ ऌ।
१०. इच्—इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ।
११. इण्—इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
१२. उक्—उ ऋ ऌ।
१३. एङ्—ए ओ।
१४. एच्—ए ओ ऐ औ।
१५. ऐच्—ऐ औ।
१६. हश्—ह य व र ल ञ म ङ ण न ज ब ग ड द।
१७. हल्—ह य व र ल ञ म ङ ण न ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
१८. यण्—य व र ल।
१९. यम्—य व र ल ञ म ङ ण न।
२०. यञ्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।
२१. यय्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
२२. यर्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
२३. वश्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
२४. वल् व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
२५. रल्—र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
२६. मय्—म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
२७. ङम्—ङ ण न।
२८. झष-झ भ घ ढ ध।
२९. झश्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
३०. झय्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
३१. झर्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

३२. झल्–झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
३३. भष्–भ घ ढ ध।
३४. जश्–ज ब ग ड द।
३५. बश्–ब ग ड द।
३६. खय्–ख फ छ ठ थ च ट त क प।
३७. खर्–ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
३८. छव्–छ ठ थ च ट त।
३९. चय्–च ट त क प।
४०. चर्–च ट त क प श ष स।
४१. शर्–श ष स।
४२. शल्–श ष स ह।

५. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः (१–२–२७)

एक मात्रा (उ), दो मात्रा (ऊ) और तीन मात्रा वाले (उ३) उकार के तुल्य जिस स्वर का उच्चारण-काल होता है, वह क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत होता है। अर्थात् एक मात्रा वाला स्वर ह्रस्व, दो मात्रा वाला दीर्घ और तीन मात्रा वाला स्वर प्लुत कहा जाता है। प्रत्येक स्वर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से तीन प्रकार का होता है।

६. उच्चैरुदात्तः (१–२–२९)

कण्ठ, तालु आदि स्थानों के ऊपरी भाग से जिस स्वर की उत्पत्ति होती है, उसको उदात्त कहते हैं। कण्ठ, तालु आदि के दो भाग हैं—एक ऊपरी और दूसरा नीचे का। ऊपरी भाग से उत्पन्न स्वर उदात्त होता है और नीचे के भाग से उत्पन्न स्वर अनुदात्त होता है।

७. नीचैरनुदात्तः (१–२–३०)

कण्ठ, तालु आदि स्थानों के नीचे के भाग से जिस स्वर की उत्पत्ति होती है, उसे अनुदात्त कहते हैं।

८. समाहारः स्वरितः (१–२–३१)

उदात्त और अनुदात्त वर्णों के धर्मों का जिस वर्ण में मेल हो, वह स्वरित कहलाता है, अर्थात् तालु आदि स्थानों के मध्य भाग से जिस स्वर की उत्पत्ति होती है, उसे स्वरित कहते हैं।

९. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः (१–१–८)

मुख और नासिका दोनों के सहयोग से बोला जाने वाला वर्ण अनुनासिक कहा जाता है। अतः अ इ उ ऋ इनमें से प्रत्येक के १८ भेद हैं। 'ऌ' वर्ण के १२ भेद हैं, यह दीर्घ नहीं होता। ए ओ ऐ औ के भी १२ भेद हैं, ये ह्रस्व नहीं होते।

नीचे के कोष्ठ से ये भेद समझे जा सकते हैं। संक्षेप के लिए यहाँ पर ये संकेत अपनाए गए हैं—ह्रस्व (ह्र०), दीर्घ (दी०), प्लुत (प्लु०), उदात्त (उ०), अनुदात्त (अ०), स्वरित (स्व०), अनुनासिक (अनु०), अननुनासिक (अननु०)।

अचों के १८ भेद

अ इ उ ऋ ऌ	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ
ह्रस्व वाले भेद	दीर्घ वाले भेद	प्लुत वाले भेद
१. उ० अनु०	७. उ० अनु०	१३. उ० अनु०
२. उ० अननु०	८. उ० अननु०	१४. उ० अननु०
३. अ० अनु०	९. अ० अनु०	१५. अ० अनु०
४. अ० अननु०	१०. अ० अननु०	१६. अ० अननु०
५. स्व० अनु०	११. स्व० अनु०	१७. स्व० अनु०
६. स्व० अननु०	१२. स्व० अननु०	१८. स्व० अननु०

१०. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् (१-१-९)

(क) (ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्) (वा०)। १. अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। २. इचुयशानां तालु। ३. ऋटुरषाणां मूर्धा। ४. लृतुलसानां दन्ताः। ५. उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। ६. ञमङणनानां नासिका च। ७. एदैतोः कण्ठतालु। ८. ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। ९. वकारस्य दन्तोष्ठम्। १०. जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। ११. नासिकाऽनुस्वारस्य।

तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस-जिस वर्ण के समान हों, वे वर्ण परस्पर सवर्ण कहलाते हैं। ऋ और ऌ इन दोनों वर्णों की परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है। (वार्तिक)।

निम्नलिखित विवरण के अनुसार वर्णों के स्थान होते हैं।

१. अ, कवर्ग (क ख ग घ ङ), ह और विसर्ग का कण्ठ स्थान है।
२. इ, चवर्ग (च छ ज झ ञ), य और श का तालुस्थान है।
३. ऋ, टवर्ग (ट ठ ड ढ ण), र और ष का मूर्धा स्थान है।
४. ऌ, तवर्ग (त थ द ध न), ल और स का दन्त स्थान है।
५. उ, पवर्ग (प फ ब भ म), और उपध्मानीय (ᳲप, ᳲफ) का ओष्ठ स्थान है।
६. ञ, म, ङ, ण, न का नासिका स्थान भी है।
७. ए और ऐ का कण्ठ और तालु स्थान है।
८. ओ और औ का कण्ठ और ओष्ठ स्थान है।
९. व का दन्त और ओष्ठ स्थान है।
१०. जिह्वामूलीय (ᳲक, ᳲख) का जिह्वामूल स्थान है।
११. अनुस्वार का नासिका स्थान है।

(ख) यत्नो द्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्, प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव।

यत्न दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तर (अन्दर का) और बाह्य (बाहर का)। आभ्यन्तर प्रयत्न ५ प्रकार का है—१. स्पृष्ट, २. ईषत्स्पृष्ट, ३. ईषद्विवृत, ४. विवृत और ५. संवृत भेद से। इनमें से स्पृष्ट प्रयत्न स्पर्श वर्णों (क से म तक) का है। ईषत्स्पृष्ट अन्तःस्थों (य र ल व) का है। ईषद्विवृत ऊष्म वर्णों (श ष स ह) का है। विवृत स्वरों (अ से औ तक स्वर) का है। ह्रस्व अ का प्रयोग की अवस्था में संवृत प्रयत्न होता है और प्रक्रिया (रूप-निर्माण) की अवस्था में विवृत प्रयत्न होता है।

टिप्पणी—स्पृष्ट का अर्थ है कि इन वर्णों के उच्चारण में जीभ तालु आदि स्थानों को स्पर्श करती है या ओष्ठ परस्पर स्पर्श करते हैं। ईषत्स्पृष्ट का अर्थ है कि जीभ तालु आदि स्थानों को बहुत धीरे से छूती है। ईषद्विवृत का अर्थ है कि इन वर्णों के उच्चारण में जीभ और तालु आदि स्थानों के बीच में संकरा-सा मार्ग खुला रहता है। विवृत का अर्थ है कि जीभ और तालु आदि के बीच का मार्ग खुला रहता है और वायु रुकती नहीं है। संवृत का अर्थ है कि वायु का मार्ग बन्द हो जाता है।

आभ्यन्तर प्रयत्न-बोधक सारणी

स्पृष्ट	ई० स्पृष्ट	ई० विवृत	ई० विवृत	संवृत
क ख ग घ ङ	य	अ ए	श	ह्रस्व 'अ' प्रयोग
च छ ज झ ञ	र	इ ओ	ष	की अवस्था में
ट ठ ड ढ ण	ल	उ ऐ	स	
त थ द ध न	व	ऋ औ	ह	
प फ ब भ म		ऌ		

(ग) बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा—विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः। शल ऊष्माणः। अचः स्वराः। ᳵक ᳵख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। ᳶप ᳶफ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

बाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का है—१. विवार, २. संवार, ३. श्वास, ४. नाद, ५. घोष, ६. अघोष, ७. अल्पप्राण ८. महाप्राण, ९. उदात्त, १०. अनुदात्त, ११. स्वरित। खरों (वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर तथा श ष स) का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है। हशों (ह य व र ल तथा वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पंचम

वर्ण) का संवार, नाद और घोष प्रयत्न है। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण तथा य र ल व का अल्पप्राण प्रयत्न है। वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ वर्ण तथा श ष स ह का महाप्राण प्रयत्न है।

क से लेकर म तक के वर्णों को स्पर्श कहते हैं। यण् (य र ल व) को अन्तःस्थ कहते हैं। शल् (श ष स ह) को ऊष्म कहते हैं। अचों (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ) को स्वर कहते हैं। ˘ क और ˘ ख इस प्रकार क और ख से पहले आधे विसर्ग के समान ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। ˘ प और ˘ फ इस प्रकार प और फ से पहले आधे विसर्ग के समान ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। अं में अच् के बाद अनुस्वार है और अः में अच् के बाद विसर्ग है। अं और अः ये दोनों कोई स्वतन्त्र स्वर नहीं हैं।

टिप्पणी—(१) विवार—जिन शब्दों के उच्चारण में स्वरतन्त्री का मुँह खुला रहता है, उनका प्रयत्न विवार है। (२) संवार—जिन वर्णों के उच्चारण में स्वरतन्त्री का मुँह बन्द रहता है, उनका प्रयत्न संवार है। (३) श्वास—श्वास वर्णों के उच्चारण में अन्दर की वायु स्वरतन्त्री में झंकार या रगड़ किए बिना ही बाहर आती है। (४) नाद—नाद वर्णों के उच्चारण में अन्दर की वायु स्वरतन्त्री में झंकार करती हुई या रगड़ती हुई बाहर आती है, अतः इनके उच्चारण में झंकार या अनुरणन रहता है। (५) घोष—घोष वर्णों के उच्चारण में ध्वनि या गूँज रहती है। (६) अघोष—अघोष वर्णों के उच्चारण में ध्वनि या गूँज नहीं रहती है। (७) अल्पप्राण—इन वर्णों के उच्चारण में अन्दर की थोड़ी वायु का उपयोग होता है। (८) महाप्राण—इन वर्णों के उच्चारण में अन्दर की अधिक वायु का उपयोग होता है। साधारणतया वर्णों के प्रथम और तृतीय वर्णों में ह् ध्वनि को और मिला देने से उनके महाप्राण वर्ण बन जाते हैं। (९) जिह्वामूलीय—यह ध्वनि जीभ की जड़ के पास से निकलती है। (१०) उपध्मानीय—यह ध्वनि ओष्ठ से कुछ अधिक श्वास के बल के साथ बोली जाती है। अतः समान्यतया इनके उच्चारण में प्प, प्फ जैसी ध्वनि होती है।

बाह्यप्रयत्न-बोधक सारणी

विवार, श्वास, अघोष	संवार, नाद, घोष	अल्पप्राण	महाप्राण	उदात्त अनुदात्त, स्वरित
क ख श	ग घ ङ य	क ग ङ य	ख घ श	अ ए
च छ ष	ज झ ञ व	च ज ञ व	छ झ ष	इ ओ
ट ठ स	ड ढ ण र	ट ड ण र	ठ ढ स	उ ऐ
त थ	द ध न ल	त द न ल	थ ध ह	ऋ औ
प फ	ब भ म	प ब म	फ भ	ऌ

११. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः(१-१-६९)

कु चु टु तु पु एते उदितः। तदेवम्—अ इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारोऽपि। एचो द्वादशानाम्। अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा। तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।

प्रत्यय-भिन्न अण् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, ह, य, व, र, ल) और उदित् (जिनमें से उ हटा है, ऐसे कु, चु, टु आदि) सवर्ण के ग्राहक होते हैं। केवल इस सूत्र में ही अण् प्रत्याहार बादके ण् से अर्थात् लण् सूत्र के ण् से लिया जाता है।

कु चु टु तु और पु ये उदित् हैं अर्थात् इनका उ हट जाता है। अतः कु का अर्थ है कवर्ग, चु—चवर्ग, टु—टवर्ग, तु—तवर्ग और पु—पवर्ग।

इस प्रकार 'अ' या अकार १८ भेदों का बोधक है।(इसका विवरण सूत्र ९ की व्याख्या में दिया गया है)। इसी प्रकार 'इ' या इकार और 'उ' या उकार भी १८ भेदों के बोधक हैं। 'ऋ' ३० भेदों का बोधक है (१८ ऋ के भेद + १२ लृ के भेद)। इस प्रकार 'लृ' भी ३० भेदों का बोधक है (१८ ऋ के भेद + १२ लृ के भेद)। ए ऐ और ओ औ १२ भेदों के बोधक हैं। एच् (ए ऐ ओ औ) ह्रस्व नहीं है, इनके ह्रस्व वाले ६ भेद नहीं होते हैं। य व ल दो-दो प्रकार के हैं—अनुनासिक और अननुनासिक। जैसे—य्-यँ्, व्-वँ्, ल्-लँ्। अननुनासिक य् व् ल् कहने पर वे अनुनासिक और अननुनासिक दोनों भेदों का बोध कराएँगे।

१२. परः संनिकर्षः संहिता (१-४-१०९)

वर्णों या पदों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। अतः संहिता कहने पर सभी सन्धि-कार्य आदि होते हैं।

१३. हलोऽनन्तराः संयोगः (१-१-७)

बीच में कोई स्वर न हो तो हल् (व्यंजन) वर्णों को संयुक्त कर दिया जाता है, इसे संयोग कहते हैं।

१४. सुप्तिङन्तं पदम् (१-४-१४)

सुबन्त और तिङन्त को पद कहते हैं। शब्दों के अन्त में लगने वाले सु औ अः आदि प्रत्ययों को सुप् कहते हैं, अतः इन प्रत्ययों से बने हुए रामः रामौ रामाः आदि शब्दरूप सुबन्त कहे जाते हैं। इसी प्रकार धातुओं के अन्त में लगने वाले ति तः अन्ति आदि प्रत्यय तिङ् हैं और इनसे बनने वाले भवति भवतः आदि धातुरूप तिङन्त हैं। ये सुबन्त और तिङन्त पद कहे जाते हैं।

संज्ञा-प्रकरण समाप्त

सन्धि-प्रकरण

अच्-सन्धि (स्वर-सन्धि)

१५. इको यणचि (६-१-७७)

इक् (इ उ ऋ ऌ) के स्थान पर यण् (य् व् र् ल्) होते हैं, बाद में कोई अच् (स्वर) हो तो, संहिता के प्रसंग में। अर्थात् इ ई को य्, उ ऊ को व्, ऋ ॠ को र् और ऌ को ल् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो। सूचना—सवर्ण (वैसा ही, समान) स्वर बाद में होगा तो दीर्घ संधि हो जायेगी।

टिप्पणी—संहिता के विषय में निम्नलिखित नियम स्मरण रखें :—

संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

इन स्थानों पर संहिता (संधि-कार्य आदि) अवश्य होती है—१. एक पद में, २. धातु और उपसर्ग के एकत्र होने पर, ३. समास में। परन्तु वाक्य में संहिता विवक्षा अर्थात् वक्ता की इच्छा पर निर्भर है। अतः वाक्य में संधि-कार्य वक्ता की इच्छा के अनुसार होगा या नहीं होगा।

१६. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (१-१-६६)

सप्तम्यन्त पद से निर्दिष्ट कार्य अव्यवहित पूर्व को होता है। जैसे—इको यणचि सूत्र में अचि में सप्तमी है, अतः अच् (स्वर) परे होने पर अव्यवहित पूर्ववर्ती इक् को यण् होता है।

१७. स्थानेऽन्तरतमः (१-१-५०)

एक वर्ण के स्थान पर कई आदेश उपस्थित होने पर अत्यन्त सदृश वर्ण ही होता है। उच्चारण-स्थान की सदृशता को सबसे अधिक प्रमुखता दी जाती है। अतः तालु स्थानवाले इ ई के स्थान पर तालु वर्ण य् होता है।

१८. अनचि च (८-४-४७)

अच् (स्वर) से परवर्ती यर् (य व र ल, वर्गों के १ से ५ वर्ण, श ष स) को विकल्प से द्वित्व हो जाता है, यर् के बाद अच् नहीं हो तो।

१९. झलां जश् झशि (८-४-५३)

झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और श ष स ह) को जश् (३ अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) हो जाते हैं, बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हों तो। (यह नियम पद के बीच में लगता है)।

२०. संयोगान्तस्य लोपः (८-२-२३)

संयोगान्त पद के अन्तिम अक्षर का लोप होता है।

२१. अलोऽन्त्यस्य (१-१-५२)

षष्ठ्यन्त के निर्देश से जहाँ कार्य कहा जाता है, वह अन्तिम वर्ण को ही होता है। अतः पूर्व सूत्र में संयोगान्त के अन्तिम अक्षर का लोप कहा गया है।

(*यणः प्रतिषेधो वाच्यः*) (वार्तिक) संयोगान्त पद के अन्तिम वर्ण यण् (य् व् र् ल्) का लोप नहीं होता है।

(क) सुद्ध्युपास्यः, सुध्युपास्यः—(विद्वानों के द्वारा उपासनीय, ईश्वर) सुधी + उपास्यः = सुध्य् + उपास्यः = सुध्युपास्यः। 'इको यणचि' से ई को य्। अनचि च से ध् को द्वित्व होने पर सुध् ध् य् + उपास्यः, झलां जश्० से पहले ध् को द् होने पर सुद् ध् य् + उपास्यः = सुद्ध्युपास्यः। सूत्र २० से य् का लोप प्राप्त था, परन्तु वार्तिक ने लोप का निषेध कर दिया। (ख) मद्ध्वरिः, मध्वरिः (मधुनामक राक्षस के शत्रु, विष्णु)— मधु + अरिः = मध्व् + अरिः = मध्वरिः। ध् को द्वित्व होने पर सुद्ध्युपास्यः के तुल्य ध् को द् और व् के लोप का निषेध होकर मद्ध्वरिः बनेगा। (ग) धात्त्रंशः, धात्रंशः (ब्रह्मा का अंश)—धातृ + अंशः = धात्रंशः। ऋ को र् यण्। त् को अनचि च से द्वित्व होने पर धात्त्रंशः। (घ) लाकृतिः (लृ के तुल्य आकृति वाले, कृष्ण)—लृ + आकृतिः। लृ को ल् यण्।

२२. एचोऽयवायावः (६-१-७८)

एच् (ए ओ ऐ औ) को क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् आदेश होते हैं, बाद में कोई अच् (स्वर) हो तो। अतः ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् आदेश होते हैं। (सूचना—पद के अन्तिम ए या ओ के बाद अ होगा तो ये आदेश नहीं होंगे)।

२३. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् (१-३-१०)

जहाँ पर स्थानी (जिसके स्थान पर आदेश होता है) और आदेश (जो किसी वर्ण के स्थान पर होता है) की संख्या बराबर हो, वहाँ पर आदेश क्रम से होता है। जैसे—ए को अय्, ओ का अव्, ए को आय्, औ को आव्।

(क) हरये (हरि के लिए)—हरे + ए = हरये, ए को अय्, एचोऽयवायावः से। (ख) विष्णवे (विष्णु के लिए)—विष्णो + ए = विष्णवे, ओ को अव्। (ग) नायकः (नेता)—नै + अकः = नायकः, ऐ को आय्। (घ) पावकः (पवित्र करने वाला, अग्नि)—पौ + अकः, औ को आव्।

२४. वान्तो यि प्रत्यये (६-१-७९)

य से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय बाद में हो तो ओ को अव् और औ को आव् होता है। (क) गव्यम् (गाय का विकार अर्थात् गाय का दूध दही घी आदि)—

गो + यम्, ओ को अव्। (ख) नाव्यम् (नौका से पार करने योग्य जल)—नौ + यम्, औ को आव्। (अध्वपरिमाणे च) (वार्तिक) मार्ग के परिमाण (नाप) अर्थ में ओ को अव् हो जाता है। गव्यूतिः (२ कोस, ४ मील)—गो + यूतिः, ओ को इस वार्तिक से अव्।

२५. अदेङ् गुणः (१–१–२)

अ ए और ओ को गुण कहते हैं।

२६. तपरस्तत्कालस्य (१–१–७०)

जिस स्वर के बाद त् लगा रहता है, वह स्वर अपने समान काल वाले का ही बोध कराता है। अतएव अदेङ् गुणः में अत् (अ) का अर्थ ह्रस्व अ है।

२७. आद्गुणः (६–१–८७)

१. अ या आ के बाद इ या ई होगा तो दोनों को 'ए' होगा।
२. अ या आ के बाद उ या ऊ होगा तो दोनों को 'ओ' होगा।
३. अ या आ के बाद ऋ या ॠ होगा तो दोनों को 'अर्' होगा।
४. अ या आ के बाद ऌ होगा तो दोनों को 'अल्' होगा।

(क) उपेन्द्रः (इन्द्र का समीपस्थ, विष्णु)—उप + इन्द्रः, अ + इ को गुण ए। (ख) गङ्गोदकम् (गंगा का जल)—गङ्गा + उदकम्, आ + उ को गुण ओ।

२८. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१–३–२)

उपदेश की अवस्था में जो अच् (स्वर) अनुनासिक हैं, वे इत् होते हैं। इत् होने से उन स्वरों का लोप हो जाता है। कौन से स्वर अनुनासिक हैं, इसका पाणिनि ने यथास्थान संकेत किया है। र प्रत्याहार में र और ल दो वर्ण आते हैं। र प्रत्याहार इस प्रकार बनता है—हयवरट् सूत्र में र् और लण् सूत्र में ल में अ, र् + अ = र। अतः र कहने से र ल दोनों का ग्रहण होता है।

२९. उरण् रपरः (१–१–५१)

ऋ के स्थान में जो अण् (अ इ उ) होता है, उसके बाद में र् और लग जाता है। अतः इन आदेशों का रूप अर्, इर्, उर् होता है पहले बताया गया है कि ऋ ३० प्रकार का है—१८ ऋ के भेद और १२ ऌ के भेद। ऋ और ऌ दोनों एक दूसरे के बोधक हैं। अतः ऌ को गुण होने पर अल् होगा। यहाँ पर अ के साथ ल् लगेगा। (क) कृष्णर्द्धिः (कृष्ण की समृद्धि)—कृष्ण + ऋद्धिः। अ और ऋ को गुण होकर अर्। (ख) तवल्कारः (तेरा ऌकार या ऌ)—तव + ऌकारः। अ और ऌ को गुण होकर अल् हुआ।

३०. लोपः शाकल्यस्य (८-३-१९)

अकार (अ और आ) के परवर्ती पदान्त य् और व् का विकल्प से लोप होता है, बाद में अश् (स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो।

३१. पूर्वत्राऽसिद्धम् (८-२-१)

पाणिनि की अष्टाध्यायी में ८ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं। सवा सात अध्याय की दृष्टि में अगले तीन पाद असिद्ध हैं और इन तीन पादों में भी पूर्व सूत्र की दृष्टि में अगला सूत्र असिद्ध है। असिद्ध का अभिप्राय यह है कि पूर्व सूत्रों की दृष्टि में बाद के सूत्र के द्वारा किया गया कार्य 'नहीं हुआ है' ऐसा माना जाता है। जैसे—लोपः शाकल्यस्य के द्वारा किया गया य् या व् का लोप आद्गुणः की दृष्टि में नहीं हुआ है, क्योंकि लोप करने वाला सूत्र त्रिपाद का है। अतः य् और व् के लोप वाले स्थलों पर गुण नहीं होता है।

(क) हर इह, हरयिह—(हे हरि, यहाँ आवो)—हरे + इह। ए को एचो० से अय्, हरयिह। य् का लोप होने पर गुण नहीं होगा। अतः हर इह। (ख) विष्ण इह, विष्णविह—(हे विष्णु, यहाँ आवो)—विष्णो + इह। ओ को अव्, विकल्प से व् का लोप।

३२. वृद्धिरादैच् (१-१-१)

आ, ऐ और औ को वृद्धि कहते हैं।

३३. वृद्धिरेचि (६-१-८८)

(१) अ या आ के बाद ए या ऐ होगा तो दोनों के स्थानपर 'ऐ' होगा। (२) अ या आ के बाद ओ या औ होगा तो दोनों के स्थान पर 'औ' होगा। यह गुण का अपवाद सूत्र है। (क) कृष्णैकत्वम्—(कृष्ण की एकता)—कृष्ण + एकत्वम्। अ और ए को ऐ वृद्धि एकादेश। (ख) गङ्गौघः—(गंगा का प्रवाह)—गङ्गा + ओघः। आ और ओ को औ वृद्धि एकादेश। (ग) देवैश्वर्यम्—(देवों का ऐश्वर्य)—देव + ऐश्वर्यम्। अ और ऐ को ऐ वृद्धि एकादेश। (घ) कृष्णौत्कण्ठ्यम्—(कृष्ण के प्रति उत्कण्ठा)—कृष्ण + औत्कण्ठ्यम्। अ और औ को औ वृद्धि एकादेश।

३४. एत्येधत्यूठ्सु (६-१-८९)

अकार के बाद ए से प्रारम्भ होने वाला इण् (इ) और एध् धातु का कोई रूप हो या ऊठ् (ऊठ् आदेश वाला ऊ) हो तो दोनों के स्थान पर वृद्धि (ऐ आ औ) एकादेश (एक आदेश वाला अक्षर) होता है। (क) उपैति (समीप आता है)—उप + एति। अ और ए को ऐ वृद्धि एकादेश। (ख) उपैधते (समीप में बढ़ता है)—उप + एधते। अ और ए को ऐ वृद्धि एकादेश। (ग) प्रष्ठौहः—(प्रष्ठवाह् का, बछड़ा जिसके गलेमें भारी लकड़ी वश में करने के लिए बाँधी गई है)—प्रष्ठ + ऊहः। अ और ऊ को औ वृद्धि एकादेश। प्रत्युदाहरण—(क) उपेतः (पास आया)—उप + इतः। अ और इ को ए गुण एकादेश। (ख) मा भवान् प्रेदिधत् (आप अधिक न बढ़ावें)—मा भवान् प्र + इदिधत्। अ और इ को ए गुण एकादेश। इन दोनों स्थानों पर प्रारम्भ में ए नहीं है, अतः वृद्धि नहीं हुई।

(क) (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्, वार्तिक)—अक्ष + ऊहिनी को वृद्धि एकादेश होता है। अक्षौहिणी सेना—अक्ष + ऊहिनी। अ और ऊ को औ तथा न को ण। अक्षौहिणी सेना का परिमाण यह था—हाथी—२१८७०, रथ—२१८७०, घोड़े—६५६१०, पैदल—१०९३५० = योग २१८७००। इसमें हाथी के बराबर ही रथ होते थे, इसके तिगुने घोडे और पाँच गुने पैदल सिपाही। महाभारत में अक्षौहिणी सेना का लक्षण है—अक्षौहिण्याः प्रमाणं तु खाङ्गाष्टैकद्विकैर्गजैः। रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नैः पञ्चघ्नैश्च पदातिभिः॥

(ख) (प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु, वा०)—प्र के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हों तो वृद्धि एकादेश होता है। (क) प्रौहः (उत्कृष्ट तार्किक)—प्र + ऊहः। अ और ऊ को औ वृद्धि एकादेश (ख) प्रौढः (प्रौढ़ता को प्राप्त)—प्र + ऊढः। (ग) प्रौढिः (प्रौढ़ता)—प्र + ऊढिः। (घ) प्रैषः (भेजना)—प्र + एषः। (ङ) प्रैष्यः (नौकर)—प्र + एष्यः। सभी स्थानों पर औ या ऐ वृद्धि एकादेश हुआ है।

(ग) (ऋते च तृतीया-समासे, वा०)—अकार के बाद ऋत शब्द हो तो दोनों के स्थान पर आर् वृद्धि एकादेश होता है, तृतीया तत्पुरुष समास हो तो। (क) सुखार्तः—(सुख से प्राप्त)—सुखेन ऋतः, सुख + ऋतः। अ और ऋ को आर् वृद्धि एकादेश। प्रत्युदाहरण—(ख) परमर्तः—(मुक्त)—परमः चासौ ऋतः, परम + ऋतः। अ और ऋ को गुण अर्। कर्मधारय समास होने से वृद्धि नहीं हुई।

(घ) (प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे, वा०)—प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश के बाद ऋण हो तो पूर्ववर्ती अ और ऋ के स्थान पर आर् वृद्धि एकादेश होता है। (क) प्रार्णम् (अधिक ऋण)—प्र + ऋणम्। (ख) वत्सतरार्णम् (छोटे बछेड़े के लिए लिया हुआ ऋण)—वत्सतर + ऋणम्। दोनों स्थानों पर अ और ऋ को आर् एकादेश। इसी प्रकार कम्बल + ऋणम् = कम्बलार्णम्। वसन + ऋणम् = वसनार्णम्। ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम्। दश + ऋणम् = दशार्णम्।

३५. उपसर्गाः क्रियायोगे (१-४-५९)

क्रिया (धातु, धातुरूप और क्रिया शब्द) से पूर्ववर्ती प्र आदि को उपसर्ग कहते हैं।

उपसर्ग २२ हैं। उनके नाम है—प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप।

३६. भूवादयो धातवः (१-३-१)

क्रियावाचक भू आदि को धातु कहते हैं।

३७. उपसर्गादृति धातौ (६-१-९१)

अकारान्त उपसर्ग के बाद ऋ से प्रारम्भ होनेवाली कोई धातु हो तो पूर्व-पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होती है। अर्थात् अ + ऋ = आर्। प्रार्च्छति (जाता है)—प्र + ऋच्छति। अ और ऋ को आर् वृद्धि।

३८. एङि पररूपम् (६-१-९४)

अकारान्त उपसर्ग के बाद ए या ओ से प्रारम्भ होने वाली कोई धातु हो तो पूर्व-पर के स्थान पर पररूप (बादवाला अक्षर) एकादेश होता है। अर्थात् अ+ए=ए, अ+ओ=ओ। (क) प्रेजते (अधिक हिलता है)—प्र+एजते। अ और ए को ए। (ख) उपोषति (जलाता है)—उप+ओषति। अ और ओ को ओ।

३९. अचोऽन्त्यादि टि (१-१-६४)

अन्तिम अच् (स्वर) को टि कहते हैं और अन्तिम स्वर के बाद कोई व्यंजन हो तो वह भी व्यंजन-सहित अन्तिम स्वर टि कहा जाता है।

(*शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्, वा०*) शकन्धु आदि शब्दों में टि (अन्तिम स्वर-सहित अगला अंश) को पररूप हो जाता है। (क) शकन्धुः-(शक लोगों का कुआँ)-शक+अन्धुः। दोनों अ को अ पररूप। (ख) कर्कन्धुः (बेर)-कर्क+अन्धुः। दोनों अ को अ। (ग) मनीषा (बुद्धि)-मनस्+ईषा। अस् और ई को ई। (घ) मार्तण्डः (सूर्य)-मार्त+अण्डः। दोनों अ को अ। शकन्ध्वादि आकृतिगण है, अर्थात् जहाँ पर इस प्रकार का कार्य हुआ हो उसे शकन्ध्वादि में मान लेना चाहिए।

४० ओमाङोश्च (६-१-९५)

अकार के बाद ओम् और आङ् (आ) हों तो दोनों को पररूप (ओ या आ) हो जाता है। (क) शिवायों नमः (शिव को नमस्कार)—शिवाय+ओं नमः। अ+ओ को ओ। (ख) शिव+एहि (हे शिव, आवो)—शिव+आ+इहि, आ और इ को गुण होकर शिव+एहि।

४१. अन्तादिवच्च (६-१-८५)

एकादेश करने से पूर्व दोनों वर्णों में जो उपसर्गत्व, धातुत्व आदि रहता है, वह एकादेश होने पर भी रहेगा। एकादेश में भी प्रथम अवयव को पर का आदि और द्वितीय अवयव को पूर्व का अन्त मानेंगे। अतः एहि में आङ् (आ) उपसर्ग मिल जाने से ओमाङोश्च से पररूप हो जाएगा। शिवेहि—शिव+एहि। अ को पररूप।

४२. अकः सवर्णे दीर्घः (६-१-१०१)

अक् (अ इ उ ऋ) के बाद समान अक्षर हो तो दोनों को उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर एकादेश हो जाता है। अर्थात्—(१) अ या आ+अ या आ=आ। (२) इ या ई+इ या ई=ई। (३) उ या ऊ+उ या ऊ=ऊ। (४) ऋ+ऋ=ॠ। (क) दैत्यारिः (दैत्यों का शत्रु, विष्णु)—दैत्य+अरिः। दोनों अ को दीर्घ अक्षर आ। (ख) श्रीशः (लक्ष्मी के पति, विष्णु)—श्री+ईशः। दोनों ई को ई। (ग) विष्णूदयः (विष्णु की उन्नति)—विष्णु+उदयः। दोनों उ को ऊ। (घ) होतॄकारः (होता का ऋकार)—होतृ+ऋकारः। दोनों ऋ को ॠ।

४३. एङः पदान्तादति (६-१-१०९)

पद (सुबन्त या तिङन्त) के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसे पूर्वरूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। (अ हटा है, इस बात के सूत्रनार्थ अवग्रह चिह्न ऽ लगा दिया जाता है)। (क) हरेऽव (हे विष्णु, रक्षा करो)—हरे + अव। अ को पूर्वरूप। (ख) विष्णोऽव (हे विष्णु, रक्षा करो)—विष्णो + अव। अ को पूर्वरूप।

४४. सर्वत्र विभाषा गोः (६-१-१२२)

पद के अन्तिम ओकारान्त गो शब्द के बाद अ हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव हो जाता है, लौकिक और वैदिक दोनों भाषाओं में। प्रकृतिभाव होने से यहाँ पर कोई सन्धि नहीं हो सकती है। (क) गो अग्रम्, गोऽग्रम् (गाय का अगला भाग)—गो + अग्रम्। प्रकृतिभाव होने पर गो अग्रम्। पूर्वरूप होने पर गोऽग्रम्। प्रत्युदाहरण—(क) चित्रग्वग्रम् (चितकबरी गायों का अग्रभाग)—चित्रगु + अग्रम्। यण् सन्धि। ओकारान्त न होने से प्रकृतिभाव नहीं हुआ। (ख) गोः (गाय का)—गो + अः। पूर्वरूप होकर गोः। पदान्त ओ न होने से प्रकृतिभाव नहीं हुआ।

४५. अनेकाल्शित् सर्वस्य (१-१-५५)

अनेक अल् (वर्ण) वाला और शित् (जिसमें से श् हटा है) आदेश सारे स्थानी (शब्द आदि) के स्थान पर होता है।

४६. ङिच्च (१-१-५३)

ङित् (जिसमें से ङ् हटा है) अनेक अल् (वर्ण) वाला आदेश शब्द के अन्तिम अक्षर के स्थान पर होता है।

४७. अवङ् स्फोटायनस्य (६-१-१२३)

पद के अन्तिम और ओकारान्त गो शब्द के ओ को अवङ् (अव) हो जाता है, बाद में स्वर हो तो, विकल्प से। (क) गवाग्रम्, गोऽग्रम् (गाय का अगला भाग)—गो + अग्रम्। ओ को अव होने पर दीर्घ सन्धि से गवाग्रम्। पूर्वरूप होने पर गोऽग्रम्। प्रत्युदाहरण—गवि (गाय में)—गो + इ। ओ को अव्। पदान्त न होने से अवङ् नहीं हुआ।

४८. इन्द्रे च (६-१-१२४)

इन्द्र शब्द बाद में हो तो गो के ओ को अवङ् (अव) होता है। गवेन्द्रः (साँड़)—गो + इन्द्रः। ओ को अव और बाद में गुण।

४९. दूराद्धूते च (८-२-८४)

दूर से संबोधन (पुकारने) में वाक्य की टि (अन्तिम ओर से अच् सहित अंश) को विकल्प से प्लुत होता है। प्लुत के संकेत के लिए उस स्वर के बाद ३ की संख्या लिखी जाती है और उच्चारण में वह वर्ण ह्रस्व की अपेक्षा तिगुने बल से बोला जाता है।

५०. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (६-१-१२५)

स्वर बाद में होने पर प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृतिभाव होता है, अर्थात् वह उसी रूप में रहता है और कोई सन्धि नहीं होती। आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति (हे कृष्ण, आओ, यहाँ गाय चर रही है)—दूर से संबोधन होने से कृष्ण ३ में ःअ प्लुत है और प्लुत होने से कृष्ण ३ + अत्र में दीर्घ सन्धि नहीं हुई।

५१. ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् (१-१-११)

ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा होती है। प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृतिभाव और सन्धि का अभाव। (क) हरी एतौ (ये दो हरि या घोड़े)—हरी ईकारान्त द्विवचन है, अतः प्रगृह्यसंज्ञा और यण् सन्धि का अभाव। (ख) विष्णू इमौ (ये दो विष्णु)—ऊकारान्त द्विवचन होने से प्रगृह्यसंज्ञा और यण् का अभाव। (ग) गङ्गे अमू (ये दो गंगाएँ)—एकारान्त द्विवचन होने से प्रगृह्य संज्ञा और पूर्वरूप संधि का अभाव।

५२. अदसो मात् (१-१-१२)

अदस् शब्द के म् के बाद ई या ऊ हो तो प्रगृह्यसंज्ञा होती है। प्रकृतिभाव होने से संधि का अभाव। (क) अमी ईशाः (ये स्वामी हैं)—म् के बाद ई होने से प्रगृह्यसंज्ञा और दीर्घ संधि का अभाव। (ख) रामकृष्णावमू आसाते (राम और कृष्ण, ये दो बैठे हैं)—अमू + आसाते, प्रगृह्यसंज्ञा होने से यण् संधि का अभाव। प्रत्युदाहरण—(ग) अमुकेऽत्र (यहाँ ये)—ए म् के बाद नहीं है, अतः प्रगृह्यसंज्ञा नहीं हुई और पूर्वरूप संधि हुई।

५३. चादयोऽसत्त्वे (१-४-५७)

द्रव्य से भिन्न के वाचक च आदि को निपात कहते हैं।

५४. प्रादयः (१-४-५८)

प्र आदि को भी निपात कहते हैं।

५५. निपात एकाजनाङ् (१-१-१४)

एक अच् वाले निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है, आङ् (आ) को छोड़कर। प्रगृह्यसंज्ञा होनेसे प्रकृतिभाव और संधि का अभाव। (क) इ इन्द्रः (यह इन्द्र है!)—इ निपात की प्रगृह्यसंज्ञा होने से दीर्घसंधि का अभाव। (ख) उ उमेशः (प्रतीत होता है कि यह शिव है)—प्रगृह्यसंज्ञा होने से दीर्घ संधि का अभाव।

वाक्य और स्मरण अर्थ में आ ङित् नहीं होता है, अतः प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृतिभाव और सन्धि का अभाव। (क) आ एवं नु मन्यसे (क्या तुम ऐसा मानते हो!)—आ निपात की प्रगृह्य संज्ञा होने से आ + एवं० में वृद्धि-संधि का अभाव। (ख) आ एवं किल तत् (हाँ, वह ऐसा ही था)—यहाँ पर भी आ की प्रगृह्य संज्ञा होने से आ + एवं० में वृद्धि का अभाव। इन दोनों स्थानों पर आ निपात है, आङ् नहीं।

अन्य अर्थों में आङ् ङित् है। (ग) ओष्णम् (थोड़ा गर्म) आ + उष्णम्। प्रगृह्यसंज्ञा न होने से गुण-संधि।

आ के विषय में नियम है:—ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाऽभिविधौ च यः। एतमातं ङित विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित्। इन अर्थों में आ ङित् (आङ्) समझना चाहिए—अल्प अर्थ में, क्रिया के साथ, मर्यादा (किसी सीमा से पहले) और अभिविधि (उस सीमा के सहित) अर्थ में। वाक्य और स्मरण अर्थ में आ ङित् नहीं होता।

५६. ओत् (१-१-१५)

ओकारान्त निपात की भी प्रगृह्यसंज्ञा होती है। प्रगृह्यसंज्ञा होने से प्रकृतिभाव और संधि का अभाव। अहो ईशाः (अहो, ये स्वामी हैं)—अहो की प्रगृह्यसंज्ञा होने से ओ को अव् (अयादिसंधि) नहीं हुआ।

५७. संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (१-१-१६)

संबोधन के ओ की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है, बाद में लौकिक इति शब्द हो तो। विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति (हे विष्णु)—विष्णो + इति। प्रगृह्यसंज्ञा होने से संधि का अभाव होने पर विष्णो इति। प्रगृह्यसंज्ञा न होने पर ओ को अव् होने पर विष्णविति और लोपः शाकल्यस्य से व् का लोप होने पर विष्ण इति।

५८. मय उञो वो वा (८-३-३३)

मय् (ञ् को छोड़ कर वर्ग के १ से ५) के बाद उञ् के उ को विकल्प से व् होता है, बाद में अच् (स्वर) हो तो। जहाँ पर व् नहीं होगा, वहाँ पर निपात एकाज० (५५) से प्रगृह्यसंज्ञा होने से संधि का अभाव। किम्वुक्तम्, किमु उक्तम् (क्या कहा ?)—किम् + उ + उक्तम्। इस सूत्र से उ को व् होने पर किम्वुक्तम्। प्रगृह्यसंज्ञा होने पर संधि का अभाव, किमु उक्तम्।

५९. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च (६-१-१२७)

पद के अन्तिम इक् (इ उ ऋ ऌ) को विकल्प से ह्रस्व होता है, बाद में असवर्ण (असमान) स्वर हो तो। चक्रि अत्र, चक्र्यत्र (चक्रधारी विष्णु यहाँ हैं)—चक्री + अत्र। इस सूत्र से ई को ह्रस्व होने से चक्रि अत्र। इस सूत्र से ह्रस्व करने के कारण ही यण् संधि नहीं हुई। अन्यत्र यण् होकर चक्र्यत्र। प्रत्युदाहरण—गौर्यौ (दो गौरी)—गौरी + औ। पदान्त ई न होने से ह्रस्व नहीं हुआ, यण् सन्धि।

(न समासे, वा०) समास में यह नियम नहीं लगेगा, अर्थात् पदान्त इक् को विकल्प से ह्रस्व नहीं होगा। वाप्यश्वः (तालाब में घोड़ा)—वापी + अश्वः। समास होने से ई को ह्रस्व नहीं हुआ और यण् संधि से ई को य्।

६०. अचो रहाभ्यां द्वे (८-४-४६)

अच (स्वर) के बाद यदि र् या ह हो और उसके बाद यर् (ह् को छोड़कर सभी

व्यंजन) हो तो यर् को विकल्प से द्वित्व होता है। गौर्य्यौ (दो गौरी)–गौरी + औ, यण् गौर्य् + औ, य् को द्वित्व होने पर गौर्य्यौ।

६१. ऋत्यकः (६–१–१२८)

पद के अन्तिम अक् (अ इ उ ऋ ऌ) को विकल्प से ह्रस्व होता है, बाद में ह्रस्व ऋ हो तो। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः (ब्रह्मर्षि)–ब्रह्मा + ऋषिः। आ को अ और संधि का अभाव, ब्रह्म ऋषिः। गुण करने पर ब्रह्मर्षिः। प्रत्युदाहरण–आर्च्छत्–आ + ऋच्छत्। यहाँ पर आ पद का अन्तिम अक्षर नहीं है, अतः ह्रस्व नहीं हुआ। आटश्च से आ + ऋ को वृद्धि होकर आर्, आर्च्छत्।

अच्-सन्धि समाप्त।

हल्-सन्धि (व्यंजन-संधि)

६२. स्तोः श्चुना श्चुः (८–४–४०)

स् या तवर्ग से पहले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्ग को चवर्ग हो जाता है, अर्थात् त् को च्, द् को ज् और न् को ञ्। (क) रामश्शेते (राम सोता है)–रामस् + शेते। स् को श्। (ख) रामश्चिनोति (राम चुनता है)–रामस् + चिनोति। स् को श्। (ग) सच्चित् (सत् और ज्ञानस्वरूप)–सत् + चित्। त् को च्। (घ) शार्ङ्गिञ्जय (हे विष्णु, तुम्हारी जय हो)–शार्ङ्गिन् + जय। न् को ञ्।

६३. शात् (८–४–४४)

श् के बाद तवर्ग को चवर्ग नहीं होता। (क) विश्नः (गति, कथन)–विश् + नः। न् को ञ् नहीं। (ख) प्रश्नः (प्रश्न)–प्रश् + नः। न् को ञ् नहीं।

६४. ष्टुना ष्टुः (८–४–४१)

स् या तवर्ग से पहले या बाद में ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग हो जाता है, अर्थात् त् को ट्, द् को ड् और न् को ण्। (क) रामष्षष्ठः (राम छठा है)–रामस् + षष्ठः। स् को ष्। (ख) रामष्टीकते (राम जाता है)–रामस् + टीकते। स् को ष्। (ग) पेष्टा (पीसने वाला)–पेष् + ता। त् को ट्। (घ) तट्टीका (उसकी टीका)–तत् + टीका। त् को ट्। (ङ) चक्रिण्डीकसे (हे कृष्ण, तुम जाते हो)–चक्रिन् + डीकसे। न् को ण्।

६५. न पदान्ताट्टोरनाम् (८-४-४२)

पद के अन्तिम टवर्ग के बाद स् और तवर्ग को ष् और टवर्ग नहीं होते है, नाम् के न् को ण् होगा। (क) षट् सन्तः (६ सज्जन)-षट् + सन्तः। स् को ष् नहीं हुआ। (ख) षट् ते (वे ६)-षट्+ते। त् को ट् नहीं। प्रत्युदाहरण (ग) ईट्टे (स्तुति करता है)-ईड् + ते। ड् पदान्त नहीं है, अतः ष्टुत्व संधि से त् को ट् और चर्त्व संधि से ड् को ट्। (घ) सर्पिष्टमम् (उत्तम घी)-सर्पिष् + तमम्। पदान्त ष् है, टवर्ग नहीं, अतः ष्टुत्व होकर त् को ट्।

(अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्, वा०) टवर्ग के बाद नाम्, नवति, नगरी हों तो ष्टुत्व संधि से इनके न् को ण् हो जाएगा। (क) षण्णाम् (६ का)-षड् + नाम्। न् को ण् और प्रत्यये० (वा०) से ड् को ण्। (ख) षण्णवतिः (९६)-षड् + नवतिः। न् को ण् और यरोऽनु० (६८) से ड् को ण्। (ग) षण्णगर्यः (६ नगर)-षड् + नगर्यः। न् को ण् और यरो० (६८) ड् को ण्।

६६. तोः षि (८-४-४३)

ष् बाद में हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा। सन् षष्ठः (सज्जन छठा है)-सन् + षष्ठः। न् को ण् नहीं हुआ।

६७. झलां जशोऽन्ते (८-२-३९)

पद के अन्तिम झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) को जश् (३, अपने वर्ग के तृतीय अक्षर) होते हैं। वागीशः (बृहस्पति)-वाक् + ईशः। क् को ग्।

६८. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८-४-४५)

पद के अन्तिम यर् (ह को छोड़ कर सभी व्यंजन) को विकल्प से अनुनासिक (अपने वर्ग का पंचम अक्षर) हो जाता है, बादमें कोई अनुनासिक (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो। एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः (यह विष्णु)-एतद्+मुरारिः। इस सूत्र से द् को न्, एतन्मुरारिः। पक्ष में एतद्मुरारिः। (प्रत्यये भाषायां नित्यम्, वा०) अनुनासिक प्रत्यय बाद में होगा तो पदान्त यर् को नित्य अनुनासिक होगा। (क) तन्मात्रम् (उतना ही)-तद् + मात्रम्। द् को न्। (ख) चिन्मयम् (ज्ञानस्वरूप, चेतनरूप)-चिद् + मयम्। द् को न्।

६९. तोर्लि (८-४-६०)

तवर्ग के बाद ल हो तो तवर्ग को भी ल् हो जाता है। अर्थात् (१) त् या द् + ल = ल्ल। (२) न् + ल = ँल्ल। न् को अनुनासिक ँल् होगा। (क) तल्लयः (उसका नाश)-तद् + लयः। द् को ल्। (ख) विद्वाँल्लिखति (विद्वान् लिखता है)-विद्वान् + लिखति। न् को- ँल्।

७०. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य (८-४-६१)

उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हो तो उसे पूर्वसवर्ण होता है, अर्थात् स्था और स्तम्भ् के स् को पूर्ववर्ती द् का सवर्ण अक्षर थ् हो जाता है।

७१. तस्मादित्युत्तरस्य (१-१-६७)

पंचमी का निर्देश करके जो कार्य कहा जाता है, वह अव्यवहित (बिना व्यवधान के) बाद के वर्ण को होता है।

७२. आदेः परस्य (१-१-५४)

परवर्ती को जो कुछ कार्य कहा जाता है, वह उसके आदि (प्रथम) वर्ण को होता है। अतः स्था और स्तम्भ् के स् को थ्।

७३. झरो झरि सवर्णे (८-४-६५)

व्यंजन के बाद झर् (वर्ग के १,२,३ ४ और श ष स) का विकल्प से लोप हो जाता है, बाद में सवर्ण (समान) झर् हो तो।

७४. खरि च (८-४-५५)

झलों (वर्ग के १,२,३,४, ऊष्म) को चर् (१, उसी वर्ग के प्रथम अक्षर) होते हैं, बाद में खर् (वर्ग के १,२ श ष स) हों तो। अर्थात् ग् को क्, ज् को च्, ड् को ट्, द् को त् और ब् को प्। (क) उत्थानम् (उठना, उन्नति)—उद् + स्थानम्। उदः स्था० (७०) से स् को थ्, झरो झरि० (७३) से पहले थ् का लोप और खरि च से उद् के द् को त्। थ्-लोप के अभावपक्ष में थ् को भी त् होकर उत्त्थानम्। (ख) उत्तम्भनम् (रोकना, सँभालना)—उद् + स्तम्भनम्। उत्थानम् के तुल्य सारे काम होंगे। स् को थ्, थ् का लोप, द् को त्। पक्ष में उत्त्तम्भनम्।

७५. झयो होऽन्यतरस्याम् (८–४–६२)

झय् (वर्ग के १,२,३,४) के बाद ह हो तो उसे विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है, अर्थात् ह को पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है। क् या ग् + ह = ग्घ, च् या ज् + ह = ज्झ, ट् या ड् + ह = ड्ढ, त् या द् + ह = द्ध, प् या ब् + ह = ब्भ। वाग्घरिः, वाग्हरिः (वाणी का सिंह, वाक्चतुर)—वाग् + हरिः। ह को घ, वाग्घरिः। पक्ष में वाग्हरिः।

७६. शश्छोऽटि (८–४–६३)

पद के अन्तिम झय् (वर्ग के १,२,३,४) के बाद श् को विकल्प से छ् हो जाता है, यदि उस श् के बाद अट् (स्वर, ह य व र) हो तो। तच्छिवः, तच्शिवः (उसका शिव)—तद् + शिवः। इस सूत्र से श् को छ्, द् को श्चुत्व संधि से ज्, खरि च से ज् को च्। जहाँ श् को छ् नहीं हुआ, वहाँ द् को पूर्ववत् ज् और च्, तच्शिवः।

(छत्वममीति वाच्यम्, वा०) श् के बाद अम् (स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग का ५) हो तो भी श् को छ् विकल्प से होगा। तच्छ्लोकेन (उसके श्लोक से)-तद् + श्लोकेन। श् को छ्, द् को श्चुत्व से ज् और चर्त्व से च्।

७७. मोऽनुस्वारः (८-३-२३)

पद के अन्तिम म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में कोई हल् (व्यंजन) हो तो। हरिं वन्दे (विष्णु को नमस्कार करता हूँ)-हरिम् + वन्दे। म् को अनुस्वार।

७८. नश्चापदान्तस्य झलि (८-३-२४)

अपदान्त (जो पद का अन्तिम न हो) न् और म् को अनुस्वार (ं) हो जाता है, बाद में झल् (वर्ग के १,२,३,४ ऊष्म) हो तो। (क) यशांसि (बहुत यश)-यशान् + सि। न् को अनुस्वार। (ख) आक्रंस्यते (आक्रमण करेगा)-आक्रम् + स्यते। म् को अनुस्वार। प्रत्युदाहरण—(ग)मन्यते (वह मानता है)-मन् + यते। बाद में झल् न होने से अनुस्वार नहीं।

७९. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (८-४-५८)

अनुस्वार (ं) के बाद यय् (श ष स ह को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण (अगले वर्ण के वर्ग का पंचम अक्षर) हो जाता है। शान्तः (शान्त)-शां + तः। अनुस्वार को त् के वर्ग का पचम अक्षर न्।

८०. वा पदान्तस्य (८-४-५९)

पद के अन्तिम अनुस्वार के बाद यय् (ऊष्म को छोड़कर सभी व्यंजन) हो तो अनुस्वार को परसवर्ण विकल्प से होगा। त्वङ्करोषि, त्वं करोषि (तू करता है)-त्वं + करोषि। अनुस्वार को विकल्प से ङ्। क के वर्ग का पंचम अक्षर ङ् है। पक्ष में अनुस्वार रहेगा।

८१. मो राजि समः क्वौ (८-३-२५)

क्विप्-प्रत्ययान्त राज् धातु (अर्थात् राज् शब्द) बाद में हो तो सम् के म् को म् ही रहता है, अर्थात् सम् + राज् या राट् में म् को अनुस्वार नहीं होता। सम्राट् (चक्रवर्ती राजा)-सम् + राट्। म् को अनुस्वार नहीं। सम्राज् शब्द का प्रथमा एक-वचन का रूप सम्राट् है। इसके रूप होते हैं—सम्राट् सम्राजौ सम्राजः आदि।

८२. हे मपरे वा (८-३-२६)

ह्म् बाद में हो तो म् को विकल्प से म् ही रहता है। पक्ष में अनुस्वार। किम्ह्मलयति, किं ह्मलयति (क्या चलाता है!)—किम् + ह्मलयति। म् को म्। पक्ष में अनुस्वार।

(यवलपरे यवला वा, वा०) बाद में ह्य, ह्व, ह्ल हो तो म् को क्रमशः यँ, वँ, लँ विकल्प से होगा। पक्ष में अनुस्वार। (क) कियँ ह्यः, किं ह्यः (कल क्या ?)–किम् + ह्यः। म् को यँ, पक्ष में अनुस्वार। (ख) किवँ ह्वलयति, किं ह्वलयति (क्या चलाता है ?)–किम् + ह्वलयति। म् को वँ, पक्ष में अनुस्वार। (ग) किलँ ह्लादयति, किं ह्लादयति (क्या प्रसन्न करता है ?)–किम् + ह्लादयति। म् को लँ, पक्ष में अनुस्वार।

८३. नपरे नः (८-३-२७)

ह्न बाद में हो तो म् को विकल्प से न् होता है। पक्ष में अनुस्वार। किन् ह्नुते, किं ह्नुते (क्या छिपाता है ?)–किम् + ह्नुते। म् को न्, पक्ष में अनुस्वार।

८४. आद्यन्तौ टकितौ (१-१-४६)

टित् (जिसमें से ट् हटा है) प्रत्यय जिससे कहा जाता है, उसके आदि में होता है और कित् (जिसमें से क् हटा है) अन्त में होता है। अर्थात् आगम होने पर टित् प्रत्यय पहले रखा जाता है और कित् प्रत्यय बाद में।

८५. ङ्णोः कुक्टुक् शरि (८-३-२८)

ङ् या ण् के बाद शर् (श ष स) हो तो विकल्प से बीच में क् या ट् जुड़ जाते हैं। ङ् के बाद क् और ण् के बाद ट् जुड़ते हैं।

(चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्, वा०) पौष्करसादि आचार्य के मतानुसार चयों (वर्ग के प्रथम अक्षरों) को द्वितीय वर्ण हो जाते हैं। (क) प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ् क्षष्ठः, प्राङ् षष्ठः (छठा पूर्वदेशवासी)–प्राङ् + षष्ठः। बीच में कुक् (क्) न होने पर प्राङ् षष्ठः, बीच में कुक् (क्) होने पर क् + ष = क्ष, प्राङ् क्षष्ठः, क् को ख् होने पर प्राङ्ख् षष्ठः। (ख) सुगण्ठ् षष्ठः, सुगण्ट् षष्ठः, सुगण्षष्ठः (छठा सुन्दर गिननेवाला)—सुगण् + षष्ठः। बीच में टुक् (ट्) न होने पर सुगण्षष्ठः, बीच में टुक् (ट्) होने पर सुगण्ट् षष्ठः, ट् को ठ् होने पर सुगण्ठ् षष्ठः।

८६. डः सि धुट् (८-३-२९)

ड् के बाद स हो तो बीच में विकल्प से धुट् (ध्) जुड़ जाता है। षट्त्सन्तः, षट् सन्तः (६ सज्जन)–षड् + सन्तः। बीच में ध, खरि च से ध् को त् और ड् को ट्। पक्ष में खरि च से ड् को ट्।

८७. नश्च (८-३-३०)

न् के बाद स हो तो बीच में विकल्प से धुट् (ध्) जुड़ जाता है। सन्त्सः, सन् सः (वह सज्जन)–सन् + सः। बीच में ध्, ध् को चर्त्वसंधि से त्, सन्त्सः। पक्ष में सन् सः।

८८. शि तुक् (८-३-३१)

पदान्त न् के बाद श हो तो बीच में विकल्प से तुक् (त्) जुड़ जाता है। सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः (विद्यमान शिव)-सन्+शम्भुः। बीच में तुक् (त्), श्चुत्वसंधि से त् को च् और न् को ञ्, शश्छोऽटि से श् को छ्, झरो झरि० से बीच के च् का लोप होने पर सञ्छम्भुः। च् का लोप न होने पर सञ्च्छम्भुः। श् को छ् न होने पर सञ्च्शम्भुः। बीच में तुक् (त्) न होने पर श्चुत्व संधि से न् को ञ्, सञ्शम्भुः।

८९. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् (८-३-३२)

ह्रस्व स्वर के बाद ङ् ण् न् हो और बाद में कोई स्वर हो तो बीच में एक ङ् ण् न् और जुड़ जाता है। (क) प्रत्यङ्ङात्मा (अन्तरात्मा) – प्रत्यङ्+आत्मा। बीच में ङ् का आगम। (ख) सुगण्णीशः (सुन्दर गिनने वालों का स्वामी)—सुगण्+ईशः। बीच में ण् का आगम। (ग) सन्नच्युतः (सत्स्वरूप विष्णु)—सन्+अच्युतः। बीच में न् का आगम।

९०. समः सुटि (८-३-५)

सम् के म् को रु हो जाता है, बाद में सुट् का स् हो तो।

९१. अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा (८-३-२)

रु के इस प्रकरण में रु से पूर्ववर्ती वर्ण को विकल्प से अनुनासिक (ँ) का आगम होता है।

९२. अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः (८-३-४)

पक्ष में रु से पूर्ववर्ती वर्ण को अनुस्वार (ं) का आगम होता है।

९३. खरवसानयोर्विसर्जनीयः (८-३-१५)

पद के अन्तिम र् को विसर्ग (ः) होता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो या बाद में कुछ न हो तो।

(संपुंकानां सो वक्तव्यः, वा०) सम्, पुम् और कान् शब्दों के विसर्ग के स्थान पर स् होता है। सँस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता (संस्कार करने वाला, सजाने वाला)-सम्+स्कर्ता। म् को रु, रु के र् को विसर्ग, विसर्ग को स्। एक स्थान पर रु से पहले अनुनासिक और दूसरे स्थान पर अनुस्वार।

९४. पुमः खय्यम्परे (८-३-६)

पुम् के म् को रु (र्) हो जाता है, बाद में अम्-परक (जिसके बाद में अम् अर्थात् स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग के पंचम वर्ण हों) खय् (वर्ग के १, २) हो तो। पुँस्कोकिलः,

पुंस्कोकिलः (नर कोयल)—पुम् + कोकिलः। म् को रु (र्), र् को विसर्ग, संपुंकानां० से विसर्ग को स्। स् से पहले एक स्थान पर अनुनासिक और दूसरे स्थान पर अनुस्वार।

९५. नश्छव्यप्रशान् (८-३-७)

पद के अन्तिम न् को रु होता है, बाद में अम्-परक (जिसके बाद में अम् अर्थात् स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग के ५ वें) छव् (च, छ, ट, ठ, त, थ) हो तो। प्रशान् शब्द में यह नियम नहीं लगेगा।

९६. विसर्जनीयस्य सः (८-३-३४)

विसर्ग (:) को स् हो जाता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श ष स) हो तो। (क) चक्रिंस्त्रायस्व (हे विष्णु, रक्षा करो)—चक्रिन् + त्रायस्व। न् को नश्छव्य० से रु र्), र् को विसर्ग और इस सूत्र से विसर्ग को स्। स् से पहले अनुस्वार, सूत्र ९२ से। प्रत्युदाहरण—(ख)प्रशान्तनोति (शान्ति करने वाला विस्तार करता है)—प्रशान् का निषेध होने से न् को रु नहीं हुआ। (ग) हन्ति (मारता है)—हन् + ति। हन् का न् पदान्त नहीं है, अतः न् को रु नहीं।

९७. नॄन् पे (८-३-१०)

नॄन् के न् को रु (र्) विकल्प से हो जाता है, बाद में प हो तो।

९८. कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च (८-३-३७)

कवर्ग बाद में हो तो विसर्ग को ≍ क (जिह्वामूलीय चिह्न) और पवर्ग बाद में हो तो विसर्ग को ≍ प (उपध्मानीय चिह्न) हो जाते हैं, पक्ष में विसर्ग भी होता है। अर्थात् क प से पहले आधे विसर्ग के तुल्य ≍ चिह्न लग जाते हैं। नॄँ ≍ पाहि, नॄं≍पाहि, नॄंः पाहि, नॄँः पाहिः नॄन् पाहि (मनुष्यों की रक्षा करो)—नॄन् + पाहि। नॄन् पे से न् को रु (र), र् को विसर्ग, कुप्वोः० से विसर्ग को ≍। रु से पहले अनुनासिक और अनुस्वार। ≍ उपध्मानीय होने पर प्रथम दो रूप बने। र् को विसर्ग रहने पर बाद के दो रूप बने। न् को रु न होने पर नॄन् पाहि रूप रहा।

९९. तस्य परमाम्रेडितम् (८-१-२)

शब्द को दो बार पढ़े जाने पर दूसरे शब्द को आम्रेडित कहते हैं।

१००. कानाम्रेडिते (८-३-१२)

कान् के न् को रु (र्) हो जाता है, बाद में कान् हो तो। काँस्कान्, कांस्कान् (किन किन को)—कान् + कान्। इस सूत्र से न् को रु (र्), र् को विसर्ग, संपुंकानां० से विसर्ग को स्। स् से पहले अनुनासिक और अनुस्वार।

१०१. छे च (६-१-७३)

ह्रस्व स्वर के बाद तुक् (त्) लग जाता है, बाद में छ हो तो। शिवच्छाया (शिव की कान्ति)—शिव + छाया। छ से पहले तुक् (त्) और त् को स्तोःश्चुना० से च्।

१०२. पदान्ताद् वा (६-१-७६)

पद के अन्तिम दीर्घ स्वर के बाद तुक् (त्) विकल्प से लगता है, बाद में छ हो तो। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया (लक्ष्मी की कान्ति)— लक्ष्मी + छाया। छ से पहले इस सूत्र से त्, त् को स्तोः श्चुना० से च्, लक्ष्मीच्छाया। त् के अभाव में लक्ष्मीछाया।

हल्-सन्धि समाप्त।

विसर्ग-सन्धि

१०३. विसर्जनीयस्य सः (८-३-३४)

विसर्ग (:) को स् हो जाता है, बाद में खर् (वर्ग के १,२ श ष स) हो तो। विष्णुस्त्राता (विष्णु रक्षक है)–विष्णुः + त्राता। इस सूत्र से विसर्ग को स्।

१०४. वा शरि (८-३-३६)

विसर्ग को विकल्प से विसर्ग ही रह जाता है, बाद में शर् (श ष स) हो तो। पक्ष में पहले सूत्र से विसर्ग को स्। हरिः शेते, हरिश्शेते (हरि सो रहा है)–हरिः + शेते। एक स्थान पर इस सूत्र से विसर्ग को विसर्ग। पक्ष में विसर्ज० से स्, स्तोः श्चुना० से स् को श्।

१०५. ससजुषो रुः (८-२-६६)

पद के अन्तिम स् को रु (र्) होता है। सजुष् शब्द के ष् को भी रु होता है।

१०६. अतो रोरप्लुतादप्लुते (६-१-११३)

ह्रस्व अ के बाद रु को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ हो तो। शिवोऽर्च्यः (शिव पूज्य हैं)–शिवस् + अर्च्यः। स् को ससजुषो० से रु, इससे रु को उ, आद्गुणः से अ + उ को गुण ओ, एङः० से अ को पूर्वरूप होकर ऽ।

१०७. हशि च (६-१-११४)

ह्रस्व अ के बाद रु को उ हो जाता है, बाद में हश् (ह्, अन्तःस्थ, वर्ग के ३,४,५) हो तो। शिवो वन्द्यः (शिव वन्दनीय हैं)–शिवस् + वन्द्यः। स् को ससजुषो० से रु, इससे रु को उ, आद्गुणः से अ + उ को गुण ओ।

१०८. भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि (८-३-१७)

भोस्, भगोस्, अघोस् शब्द और अ या आ के बाद रु को य् हो जाता है, बाद में अश् (स्वर, ह, अन्तःस्थ, वर्ग के ३,४,५) हो तो। देवा इह, देवायिह (हे देवो,

यहाँ आओ)–देवास् + इह। स् को ससजुषो० से रु, इससे रु को य, लोपः शाकल्यस्य से य् का विकल्प से लोप, लोप होने पर गुण का अभाव, देवा इह। य् का लोप न होने पर देवायिह।

१०९. हलि सर्वेषाम् (८-३-२२)

भोः, भगोः, अघोः शब्द और अ या आ पहले हो तो य् का लोप अवश्य हो जाता है, बाद में हल् (व्यंजन) हो तो। (क) भो देवाः (हे देवो)–भोस् + देवाः। स् को ससजुषो० से रु, रु को भोभगो० से य्, य् का इस सूत्र से लोप। (ख) भगो नमस्ते (भगवन्, नमस्कार)–भगोस् + नमस्ते। स् को रु, रु को भोभगो० से य्, य् का इससे लोप। (ग) अघो याहि (पापी, दूर जा)–अघोस् + याहि। स् को रु, रु को भोभगो० से य्, य् का इससे लोप। सूचना–भवत् का भोस्, भगवत् का भगोस् और अघवत् का अघोस्, ये संक्षिप्तरूप हैं और निपात हैं।

११०. रोऽसुपि (८–२–६९)

अहन् के न् को र् होता है, बादमें कोई सुप् (विभक्ति) न हो तो। (क) अहरहः (प्रतिदिन)–अहन् + अहः। इससे अहन् के न् को र्। (ख) अहर्गणः (दिनों का समूह)–अहन् + गणः। इससे न् को र्।

१११. रो रि (८–३–१४)

र् का लोप हो जाता है, बाद में र हो तो।

११२. ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (६–३–१११)

ढ् या र् का लोप हुआ हो तो उससे पूर्ववर्ती अण् (अ, इ, उ) को दीर्घ हो जाता है। (क) पुना रमते (फिर रमता है)–पुनर् + रमते। रो रि से पुनर् के र् का लोप और इससे न के अ को आ। (ख) हरी रम्यः (हरि सुन्दर हैं)–हरिस् + रम्यः। स् को ससजुषो० से रु (र्), रो रि से र् का लोप और इससे इ को दीर्घ ई। (ग) शम्भू राजते (शिव शोभित होते हैं)–शम्भुस् + राजते। हरी रम्यः के तुल्य। स् को रु (र्), र् का लोप, उ को इस सूत्र से ऊ। प्रत्युदाहरण–(घ) तृढः (मारा), वृढः (उद्यत)–तृढ् + ढः, वृढ् + ढः। ढो ढे लोपः से दोनों स्थानों पर ढ् का लोप। पूर्ववर्ती स्वर ऋ है, अतः इस सूत्र से दीर्घ नहीं हुआ।

११३. विप्रतिषेधे परं कार्यम् (१–४–२)

समान बल वाले दो सूत्रों के कार्य में विरोध होने पर अष्टाध्यायी के क्रम से बाद वाले सूत्र का कार्य होना चाहिए। मनोरथः (अभिलाषा)–मनस् + रथः। ससजुषो० से स् को रु (र्), मनर् + रथः, इस स्थिति में हशि च से र् को उ प्राप्त है और रो रि से र् का लोप। इस सूत्र के अनुसार रो रि से लोप होना चाहिए, क्योंकि

रो रि अष्टाध्यायी में बाद का सूत्र है। रो रि त्रिपाद का सूत्र है, पूर्वत्रासिद्धम् से वह असिद्ध है। इसलिए हशि च से रु को उ और आद्गुणः से अ + उ को ओ।

११४. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि (६-१-१३२)

एषः और सः के विसर्ग या स् का लोप हो जाता है, बाद में कोई हल् (व्यंजन) हो तो। नञ् समास में और इन शब्दों में क होने पर लोप नहीं होगा। (क) एष विष्णुः (वह विष्णु)–एषः + विष्णुः। इससे विसर्ग का लोप। (ख) स शम्भुः (वह शिव)–सः + शम्भुः। इससे विसर्ग का लोप। प्रत्युदाहरण– (ग) एषको रुद्रः (यह रुद्र)–एषकः + रुद्रः। एषकः में अकच् प्रत्यय का क है, अतः विसर्ग का लोप नहीं होगा। (घ) असः शिवः (उससे भिन्न शिव है)—असः + शिवः। नञ् समास होने से विसर्ग का लोप नहीं होगा। (ङ) एषोऽत्र (यह यहाँ है)–एषस् + अत्र। स्वर बाद में है, अतः स् का लोप नहीं, स् को रु, उ, गुण और पूर्वरूप संधि।

११५. सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् (६-१-१३४)

सः के विसर्ग का लोप हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो और लोप करने पर श्लोक के पाद की पूर्ति होती हो तो। (क) सेमामःविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे (वह आप हमें उत्तम वस्तु धारण कराएँ, जो आप हमें दे सकते हैं)–सः + इमाम०। सः के विसर्ग का लोप। विसर्ग का लोप होने से गुण-संधि। यह वैदिक जगती छन्द का एक पाद है। इसके प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं। विसर्ग का लोप होने से गुण होकर १२ अक्षर पूरे हो गये। (ख) सैष दाशरथी रामः (यह वह दशरथ-पुत्र राम है)–सः + एष०। विसर्ग का लोप होने से अ + ए = ऐ वृद्धि होकर पादपूर्ति हुई। यह अनुष्टुप् छन्द का एक पाद है। इसके एक पाद में ८ अक्षर होते हैं।

विसर्ग-संधि समाप्त।

पञ्चसंधि-प्रकरण समाप्त।

अजन्त-पुंलिंग-प्रकरण

आवश्यक-निर्देश

१. शब्दों के अन्त में लगने वाले कारक-चिह्नों को सुप् कहते हैं। इन सुप् (स् औ अः आदि) प्रत्ययों को लगाकर जो शब्द बनते हैं, उन्हें सुबन्त कहते हैं। जैसे—रामः रामौ रामाः आदि।

२. सुप् प्रत्ययों के मूलरूप और अवशिष्टरूप छात्रों की सुविधा के लिए दिए जा रहे हैं, इन्हें ठीक स्मरण कर लें।

मूलरूप			विभक्ति	अवशिष्टरूप		
एकवचन	द्विवचन	बहुवचन		एक०	द्वि०	बहु०
सु	औ	जस्	प्रथमा	स् (:)	औ	अः
,,	,,	,,	संबोधन	,,	,,	,,
अम्	औट्	शस्	द्वितीया	अम्	औ	अः
टा	भ्याम्	भिस्	तृतीया	आ	भ्याम्	भिः
ङे	भ्याम्	भ्यस्	चतुर्थी	ए	भ्याम्	भ्यः
ङसि	भ्याम्	भ्यस्	पंचमी	अः	भ्याम्	भ्यः
ङस्	ओस्	आम्	षष्ठी	अः	ओः	आम्
ङि	ओस्	सुप्	सप्तमी	इ	ओः	सु

३. अजन्त शब्दों में इन अवशिष्टरूपों में कुछ स्थानों पर परिवर्तन होता है, उसका आगे यथास्थान निर्देश किया गया है। हलन्त शब्दों में ये अवशिष्टरूप प्रायः सीधे शब्द में जुड़ जाते हैं और कोई परिवर्तन नहीं होता।

४. (क) पंच-स्थान या सर्वनामस्थान (सुडनपुंसकस्य) स् औ अः, अम् औ, इन पाँच स्थानों का पारिभाषिक नाम सर्वनामस्थान है। आगे इस पुस्तक में सर्वनाम-स्थान की जगह पंच-स्थान शब्द का प्रयोग होगा। इन पाँच स्थानों पर कुछ मुख्य कार्य होते हैं, जो शब्द में अन्य स्थानों पर नहीं होते। जैसे-धीमत् में प्रथम पाँच स्थानों पर बीच में न् का आगम, धीमान् धीमन्तौ आदि। राजन् शब्द में ज के अ को दीर्घ, राजा राजानौ आदि। (ख) पद स्थान (स्वादिष्वसर्वनामस्थाने)—हलादि (व्यंजन से प्रारम्भ होने वाले) प्रत्ययों के होने पर मूल शब्द की पद संज्ञा होती है। पद-संज्ञा होने से शब्द के अन्तिम अक्षर में कुछ परिवर्तन होते हैं। जैसे—राजभ्याम्, राजभिः में राजन् के न् का लोप। धीमद्भ्याम्, धीमद्भिः आदि में धीमत् के त् को द्। पद-कार्य वाले स्थान हैं :—भ्याम्, भिः, भ्यः, सु। (ग) भ-स्थान (यचि भम्)—अजादि (स्वर से प्रारम्भ होने वाले) प्रत्ययों के होने पर मूल शब्द की भ संज्ञा होती है। भसंज्ञा होने से शब्द के टि भाग (अन्तिम स्वर-सहित अंश) में कभी-कभी कुछ परिवर्तन होते हैं। जैसे—राज्ञः, राज्ञा, राज्ञे, राज्ञाम् आदि में राजन् शब्द के अन् के अ का लोप। इसी प्रकार नाम्ना, नाम्ने आदि में उपधा के अ का लोप। भ—कार्य वाले स्थान हैं—अः (द्वि०), आ (तृ०), ए (च०), अः (पं०), अः ओः आम् (प०), इ ओः (स०)।

इस पुस्तक में आगे पंच-स्थान, पद-स्थान और भ-स्थान शब्दों से निम्नलिखित सुप् प्रत्ययों का संकेत रहेगा। अतः इन्हें ध्यानपूर्वक स्मरण कर लें। सुप्-प्रत्ययों का विभाजन :—

पंच-स्थान				पद-स्थान				भ-स्थान			
एक०	द्वि०	बहु०		एक०	द्वि०	बहु०		एक०	द्वि०	बहु०	
स्	औ	अः	प्र	—	—	—	प्र०	—	—	—	प्र०
अम्	औ	—	द्वि०	—	—	—	द्वि०	—	—	अः	द्वि०
—	—	—	तृ०	—	भ्याम्	भिः	तृ०	आ	—	—	तृ०
—	—	—	च०	—	भ्याम्	भ्यः	च०	ए	—	—	च०
—	—	—	पं०	—	भ्याम्	भ्यः	पं०	अः	—	—	पं०
—	—	—	ष०	—	—	—	ष०	अः	ओः	आम्	ष०
—	—	—	स०	—	—	सु	स०	इ	ओः	—	स०

५. इस पुस्तक में प्रत्येक प्रकार के आदर्श शब्दों के रूप दिए गए हैं और उनके सामने उनके अन्तिम अंश भी दिए हैं। उस प्रकार से चलने वाले सभी शब्दों के अन्त में वे अन्तिम अंश लगेंगे। जहाँ पर आदर्श शब्दों से उस प्रकार के शब्दों में कुछ अन्तर है, वहाँ उसका निर्देश कर दिया गया है। यहाँ पर प्रत्येक शब्दरूप की सिद्धि की प्रक्रिया न देकर केवल रूप-निर्माण की विधि बताई गई है। उसी प्रकार से अन्य शब्दरूपों को भी सिद्ध करें।

६. संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है :— (क) प्रथमा आदि के लिए उनके प्रथम अक्षर रखे गए हैं—प्र० = प्रथमा, द्वि० = द्वितीया, तृ० = तृतिया, च० = चतुर्थी, पं० = पंचमी, ष० = षष्ठी, स० = सप्तमी, सं० = संबोधन। (ख) पुंलिंग आदि के लिए प्रथम अक्षर है। पुं० = पुंलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग, नपुं० = नपुंसक लिग। (ग) वचनों के भी प्रारम्भिक अक्षर रखे गए हैं—एक० = एकवचन, द्वि० या द्विव० = द्विवचन, बहु० = बहुवचन।

(रषाभ्यां नो णः समानपदे, २६७), (अट्कुप्वाङ्० १३८)—र् और ष् के बाद न् को ण् होता है, यदि बीच में अट् (स्वर, ह य व र) कवर्ग, पवर्ग, आ, नुम् (न्) होगा तो भी न् को ण् होता है। अन्तिम-अंशों के निर्देश में 'न' ही रखा गया है, वही सर्वसाधारण है। ऊपर्युक्त स्थानों पर उस न को ण कर लें।

११६. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (१-२-४५)

धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर सार्थक शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं।

११७. कृत्तद्धितसमासाश्च (१-२-४६)

कृत्प्रत्ययान्त, तद्धित-प्रत्ययान्त और समास (समस्तपद) को भी प्रातिपदिक कहते हैं।

११८. स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसामूङ्योस्सुप् (४–१–२)

इस सूत्र में प्रातिपदिक के अन्त में लगने वाले सुप् प्रत्ययों का निर्देश है। सुप् यह प्रत्याहार है—सूत्र के प्रारम्भिक सु से लेकर अन्तिम प् तक लेने से सुप् प्रत्याहार है। अतः सुप् का अर्थ होता है—शब्द के बाद में लगने वाले स् औ अः आदि सभी सुप् हैं। सुप् प्रत्यय मूलरूप में दिए हैं, उनमें से इत् (लोप होने वाले) अक्षरों को हटाने से अवशिष्ट-रूप शेष रहता है।

सुप् प्रत्यय, मूलरूप			विभक्ति	अवशिष्ट रूप		
एकवचन	द्विवचन	बहुवचन		एक०	द्वि०	बहु०
सु	औ	जस्	प्रथमा	स् (:)	औ	अः
,,	,,	,,	संबोधन	,,	,,	,,
अम्	औट्	शस्	द्वितीया	अम्	औ	अः
टा	भ्याम्	भिस्	तृतीया	आ	भ्याम्	भिः
ङे	भ्याम्	भ्यस्	चतुर्थी	ए	भ्याम्	भ्यः
ङसि	भ्याम्	भ्यस्	पंचमी	अः	भ्याम्	भ्यः
ङस्	ओस्	आम्	षष्ठी	अः	ओः	आम्
ङि	ओस्	सुप्	सप्तमी	इ	ओः	सु

११९. ङ्याप्प्रातिपदिकात् (४–१–१)

ङ्यन्त (ई अन्त वाले स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द), आबन्त (आ अन्त वाले स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द) और प्रातिपदिक से सु आदि प्रत्यय होते हैं।

१२०. प्रत्ययः (३–१–१)

सु औ आदि को प्रत्यय कहते हैं।

१२१. परश्च (३–१–२)

प्रत्यय बाद में होते हैं। ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक के बाद में सु आदि प्रत्यय होते हैं।

१२२. सुपः (१–४–१०३)

सुप् के तीन-तीन वचनों को क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन कहते हैं।

१२३. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने (१–४–२२)

एक के अर्थ में एकवचन और दो के अर्थ में द्विवचन होता है।

१२४. विरामोऽवसानम् (१-४-११०)

जिस वर्ण के बाद अन्य वर्णों का अभाव हो, उसे अवसान कहते हैं। अर्थात् अन्तिम वर्ण को अवसान कहते हैं। रामः (राम)—राम + सु। सु के उ का लोप, स् को ससजुषो० से रु (र्), खरवसान० से र् को विसर्ग।

१२५. सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ (१-२-६४)

एक विभक्ति बाद में हो तो समान रूप वाले शब्दों में से एक शब्द शेष रहता है। अन्य शब्दों का लोप हो जाता है।

१२६. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६-१-१०२)

अक् (अ इ उ ऋ ऌ) के बाद प्रथमा और द्वितीया विभक्ति का कोई अच् (स्वर) होगा तो दोनों को पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होता है। अर्थात् शब्द के अन्तिम अक्षर से मिलता हुआ दीर्घ अक्षर एकादेश हो जाता है।

१२७. नादिचि (६-१-१०४)

अ के बाद इच् (अ को छोड़कर अन्य सभी स्वर) हो तो पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश नहीं होता। रामौ (दो राम)—राम + औ। प्रथमयोः० से अ + औ को आ प्राप्त था, नादिचि ने निषेध कर दिया, अतः वृद्धिरेचि से अ + औ = औ वृद्धि हुई।

१२८. बहुषु बहुवचनम् (१-४-२१)

दो से अधिक अर्थ बताना हो तो बहुवचन होता है।

१२९. चुटू (१-३-७)

प्रत्यय के प्रारम्भ के चवर्ग और टवर्ग की इत् संज्ञा होती है। इत् संज्ञा होने से इनका लोप हो जाता है।

१३०. विभक्तिश्च (१-४-१०४)

सुप् (सु औ जः आदि) और तिङ् (ति तः अन्ति आदि) का पारिभाषिक नाम विभक्ति भी है।

१३१. न विभक्तौ तुस्माः (१-३-४)

विभक्ति के तवर्ग, स् और म् की इत् संज्ञा नहीं होती है, अतः इनका लोप नहीं होगा। रामाः (कई राम)—राम + जस्। चुटू से ज् का लोप, हलन्त्यम् से स् का लोप प्राप्त था, इससे निषेध हुआ। राम + अस्, प्रथमयोः० (१२६) से अ + अ को पूर्वसवर्णदीर्घ आ, स् को रु (र्) और विसर्ग।

१३२. एकवचनं संबुद्धिः (२–३–४९)

संबोधन (पुकारना) अर्थ में प्रथमा के एकवचन को संबुद्धि या संबोधन कहते हैं।

१३३. यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१–४–१३)

जिस शब्द से प्रत्यय किया जाता है, उस प्रत्यय के परे रहते उस शब्द को अङ्ग कहते हैं।

१३४. एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः (६–१–६९)

एङन्त (ए, ओ अन्त वाले) और ह्रस्व स्वर अन्त वाले अंग के बाद संबोधन (एकवचन) के हल् (व्यंजन) का लोप हो जाता है। हे राम (हे राम)–हे राम + सु। सु के उ का लोप, इस सूत्र से स् का लोप। हे रामौ, हे रामाः—रामौ, रामाः के तुल्य रूप बनेंगे।

१३५. अमि पूर्वः (६–१–१०७)

अक् (अ इ उ ऋ ऌ) के बाद अम् का अ हो तो दोनों को पूर्वरूप एकादेश होता है। रामम् (राम को)–राम + अम्। इस सूत्र से अ + अ = अ पूर्वरूप एकादेश हो गया। रामौ–पूर्ववत्।

१३६. लशक्वतद्धिते (१–३–८)

तद्धित-प्रत्यय से भिन्न प्रत्यय के प्रारम्भ के ल, श और कवर्ग की इत् संज्ञा होती है। अतः इनका लोप हो जाता है।

१३७. तस्माच्छसो नः पुंसि (६–१–१०३)

पूर्वसवर्णदीर्घ के बाद शस् के स् को न् हो जाता है पुंलिंग में।

१३८. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (८–४–२)

अट् (स्वर, ह, अन्तःस्थ), कवर्ग, पवर्ग, आङ् (आ) और नुम् (न्), ये एक या अनेक बीच में होंगे तो भी र् और ष् के बाद न को ण हो जाता है, एक शब्द में।

१३९. पदान्तस्य (८–४–३७)

पद के अन्तिम न को ण नहीं होता है। रामान्–राम + शस्, लशक्व० से श् का लोप, प्रथमयोः० से पूर्वसवर्णदीर्घ, तस्माच्छसो० से स् को न् होकर रामान् बना। इसमें अट्कुप्वाङ्० से न् को ण् प्राप्त था, इस सूत्र ने निषेध कर दिया।

१४०. टाङसिङसामिनात्स्याः (७–१–१२)

अकारान्त शब्द के बाद टा (आ, तृ० एक०) को इन, ङसि (अस्, पं० एक०) को आत् और ङस् (अस्, षष्ठी एक०) को स्य होते हैं। रामेण–राम + टा। इससे टा को इन, गुण-संधि और अट्कु० से न को ण।

१४१. सुपि च (७–३–१०२)

अकारान्त अंग को दीर्घ (आ) हो जाता है, बाद में यञ् (अन्तःस्थ, ञ, भ और वर्ग के ५) से प्रारम्भ होने वाला कोई सुप् हो तो। रामाभ्याम्–राम + भ्याम्। इस सूत्र से राम के अ को आ।

१४२. अतो भिस ऐस् (७–१–९)

अकारान्त अंग के बाद भिस् को ऐस् (ऐः) हो जाता है। सारे भिः को ऐः होगा। रामैः–राम + भिस्। भिस् को ऐः, वृद्धिरेचि से अ + ऐः को ऐः।

१४३. ङेर्यः (७–१–१३)

अकारान्त अंग के बाद ङे (चतुर्थी एक०) को य हो जाता है।

१४४. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ (१–१–५६)

आदेश में स्थानी (जिसके स्थान पर आदेश हुआ है) के धर्म आ जाते है, यदि स्थानी अल् (एक वर्ण) होगा तो नहीं। रामाय–राम + ङे। ङेर्यः से ङे को य, इस सूत्र से य को सुप् मान लेने से सुपि च से राम के अ को दीर्घ। रामाभ्याम्–पूर्ववत्।

१४५. बहुवचने झल्येत् (७–१–१०३)

अकारान्त अग को ए हो जाता है, बादमें झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) से प्रारम्भ होने वाला बहुवचन का सुप् हो तो। रामेभ्यः–राम + भ्यस्। इस सूत्र से राम के अ को ए, स् को रु और विसर्ग। प्रत्युदाहरण–पचध्वम्–पच + ध्वम्। यहाँ पर ध्वम् तिङ् है, सुप् नहीं, अतः ए नहीं हुआ।

१४६. वाऽवसाने (८–४–५६)

अवसान (अन्त) में झलों (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) को चर् (१, वर्ग के प्रथम अक्षर) विकल्प से होते है। रामात्, रामाद्–राम + ङसि। टाङसि० से ङसि को आत्, दीर्घसंधि, झलां जशोऽन्ते से त् को द्। इस सूत्र से उस द् को विकल्प से त्। अतः त् और द् वाले दो रूप बने। रामाभ्याम्, रामेभ्यः—पूर्ववत्। रामस्य—राम + ङस्। टाङसि० से ङस् को स्य।

१४७. ओसि च (७-३-१०४)

अकारान्त अंग के अ के स्थान पर ए होता है, बाद में ओस् हो तो। रामयोः—राम + ओस्। इस सूत्र से राम के अ को ए, एचो० से ए को अय्, स् को रु और विसर्ग।

१४८. ह्रस्वनद्यापो नुट् (७-१-५४)

ह्रस्व स्वर अन्त वाले, नदी (स्त्रीलिंग के ई, ऊ) अन्त वाले और आप् (स्त्रीलिंग

का आ) अन्त वाले अंग से परे आम् हो तो बीच में नुट् (न्) आगम हो जाता है।

१४९. नामि (६-४-३)

अजन्त (स्वर अन्त वाले) अंग को दीर्घ हो जाता है, बादमें नाम् हो तो। रामाणाम्—राम + आम्। ह्रस्व० से बीचमें न्, नामि से राम के अ को दीर्घ, अट्कु० से न् को ण्। रामे—राम + ङि। ङ् का लशक्व० से लोप, आद्गुणः से अ + इ = ए गुण। रामयोः—पूर्ववत्।

१५०. आदेशप्रत्यययोः (८-३-५९)

इण् (अ को छोड़कर सभी स्वर, ह, अन्तःस्थ) और कवर्ग के बाद अपदान्त (जो पद का अन्तिम अक्षर न हो) स् को ष् हो जाता है, यदि वह स् आदेश का हो या प्रत्यय का अवयव हो। रामेषु—राम + सुप्। प् की इत्संज्ञा और लोप, बहुवचने० (१४५) से अ को ए, इस सूत्र से सु के स् को ष्। इसी प्रकार कृष्ण आदि अकारान्त शब्दों के रूप चलेंगे।

राम (राम) अकारान्त पुंलिंग				अन्तिम-अंश		
रामः	*रामौ*	*रामाः*	*प्रथमा*	*अः*	*औ*	*आः*
रामम्	,,	रामान्	द्वितीया	अम्	,,	आन्
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	तृतीया	एन	आभ्याम्	ऐः
रामाय	,,	रामेभ्यः	चतुर्थी	आय	,,	एभ्यः
रामात्	,,	,,	पंचमी	आत्	,,	,,
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्	षष्ठी	अस्य	अयोः	आनाम्
रामे	,,	रामेषु	सप्तमी	ए	,,	एषु
हे राम	हे रामौ	हे रामाः	संबोधन	अ	औ	आः

सूचना—इसी प्रकार सभी अकारान्त पुंलिंग शब्दों के रूप चलेंगे। अन्तिम-अंश सभी शब्दों के अन्त में लगावें। देखो सूत्र १३८ भी।

१५१. सर्वादीनि सर्वनामानि (१-१-२७)

सर्व आदि शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। सर्व आदि शब्द ये हैं:—(क) सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम। (ख) त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्। (ग) (पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्, गणसूत्र) पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, ये ७ शब्द व्यवस्था में और संज्ञावाचक न होने पर सर्वनाम हैं। (घ) (स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्, गण०) स्व शब्द सर्वनाम है, ज्ञाति (संबन्धी) और धन अर्थ न हो तो। (ङ) (अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः, गण०) बाह्य (बाहर का) और अधोवस्त्र अर्थ में अन्तर शब्द सर्वनाम है।

१५२. जसः शी (७-१-१७)

अकारान्त सर्वनाम के बाद जस् (प्र० बहु०) को शी (ई) होता है। शी में श् का लोप होने से ई शेष रहता है। सर्वे—सर्व + जस्। जस् को शी (ई), आद्गुणः से गुण ए।

१५३. सर्वनाम्नः स्मै (७-१-१४)

अकारान्त सर्वनाम के बाद ङे (च० एक०) को स्मै होता है। सर्वस्मै—सर्व + ङे। इस सूत्र से ङे को स्मै।

१५४. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ (७-१-१५)

अकारान्त सर्वनाम के बाद ङसि (पं० एक०) को स्मात् और ङि (स० एक०) को स्मिन् होते हैं। सर्वस्मात्—सर्व + ङसि। इस सूत्र से ङसि को स्मात्।

१५५. आमि सर्वनाम्नः सुट् (७-१-५२)

अकारान्त सर्वनाम के बाद आम् से पहले सुट् (स्) आगम होता है। सर्वेषाम्—सर्व + आम्। इस सूत्र से बीच में स्, बहुवचने० से ए, आदेश० से स् को ष्। सर्वस्मिन्—सर्व + ङि। ङि को ङसिङ्योः० से स्मिन्। शेष रामवत्। इसी प्रकार विश्व आदि अकारान्त सर्वनाम शब्दों के रूप चलेंगे।

सूचना—सर्व आदि सर्वनाम पुंलिंग शब्दों में राम शब्द से ५ स्थानों पर अन्तर होता है—(१) प्रथमा बहु० में ए, (२) चतुर्थी एक० में स्मै, (३) पंचमी एक० में स्मात्, (४) षष्ठी बहु० में एषाम्, (५) सप्तमी एक० में स्मिन्।

सर्व (सब) अकारान्त पुं० सर्वनाम				अन्तिम—अंश		
सर्वः	सर्वौ	सर्वे	प्र०	अः	औ	ए
सर्वम्	,,	सर्वान्	द्वि०	अम्	,,	आन्
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	तृ०	एन	आभ्याम्	ऐः
सर्वस्मै	,,	सर्वेभ्यः	च०	अस्मै	,,	एभ्यः
सर्वस्मात्	,,	,,	पं०	अस्मात्	,,	,,
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्	ष०	अस्य	अयोः	एषाम्
सर्वस्मिन्	,,	सर्वेषु	स०	अस्मिन्	,,	एषु

उभ शब्द के रूप केवल द्विवचन में चलते हैं। उभ शब्द के प्रथमा आदि के रूप क्रमशः ये हैं:—उभौ, उभौ, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभयोः, उभयोः। ये सारे रूप सर्व (पुं०) द्विवचन के तुल्य बनेंगे। उभ शब्द को सर्वनामों में पढ़ने का अभिप्राय यह है कि सर्वनाम शब्दों में होने वाला अकच् (अक्) उभ शब्द में भी हो। अतः उभकौ आदि रूप बनते हैं।

उभय शब्द का द्विवचन में प्रयोग नहीं होता है। सर्व के तुल्य रूप चलेंगे। सर्व के तुल्य सभी कार्य होंगे। उभय शब्द के रूप हैं—उभयः, उभये, प्र०। उभयम्,

उभयान्, द्वि० । उभयेन, उभयैः, तृ० । उभयस्मै, उभयेभ्यः, च० । उभयस्मात्, उभयेभ्यः, पं० । उभयस्य, उभयेषाम्, ष० । उभयस्मिन्, उभयेषु, स० ।

डतर और डतम प्रत्यय हैं । 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त का ग्रहण होता है, अतः डतर और डतम प्रत्ययान्त कतर, कतम आदि शब्द सर्वनाम होंगे । नेम शब्द आधे अर्थ में सर्वनाम है, अन्य अर्थों में नहीं । सम शब्द सर्व (सब) अर्थ में सर्वनाम है, तुल्य अर्थ में नहीं । अतः पाणिनि का सूत्र है—यथासंख्यमनुदेशः समानाम् । इस सूत्र में सम शब्द तुल्य अर्थ में है, अतः सर्वनाम न होने से समेषाम् रूप नहीं बना ।

१५६. पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् (१-१-३४)

पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर और अधर, इन सात शब्दों को गणसूत्र से सर्वनाम संज्ञा जो सर्वत्र प्राप्त थी, वह जस् में विकल्प से होती है, व्यवस्था में और संज्ञा से भिन्न में । व्यवस्था का अर्थ है—पूर्व आदि शब्दों का अपना दिशा देश और काल आदि अर्थ को ही बताना । अन्य अर्थों में ये शब्द सर्वनाम नहीं होंगे । (क). पूर्वे, पूर्वाः (पूर्व के या पहिले के)—पूर्व + जस् । विकल्प से सर्वनाम होने से राम और सर्व प्र० बहु० के तुल्य । प्रत्युदाहरण—(ख) उत्तराः कुरवः (उत्तरकुरु देश)-उत्तरकुरु देश का नाम है, अतः सर्वनाम नहीं । रामाः के तुल्य उत्तराः । (ग) दक्षिणाः गायकाः (चतुर गाने वाले)—दक्षिण शब्द चतुर अर्थ में है, अतः सर्वनाम नहीं । रामाः के तुल्य दक्षिणाः ।

१५७. स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् (१-१-३५)

स्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है, बाद में जस् हो तो । ज्ञाति (बन्धु, संबन्धी) और धन वाचक स्वशब्द सर्वनाम नहीं होता है । (क) स्वे, स्वाः (आत्मीय या आप स्वयं)—स्व को विकल्प से सर्वनाम होने से राम और सर्व प्र० बहु० के तुल्य स्वे, स्वाः रूप होंगे । प्रत्युदाहरण—(ख) स्वाः (संबन्धी या धन)-सर्वनाम न होने से रामाः के तुल्य स्वाः ।

१५८. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः (१-१-३६)

अन्तर शब्द जस् में विकल्प से सर्वनाम होता है, बाह्य और परिधानीय-(वस्त्र, अधोवस्त्र) अर्थ में । (क) अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः (बाहर के घर)—विकल्प से सर्वनाम होने से रामाः और सर्वे के तुल्य रूप होंगे । (ख) अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः (पहनने की धोतियाँ)— विकल्प से सर्वनाम होने से दोनों रूप पूर्ववत् बने ।

१५९. पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा (७-१-१६)

पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अन्तर, इन नौ शब्दों के बाद ङसि को स्मात् और ङि को स्मिन् विकल्प से होते हैं । पक्ष में रामवत् । (क) पूर्वस्मात्, पूर्वात् (पूर्व से)—पूर्व + ङसि । विकल्प से स्मात्, पक्ष में रामवत् ।

(ख) पूर्वस्मिन्, पूर्वे (पूर्व में)—पूर्व + ङि। विकल्प से स्मिन्, पक्ष में रामवत्। इसी प्रकार पर आदि शब्दों के रूप होंगे। शेष रूप सर्व के तुल्य।

१६०. प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च (१-१-३३)

प्रथम (पहला), चरम (अन्तिम), तय-प्रत्ययान्त द्वितय (दो अवयव वाला) आदि, अल्प (थोड़ा), अर्ध (आधा), कतिपय (कुछ) और नेम (आधा), इन शब्दों की जस् में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है। (क) प्रथमे, प्रथमाः (पहले)— विकल्प से सर्वनामसंज्ञा, सर्वे और रामाः के तुल्य रूप। (ख) द्वितये, द्वितयाः (दुहरे)— विकल्प से सर्वनाम, सर्वे और रामाः के तुल्य। शेष रामवत्। (ग) नेमे, नेमाः (आधे)—नेम + जस्। सर्वे और रामाः के तुल्य। (तीयस्य ङित्सु वा, वा०) तीय-प्रत्ययान्त ङित् विभक्तियों (ङे, ङसि, ङस्, ङि) में विकल्प से सर्वनाम होता है। (घ) द्वितीयस्मै, द्वितीयाय (दूसरे के लिए)—द्वितीय + ङे। विकल्प से सर्वनाम। सर्वस्मै, रामाय के तुल्य रूप होंगे। इसी प्रकार तृतीय शब्द।

१६१. जराया जरसन्यतरस्याम् (७-२-१०१)

जरा शब्द को विकल्प से जरस् हो जाता है, बाद में अजादि (स्वर से प्रारम्भ होने वाली) विभक्ति हो तो। (क) निर्जरः (देवता)—निर्जर + सु। रामः के तुल्य। (पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च, परिभाषा) 'पद' और 'अंग' के अधिकार में जो कार्य जिसको कहा गया है, वह उसको और तदन्त (वह शब्द जिसके अन्त में है) को होता है। (निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति, परि०) जिसका निर्देश है, उसको ही आदेश होता है। (एकदेशविकृतमनन्यवत्, परि०) एक अंश में विकार होने पर भी वह वही शब्द रहता है। (ख) निर्जरसौ—निर्जर + औ। इस सूत्रसे निर्जर के जर को जरस्। पदाङ्गा० परिभाषा से जरा का कार्य निर्जर को भी हो सकता है। निर्दिश्य० परिभाषा से निर्जर में केवल जरा (जर) को ही जरस् होगा। एकदेश० परिभाषा से जरा शब्द और निर्जर का जर एक ही शब्द हैं। अतः जर को जरस्। (ग) निर्जरसः— निर्जर + जस्। जर को जरस्। पक्ष में रामवत् भी रूप होंगे। हलादि विभक्तियों में केवल रामवत्।

सूचना—निर्जर शब्द के पूरे रूप रामवत् चलते हैं। अजादि विभक्तियों में जर को जरस् होने से जरस् वाले भी रूप बनते हैं। जैसे—निर्जरसौ, निर्जरसः, प्र०। निर्जरसम्, निर्जरसौ, निर्जरसः, द्वि०। निर्जरसा, तृ०। निर्जरसे, च०। निर्जरसः, पं०। निर्जरसः, निर्जरसोः, निर्जरसाम्, ष०। निर्जरसि, निर्जरसोः, स०। ये रूप भी इन स्थानों पर बनते हैं।

विश्वपाः (संसार का पालक, ईश्वर)—विश्वपा + सु। स् को रु और विसर्ग।

१६२. दीर्घाज्जसि च (६-१-१०५)

दीर्घ स्वर के बाद जस् और इच् (अ को छोड़कर अन्य सभी स्वर) होगा तो पूर्व-

सवर्णदीर्घ नहीं होगा। (क) विश्वपौ—विश्वपा + औ। आ + औ, वृद्धिसंधि से औ। (ख) विश्वपाः—विश्वपा + जस् (अः)। दीर्घसंधि। (ग) हे विश्वपाः—प्र० एकवचन के तुल्य। (घ) विश्वपाम्—विश्वपा + अम्। अमि पूर्वः से अ को पूर्वरूप। (ङ) विश्वपौ—प्र० द्विवचन के तुल्य।

१६३. सुडनपुंसकस्य (१-१-४३)

प्रारम्भ के सु आदि पाँच वचनों (स् औ अः, अम् औ) को सर्वनामस्थान (पंचस्थान) कहते हैं, नपुंसकलिंग में नहीं।

१६४. स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१-४-१७)

सर्वनामस्थान (पंचस्थान) को छोड़कर शेष सु आदि प्रत्यय बाद में रहने पर शब्द की पद संज्ञा होती है। यह नियम अध्याय ४ और ५ के सूत्रों से हुए प्रत्ययों के होने पर ही लगता है। सूचना—हलादि (व्यंजन से प्रारम्भ होने वाले) प्रत्यय बाद में होने पर इस सूत्र से शब्द की पद-संज्ञा होती है। अजादि प्रत्यय बाद में होने पर अगले सूत्र से भ-संज्ञा होती है। पद-संज्ञा वाले स्थानों को पद-स्थान कहेंगे और भ-संज्ञा वाले स्थानों को भ-स्थान। प्रत्यय य से प्रारम्भ होगा तो भ-संज्ञा ही होगी।

१६५. यचि भम् (१-४-१८)

सर्वनामस्थान (पंचस्थान) को छोड़कर शेष यकारादि और अजादि प्रत्यय बाद में होने पर शब्द की भ-संज्ञा होगी। यह नियम भी अध्याय ४ और ५ के सूत्रों से किए गए प्रत्ययों में ही लगेगा।

१६६. आ कडारादेका संज्ञा (१-४-१)

कडाराः कर्मधारये (२-२-३८) सूत्र तक एक की एक ही संज्ञा होती है। जो बाद वाली संज्ञा है या जो कहीं नहीं हुई है, वह संज्ञा होगी।

१६७. आतो धातोः (६-४-१४०)

आकारान्त धातु के अन्तिम आ का लोप होता है, भस्थानों में। (क) विश्वपः—विश्वपा + शस् (अः)। इससे आ का लोप। (ख) विश्वपा—विश्वपा + टा (आ)। आ का लोप। (ग) विश्वपाभ्याम्—विश्वपा + भ्याम्। इसी प्रकार शंखध्मा (शंख बजाने वाला) आदि के रूप चलेंगे। धातु के ही आ का लोप होता है, अतः हाहा (गन्धर्व-विशेष) शब्द के आ का लोप नहीं होगा। इसमें यथास्थान सवर्णदीर्घ, गुण और वृद्धि होंगे। (घ) हाहान्—हाहा + शस् (अस्)। पूर्वसवर्णदीर्घ, स् को न्। इसके अन्य रूप होंगे—हाहा (तृ० एक०), हाहै (च० ए०), हाहाः (पं० ए०, ष० ए०), हाहौः (ष० द्वि०), हाहाम् (ष० बहु०), हाहे (स० एक०)।

सूचना—विश्वपा के भ-स्थानों पर आ का लोप होगा।

विश्वपा—संसार का रक्षक, ईश्वर। पुंलिंग शब्द

विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः	प्र०
विश्वपाम्	,,	विश्वपः	द्वि०
विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः	तृ०
विश्वपे	,,	विश्वपाभ्यः	च०
विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः	पं०
,,	विश्वपोः	विश्वपाम्	ष०
विश्वपि	,,	विश्वपासु	स०
हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः	सं०

हरि (विष्णु) शब्द—(क) हरिः—हरि + सु। स् को रु, विसर्ग। (ख) हरी—हरि + औ। प्रथमयोः० से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर इ + औ को ई।

१६८. जसि च (७-३-१०९)

ह्रस्व स्वर अन्त वाले अंग को गुण होता है, बाद में जस् हो तो। हरयः—हरि + जस् (अः)। इससे इ को ए, एचो० से ए को अय्।

१६९. ह्रस्वस्य गुणः (७-३-१०८)

ह्रस्व स्वर अन्त वाले अंग को संबोधन (एकवचन) में गुण होता है। (क) हे हरे—हरि + सु (स्)। इससे इ को ए, एङ्ह्रस्वात्० (१३४) से स् का लोप। (ख) हरिम्—हरि + अम्। अमि पूर्वः से इ + अ को इ पूर्वरूप। (ग) हरी—प्रथमा द्वि० के तुल्य। (घ) हरीन्—हरि + शस् (अस्)। प्रथमयोः० से इ + अ को पूर्व-सवर्ण दीर्घ ई, तस्माच्छसो० से स् को न्।

१७०. शेषो घ्यसखि (१-४-७)

ह्रस्व इ और उ अन्त वाले शब्द 'घि' कहे जाते हैं, सखि शब्द को छोड़कर। स्त्रीलिंग में जो इकारान्त उकारान्त शब्द 'नदी' कहे जाते हैं, उन्हें भी छोड़कर।

१७१. आङो नाऽस्त्रियाम् (७-३-१२०)

घिसंज्ञक (ह्रस्व इकारान्त, उकारान्त) के बाद आङ् (टा) को ना हो जाता है, स्त्रीलिंग में नहीं। टा का ही प्राचीन नाम आङ् भी है। (क) हरिणा—हरि + टा (आ)। इससे टा को ना, अट्कुप्वाङ्० से न् को ण्। (ख) हरिभ्याम्—हरि + भ्याम्। (ग) हरिभिः—हरि + भिस् (भिः)।

१७२. घेर्ङिति (७-३-१११)

घिसंज्ञक के इ, उ को गुण हो जाता है, बाद में ङित् सुप् (ङे, ङसि, ङस्, ङि) हों तो। अर्थात् ङे आदि में इ को ए और उ को ओ। (क) हरये—हरि + ङे (ए)। इससे इ को ए, एचो० से ए को अय्। (ख) हरिभ्याम्—पूर्ववत्। (ग) हरिभ्यः—हरि + भ्यस् (भ्यः)।

१७३. ङसिङसोश्च (६-१-११०)

एङ् (ए, ओ) के बाद ङसि (पं० एक०) और ङस् (षष्ठी एक०) का अ हो तो पूर्वरूप (ए या ओ) एकादेश हो जाता है। (क) हरेः—हरि + ङसि (अस्)।

घेर्ङिति से इ को ए, इससे ए+अ=ए पूर्वरूप, स् को विसर्ग। (ख) हर्योः-हरि+ओस् (ओः)। इको यणचि से इ को य्। (ग) हरीणाम्-हरि+आम्। ह्रस्वनद्यापो० (१४८) से नुट् (न्), नामि (१४९) से दीर्घ, इ को ई, अट्कुप्वा० (१३८) से न् को ण्।

१७४. अच्च घेः (७-३-११९)

ह्रस्व इ और उ के बाद ङि को औत् (औ) होता है और शब्द के इ उ को अ होता है। अर्थात् सप्तमी एकवचन में अ+औ=औ अन्त वाला रूप बनता है। (क) हरौ-हरि+ङि (इ)। इस सूत्र से ङि को औ और इ को अ, वृद्धिसंधि से औ। (ख) हर्योः-पूर्ववत्। (ग) हरिषु-हरि+सु। आदेश० से स् को ष्। इसी प्रकार कवि आदि के रूप चलेंगे।

हरि (विष्णु)		इकारान्त पुंलिंग शब्द		अन्तिम अंश		
हरिः	हरी	हरयः	प्र०	इः	ई	अयः
हरिम्	,,	हरीन्	द्वि०	इम्	,,	ईन्
हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः	तृ०	इना	इभ्याम्	इभिः
हरये	,,	हरिभ्यः	च०	अये	,,	इभ्यः
हरेः	,,	,,	पं०	एः	,,	,,
,,	हर्योः	हरीणाम्	ष०	,,	योः	ईनाम्
हरौ	,,	हरिषु	स०	औ	,,	इषु
हे हरे	हे हरी	हे हरयः	सं०	ए	ई	अयः

१७५. अनङ् सौ (७-१-९३)

सखि शब्द के इ को अनङ् (अन्) होता है, सु बाद में हो तो, संबोधन को छोडकर।

१७६. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा (१-१-६५)

अन्तिम अल् (स्वर, व्यंजन) से पूर्व वर्ण को उपधा कहते हैं। अर्थात् उपान्त्य (अन्तिम से पहले) को उपधा कहते हैं।

१७७. सर्वनामस्थाने चाऽसंबुद्धौ (६-४-८)

न् अन्त वाले अंग की उपधा (उपान्त्य) को दीर्घ होता है, संबोधन-भिन्न सर्वनामस्थान (पंचस्थान) बाद में हो तो।

१७८. अपृक्त एकाल् प्रत्ययः (१-२-४१)

एक अल् (स्वर या व्यंजन) वाले प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं।

१७९. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् (६-१-६८)

हलन्त के बाद और दीर्घ ङी (ई) तथा आप् (आ) के बाद सु, ति सि के

अपृक्त हल् का लोप होता है अर्थात् सु के स्, ति के त् और सि के स् का लोप होता है।

१८०. नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८-२-७)

प्रातिपदिक (शब्दस्वरूप) के अन्तिम न् का लोप हो जाता है। सखा-सखि + सु (स्)। अनङ् सौ (१७५) से सखि के इ को अन्, सर्वनाम० (१७७) से अन् के अ को दीर्घ आ, हल्० (१७९) से स् का लोप, इस सूत्र से न् का लोप।

१८१. सख्युरसंबुद्धौ (७-१-९२)

सखि शब्द के बाद संबोधन (सं० एकवचन)-भिन्न सर्वनाम-स्थान (पंचस्थान) णित् के समान होता है।

१८२. अचो ञ्णिति (७-२-११५)

ञित् (ञ् हटा हो) और णित् (ण् हटा हो) प्रत्यय बाद में हो तो अच् अन्त वाले अंग को वृद्धि होती है। (क) सखायौ-सखि + औ। सख्यु० (१८१) से णिद्वत् होने से इस सूत्र से इ को ऐ वृद्धि, एचो० से ऐ को आय्। (ख) सखायः-सखि + जस् (अः)। सखायौ के तुल्य ऐ और आय्। (ग) हे सखे-हे हरे के तुल्य। (घ) सखायम्-सखि + अम्। सखायौ के तुल्य ऐ, आय्। (ङ)सखायौ-पूर्ववत्। (च) सखीन्-हरीन् के तुल्य। (छ) सख्या-सखि + टा (आ)। इको यणचि से इ को य्। (ज) सख्ये-सखि + ङे (ए)। घिसंज्ञा न होने से यण्, इ को य्।

१८३. ख्यत्यात्परस्य (६-१-११२)

खि और खी के ख्य् रूप तथा ति और ती के त्य् रूप के बाद ङसि (पं० एक०) और ङस् (प० एक०) के अ को उ हो जाता है। सख्युः-सखि + ङसि (अः) या ङस् (अः)। यण् इ को य्, इससे अः के अ को उ।

१८४. औत् (७-३-११८)

ह्रस्व इ उ के बाद ङि को औ हो जाता है। सख्यौ-सखि + ङि। इससे ङि को औ। यण्-सन्धि से इ को य्। शेष रूप हरि के तुल्य होंगे।

सखि (मित्र) इकारान्त पुंलिंग

सखा	सखायौ	सखायः	प्र०	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः	पं०
सखायम्	,,	सखीन्	द्वि०	,,	सख्योः	सखीनाम्	ष०
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	तृ०	सख्यौ	,,	सखिषु	स०
सख्ये	,,	सखिभ्यः	च०	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः	सं०

१८५. पतिः समास एव (१-४-८)

पति शब्द की समास में ही घि संज्ञा होती है। सूचना-अकेले पति शब्द की घिसंज्ञा न होने से तृतीया एक० आदि में यण् होगा। (क) पत्या-पति + टा (आ),

यण् (ख) पत्ये-पति + ङे (ए) यण् (ग) पत्युः-पति + ङसि (अः) और ङस् (अः)। यण् सन्धि से य्, ख्यत्यात्० (१८३) से अः के अ को उ। (घ) पत्यौ-पति + ङि। औत् (१८४) से ङि को औ, यण्। शेष हरि के तुल्य। भूपति शब्द में पति-शब्द के साथ समास है, अतः घि संज्ञा होगी। भूपति के रूप हरि के तुल्य चलेंगे।

पति (पति) इकारान्त पुं०				भूपति (राजा) इकारान्त पुं०		
पतिः	पती	पतयः	प्र०	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
पतिम्	,,	पतीन्	द्वि०	भूपतिम्	,,	भूपतीन्
पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः	तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
पत्ये	,,	पतिभ्यः	च०	भूपतये	,,	भूपतिभ्यः
पत्युः	,,	,,	पं०	भूपतेः	,,	,,
,,	पत्योः	पतीनाम्	ष०	,,	भूपत्योः	भूपतीनाम्
पत्यौ	,,	पतिषु	स०	भूपतौ	,,	भूपतिषु
हे पते	हे पती	हे पतयः	सं०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः

सूचना—घि संज्ञा के कारण ५ कार्य होते हैं—१. तृ० एक० में ना, २. च० एक० में अये, ३. पं० एक० में एः, ४. ष० एक० में एः, ५. स० एक० में औ।

कति (कितने)-इसके रूप केवल बहुवचन में चलते हैं।

१८६. बहुगणवतुडति संख्या (१-१-२३)

बहु (बहुत) और गण (समूह) शब्द तथा वतु (वत्) और डति (अति)-प्रत्ययान्त शब्दों की संख्या संज्ञा होती है।

१८७. डति च (१-१-२५)

डति-प्रत्ययान्त संख्या की षट् संज्ञा होती है।

१८८. षड्भ्यो लुक् (७-१-२२)

षट् संज्ञक के बाद जस् और शस् का लुक् (लोप) होता है।

१८९. प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः (१-१-६१)

लुक्, श्लु, लुप् शब्दों से जो प्रत्यय का लोप किया जाता है, उसे क्रमशः लुक्, श्लु, लुप् ही कहेंगे।

१९०. प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् (१-१-६२)

प्रत्यय का लोप होने पर उससे सम्बद्ध कार्य हो जाते हैं।

१९१. न लुमताऽङ्गस्य (१-१-६३)

लु वाले शब्द (लुक्, श्लु, लुप्) से लोप होने पर तदाश्रित कार्य नहीं होते हैं। कति-किम् + डति = कति। कति + जस्, शस्। डति च (१८७) से षट् संज्ञा,

पड्भ्यो० से जस्, शस् का लोप। प्रत्ययलोपे० (१९०) से जस् से संबद्ध गुण प्राप्त है। न लुमता० से निषेध होने से जसि च से प्राप्त गुण नहीं हुआ। शेष हरि के तुल्य।

कति के प्रथमा आदि बहुवचन के क्रमशः रूप हैं :–कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु। सूचना—युष्मद्, अस्मद् और षट् संज्ञक (कति) के रूप तीनों लिंगों में एक ही होते हैं।

त्रि (तीन) शब्द के बहुवचन में ही रूप चलते हैं। हरिवत् रूप चलते हैं। त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः–हरि के तुल्य।

१९२. त्रेस्त्रयः (७–१–५३)

त्रि को त्रय हो जाता है, बाद में आम् हो तो। (क) त्रयाणाम्–त्रि + आम्। इससे त्रि को त्रय। रामाणाम् के तुल्य न्, नामि से दीर्घ, अट्० से न् को ण्। (ख) त्रिषु–त्रि + सु, आदेश० से स् को ष्। गौण (अमुख्य) त्रि को भी त्रय होता है। जैसे—प्रियत्रि का प्रियत्रयाणाम्।

त्रि (तीन) के प्रथमा आदि बहु० के रूप हैं–त्रयः, त्रीन्, त्रिभिः, त्रिभ्यः, त्रिभ्यः, त्रयाणाम्, त्रिषु।

१९३. त्यदादीनामः (७–२–१०२)

त्यद् आदि सर्वनामों के अन्तिम वर्ण को अ आदेश होता है, बाद में कोई विभक्ति हो तो। (द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः) भाष्यकार पतंजलि का मत है कि यह नियम त्यद् से द्वि शब्द तक ही लगता है। अर्थात् यह अ अन्तादेश इन शब्दों में ही होगा:–त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक और द्वि। द्वि शब्द के रूप द्विवचन में ही चलेंगे। इस सूत्र से द्वि के इ को अ हो जाने से 'द्व' शब्द हो जाता है। इसके रूप राम या सब द्विवचन के तुल्य बनेंगे।

द्वि (दो) के प्रथमा आदि द्विवचन के रूप हैं–द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः।

पपी (सूर्य)–पाति लोकम् इति। संसार की रक्षा करता है, अतः पपी का अर्थ सूर्य है। सूचना–(१) प्रथमा तथा संबोधन एक० में विसर्ग रहेगा, पपीः। (२) औ, अः में यण् होगा, पप्यौ, पप्यः। (३) अम् और शस् में पूर्वसवर्ण दीर्घ होगा, पपीम्, पपीः। (४) टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम् में यण् होगा। पप्या, पप्ये, पप्यः, पप्यः, पप्योः, पप्याम्। (५) ङि में सवर्णदीर्घ, पपी + इ = पपी। (६) भ्याम्, भिः, भ्यः, सु में कोई अन्तर नहीं होगा। स० बहु० में पपीषु। इसी प्रकार वातप्रमी आदि के रूप चलेंगे।

पपी (सूर्य) ईकारान्त पुंलिंग

पपीः	पप्यौ	पप्यः	प्र०	पप्यः	पपीभ्याम्	पपीभ्यः	पं०
पपीम्	,,	पपीन्	द्वि०	,,	पप्योः	पप्याम्	ष०
पप्या	पपीभ्याम्	पपीभिः	तृ०	पपी	,,	पपीषु	स०
पप्ये	,,	पपीभ्यः	च०	हे पपीः	हे पप्यौ	हे पप्यः	सं०

बहुश्रेयसी (बहुत सुन्दर स्त्रियों वाला)-बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य सः, बहुव्रीहि। बहुश्रेयसी + सु (स्)। हल्० (१७९) से स् का लोप।

१९४. यू स्त्र्याख्यौ नदी (१-४-३)

दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त नित्य-स्त्रीलिंग शब्दों की नदी संज्ञा होती है। (प्रथमलिङ्गग्रहणं च, वा०) यदि कोई नदी संज्ञा वाला स्त्रीलिंग शब्द समास के कारण गौण होकर पुंलिंग आदि हो गया है, तो भी उसकी नदी संज्ञा होगी।

१९५. अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः (७-३-१०७)

अम्बा (माता) के अर्थ वाले तथा नदी संज्ञा वाले शब्दों को सम्बोधन (एक०) में ह्रस्व होता है। हे बहुश्रेयसि—बहुश्रेयसी + सु (स्)। इससे ई को ह्रस्व इ, एङ्ह्रस्वात्० (१३४) से स् का लोप।

१९६. आण्नद्याः (७-३-११२)

नदी संज्ञा वाले शब्दों के बाद आट् (आ) होता है, बाद में ङित् प्रत्यय (ङे, ङसि, ङस्, ङि) हों तो।

१९७. आटश्च (६-१-९०)

आट् (आ) के बाद अच् (स्वर) होगा तो दोनों को वृद्धि एकादेश होता है। अर्थात् – आ + ए = ऐ, आ + अः = आः, आ + (ङि) आम् = आम्। (क) बहुश्रेयस्यै—बहुश्रेयसी + ङे (ए)। आण्नद्याः से बीच में आ और इस सूत्र से वृद्धि, ऐ, यण् संधि से ई को य्। (ख) बहुश्रेयस्याः—बहुश्रेयसी + ङसि (अः), ङस् (अः)। चतुर्थी एक० के तुल्य, आ, वृद्धि, यण्। (ग) बहुश्रेयसीनाम्–बहुश्रेयसी + आम्। नदी-संज्ञक होने से ह्रस्व०(१४८) से नुट् (न्)।

१९८. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः (७-३-११६)

नदी-संज्ञक, आप् (आ) अन्त वाले और नी शब्द के बाद ङि को आम् हो जाता है। बहुश्रेयस्याम्—बहुश्रेयसी + ङि (इ)। इससे ङि को आम्, बीच में आण्नद्याः से आ और आटश्च से वृद्धि होकर आम्, यण् संधि। शेष पपी के तुल्य।

अतिलक्ष्मीः (लक्ष्मी को अतिक्रमण करने वाला)—अतिलक्ष्मी + सु (स्)। स् को विसर्ग। यहाँ पर ङी का ई नहीं है, अतः हल्ङ्याब्भ्यो० से स् का लोप नहीं। शेष बहुश्रेयसी के तुल्य। प्रधीः (बुद्धिमान्)—प्रधी + सु (स्)। स को विसर्ग।

१९९. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ (६-४-७७)

श्नु (नु) प्रत्ययान्त, इकारान्त और उकारान्त धातु तथा भ्रू शब्द के इ ई को इयङ् (इय्) और उ ऊ को उवङ् (उव्) होता है, बाद में अच् (स्वर) से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय हो तो।

२००. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य (६-४-८२)

धातु का अवयव संयुक्त अक्षर जिसके पहले न हो ऐसी इकारान्त धातु जिसके अन्त में है, ऐसे अनेकाच् अंग के इ ई को य् होता है, बाद में अजादि (स्वर से प्रारम्भ होने वाला) प्रत्यय हो तो।

प्रध्यौ—प्रधी + औ, अचि श्नु० (१९९) से प्राप्त इय् को रोककर इससे यण्। इसी प्रकार प्रध्यः, प्रध्यम्, प्रध्यौ, प्रध्यः, प्रध्यि (प्रधी + ङि) में इस सूत्र से ई को य् हुआ। शेष रूप पपी के तुल्य।

सूचना—प्रधी शब्द को सभी अजादि प्रत्ययों में यण् (य्) होता है।

प्रधी (बुद्धिमान्) ईकारान्त पुंलिंग

प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः	प्र०	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः	पं०
प्रध्यम्	,,	,,	द्वि०	,,	प्रध्योः	प्रध्याम्	ष०
प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः	तृ०	प्रध्यि	,,	प्रधीषु	स०
प्रध्ये	,,	प्रधीभ्यः	च०	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः	सं०

इसी प्रकार ग्रामणी (गाँव का मुखिया, ग्राम-प्रमुख) के रूप चलेंगे। इसका सप्तमी एक० में ग्रामण्याम् रूप बनेगा। ङेराम्० (१९८) से ङि को आम्।

प्रत्युदाहरण—(१) नी (नेता)। यह एक स्वर वाला शब्द है, अतः इसमें एरनेकाचो० से यण् (य्) नहीं होगा। अचिश्नु० (१९९,) से ई को इय्। सभी अजादि-प्रत्ययों में ई को इय् होगा। इसके रूप होंगे—नीः नियौ नियः। नियम् नियौ नियः। *निया नीभ्याम् नीभिः। नियें नीभ्याम् नीभ्यः। नियः नीभ्याम् नीभ्यः। नियः* नियोः नियाम्। नियाम् नियोः नीषु। सप्तमी एक० में ङि को आम् होने से नियाम्। (२) सुश्रियौ (अच्छे प्रकार आश्रय लेने वाले)—सुश्री + औ। ई से पहले संयुक्त अक्षर होने से इस सूत्र से यण् नहीं, अचिश्नु० से इयङ् (इय्)। (३) यवक्रियौ (२ जौ खरीदने वाले)-यवक्री + औ। संयुक्त अक्षर पहले होने से यण् न होकर इय्। सुश्रियौ के तुल्य।

२०१. गतिश्च (१-४-६०)

क्रिया के साथ प्र आदि की गति संज्ञा भी होती है। (गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते) गति और कारक से भिन्न यदि पूर्वपद होगा तो शब्द को यण नहीं होगा। शुद्धधियौ (२ शुद्ध बुद्धि वाले)—शुद्धधी + औ। गति० से यण् का निषेध होने से अचि श्नु० से इय्।

२०२. न भूसुधियोः (६-४-८५)

भू और सुधी शब्द को यण् नहीं होता है, बाद में अजादि सुप् प्रत्यय हो तो। (क) सुधियौ (२ विद्वान्)-सुधी + औ। इससे यण् का निषेध होने से अचि श्नु० से इयङ् (इय्)। (ख) सुधियः—सुधी + जस् (अः)। सुधियौ के तुल्य। (ग) सुखीः (सुख चाहने वाला) सुखमिच्छतीति। (घ) सुतीः (पुत्र चाहने वाला) सुतमिच्छतीति। इन दोनों शब्दों को अजादि प्रत्ययों में एरनेकाचो० से यण्। सुख्यौ, सुत्यौ। ङसि, ङस् में ख्यत्यात्० (१८३) से उ। सुख्युः, सुत्युः। शेष प्रधी के तुल्य।

शम्भु के रूप हरिवत् चलेंगे। इसी प्रकार भानु आदि के रूप चलेंगे।

शम्भु (शिव) उकारान्त पुं०				अन्तिम अंश		
शम्भुः	शम्भू	शम्भवः	प्र०	उः	ऊ	अवः
शम्भुम्	,,	शम्भून्	द्वि०	उम्	,,	ऊन्
शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः	तृ०	उना	उभ्याम्	उभिः
शम्भवे	,,	शम्भुभ्यः	च०	अवे	,,	उभ्यः
शम्भोः	,,	,,	पं०	ओः	,,	,,
,,	शम्भ्वोः	शम्भूनाम्	ष०	,,	वोः	ऊनाम्
शम्भौ	,,	शम्भुषु	स०	औ	,,	उषु
हे शम्भो	हे शम्भू	हे शम्भवः	सं०	ओ	ऊ	अवः

२०३. तृज्वत् क्रोष्टुः (७-१-९५)

क्रोष्टु शब्द को क्रोष्टृ हो जाता है, संबुद्धि-भिन्न सर्वनाम-स्थान (पंचस्थान) बाद में हो तो।

२०४. ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः (७-३-११०)

ऋकारान्त शब्द को गुण (अर्) हो जाता है, बाद में सर्वनामस्थान (पंचस्थान) और ङि (सप्तमी एक०) हो तो।

२०५. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च (७-१-९४)

ऋकारान्त, उशनस् (शुक्राचार्य), पुरुदंसस् (बिल्ली) और अनेहस् (समय) शब्दों के अन्तिम वर्ण को अनङ् (अन्) होता है, संबुद्धि-भिन्न सु बाद में हो तो।

२०६. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् (६-४-११)

इन शब्दों की उपधा को दीर्घ हो जाता है, संबुद्धि-भिन्न सर्वनाम-स्थान (पंचस्थान) बाद में हो तो—अप् (जल), तृन् (तृ) और तृच् (तृ) प्रत्ययान्त, स्वसृ (बहिन), नप्तृ (नाती), नेष्टृ (सोमयज्ञ का एक पुरोहित), त्वष्टृ (बढ़ई),

क्षत्तृ (द्वारपाल या सारथि), होतृ (हवन करने वाला), पोतृ (ब्रह्मा का सहायक एक पुरोहित) और प्रशास्तृ (शासन करने वाला)। (क) क्रोष्टा (गीदड़)—क्रोष्टु + सु (स्)। तृज्वत्० (२०३) से क्रोष्टृ शब्द, ऋदु० (२०५) से ऋ को अन्, अप्तृन्० (२०६) से अन् के अ को आ, हल् ङ्या० (१७९) से स् का लोप, न लोपः० (१८०) से न् का लोप। (ख) क्रोष्टारौ—क्रोष्टु + औ। क्रोष्टु को पूर्ववत् क्रोष्टृ, ऋतो ङि० (२०४) से ऋ को अर्, इससे अ को आ। (ग) क्रोष्टारः, क्रोष्टारम्—क्रोष्टु + अः, क्रोष्टु + अम्। क्रोष्टारौ के तुल्य क्रोष्टृ, गुण, उपधा को दीर्घ। (घ) क्रोष्टून्—क्रोष्टु + शस् (अस्)। पूर्वसवर्णदीर्घ और तस्माच्छसो० से स् को न्।

२०७. विभाषा तृतीयादिष्वचि (७–१–९७)

अजादि तृतीया आदि विभक्ति बाद में हो तो क्रोष्टु को क्रोष्टृ विकल्प से होता है। अतः एक रूप शम्भु के तुल्य बनेगा। क्रोष्ट्रा, क्रोष्ट्रे—क्रोष्टु + टा (आ), क्रोष्टु + ङे (ए)। क्रोष्टु को क्रोष्टृ और यण् सन्धि से ऋ को र्।

२०८. ऋत उत् (६–१–१११)

ऋकारान्त के बाद ङसि और ङस् का अ होगा तो उर् एकादेश होगा, अर्थात् ऋ + अ को उर् होगा।

२०९. रात्सस्य (८–२–२४)

र् के बाद संयोगान्त स् का ही लोप होता है, अन्य वर्ण का नहीं। (क) क्रोष्टुः—क्रोष्टु + ङसि (अस्), ङस् (अस्)। क्रोष्टु को क्रोष्टृ, ऋत उत् (२०८) से ऋ + अ को उर्, इससे अन्तिम स् का लोप, र को विसर्ग। (ख) क्रोष्ट्रोः—क्रोष्टु + ओः। क्रोष्टु को क्रोष्टृ, यण् सन्धि से र्। (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन, वा०) नुम् (इकोऽचि विभक्तौ से नुम्), अच् परे होनेपर र (अचि र ऋतः से र) और तृज्वद्भाव, इन कार्यों से पहले नुट् (न्) होता है। (क) क्रोष्टूनाम्—क्रोष्टु + आम्। इस नियम से तृज्वद्भाव को रोककर ह्रस्व० से नुट् (न्) हो गया, नामि से दीर्घ ऊ। (ख) क्रोष्टरि—क्रोष्टु + ङि (इ)। क्रोष्टु को क्रोष्टृ, ऋतो ङि० (२०४) से गुण अर्। तृज्वद्भाव के अभाव पक्ष में और हलादि विभक्तियों में शम्भु के तुल्य रूप होंगे।

हूहू (गन्धर्व)। सूचना—(१) प्रथमा एक० में विसर्ग, (२) अम् में हूहूम्, शस् हूहून्, (३) शेष अजादि विभक्तियों में यण्, (४) हलादि विभक्तियों में कोई अन्तर नहीं। सप्तमी बहु० में हूहूषु। हूहूः, हूह्वौ, हूह्वः आदि।

अतिचमू (सेना का अतिक्रमण करने वाला)। अतिचमू शब्द की नदी संज्ञा होने से ङे, ङसि, ङस् और ङि में आ और आटश्च (१९७) से वृद्धि होगी। सम्बोधन एक० में ह्रस्व होगा। आम् में नुट होकर नाम् बनेगा। ङि में आम् होने से अतिचम्वाम्

बनेगा। जैसे–अतिचमूः, हे अतिचमु, अतिचम्वै, अतिचम्वाः, अतिचमूनाम्। अजादि प्रत्ययों में यण् होगा। शेष हूहू के तुल्य।

खलपू (खलिहान साफ करने वाला)। खलपूः—स् को विसर्ग।

२१०. ओः सुपि (६–४–८३)

धातु का अवयव संयुक्त वर्ण जिसके पूर्व में नहीं है, ऐसी उकारान्त धातु जिसके अन्त में है, ऐसे अनेकाच् अंग को यण् हो जाता है, बाद में अजादि सुप् हो तो। खलप्वौ, खलप्वः—खलपू+औ, खलपू+जस् (अः)। इससे यण्, ऊ को व्। अम्, शस् में भी यण् होगा। शेष हूहू के तुल्य। इसी प्रकार सुलू (अच्छा काटने वाला) आदि के रूप चलेंगे।

स्वभू (स्वयं उत्पन्न होने वाला, विष्णु या ब्रह्मा)। इसमें न भूसुधियोः (२०२) से यण् का निषेध होने से अचि श्नु० से उवङ् (उव्) अजादि विभक्तियों में होगा। जैसे–स्वभूः, स्वभुवौ, स्वभुवः, स्वभुवम्, स्वभुवः, स्वभुवा, स्वभुवाम्, स्वभुवि आदि।

वर्षाभू (वर्षा में उत्पन्न होने वाला, मेंढक आदि) वर्षाभूः—स् को विसर्ग।

२११. वर्षाभ्वश्च (६–४–८४)

वर्षाभू शब्द के ऊ को यण् (व्) होता है, बाद में अजादि सुप् हो तो। *वर्षाभ्वौ*—वर्षाभू+औ। इससे ऊ को व्। (*दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः*, वा०) दृन्, कर, पुनः पहले हों तो भू के ऊ को यण् (व्) होता है, अजादि सुप् बाद में हो तो।

दृन्भूः (साँप या वज्र)। दृन्भ्वौ—दृन्भू+औ। इस वार्तिक से ऊ को व्। इसी प्रकार करभूः (नाखून) के रूप चलेंगे।

धातृ (धारण करने वाला, ब्रह्मा)। सूचना—१. प्रथमा एक० में अनङ् होकर तृ को ता हो जाएगा। संबोधन एक० में तृ का तः। २. पंचस्थानों में तृ को गुण और अप्तृन्० से उपधा के अ को आ। ३. षष्ठी बहु० में नाम् के न् को ण् होकर णाम् लगेगा। जैसे—धाता, हे धातः, धातारः। ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्, (वा०) ऋ के बाद न को ण होता है। धातृणाम्—धातृ+आम्। नुट् (न्), इससे न् को ण्। इसी प्रकार नप्तृ (नाती) आदि के रूप चलेंगे। सूचना—तृच् (तृ) प्रत्ययान्त कर्तृ, हर्तृ, धर्तृ आदि सभी शब्दों के रूप धातृ के तुल्य चलेंगे।

सूचना—अप्तृन्० (२०६) से पंचस्थानों में होने वाला दीर्घ पितृ—(पिता), भ्रातृ (भाई), जामातृ (जँवाई) आदि शब्दों में नहीं होता है। शेष धातृ के तुल्य। जैसे—पिता पितरौ, पितरम् आदि। इसी प्रकार भ्रातृ, जामातृ के रूप चलेंगे।

धातृ (धाता, ब्रह्मा) ऋकारान्त पुं० | पितृ (पिता) पुं०

धाता	धातारौ	धातारः	प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
धातारम्	,,	धातॄन्	द्वि०	पितरम्	,,	पितॄन्
धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः	तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
धात्रे	,,	धातृभ्यः	च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
धातुः	,,	,,	पं०	पितुः	,,	,,
,,	धात्रोः	धातॄणाम्	ष०	,,	पित्रोः	पितॄणाम्
धातरि	,,	धातृषु	स०	पितरि	,,	पितृषु
हे धातः	हे धातारौ	हे धातारः	सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

नृ (मनुष्य)। इसके रूप पितृ के तुल्य चलेंगे। षष्ठी बहु० में दो रूप बनेंगे—नृणाम्, नॄणाम्। ना, नरौ, नरः आदि।

२१२. नृ च (६-४-६)

नृ के ऋ को विकल्प से दीर्घ होता है, बाद में नाम् हो तो। नॄणाम्, नृणाम्—नृ+आम्। नुट् (न्), इससे विकल्प से दीर्घ।

२१३. गोतो णित् (७-१-९०)

ओकारान्त शब्द के बाद सर्वनामस्थान (पंचस्थान) णित् के तुल्य होता है। अतः ओ को वृद्धि होकर औ होगा। अजादि प्रत्ययों में एचो० से औ को आव्। गौः—गो+सु (स्)। ओ को वृद्धि से औ, अचो ञ्णिति (१८२) से वृद्धि, स् को विसर्ग। गावौ, गावः—गो+औ, गो+जस् (अः)। ओ को वृद्धि औ, औ को आव्।

२१४. औतोऽम्शसोः (६-१-९३)

ओकारान्त शब्द को अम् और शस् (अस्) का अच् बाद में होने पर आ एकादेश होता है। अर्थात् ओ+अम्=आम्, ओ+अः=आः। गाम्, गाः—गो+अम्=गाम्, गो+शस् (अः)=गाः। इससे आ एकादेश। गवा, गवे—गो+टा (आ), गो+ए। ओ को अव्। गोः—गो+ङसि (अः), ङस् (अः)। ङसिङसोश्च (१७३) से अ को पूर्वरूप।

गो (बैल)—ओकारान्त पुंलिंग

गौः	गावौ	गावः	प्र०	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः	पं०
गाम्	,,	गाः	द्वि०	,,	गवोः	गवाम्	ष०
गवा	गोभ्याम्	गोभिः	तृ०	गवि	,,	गोषु	स०
गवे	,,	गोभ्यः	च०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः	सं०

२१५. रायो हलि (७-२-८५)

रै शब्द के ऐ को आ हो जाता है, हलादि विभक्ति बाद में हो तो। सूचना—रै को हलादि विभक्तियों में आ हो जाएगा; अन्यत्र ऐ को अयादिसंधि से आय्। रै (धन)—राः, रै + सु (स्)। ऐ को आ, स् को विसर्ग। रायौ, रायः—रै + औ, रै + जस् (अः)। ऐ को आय् आदेश। राभ्याम्—रै + भ्याम्। ऐ को आ।

ग्लौ (चन्द्रमा)—इसको अजादि विभक्तियों में आव्, अन्यत्र कोई परिवर्तन नहीं। सप्तमी बहु० में ग्लौषु। जैसे—ग्लौः, ग्लावौ, ग्लावः। ग्लौभ्याम् आदि।

अजन्तपुंलिंग-प्रकरण समाप्त।

अजन्तस्त्रीलिंग प्रकरण

रमा (लक्ष्मी)। रमा—रमा + सु (स्)। हल्ङ्याब्भ्यो० (१७९) से स का लोप।

२१६. औङ आपः (७-१-१८)

आकारान्त शब्द के बाद औङ् (औ) को शी (ई) हो जाता है। रमे—रमा + औ। औ को शी (ई), आद्गुणः से आ + ई को ए गुण। रमाः—रमा + जस् (अस्), दीर्घ संधि, स् को रु और विसर्ग।

२१७. सम्बुद्धौ च (७-३-१०६)

आप् (आ) को ए हो जाता है, संबुद्धि (सं० एक०) में। हे रमे—रमा + सु (स्)। इससे आ को ए, एङ् ह्रस्वात्० (१३४) से स् का लोप। हे रमे, हे रमाः—प्रथमा के तुल्य। रमाम्—रमा + अम्। अमि पूर्वः (१३५) से अ को पूर्वरूप आ। रमे, रमाः—रमा + औ, रमा + शस् (अः)। प्रथमा के तुल्य।

२१८. आङि चापः (७-३-१०५)

टा और ओस् में आ को ए हो जाता है। रमया—रमा + ए। इससे आ को ए, अयादिसंधि से ए को अय्। रमाभ्याम्—रमा + भ्याम्। रमाभिः—रमा + भिस्। स् को विसर्ग।

२१९. याडापः (७-३-११३)

आकारान्त शब्द के बाद ङित् वचनों (ङे, ङसि, ङस्, ङि) को याट् (या) का आगम हो जाता है। रमायै—रमा + ङे (ए)। इससे बीच में या, वृद्धिसन्धि से या +

ए = यै। रमाभ्याम्—पूर्ववत्। रमाभ्यः—रमा + भ्यम् (भ्यः)। रमायाः—रमा + ङसि (अः), रमा + ङस् (अः)। बीच में इससे या, दीर्घसन्धि से या + अः = याः। रमयोः—रमा + ओस् (ओः)। आङि चापः (२१८) से आ को ए, अयादि संधि से ए को अय्। रमाणाम्—रमा + आम्। ह्रस्व० (१४८) से नुट् (न्), अट्कु० (१३८) से न को ण। रमायाम्—रमा + ङि। ङेराम्० (१९८) से ङि को आम्, बीच में या, सवर्णदीर्घ से आ+आ = आ। रमासु—रमा + सु। इसी प्रकार दुर्गा (दुर्गा), अम्बिका (माता) आदि के रूप चलेंगे।

रमा (लक्ष्मी) आकारान्त स्त्रीलिंग				अन्तिम अंश		
रमा	रमे	रमाः	प्र०	आ	ए	आः
रमाम्	,,	,,	द्वि०	आम्	,,	,,
रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः	तृ०	अया	आभ्याम्	आभिः
रमायै	,,	रमाभ्यः	च०	आयै	,,	आभ्यः
रमायाः	,,	,,	पं०	आयाः	,,	,,
,,	रमयोः	रमाणाम्	ष०	,,	अयोः	आनाम्
रमायाम्	,,	रमासु	स०	आयाम्	,,	आसु
हे रमे	हे रमे	हे रमाः	सं०	ए	ए	आः

२२०. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च (७-३-११४)

आकारान्त सर्वनाम के बाद ङित् प्रत्ययों (ङे, ङसि, ङस्, ङि) को स्याट् (स्या) होता है और आ को ह्रस्व अ हो जाता है। (क) सर्वस्यै—सर्वा + ङे (ए)। इससे बीच में स्या और आ को अ। स्या का आ + ए को वृद्धिसन्धि से ऐ। (ख) सर्वस्याः—सर्वा + ङसि (अः), सर्वा + ङस् (अः)। सर्वस्यै के तुल्य स्या, ह्रस्व और अन्त में सवर्णदीर्घ। (ग) सर्वासाम्—सर्वा + आम्। आमि सर्वनाम्नः० (१५५) से बीच में स्। (घ) सर्वस्याम्—सर्वा + ङि। ङेराम्० (१९८) से ङि को आम्, बीच में स्या, आ को अ, अन्त में सवर्णदीर्घ। शेष रमा के तुल्य। इसी प्रकार विश्वा आदि सर्वनामों के रूप चलेंगे।

सूचना—सर्वा आदि सर्वनामों में रमा शब्द से पाँच स्थानों पर अन्तर होते हैं—१. च० एक० में स्यै, २,३. पं० और षष्ठी एक० में स्याः, ४. षष्ठी बहु० में साम्, ५. सप्तमी एक० में स्याम्।

सर्वा (सब) आकारान्त स्त्रीलिंग सर्वनाम

सर्वा	सर्वे	सर्वाः	प्र०	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः	पं०
सर्वाम्	,,	,,	द्वि०	,,	सर्वयोः	सर्वासाम्	ष०
सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः	तृ०	सर्वस्याम्	,,	सर्वासु	स०
सर्वस्यै	,,	सर्वाभ्यः	च०	(सूचना—सम्बोधन नहीं होता है।)			

२२१. विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ (१–१–२८)

बहुव्रीहि के दिक्समास (दिशावाचकों का समास) में सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है। अतः इनके रूप रमा और सर्वा दोनों के तुल्य चलेंगे। उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै (ईशान कोण के लिए)—उत्तरपूर्वा + ङे (ए)। रमायै और सर्वस्यै के तुल्य। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै (दूसरी के लिए)—द्वितीया + ङे। तीयस्य ङित्सु वा (वा०) से विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होने से पूर्ववत् दो रूप बने। इसी प्रकार तृतीया (तीसरी) के रूप चलेंगे।

हे अम्ब (हे माता), हे अक्क (हे माता), हे अल्ल (हे माता) —अम्बा + सु, अक्का + सु, अल्ला + सु। संबोधन में अम्बार्थ० (१९५) से तीनों के आ को अ, एङ्ह्रस्वात्० (१३४) से स् का लोप।

जरा (बुढ़ापा)—जरा, जरसौ, जरसः आदि। अजादि प्रत्ययों में जराया० (१६१) से विकल्प से जरस्। पक्ष में और हलादि प्रत्ययों में रमावत्। गोपा (ग्वालिन) के रूप विश्वपा (पुंलिंग) के तुल्य चलेंगे।

मति (बुद्धि)—मतिः मती आदि हरिवत्। मतीः—मति + शस् (अः)। पूर्वसवर्ण दीर्घ से इ + अ को ई। मत्या—मति + आ। यण्संधि से इ को य्। स्त्रीलिंग में टा को ना नहीं होता।

२२२. ङिति ह्रस्वश्च (१–४–६)

जिनमें इयङ् (इय्) या उवङ् (उव्) होता है, ऐसे स्त्री-शब्द-भिन्न, नित्य-स्त्रीलिंग ईकारान्त और ऊकारान्त तथा ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त की स्त्रीलिंग में विकल्प से नदी-संज्ञा होती है, ङित् विभक्तियों (ङे, ङसि, ङस्, ङि) में। सूचना—नदी संज्ञा होने से आण्नद्याः (१९६) से आट् (आ) होगा और आटश्च (१९७) से वृद्धि एकादेश।

(क) मत्यै, मतये—मति + ए। नदी संज्ञा होने से बीच में आ, आ + ए = ऐ वृद्धि, यण्। मतये—हरये के तुल्य। (ख) मत्याः, मतेः—मति + ङसि (अः), ङस् (अः)। मत्यै के तुल्य आ, वृद्धि आ, यण्संधि से य्। मतेः—हरेः के तुल्य।

२२३. इदुद्भ्याम् (७–३–११७)

नदीसंज्ञक ह्रस्व इ उ के बाद ङि को आम् हो जाता है। मत्याम्, मतौ—मति + ङि। इससे ङि को आम्, बीच में आ, वृद्धि, यण्। मतौ—हरौ के तुल्य। शेष हरि के तुल्य। इसी प्रकार बुद्धि आदि के रूप चलेंगे।

मति (बुद्धि) इकारान्त स्त्री०				अन्तिम अंश		
मतिः	मती	मतयः	प्र०	इः	ई	अयः
मतिम्	,,	मतीः	द्वि०	इम्	,,	ईः
मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः	तृ०	या	इभ्याम्	इभिः
मत्यै, मतये	,,	मतिभ्यः	च०	यै, अये	,,	इभ्यः
मत्याः, मतेः	,,	,,	पं०	याः, एः	,,	,,
,, ,,	मत्योः	मतीनाम्	ष०	,, ,,	योः	ईनाम्
मत्याम्, मतौ	,,	मतिषु	स०	याम्, औ	,,	इषु
हे मते	हे मती	हे मतयः	सं०	ए	ई	अयः

२२४. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ (७-२-९९)

स्त्रीलिंग में त्रि को तिसृ और चतुर् को चतसृ हो जाते हैं।

२२५. अचि र ऋतः (७-२-१००)

तिसृ और चतसृ के ऋ को र् हो जाता है, बाद में अजादि प्रत्यय हो तो। तिस्रः–त्रि + जस् (अः), शस् (अः)। त्रि को तिसृ, इससे ऋ को र्।

२२६. न तिसृचतसृ (६-४-४)

तिसृ और चतसृ को नाम् परे होने पर दीर्घ नहीं होता है। तिसृणाम्—त्रि + आम्। तिसृ, ह्रस्व० से न्, ऋवर्णात्० (वा०) से न् को ण्।

त्रि (तीन) के स्त्रीलिंग बहु० में रूप होते हैं—तिस्रः, तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृभ्यः, तिसृणाम, तिसृषु।

द्वि (दो) के स्त्रीलिंग द्विवचन में रूप होते हैं—द्वे, द्वे, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः। रमा द्विवचन के तुल्य द्वा के रूप चलेंगे। द्वि को त्यदादीनामः से अ द्व, टाप् (आ) होने से द्वा शब्द होता है।

गौरी (पार्वती)–गौरी, गौर्यौ, गौर्यः। प्रथमा एक० में स् का लोप, द्वि० बहु० में यण्। हे गौरि–अम्बार्थ० से ई को इ और एङ्ह्रस्वात्० से स् का लोप। गौर्यै–मत्यै के तुल्य। गौरी + ए। बीच में आ, वृद्धि, यण्। इसी प्रकार नदी (नदी) आदि के रूप चलेंगे।

नदी (नदी)–ईकारान्त स्त्रीलिंग

नदी	नद्यौ	नद्यः	प्र०	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः	पं०
नदीम्	,,	नदीः	द्वि०	,,	नद्योः	नदीनाम्	ष०
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	तृ०	नद्याम्	,,	नदीषु	स०
नद्यै	,,	नदीभ्यः	च०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः	सं०

लक्ष्मी (लक्ष्मी)। लक्ष्मीः- लक्ष्मी + सु (स्)। ङी का ई न होने से विसर्ग का लोप नहीं हुआ। शेष रूप नदी के तुल्य। इसी प्रकार तरी (नौका), तन्त्री (वीणा) आदि के रूप चलेंगे।

स्त्री (स्त्री)। स्त्री—स्त्री + सु (स्) हल्ङ्या० से स् का लोप। हे स्त्रि—स्त्री + सु। अम्बार्थ० से ई को इ, एङ्ह्रस्वात्० से स् का लोप।

२२७. स्त्रियाः (६-४-७९)

स्त्री शब्द के ई को इय् होता है, बाद मे अजादि प्रत्यय हों तो। स्त्रियौ-स्त्री + औ। इससे ई को इय्। स्त्रियः-स्त्री + जस् (अः)। ई को इय्।

२२८. वाऽम्शसोः (६-४-८०)

अम् और शस् में स्त्री के ई को इय् विकल्प से होता है। स्त्रियम्, स्त्रीम्—स्त्री + अम्। इससे ई को इय्, स्त्रियम्। पक्ष में अमि पूर्वः से पूर्वरूप होकर ई + अ = ई। स्त्रियः, स्त्रीः—स्त्री + शस् (अः)। इससे ई को इय्। पक्ष में पूर्वसवर्ण दीर्घ ई + अः = ईः। स्त्रिया-स्त्री + आ। स्त्रियाः से ई को इय्। स्त्रियै-स्त्री + ए। बीच में आ, आण्नद्याः से वृद्धि ऐ, स्त्रियाः से ई को इय्। स्त्रीणाम्-स्त्री + आम्। परवर्ती होने से पहले न्, अट्कु० (१३८) से न् को ण्। स्त्रीषु-स्त्री + सु। स् को ष्।

स्त्री (स्त्री)-ईकारान्त स्त्री०

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	प्र०	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	पं०
स्त्रियम्, स्त्रीम्	,,	,,-स्त्रीः	द्वि०	,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्	ष०
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	तृ०	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु	स०
स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः	च०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः	सं०

श्री (लक्ष्मी)। श्रीः-श्री + सु (स्)। ङी का ई न होने से स् का लोप नहीं, स् को विसर्ग। श्रियौ, श्रियः—श्री + औ, श्री + जस् (अः)। अचि श्नु० (१९९) से ई को इय्।

२२९. नेयङुवङ्स्थानावस्त्री (१-४-४)

जिनको इय् या उव् होता है, ऐसे दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त की नदी संज्ञा नहीं होती है, स्त्री शब्द की नदी संज्ञा होगी। सूचना-इससे नदी संज्ञा का निषेध होने से सम्बोधन एक० में अम्बार्थ० से ह्रस्व नहीं होगा। ङित् प्रत्ययों में ङिति ह्रस्वश्च से विकल्प से नदी संज्ञा होने से दो दो रूप बनेंगे। हे श्रीः—नदी संज्ञा न होने से ह्रस्व नहीं, स् को विसर्ग। श्रियै, श्रिये—श्री + ए। नदी संज्ञा होने से बीचमें आ, आटश्च से वृद्धि, अचिश्नु० से ई को इय्। पक्ष में अचि श्नु० से इय्। श्रियाः, श्रियः—श्री + ङसि (अः), ङस् (अः)। पूर्ववत् नदी संज्ञा होने पर आ, वृद्धि, इय्। पक्ष में केवल इय्।

२३०. वामि (१-४-५)

जिनको इय्, उव् होता है, ऐसे स्त्रीलिंग ईकारान्त और ऊकारान्त की आम् परे होने पर विकल्प से नदी संज्ञा होती है, स्त्री शब्द की नदी संज्ञा होगी। श्रीणाम्, श्रियाम्-श्री + आम्। नदी संज्ञा होने से न्, अट्० से न् को ण्। पक्ष में अचि श्नु० से ई को इय्। श्रियाम्, श्रियि-श्री + इ। नदी संज्ञा होने पर ङेराम्० से ङि को आम्, अचि श्नु० से इय्। पक्ष में अचि श्नु० से इय्।

धेनु (गाय) के रूप मति के तुल्य चलेंगे।

श्री (लक्ष्मी) ईकारान्त स्त्री०				धेनु (गाय) उकारान्त स्त्री०		
श्रीः	श्रियौ	श्रियः	प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
श्रियम्	,,	,,	द्वि०	धेनुम्	,,	धेनूः
श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः	तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
श्रियै, श्रिये	,,	श्रीभ्यः	च०	धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः
श्रियाः, श्रियः	,,	,,	पं०	धेन्वाः धेनोः	,,	,,
,,	,, श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्	ष०	,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु	स०	धेन्वाम्, धेनौ	,,	धेनुषु
हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः	सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

२३१. स्त्रियां च (७-१-९६)

स्त्रीलिंग में क्रोष्टु को क्रोष्टृ हो जाता है।

२३२. ऋन्नेभ्यो ङीप् (४-१-५)

ऋकारान्त और नकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) हो जाता है। क्रोष्टु (गीदड़)। क्रोष्टु को स्त्रियां च (२३१) से क्रोष्टृ + ई = क्रोष्ट्री (गीदड़ी)। इससे ई। इसके रूप नदी के तुल्य चलेंगे। भ्रू (भौं)। भ्रूः, भ्रुवौ, भ्रुवः आदि। इसके रूप श्री के तुल्य चलेंगे। स्वयंभू (प्रकृति)। स्वयंभूः, स्वयभुवौ आदि। पुंलिंग के तुल्य रूप चलेंगे।

२३३. न षट्स्वस्रादिभ्यः (४-१-१०)

षट्-संज्ञा वाले तथा स्वसृ आदि शब्दों से ङीप् (ई) और टाप् (आ) नहीं होते हैं।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः॥

ये सात शब्द स्वसृ आदि हैं—स्वसृ (बहिन), तिसृ (तीन), चतसृ (चार),

ननान्दृ (ननद, पति की बहिन), दुहितृ (लड़की), यातृ (पति के भाई की पत्नी, देवरानी), मातृ (माता)। इनमें ई और आ नहीं लगता है।

स्वसृ (बहिन)—स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः। धातृ शब्द पुंलिंग के तुल्य रूप बनेंगे। द्वि० बहु० स्वसॄः।

मातृ (माता)—पितृ शब्द के तुल्य रूप बनेंगे। द्वि० बहु० में मातॄः। माता मातरौ मातरः। मातरम् मातरौ मातॄः आदि।

द्यो (स्वर्ग, आकाश)—गो के तुल्य रूप चलेंगे। द्यौः द्यावौ द्यावः। द्याम् द्यावौ द्याः आदि। रै (धन)—पुंलिंग के तुल्य रूप चलेंगे। राः रायौ रायः। रायम् रायौ रायः आदि। नौ (नाव)—ग्लौ पुंलिंग के तुल्य रूप चलेंगे। नौः नावौ नावः। नावम् नावौ नावः आदि।

अजन्तस्त्रीलिंग समाप्त।

अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरण

२३४. अतोऽम् (७-१-२४)

अकारान्त नपुंसक शब्द के बाद सु और अम् को अम् हो जाता है। ज्ञान (ज्ञान)। *ज्ञानम्—ज्ञान + सु*। इससे सु को अम्। अमि पूर्वः (१३५) से अ को पूर्वरूप, अ + अ = अ। हे ज्ञान—ज्ञान + सु (स्)। एङ्ह्रस्वात्० से ज्ञानम् के म् का लोप।

२३५. नपुंसकाच्च (७-१-१९)

नपुंसक शब्द के बाद औ को शी (ई) हो जाता है।

२३६. यस्येति च (६-४-१४८)

भसंज्ञक इकार (इ और ई) और अकार (अ और आ) का लोप हो जाता है, बाद में ई और तद्धित प्रत्यय हो तो। (औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः, वा०) औ के स्थान पर हुआ शी (ई) बाद में हो तो यस्येति च से लोप नहीं होता है। ज्ञाने—ज्ञान + औ। औ को नपुंसकाच्च (२३५) से ई, यस्येति च से ज्ञान के अ का लोप प्राप्त था, वार्तिक से निषेध। गुण-संधि।

२३७. जश्शसोः शिः (७-१-२०)

नपुंसक शब्द के बाद जस् और शस् को शि (इ) होता है।

२३८. शि सर्वनामस्थानम् (१-१-४२)

शि (इ) को सर्वनामस्थान कहते हैं।

२३९. नपुंसकस्य झलचः (७-१-७२)

झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) अन्त वाले और अच् अन्त वाले नपुंसक शब्द के बाद नुम् (न्) लग जाता है, बाद में शि (इ) हो तो।

२४०. मिदचोऽन्त्यात् परः (१-१-४७)

मित् (म्-लोप वाला) प्रत्यय अन्तिम अच् के बाद होता है। नुम् (न्) मित् है, अतः अन्तिम स्वर के बाद होता है। ज्ञानानि—ज्ञान + जस्। जस् को शि (इ), नपुंसकस्य० (२३९) से बीच में न्, ज्ञानन् + इ। सर्वनामस्थाने० (१७७) से उपधा के अ को दीर्घ आ। द्वितीया में इसी प्रकार ज्ञानम् ज्ञाने ज्ञानानि। शेष राम के तुल्य। इसी प्रकार धन (धन), वन (वन), फल (फल) आदि के रूप चलते हैं।

ज्ञान (ज्ञान) अकारान्त नपुं०				अन्तिम अंश		
ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि	प्र०	अम्	ए	आनि
,,	,,	,,	द्वि०	,,	,,	,,
ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः	तृ०	एन	आभ्याम्	ऐः
ज्ञानाय	,,	ज्ञानेभ्यः	च०	आय	,,	एभ्यः
ज्ञानात्	,,	,,	पं०	आत्	,,	,,
ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्	ष०	अस्य	अयोः	आनाम्
ज्ञाने	,,	ज्ञानेषु	स०	ए	,,	एषु
हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि	सं०	अ	ए	आनि

२४१. अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः (७-१-२५)

डतर आदि पाँच (डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर) नपुंसकलिंग शब्दों के बाद सु और अम् को अद्ड् (अद्) आदेश होता है।

२४२. टेः (६-४-१४३)

डित् (ड्-लोप वाला) प्रत्यय बाद में हो तो भसंज्ञा वाले टि (अन्तिम स्वर-सहित अंश) का लोप हो जाता है। डतर (अतर) और डतम (अतम) प्रत्यय हैं, अतः इन प्रत्ययों से युक्त शब्द यहाँ लिए जाएँगे। कतरद्, कतरत् (दो में से कौन सा एक)—किम् + डतर = कतर। कतर + सु, अम्। सु और अम् को अद्ड् (२४१) से अद्, टेः से कतर के अन्तिम अ का लोप, वावसाने से विकल्प से द् को त्। कतरे, कतराणि-ज्ञाने, ज्ञानानि के तुल्य। हे कतरत्-प्र० एक० के तुल्य। इसी

सूत्र से उ होकर प्रद्यु हुआ। इसके रूप मधु के तुल्य चलेंगे। जैसे—प्रद्यु प्रद्युनी प्रद्यूनि। प्रद्युना इत्यादि।

प्ररै (अधिक धन वाला, कुल) इसमें ह्रस्वो० (२४३) से ह्रस्व होने पर इस नियम से ऐ को इ होने पर प्ररि हुआ। इसके रूप वारि के तुल्य चलेंगे। जैसे—प्ररि प्ररिणी प्ररीणि। प्ररिणा। प्रराभ्याम्—एकदेशविकृत को अभिन्न मानने से इसको रै शब्द मानकर रायो हलि से हलादि विभक्तियों में आ हो जाएगा। प्रराभिः, प्रराभ्यः, प्ररासु। शेष वारि के तुल्य।

सुनौ (अच्छी नाव वाला, कुल)। सुनौ में नौ को ह्रस्व होकर सुनु शब्द बना। मधु के तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—सुनु सुनुनी सुनूनि। सुनुना आदि।

अजन्तनपुंसक समाप्त।

हलन्तपुलिंग-प्रकरण

लिह् (चाटने वाला)। सूचना—१. इसको सु और पद-स्थानों में ह् को ढ् होकर ड् हो जाता है। प्र० एक० में ड्, ट्; पद-स्थानों में ड्, सप्तमी बहु० में ट् और ट्त्। २. अन्य स्थानों पर केवल विभक्तियाँ जुड़ जाएँगी।

२५१. हो ढः (८-२-३१)

ह् को ढ् हो जाता है, झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ और ऊष्म) बाद में होने पर और पदान्त में। लिट्, लिड्—लिह्+सु (स्)। हल्ङ्या० से स् का लोप, इससे ह् को ढ्, झलां० (६७) से ढ् को ड्, वाव० (१४६) से ड् को विकल्प से ट्। लिहौ—लिह्+औ। लिहः—लिह्+जस् (अः)। लिड्भ्याम्—लिह्+भ्याम्। लिड् के तुल्य ह् को ढ् और ढ् को ड्। लिट्सु, लिट्त्सु—लिह्+सु। लिट् के तुल्य ह् को ढ्, ढ् को ड्, डः सि०(८६) से विकल्प से धु्, खरि च (७४) से धु् को त् और ड् को ट्, लिट्त्सु। पक्ष में खरि च (७४) से ड् को ट्।

दुह् (दुहने वाला)। सूचना—सु और पदस्थानों में दुह् के द् को ध् होगा और ह् को घ् होकर ग् हो जाएगा। प्रथमा एकवचन में ग् को विकल्प से क्, सप्तमी बहु० में घ् को क्, सु को मूर्धन्य षु होने से क् + षु = क्षु होगा। अन्यत्र केवल विभक्तियाँ जुड़ेंगी।

२५२. दादेर्धातोर्घः (८-२-३२)

द् आदि वाली धातु के ह् को घ् होता है, झल् बाद में होने पर और पदान्त में।

२५३. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (८-२-३७)

धातु के अवयव भष् (वर्ग के ४) अन्त वाले एकाच् के बश् (ब ग ड द) को भष् (भ घ ढ ध) हो जाता है, स् और ध्व बाद में होने पर तथा पदान्त में। अर्थात् इससे ब् को भ्, ग् को घ्, ड् को ढ्, द् को ध् चतुर्थ वर्ण होते हैं। धुक्, धुग्—दुह् + सु (स्)। स् का लोप, दादे० (२५२) से ह् को घ्, इससे द् को घ्, झलां० (६७) से घ् को ग्, वाव० (१४६) से ग् को क्। दुहौ—दुह् + औ। दुहः—दुह् + अः। धुग्भ्याम्—दुह् + भ्याम्। धुग् के तुल्य कार्य। धुक्षु—दुह् + सु। धुक् के तुल्य कार्य, सु को मूर्धन्य।

मुह् (द्रोह करने वाला)। सूचना—सु और पदस्थानों में द्रुह् के द् को घ्, ह् को ढ् और घ् दोनों होने से दो दो रूप बनेंगे, ड् और ग् वाले। प्रथमा एक० और सप्तमी बहु० में लिह् और दुह् दोनों के तुल्य रूप बनेंगे। शेष स्थानों पर केवल विभक्तियाँ जुड़ जाएँगी।

२५४. वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् (८-२-३३)

द्रुह् (द्रोही), मुह् (मुग्ध), ष्णुह् (कै करने वाला), स्निह् (प्रेमी) के ह् को विकल्प से घ् होता है, झल् परे रहते और पदान्त में। पक्ष में हो ढः (२५१) से ह् को ढ्। ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्—द्रुह् + सु (स)। स् का लोप, ह् को घ् और ढ्, धातु के द् को एकाचो० (२५३) से घ्, घ् को ग्, क् और ढ को ड् ट्। अतः ४ रूप बनेंगे। ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्—द्रुह् + भ्याम्। ध्रुग् और ध्रुड् के तुल्य कार्य होंगे। ध्रुक्षु, ध्रुट्सु, ध्रुट्त्सु—द्रुह + सु। ध्रुक्षु में ध्रुक् के तुल्य कार्य होंगे और शेष दोनों में ध्रुट् के तुल्य।

इसी प्रकार मुह् आदि के रूप बनेंगे। मुक्, मुग्, मुट्, मुड् आदि।

२५५. धात्वादेः षः सः (६-१-६४)

धातु के आदि ष को स हो जाता है। अतः ष्णुह् का स्नुह् हो गया और ष्णिह् का स्निह्। स्नुक्, स्नुग्, स्नुट्, स्नुड्—स्नुह + सु (स)। ध्रुक् आदि के तुल्य सारे कार्य होंगे। स्निक्, स्निग्, स्निट्, स्निड्—स्निह + सु (स्)। पूर्ववत्।

विश्ववाह् (संसार को चलाने वाला, ईश्वर)। सूचना—१. सु और पदस्थानों में इसके ह् को ढ् होने से ड् रहेगा। प्र० एक० में ट्, ड्, सप्तमी बहु० में ट् और ट्त्। २. भ-स्थानों में वाह् को ऊह् होकर विश्वौह् शब्द हो जाता है। विश्ववाट्, विश्ववाड्—विश्ववाह् + सु (स्)। स् का लोप, हो ढः (२५१) से ह को ढ्, ढ् को ड्, ट्। विश्ववाहौ—विश्ववाह् + औ। विश्ववाहः—विश्ववाह + जस् (अः)। विश्ववाहम्—विश्ववाह् + अम्।

२५६. इग् यणः संप्रसारणम् (१–१–४५)

य् को इ, व् को उ, र् को ऋ और ल् को ऌ होने को संप्रसारण कहते हैं।

२५७. वाह ऊठ् (६–४–१३२)

वाह् के व् को संप्रसारण ऊठ् (ऊ) हो जाता है, भ-स्थानों में।

२५८. संप्रसारणाच्च (६–१–१०८)

संप्रसारण से बाद के अच् को पूर्वरूप एकादेश हो जाता है। वाह० (२५७) से व् को ऊ होता है। इससे वा के आ को पूर्वरूप अर्थात् अ+आ=ऊ होने से विश्व+ऊह् होता है। एत्ये० (३४) से वृद्धि होने से विश्वौह् होता है। विश्वौहः—विश्ववाह्+शस् (अः)। व् को ऊ, आ को पूर्वरूप, एत्ये० (३४) से वृद्धि।

अनडुह् (बैल)। सूचना—१. पंचस्थानों में अनडुह् का अनड्वाह् हो जाता है। २. पद-स्थानों में ह् को द् होता है। ३. भस्थानों में विभक्तियाँ जुड़ जाएँगी।

२५९. चतुरनडुहोरामुदात्तः (७–१–९८)

चतुर् और अनडुह् शब्द के उ के बाद आम् (आ) हो जाता है, बाद में सर्वनामस्थान (पंचस्थान) हो तो।

२६०. सावनडुहः (७–१–८२)

अनडुह् शब्द को नुम् (न्) होता है, सु परे होने पर। यह न् आ के बाद लगेगा। अनड्वान्—अनडुह्+स्। चतुर० (२५९) से उ के बाद आ, इससे आ के बाद न्, उ को यण् व्, स् का लोप, संयोगान्तस्य० (२०) से अन्तिम ह् का लोप।

२६१. अम् संबुद्धौ (७–१–९९)

संबोधन (एक०) में अम् (अ) होगा। हे अनड्वन्—अनडुह्+स्। उ के बाद अ। शेष अनड्वान् के तुल्य। अनड्वाहौ—अनडुह्+औ। चतुर० (२५९) से उ के बाद आ, यण्। अनड्वाहः—अनडुह्+अः। अनड्वाहौ के तुल्य। अनडुहः, अनडुहा—अनडुह+शस् (अः), अनडुह्+आ।

२६२. वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः (८–२–७२)

वसु-प्रत्ययान्त के स् को, स्रंस् और ध्वंस् के स् को तथा अनडुह् के ह् को द् होता है, पदान्त में। अनडुद्भ्याम्—अनडुह्+भ्याम्। इससे ह् को द्। प्रत्युदाहरण—विद्वान्—इसमें अन्त में न् है, अतः द् नहीं। स्रस्तम्, ध्वस्तम्—इनमें स् पदान्त नहीं है, अतः स् को द् नहीं।

२६३. सहेः साडः सः (८-३-५६)

सह् धातु का साड् रूप बनने पर स को ष हो जाएगा। तुरासाह् (इन्द्र)। सूचना-१. सु और पदस्थानों में इसके ह् को ड् होगा और स को ष होगा। प्र० एक० में ट्, ड्; सप्तमी बहु० में ट्, ट्त्। २. अन्यत्र केवल विभक्तियाँ जुड़ेंगी।

तुराषाट् ड्—तुरासाह्+स्। स् का लोप, हो ढः (२५१) से ह् को ढ्, ढ् को ड, इससे स को ष, ड् को ट् विकल्प से। तुरासाहौ—तुरासाह् + औ। तुरासाहः—तुरासाह्+ अः। तुराषाड्भ्याम्—तुरासाह + भ्याम्। प्र० एक० के तुल्य ह् को ड्, स् को ष्।

२६४. दिव औत् (७-१-८४)

दिव् शब्द के व् को औ होता है, सु परे होने पर। सुदिव् (स्वच्छ आकाश वाला दिन)। सूचना—प्र० एक० में व् को औ होकर सुद्यौः बनता है। पद-स्थानों में व् को उ होकर सुद्यु शब्द हो जाता है। अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। सुद्यौः—सुदिव्+ स्। इससे व् को औ, यण् इ को य्, स् को विसर्ग। सुदिवौ—सुदिव् + औ।

२६५. दिव उत् (६-१-१३१)

दिव् के व् को उ हो जाता है, पदान्त में। सुद्युभ्याम्—सुदिव् + भ्याम्। इससे व् को उ, यण्।

चतुर् (चार)। सूचना—प्र० बहु० में चत्वारः होता है, ष० बहु० में चतुर्ण्णाम्, चतुर्णाम्, स० बहु० में चतुर्षु। शेष स्थानों पर केवल विभक्तियाँ जुड़ जाएँगी। इसके रूप होते हैं—चत्वारः, चतुरः, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः, चतुर्णाम्, चतुर्षु। चत्वारः—चतुर् + जस् (अः)। चतुर० (२५९) से उ के बाद आ, यण्। चतुरः—चतुर + शस् (अः)। चतुर्भिः—चतुर् + भिः। चतुर्भ्यः—चतुर् + भ्यः।

२६६. षट्चतुर्भ्यश्च (७-१-५५)

षट् संज्ञक और चतुर् शब्द के बाद आम् को नुम् (न्) होता है। आम् से पहले न् लगेगा।

२६७. रषाभ्यां नो णः समानपदे (८-४-१)

र् और ष् के बाद न् को ण् होता है, एक पद में। चतुर्ण्णाम्, चतुर्णाम्—चतुर् + आम्। षट्० (२६६) से न्, इससे न् को ण्, अचो रहाभ्यां० (६०) से ण् को विकल्प से द्वित्व। अतः दो रूप बने।

२६८. रोः सुपि (८-३-१६)

सुप् (सप्तमी बहुवचन) परे होने पर रु के र् को ही विसर्ग होता है।

२६९. शरोऽचि (८–४–४९)

अच् परे होने पर शर् (श ष स) को द्वित्व नहीं होता है। चतुर्षु—चतुर् + सु। खरव० (९३) से र् को विसर्ग प्राप्त था, रोः सुपि (२६८) ने निषेध किया। आदेश० (१५०) से स् को ष्, अचो० (६०) से ष् को द्वित्व प्राप्त था, इसने निषेध किया।

२७०. मो नो धातोः (८–२–६४)

धातु के म् को न् होता है, पदान्त में। प्रशाम् (बहुत शान्त)। सूचना—इसमें सु और पदस्थानों में म् को न् होता है, अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ जाएँगी। प्रशान्—प्रशाम् + स्। स् का लोप। इससे म् को न्।

२७१. किमः कः (७–२–१०३)

किम् को क हो जाता है, बाद में कोई विभक्ति हो तो। किम् (कौन)। सूचना—पुंलिंग में किम् को क हो जाने से इसके सारे रूप सर्व पुंलिंग के तुल्य चलेंगे। सर्ववत् सारे कार्य होंगे। जैसे—कः, कौ, के। कम् कौ कान्। कस्मै। कस्मात् आदि।

इदम् (यह)। सूचना-इसका प्रथमा एक० में अयम् बनता है। शेष प्रथमा, द्वितीया में इसका रूप इम बनता है, सर्ववत् रूप चलेंगे। तृतीया एक० और षष्ठी तथा सप्तमी द्विवचन में इदम् का अन् बचता है। शेष तृतीया से सप्तमी बहु० तक इदम् का अ बचता है। इस अ के सर्व के तुल्य रूप बनावें। द्वितीया, टा और ओः में विकल्प से इदम् को एन भी होता है।

२७२. इदमो मः (७–२–१०८)

इदम् का म् म् ही रहता है, सु परे होने पर। अतः त्यदादीनामः (१९३) से म् को अ नहीं होगा।

२७३. इदोऽय् पुंसि (७–२–१११)

इदम् के इद् भाग के स्थान पर अय् होता है, सु बाद में हो तो, पुंलिंग में। अयम्—इदम् + स्। इससे इद् को अय्, हल्० (१७९) से स् का लोप।

२७४. अतो गुणे (६–१–९७)

पदान्त-भिन्न अ के बाद अ ए ओ हों तो दोनों को पररूप एकादेश होता है।

२७५. दश्च (७–२–१०९)

इदम् के द् को म् होता है, बाद में कोई विभक्ति हो तो। इमौ—इदम् + औ। त्यदादीनामः (१९३) से म् को अ, अतो० (२७४) से दोनों अ को पररूप होकर अ, इससे द् को म्, वृद्धिरेचि (३३) से वृद्धि। इमे—इदम् + जस्। इमौ के

तुल्य म् को अ, पररूप, द् को म्, इम + जस्, सर्व के तुल्य जस् को शी (ई), गुण। (त्यदादेः संबोधनं नास्तीत्युत्सर्गः) त्यद् आदि सर्वनाम शब्दों का संबोधन नहीं होता है, यह सामान्य नियम है। ये सर्वनाम शब्द हैं। सर्वनामों से किसी का संबोधन संभव नहीं है।

२७६. अनाप्यकः (७-२-११२)

क-रहित इदम् के इद् को अन् होता है, टा (तृतीया एक०) से लेकर सुप् (स० बहु०) तक कोई विभक्ति हो तो। सूचना—टा (तृ०एक०) और ओः (षष्ठी और सप्तमी द्वि०) में ही यह नियम लगता है। अनेन—इदम् + टा। म् को पूर्ववत् अ, पररूप, इससे इद् को अन्, अन + टा, टा को रामेण के तुल्य इन और गुण एकादेश।

२७७. हलि लोपः (७-२-११३)

क-रहित इदम् के इद् का लोप हो जाता है, बाद में हलादि टा से सु तक कोई विभक्ति हो तो। (नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे, परि०) अलोऽन्त्यस्य (२१) नियम अनर्थक में नहीं लगता, अभ्यासविकार में अनर्थक में भी यह नियम लगेगा। इस नियम के कारण पूरे इद का लोप होगा।

२७८. आद्यन्तवदेकस्मिन् (१-१-२१)

एक वर्ण को किया जाने वाला कार्य आदिवत् और अन्तवत् होता है। अर्थात् उसी वर्ण को प्रथम और अन्त दोनों वर्ण माना जाता है। आभ्याम्—इदम + भ्याम्। पूर्ववत् म् को अ, पररूप, हलि लोपः (२७७) से इद् का लोप, अ को इससे अकारान्त मानकर सुपि च (१४१) से दीर्घ।

२७९. नेदमदसोरकोः (७-१-११)

क-रहित इदम् और अदस् के बाद भिस् को ऐस् (ऐः) नहीं होता है। एभिः—इदम् + भिः। पूर्ववत् म् को अ, पररूप, हलि० (२७७) से इद् का लोप, भिः को ऐः का निषेध, बहुवचने० (१४५) से अ को ए।

सूचना—चतुर्थी एक० से लेकर सप्तमी बहु० तक इद् का लोप होने से शब्द अ ही बचता है, इसके रूप सर्व पुंलिंग के तुल्य बनते हैं। षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में इद को अन होने से अनयोः रूप बनता है। जैसे—अस्मै, आभ्याम्, एभ्यः। अस्मात्। अस्य अनयोः एषाम्। अस्मिन् अनयोः एषु।

२८०. द्वितीयाटौस्स्वेनः (२-४-३४)

इदम् और एतद् शब्द को एन आदेश होता है, द्वितीया (तीनों वचन), टा (तृ० एक०) और ओस् (ष० स० द्वि०) बाद में होने पर, अन्वादेश में।

किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः। यथा—अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय। अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः प्रभूत स्वम्, इति।

अन्वादेश का अर्थ है—पहले किसी काम के लिए जिसका उल्लेख किया गया है, बाद में अन्य कार्य के लिए उसके उल्लेख को अन्वादेश कहते हैं। जैसे—इसने व्याकरण पढ़ा है, इसको वेद पढ़ाओ। इन दोनों का कुल पवित्र है, इन दोनों के पास बहुत धन है। अतः इन उदाहरणों में एनम्, एनयोः प्रयोग हुए हैं। एन आदेश होने पर सर्व के तुल्य ये रूप बनेंगे :—एनम्, एनौ, एनान्। एनेन। एनयोः। एनयोः।

राजन् (राजा)। सूचनाः—१. पंचस्थानों में इसके अ को आ होता है। प्र० एक० में राजा बनता है, सं० एक० में राजन्। २. पद-स्थानों में न् का लोप होगा और दीर्घ आदि कोई काम नहीं होगा। ३. भ-स्थानों में अन् के अ का लोप होगा, श्चुत्व होने से न् को ञ्। अतः भ-स्थानों में ज् वाले रूप बनेंगे। सप्तमी एक० में राजनि भी बनता है। राजा—राजन्+स्। स् का लोप, सर्वनाम० (१७७) से अ को दीर्घ आ, नलोपः० (१८०) से न् का लोप।

२८१. न ङिसम्बुद्ध्योः (८-२-८)

न् का लोप नहीं होता है, बाद में ङि (स०एक०) और संबुद्धि (सं० एक०) हो तो। नलोपः० (१८०) से प्राप्त नलोप का निषेध है। हे राजन्—हे राजन्+स्। स् का लोप। न् का लोप नहीं। (ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः, वा०) यदि ङि के बाद उत्तरपद (कोई अगला शब्द) होगा तो न् का लोप हो जाएगा। जैसे—ब्रह्मनिष्ठः—ब्रह्मणि निष्ठा यस्य सः, बहुव्रीहि समास। बीच की सप्तमी का लोप, इस नियम से न् का लोप। राजानौ—राजन्+औ। सर्वनाम० (१७७) से ज के अ को आ। राजानः—राजन्+जस् (अः)। राजानौ के तुल्य अ को आ। राज्ञः—राजन्+शस् (अः)। अल्लोपोऽनः (२४७) से अन् के अ का लोप, स्तोः श्चुना श्चुः (६२) से न् को ञ्, ज्+ञ्=ज्ञ्।

२८२. नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति (८-२-२)

इन कार्यों के विषय में नलोपः० (१८०) से हुआ न् का लोप असिद्ध रहता है:—१. सुप्-संबन्धी कार्य, २. स्वरकार्य, ३. संज्ञा-कार्य, ४. कृत् प्रत्यय परे होने पर तुक् (त्) के आगम का कार्य। अन्यत्र नहीं, अतः राजाश्वः में न् का लोप सिद्ध मानकर सवर्णदीर्घ हुआ। राज्ञः अश्वः, राजाश्वः। न् का लोप असिद्ध होने से ये काम नहीं होते:—

१. आ (राजभ्याम् में अ को दीर्घ आ), २. ए (राजभ्यः में बहुवचने० से ए), ३. ऐः (राजभिः में भिः को ऐः)। राजभ्याम्—राजन्+भ्याम्। न् का लोप, अ को आ नहीं। राजभिः—राजन्+भिः। न् का लोप, भिः को ऐः नहीं हुआ।

राज्ञि, राजनि—राजन् + ङि (इ)। विभाषा० (२४८) से विकल्प से अन् के अ का लोप। राजसु—राजन् + सु। न् का लोप।

यज्वन् (विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाला)। सूचना—१. पंचस्थानों में राजन् के तुल्य अन् के अ को आ। २. पद-स्थानों में न् का लोप। ३. भस्थानों में अ का लोप नहीं होगा। राजन् के तुल्य दीर्घ, नलोप आदि कार्य होंगे। जैसे—यज्वा यज्वानौ यज्वानः। यज्वानम् यज्वानौ।

२८३. न संयोगाद् वमन्तात् (६-४-१३७)

यदि व् और म् अन्तवाले संयुक्त अक्षर के बाद अन् होगा तो अन् के अ का लोप नहीं होगा। यज्वनः—यज्वन् + शस् (अः)। अ का लोप नहीं। इसी प्रकार यज्वना। यज्वभ्याम्—यज्वन् + भ्याम्। न् का लोप।

ब्रह्मन् (ब्रह्मा)। सूचना—यज्वन् के तुल्य सारे रूप चलेंगे। मकारान्त संयोग होने से अ का लोप नहीं होगा। जैसे—ब्रह्मणः, ब्रह्मणा।

वृत्रहन् (इन्द्र)। १. सु में दीर्घ होकर वृत्रहा बनेगा, सं० एक० में वृत्रहन्। २. शेष पंचस्थानों में दीर्घ नहीं होगा, न् को ण् होगा। ३. पदस्थानों में न् का लोप। ४. भस्थानों में अलोप होकर ह को घ्, अतः घ्न् वाले रूप बनेंगे। स० एक० में दो रूप बनेंगे।

२८४. इन्हन्पूषार्यम्णां शौ (६-४-१२)

इन् अन्तवाले शब्द (दण्डिन् आदि), हन्, पूषन् (सूर्य) और अर्यमन् (सूर्य) शब्दों की उपधा को दीर्घ शि (नपुं० प्रथमा बहु०) परे होने पर ही होता है, अन्यत्र नहीं।

२८५. सौ च (६-४-१३)

इन् आदि (२८४ में उक्त) की उपधा को दीर्घ होता है, संबुद्धि-भिन्न सु बाद में हो तो। वृत्रहा—वृत्रहन् + सु (स्)। स् का लोप, इससे अ को आ, नलोपः० से न् का लोप। हे वृत्रहन्—सं० एक० में दीर्घ नहीं होगा और न् लोप नहीं होगा।

२८६. एकाजुत्तरपदे णः (८-४-१२)

यदि समास का उत्तरपद (अन्तिमशब्द) एक अच् वाला हो और प्रथम पद में र् या ष् हो तो इन स्थानों पर न् को ण् हो जाता है—शब्द का अन्तिम न्, नुम् का न्, विभक्ति का न्। वृत्रहणौ—वृत्रहन् + औ। इससे न् को ण्।

२८७. हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु (७-३-५४)

हन् के ह् को घ् हो जाता है, बादमें ञित् और णित् प्रत्यय हो या न बाद हो तो। वृत्रघ्नः—वृत्रहन् + शस् (अः)। अल्लोपोऽनः (२४७) से अ का लोप, इससे ह को

घ। इसी प्रकार शार्ङ्गिन् (विष्णु), यशस्विन् (यशस्वी), अर्यमन् (सूर्य), पूषन् (सूर्य) के रूप चलेंगे।

मघवन् (इन्द्र)। सूचना—१. मघवन् को विकल्प से मघवत् हो जाता है। इसमें पंचस्थानों में बीच में न् जुड़ेगा, मघवन्तौ आदि। पद-स्थानों में त् को द्, सु (स० बहु०) में त् रहेगा। २. पक्ष में पंचस्थानों और पदस्थानों में राजन् के तुल्य रूप होंगे। भस्थानों में व् को संप्रसारण होने से मघोन् शब्द के रूप चलेंगे।

२८८. मघवा बहुलम् (६-४-१२८)

मघवन् शब्द को विकल्प से मघवतृ (मघवत्) शब्द हो जाता है।

२८९. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (७-१-७०)

धातु-भिन्न उगित् (जिसमें से उ, ऋ हटा हो) को और अञ्च् धातु के अच् रूप वाले स्थानों में नुम् (न्) आगम होता है, सर्वनामस्थान (पंचस्थान) परे होने पर। मघवान्—मघवन्+स्। मघवन् को मघवत्, इससे नुम् (न्), मघवन्त्+स्, स् और त् का लोप, अ को आ। मघवन्तौ, मघवन्तः—मघवत्+औ, मघवत्+अः। इससे बीचमें न्। सं० एक० में मघवन् होगा। मघवद्भ्याम्—त् को द्। मघवा—पक्ष में मघवन्+स्। राजा के तुल्य। पंचस्थानों में राजन् के तुल्य रूप बनेंगे।

२९०. श्वयुवमघोनामतद्धिते (६-४-१३३)

श्वन् (कुत्ता), युवन् (युवक), मघवन् (इन्द्र) इन अन् अन्त वालों के व् को उ संप्रसारण होता है, भस्थानों में, तद्धित में नहीं। मघोनः—मघवन्+शस् (अः)। इससे व् को उ, अ को पूर्वरूप, अ+उ को ओ गुण होकर मघोन्+अः। मघवभ्याम्—न् का लोप। इसी प्रकार श्वन् (कुत्ता), युवन् (युवक) के रूप चलेंगे।

२९१. न संप्रसारणे संप्रसारणम् (६-१-३७)

संप्रसारण बाद में हो तो पहले यण् (य र ल व) को संप्रसारण नहीं होता है। यूनः—युवन्+शस् (अः)। श्वयुव० (२९०) से व् को उ, पूर्वरूप, इससे य् को संप्रसारण इ का निषेध, यु+उन्=यून्+अः। इसी प्रकार यूना। युवभ्याम्—न् का लोप।

अर्वन् (घोड़ा)। सूचना—१. प्रथमा एक० और सं० एक० में राजा के तुल्य अर्वा, हे अर्वन्। २. शेष सभी स्थानों पर अर्वन् के न् को त् होकर अर्वत् शब्द होगा। ३. शेष चार पंचस्थानों में बीच में न् जुड़ेगा। ४. पदस्थानों में त् को द्। अर्वा—अर्वन्+स्। राजा के तुल्य। हे अर्वन्—हे राजन् के तुल्य।

२९२. अर्वणस्त्रसावनञः (६-४-१२७)

सु (प्र० एक०) को छोड़कर शेष सभी स्थानों पर अर्वन् के न् को त् हो जाता है,

नञ् समास में नहीं। अर्वन्तौ, अर्वन्तः—मघवन्तौ, मघवन्तः के तुल्य। अर्वद्भ्याम्—अर्वन्+भ्याम्। इससे न् को त्, त् को द्।

२९३. पथिमथ्यृभुक्षामात् (७-१-८५)

पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् के न् को आ हो जाता है, सु बाद में हो तो।

२९४. इतोऽत् सर्वनामस्थाने (७-१-८६)

पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् के इ को अ हो जाता है, सर्वनामस्थान (पंचस्थान) बाद में हो तो।

२९५. थो न्थः (७-१-८७)

पथिन् और मथिन् के थ् को न्थ् हो जाता है, बाद में सर्वनामस्थान (पंचस्थान) हो तो।

पथिन् (मार्ग)। सूचना—१. प्र० एक० में पन्थाः। २. शेष पंचस्थानों में पन्थन् शब्द हो जाने से राजन् के तुल्य। ३. पदस्थानों में पथिन् के न का लोप। ४. भस्थानों में इन् का लोप होने से पथ् शब्द रहेगा। २९३ से २९६ सूत्र इसमें लगेंगे।

पन्थाः—पथिन्+स्। पथि० (२९३) से न् को आ, इतोऽत्० (२९४) से इ को अ, थो न्थः (२९५) से थ् को न्थ्, सवर्ण दीर्घ आ, स् को विसर्ग। पन्थानौ पन्थानः—पथिन्+औ, पथिन्+जस् (अः)। इतोऽत्० से इ को अ, थो न्थः से थ् को न्थ्, सर्वनाम० (१७७) से अन् के अ को दीर्घ।

२९६. भस्य टेर्लोपः (७-१-८८)

पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् के इन् का लोप हो जाता है, भ-स्थानों में। पथः—पथिन्+शस् (अः)। इससे इन् का लोप। पथा—पथिन्+आ। इन् का लोप। पथिभ्याम्—पथिन्+भ्याम्। न् का लोप। इसी प्रकार मथिन् (मथनी, रई) और ऋभुक्षिन् (इन्द्र) के रूप चलेंगे।

२९७. ष्णान्ताः षट् (१-१-२४)

ष् और न् अन्त वाले संख्यावाचक शब्दों की षट् संज्ञा होती है।

पञ्चन् (पाँच)। सूचना—१. प्रथमा और द्वितीया बहु० में विभक्ति का और न् का लोप। २. पदस्थानों में न् का लोप। ३. नाम् में अ को आ और न् का लोप। पञ्चन् शब्द सदा बहुवचन में आता है।

पञ्च, पञ्च—पञ्चन्+जस्, पञ्चन्+शस्। षड्भ्यो० (१८८) से जस् और शस् का लोप, नलोपः० से अन्तिम न् का लोप। पञ्चभिः, पञ्चभ्यः, पञ्चभ्यः—न् का लोप।

२९८. नोपधायाः (६-४-७)

न् अन्त वाले शब्द की उपधा को दीर्घ होता है, बाद में नाम् हो तो। पञ्चानाम्—

पञ्चन्+आम्। पट्० (२६६) से नुट् (न्), इससे च के अ को दीर्घ, नलोप० (१८०) से न् का लोप। पञ्चसु—पञ्चन्+सु। नलोपः० (१८०) से न् का लोप।

२९९. अष्टन आ विभक्तौ (७–२–८४)

अष्टन् शब्द के न् को विकल्प से आ हो जाता है, बाद में हलादि (व्यंजन से प्रारम्भ होने वाली) विभक्ति हो तो।

३००. अष्टाभ्य औश् (७–१–२१)

अष्टन् शब्द का अष्टा बनने पर बाद के जस् और शस् को औश् (औ) हो जाता है।

अष्टन् (आठ)। सूचना—इसके दो प्रकार से रूप चलते हैं :— १. पञ्चन् के तुल्य पूरे रूप। २. न् को आ होने पर अष्टा शब्द बनता है। इसके रूप होते हैं—अष्टौ, अष्टौ, अष्टाभिः, अष्टाभ्यः, अष्टाभ्यः, अष्टानाम्, अष्टासु। अष्टौ, अष्टौ—अष्टन्+जस्, अष्टन्+शस्। न् को अष्टन० (२९९) से आ, सवर्णदीर्घ अष्टा, अष्टाभ्य० (३००) से औ+वृद्धि। अष्टानाम्—अष्टन्+आम्। पञ्चानाम् के तुल्य नुट्, २९९ से न् को आ, दीर्घ। पक्ष में पञ्चन् के तुल्य।

३०१. ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च (३–२–५९)

ऋतु+यज्, दधृष्, सृज्, दिश्, उष्णिह्, अञ्च्, युज् और क्रुञ्च्, इन धातुओं से क्विन् (०) प्रत्यय होता है। क्रुञ्च् के न् का लोप नहीं होता है। क्विन् का कुछ भी शेष नहीं रहता है। इसके क् और न् का लोप, वि के इ का भी लोप।

३०२. कृदतिङ् (३–१–९३)

धातोः (३–१–९१) के अधिकार में तिङ् से भिन्न प्रत्ययों को कृत् कहते हैं।

३०३. वेरपृक्तस्य (६–१–६७)

वि के व् का लोप हो जाता है। इससे क्विन् के व् का लोप।

३०४. क्विन्प्रत्ययस्य कुः (८–२–६२)

क्विन् (०) प्रत्यय से बने हुए शब्दों के अन्तिम वर्ण को कवर्ग हो जाता है, पदान्त में।

ऋत्विज् (यज्ञ करने वाला)। सूचना—पदस्थानों में ज् को ग्, सप्तमी बहु० में ज् को क्+षु=क्षु। अन्य स्थानों पर केवल विभक्तियाँ जुड़ जाएँगी।

ऋत्विक्-ग्—ऋत्विज्+स्। हल्० (१७९) से स् का लोप, क्विन्० (३०४) को असिद्ध होने से रोक कर चोः कुः (३०६) से ज् को ग्, वावसाने (१४६) से ग् को क्। ऋत्विग्भ्याम्—ज् को ग्।

३०५. युजेरसमासे (७-१-७१)

युज् शब्द को नुम् (न्) हो जाता है, बाद में सर्वनामस्थान (पंचस्थान) हो तो, समास में नहीं।

युज् (योगी)। सूचना-१. सु में युङ् रूप बनेगा। शेष पंचस्थानों में न् होने से युञ्ज् शब्द रहेगा। २. पदस्थानों में ज् को ग्, सप्तमी बहु० में क्+सु=क्षु। अन्यत्र केवल विभक्तियाँ जुड़ेंगी। युङ्-युज्+स्। युजे० (३०५) से न्, स् का लोप, संयोगान्तस्य० से ज् का लोप, क्विन् (३०४) से न् को ङ्। युञ्जौ-युज्+औ। युजे० (३०५) से न्, न् को अनुस्वार और परसवर्ण होकर ञ्। युञ्जः—युज्+जस् (अः)। युञ्जौ के तुल्य। युग्भ्याम्—ज् को ग्।

३०६. चोः कुः (८-२-३०)

चवर्ग को कवर्ग होता है, पदान्त में या बाद से झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) हो तो।

सुयुज् (उत्तम योगी)। सूचना-सु और पदस्थानों में ज् को ग्, स० बहु० में क्+षु=क्षु। सुयुक् ग्-सुयुज्+स्। स् का लोप, इससे ज् को ग, वाव० (१४६) से ग् को क्। इसके रूप होंगे—सुयुजौ, सुयुजः। सुयुग्भ्याम्, आदि।

खञ्ज् (लँगड़ा)। सूचना-प्र० एक० में खन्। पदस्थानों में ज् का लोप होने से खन् शब्द रहेगा। अन्यत्र केवल विभक्तियाँ जुड़ेंगी। इसके रूप होंगे—खन् खञ्जौ खञ्जः। खन्भ्याम्, खन्सु आदि। खन्—खञ्ज्+स्। स् का लोप, संयोगान्त होने से ज् का लोप।

३०७. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः (८-२-३६)

व्रश्च् (काटना) भ्रस्ज् (भूनना), सृज् (बनाना), मृज् (साफ करना), यज् (यज्ञ करना), राज् (चमकना), भ्राज् (चमकना) धातुओं को तथा च्छ् और श् को ष् होता है, पदान्त में और बाद में झल् हो तो।

राज् (राजा)। सूचना-प्र० एक० में राट्, राड्। पदस्थानों में ज् को ष् होकर ड् बनेगा। स० बहु० में ड् को ट्। अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। राट्, राड्-राज्+स्। स् का लोप, इससे ज् को ष्, झलां० (६७) से ष् को ड्, ड् को विकल्प से ट्। राजौ, राजः-राज्+औ, राज् +अः। राड्भ्याम्-राज्+भ्याम्। राड् के तुल्य ज् को ष् और ष् को ड्। इसी प्रकार विभ्राज् (विशेष दीप्तिमान्), देवेज् (देवपूजा करनेवाला), विश्वसृज् (संसार को बनानेवाला, ईश्वर) के रूप चलेंगे।

(परौ व्रजेः षः पदान्ते, वा०) परि+व्रज् से क्विप् (०) प्रत्यय होता है, व्रज् के अ को दीर्घ होता है और पदान्त में ज् को ष् होता है। परिव्राज् (संन्यासी)। सूचना-१. परि+व्रज् से क्विप् होता है। पूरे क्विप् का लोप हो जाता है। व्रज् के अ को

दीर्घ होने से परिव्राज् शब्द होता है। सु में ज् को ष् होने से ष् को ड् और ट्। २. पदस्थानों में ज् को ष् होने से ड् और स० बहु० में ट्। अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। परिव्राट्–परिव्राज्+स्। स् का लोप, ज् को ष्, ष् को ड् और ट्। परिव्राजौ—परिव्राज्+औ।

३०८. विश्वस्य वसुराटोः (६–३–१२८)

विश्व शब्द को विश्वा हो जाता है, बाद में वसु और राट् शब्द हो तो। राट् से अभिप्राय है राज् शब्द के पदान्तवाले रूप। विश्वराज् (संसार का स्वामी, ईश्वर)। सूचना–१. सु और पदस्थानों में विश्व को विश्वा हो जाएगा तथा राज् के ज् को *व्रश्च० (३०७) से ष् होगा। सु में ष् को ड्, ट्, पदस्थानों में ष् को ड् और सप्तमी* बहु० में ष् को ट्। २. अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे—विश्वाराट्, विश्वाराड्। विश्वराजौ। विश्वाराड्भ्याम्।

३०९. स्कोः संयोगाद्योरन्ते च (८–२–२९)

संयुक्त वर्णों के आदि के स् और क् का लोप हो जाता है, पदान्त में और बाद में झल् हो तो। भ्रस्ज् (भड़भूजा)। सूचना–१. सु और पदस्थानों में भ्रस्ज् के स् का लोप होने से भ्रज् शब्द रहेगा। व्रश्च० (३०७) से ज् को ष् होने से ष् को सु में ड्, ट्, पदस्थानों में ड् और स० बहु० में ट् रहेगा। २. शेष सभी स्थानों पर स् को श्चुत्व होकर श् और जश्त्व संधि से ज् होने से भृज्ज् शब्द रहेगा। जैसे–भृट्। भृज्जौ। भृज्जः। भृड्भ्याम्। भृट्सु।

३१०. तदोः सः सावनन्त्ययोः (७–२–१०६)

त्यद्, तद् और एतद् के त को तथा अदस् के द् को स हो जाता है, सु परे होने पर। सूचना–अतएव पुं० और स्त्री० में प्रथमा एक० में इनके रूप होते हैं—स्यः, स्या। सः, सा। एषः, एषा। नपुं० में सु का लुक् होने से त् को स् नहीं होता। अतः रूप होते हैं–त्यद्, तद्, एतद्।

त्यद् (वह), तद् (वह), यद् (जो), एतद् (यह)। सूचना–१. चारों शब्दों के अन्तिम द् को त्यदादीनामः (१९३) से अ, अतो गुणे (२७४) से पररूप अ होने से त्य, त, य और एत शब्द शेष रहते हैं। सु में इनके रूप होते हैं—स्यः, सः, यः और एषः। २. अन्य सभी स्थानों पर सर्व के तुल्य रूप चलेंगे। जैसे–१. स्यः त्यौ त्ये। २. सः तौ ते। ३. यः यौ ये। ४. एषः एतौ एते आदि।

युष्मद् (तू), अस्मद् (मैं)। सूचना—युष्मद् और अस्मद् शब्द के रूप बहुत अनियमित चलते हैं। इनमें नियम भी बहुत लगते हैं, अतः इनके रूप ही स्मरण कर लें।

युष्मद् (तू)				अस्मद् (मैं)		
त्वम्	युवाम्	यूयम्	प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वाम् त्वा	युवाम् वाम्	युष्मान् वः	द्वि०	माम् मा	आवाम् नौ	अस्मान् नः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
तुभ्यम् ते	युवाभ्याम् वाम्	युष्मभ्यम् वः	च०	मह्यम् मे	आवाभ्याम् नौ	अस्मभ्यम् नः
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव ते	युवयोः वाम्	युष्माकम् वः	ष०	मम मे	आवयोः नौ	अस्माकम् नः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	स०	मयि	आवयोः	अस्मासु

युष्मद् (तू)। सूचना—इसमें मुख्य कार्य ये होते हैं:—१. त्वम्—युष्म् को त्व, अद् का लोप, सु को अम्। २. युवाम्-युष्म् को युव, द् को आ, औ को अम्। ३. यूयम्-युष्म् को यूय, अद् का लोप, जस् को अम्। ४. त्वाम्-युष्म् को त्व, द् को आ। ५. युवाम्-पूर्ववत्। ६. युष्मान्—द् को आ, अस् के अ को न्, स् का लोप। ७. त्वया—युष्म् को त्व, द् को य्। ८. युवाभ्याम्—युष्म् को युव, द् को आ। ९. युष्माभिः—द् को आ। १०. तुभ्यम्—युष्म् को तुभ्य, अद् का लोप, ङे को अम्। ११. युवाभ्याम्—पूर्ववत्। १२. युष्मभ्यम्—अद् का लोप, भ्यः को अभ्यम्। १३. त्वत्—युष्म् को त्व, अद् का लोप, ङसि को अत्। १४. युवाभ्याम्—पूर्ववत्। १५. युष्मत्—अद् का लोप, भ्यः को अत्। १६. तव—युष्म् को तव, अद् का लोप, ङस् को अ। १७. युवयोः—युष्म् को युव, द् को य्। १८. युष्माकम्—बीच में स्, साम् को आकम्, अद् का लोप। १९. त्वयि—युष्म् को त्व, द् को य्। २०. युवयोः—पूर्ववत्। २१. युष्मासु—द् को आ। २२. त्वा—द्वितीया एक० में त्वाम् को त्वा। २३. ते—चतुर्थी और षष्ठी एक० में तुभ्यम् और तव को ते। २४. वाम्—द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी द्विवचन को वाम्। २५. वः—द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी बहुवचन को वः।

अस्मद् (मैं)। सूचना—इसमें मुख्य कार्य ये होते हैं:—१. अहम्—अस्म् को अह, अद् का लोप, सु को अम्। २. आवाम्—अस्म् को आव, द् को आ, औ को अम्। ३. वयम्—अस्म् को वय, अद् का लोप, जस् को अम्। ४. माम्—अस्म् को म, द् को आ। ५. आवाम्—पूर्ववत्। ६. अस्मान्—द् को आ, अस् के अ को न्, स् का लोप। ७. मया—अस्म् को म, द् को य्। ८. आवाभ्याम्—अस्म् को आव, द् को आ। ९. अस्माभिः—द् को आ। १०. मह्यम्—अस्म् को मह्य, अद् का लोप, ङे को अम्। ११. आवाभ्याम्— पूर्ववत्। १२. अस्मभ्यम्—अद् का लोप, भ्यः को अभ्यम्। १३. मत्— अस्म् को म, अद् का लोप, ङसि को अत्। १४. आवाभ्याम्—

पूर्ववत् । १५. अस्मद्—अद् का लोप, भ्यः को अत् । १६. मम—अस्म् को मम, अद् का लोप, ङस् को अ । १७. आवयोः— अस्म् को आव, द् को य् । १८. अस्माकम्—बीच में स् , साम् को आकम् , अद् का लोप । १९. मयि—अस्म् को म, द् को य् । २०. आवयोः—पूर्ववत् । २१. अस्मासु—द् को आ । २२.मा—द्वितीया एक० में माम् को मा । २३. मे— चतुर्थी और षष्ठी एक० में मह्यम् और मम को मे । २४. नौ—द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी द्विवचन को नौ । नः—द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी बहुवचन को नः ।

सूचना—युष्मद् और अस्मद् शब्द से संबद्ध निम्नलिखित सूत्रों के केवल कार्यों का वर्णन है । प्रत्येक रूप की विशद सिद्धि नहीं दी गई है ।

३११. ङेप्रथमयोरम् (७-१-२८)

युष्मद् और अस्मद् शब्द के बाद ङे और प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति को अम् आदेश होता है ।

३१२. त्वाहौ सौ (७-२-९४)

युष्म् को त्व और अस्म् को अह आदेश होते हैं, बाद में सु हो तो ।

३१३. शेषे लोपः (७-२-९०)

युष्मद् और अस्मद् के अद् का लोप होता है । जिन विभक्तियों के परे होने पर आ या य् होते हैं, वहाँ पर लोप नहीं होगा ।

त्वम्—युष्मद् + सु । अहम्—अस्मद् + सु ।

३१४. युवावौ द्विवचने (७-२-९२)

द्विवचन में युष्म् को युव और अस्म् को आव होते हैं, बाद में विभक्ति हो तो ।

३१५. प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् (७-२-८८)

युष्मद् और अस्मद् के द् को आ होता है, प्रथमा के द्विवचन का औ बाद में हो तो । युवाम्-युष्मद् + औ । आवाम्—अस्मद् + औ ।

३१६. यूयवयौ जसि (७-२-९३)

युष्म् को यूय और अस्म् को वय आदेश होते हैं, बाद में जस् हो तो । यूयम्-युष्मद् + जस् । वयम्—अस्मद् + जस् ।

३१७. त्वमावेकवचने (७-२-९७)

एकवचन में युष्म् को त्व और अस्म् को म होते हैं, बाद में विभक्ति हो तो ।

३१८. द्वितीयायां च (७-२-८७)

युष्मद् और अस्मद् के द् को आ होता है, द्वितीया विभक्ति में । त्वाम्—युष्मद् + अम् । माम्—अस्मद् + अम् ।

३१९. शसो न (७-१-२९)

युष्मद् और अस्मद् शब्द के बाद शस् (अस्) के अ को न् होता है। स् का संयोगान्त-लोप। युष्मान्—युष्मद् + शस्। अस्मान्—अस्मद् + शस्।

३२०. योऽचि (७-२-८९)

युष्मद् और अस्मद् शब्द के द् को य् होता है, बाद में ऐसी अजादि विभक्ति हो जिसे कुछ आदेश न हुआ हो। त्वया—युष्मद् + आ। मया—अस्मद् + आ।

३२१. युष्मदस्मदोरनादेशे (७-२-८६)

युष्मद् और अस्मद् के द् को आ होता है, बाद में अनादेश (जिसे कुछ आदेश न हुआ हो) हलादि विभक्ति हो तो। युवाभ्याम्—युष्मद्+भ्याम्। आवाभ्याम्—अस्मद् + भ्याम्। युष्माभिः—युष्मद् + भिः। अस्माभिः—अस्मद् + भिः।

३२२. तुभ्यमह्यौ ङयि (७-२-९५)

युष्म् को तुभ्य और अस्म् को मह्य होता है, बाद में ङे हो तो। अद् का लोप होगा। तुभ्यम्—युष्मद् + ङे। ङे को अम्। मह्यम्—अस्मद् + ङे। ङे को अम्।

३२३. भ्यसोऽभ्यम् (७-१-३०)

युष्मद् और अस्मद् के बाद भ्यस् को अभ्यम् होता है। युष्मभ्यम्—युष्मद् + भ्यः। अस्मभ्यम्—अस्मद् + भ्यः।

३२४. एकवचनस्य च (७-१-३२)

युष्मद् और अस्मद् के बाद ङसि (पंचमी एक०) को अत् हो जाता है। त्वत्—युष्मद् + ङसि। मत्—अस्मद् + ङसि।

३२५. पञ्चम्या अत् (७-१-३१)

युष्मद् और अस्मद् के बाद पंचमी के भ्यस् को अत् होता है। युष्मत्—युष्मद् + भ्यः। अस्मत्—अस्मद् + भ्यः।

३२६. तवममौ ङसि (७-२-९६)

युष्म् को तव और अस्म् को मम होता है, बाद में ङस् (षष्ठी एक०) हो तो।

३२७. युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् (७-१-२७)

युष्मद् और अस्मद् के बाद ङस् (षष्ठी एक०) को अश् (अ) हो जाता है। तव—युष्मद् + ङस्। मम—अस्मद् + ङस्। युवयोः—युष्मद् + ओः। आवयोः—अस्मद् + ओः।

३२८. साम आकम् (७-१-३३)

युष्मद् और अस्मद् के बाद साम् (स् + आम्, ष० बहु०) को आकम् होता है। आम् को सुट् (स्) होने पर साम् हो जाता है। युष्माकम्—युष्मद्+आम्। अस्माकम्—

अस्मद् + आम्। त्वयि—युष्मद् + ङि। मयि—अस्मद् + ङि। युवयोः—युष्मद् + ओः। आवयोः—अस्मद् + ओः। युष्मासु—युष्मद् + सु। अस्मासु—अस्मद् + सु।

३२९. युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ (८–१–२०)

युष्मद् और अस्मद् शब्दों के द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी के द्विवचन के रूपों को क्रमशः वाम् और नौ आदेश हो जाते हैं, यदि ये किसी शब्द के बाद में हों और श्लोक आदि के पाद के प्रारम्भ में न हों। युवाम्>वाम्। युवाभ्याम्>वाम्। युवयोः>वाम्। आवाम्>नौ। आवाभ्याम्>नौ। आवयोः>नौ।

३३०. बहुवचनस्य वस्नसौ (८–१–२१)

पद से परे और पाद के आदि में अविद्यमान युष्मद् और अस्मद् के द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी के बहुवचन के रूपों को क्रमशः वः और नः आदेश होते हैं। युष्मान्>वः, युष्मभ्यम्>वः, युष्माकम्>वः। अस्मान्>नः, अस्मभ्यम्>नः, अस्माकम्>नः।

३३१. तेमयावेकवचनस्य (८–१–२२)

पद से परे और पाद के आदि में अविद्यमान युष्मद् और अस्मद् के चतुर्थी और षष्ठी के एकवचन के रूपों को क्रमशः ते और मे आदेश होते हैं। तुभ्यम्>ते। तव>ते। मह्यम्>मे। मम>मे।

३३२. त्वामौ द्वितीयायाः (८–१–२३)

पद से परे और पाद के आदि में अविद्यमान युष्मद् और अस्मद् के द्वितीया के एकवचन के रूपों को क्रमशः त्वा और मा आदेश होते हैं। त्वाम्>त्वा। माम्>मा।

निम्नलिखित श्लोक में सूत्र ३२९ से ३३२ तक के उदाहरण दिए गए हैं। पहले एकवचन, फिर द्विवचन और अन्त में बहुवचन के त्वा, मा; ते, मे; वाम्, नौ और वः, नः का प्रयोग किया गया है।

श्रीशस्त्वाऽवतु माऽपीह, दत्तात् ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः, पातु वाम् अपि नौ विभुः॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः, पतिर् वाम् अपि नौ हरिः।
सोऽव्याद् वो नः शिवं वो नो, दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः॥

अर्थ—विष्णु इस संसार में तेरी और मेरी रक्षा करे। वह तुझे और मुझे भी सुख दे। वह विष्णु तेरा और मेरा भी स्वामी है। वह विभु तुम दोनों और हम दोनों की रक्षा करे। वह ईश्वर तुम दोनों और हम दोनों को सुख दे। वह हरि तुम दोनों और हम दोनों का भी स्वामी है। वह तुम्हारी और हमारी रक्षा करे। वह तुम्हें और हमें सुख दे। वह इस संसार में तुम सभी का और हम सभी का सेव्य है।

(एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः, वा०)। (एकतिङ् वाक्यम्)। युष्मद् और अस्मद् शब्द को होने वाले त्वा मा आदि आदेश एक वाक्य में ही होते हैं। एक वाक्य में एक तिङन्त पद होता है। ओदनं पच, तव भविष्यति (भात पकाओ, वह तुम्हारा हो जाएगा), इसमें दो क्रिया होने से दो वाक्य हैं, अतः तव को ते नहीं हुआ। (एते वांनावादयोऽनन्वादेशे वा वक्तव्याः, वा०) ये वाम्, नौ आदि आदेश अन्वादेश के अभाव में विकल्प से होते हैं। अन्वादेश (पुनः उल्लेख) में नित्य होते हैं। जैसे—धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति वा (विधाता तेरा भक्त है)। यहाँ पर अन्वादेश न होने से विकल्प से तव को ते हुआ। तस्मै ते नमः (ऐसे तुम्हें नमस्कार है)। यहाँ पर अन्वादेश (पुनः उल्लेख) होने से तुभ्यम् को ते नित्य हुआ।

सुपाद् (सुन्दर पैरों वाला)। सूचना—१. सु में द् को द् और त्। पदस्थानों में द् को द् रहेगा। स० बहु० में द् को त्। २. भ-स्थानों में पाद् को पद् होने से सुपद् शब्द हो जाएगा। ३. अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे—सुपात्, सुपाद्—सुपाद्+स्। सुपादौ—सुपाद्+औ।

२३३. पादः पत् (६–४–१३०)

पाद् शब्द अन्त वाले शब्द के पाद् को पद् हो जाता है, भस्थानों में। जैसे—सुपदः—सुपाद्+शस् (अः)। पाद् को इससे पद्। सुपदा—सुपाद्+आ। पाद् को पद्। सुपाद्भ्याम्—सुपाद्+भ्याम्।

अग्निमथ् (अग्नि को मथने वाला)। सूचना—१. सु में थ् को द् और त्। पदस्थानों में थ् को द्। स० बहु० में त्। २. अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे—अग्निमत्, अग्निमद्, अग्निमथौ, अग्निमथः आदि।

२३४. अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति (६–४–२४)

हलन्त और अनिदित् (जिसमें ह्रस्व इ का लोप न हुआ हो) शब्द की उपधा के न् का लोप हो जाता है, बाद में कित् (क्-लोप वाला) और ङित् (ङ्-लोप वाला) प्रत्यय हो तो।

प्राञ्च् (प्र+अञ्च्, पूर्व दिशा आदि)। सूचना—१. प्राञ्च् धातु से ऋत्विग्० (३०१) से क्विन् (०) होने पर क्विन् का लोप। क्विन् में क् हटा है, अतः इससे न् का लोप होने से प्राच् शब्द रहता है। २. पंच-स्थानों में उगिदचां० (२८९) से बीच में न्, न् को श्चुत्व से ञ् होने पर प्राञ्च शब्द होता है। सु में स् और च् का लोप, न् को ङ् होकर प्राङ् बनता है। ३. पदस्थानों में च् को ग्। स० बहु० में क् होकर प्राक्षु। ४. भ-स्थानों में अच् के अ का लोप और प्र के अ को आ होने से प्राच् शब्द रहेगा। जैसे—प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः।

३३५. अचः (६-४-१३८)

अञ्च् धातु के न् का लोप होने पर अ का लोप हो जाता है, भ-स्थानों में।

३३६. चौ (६-३-१३८)

अञ्च् धातु का च् शेष रहने पर पूर्ववर्ती अण् (अ इ उ) को दीर्घ हो जाता है। प्राचः—प्राच् + शस् (अः)। अञ्च् के अ का लोप और प्र के अ को दीर्घ। प्राचा—प्राच् + आ। प्राचः के तुल्य। प्राग्भ्याम्—प्राच् + भ्याम्। च् को जश्त्व से ज्, ज् को चोः कुः से ग्।

प्रति + अञ्च्—प्रत्यञ्च् (पश्चिम दिशा आदि)। सूचना—इसमें सभी कार्य प्राञ्च् के तुल्य होंगे। १. पंचस्थानों में न् और यण् होने से प्रत्यञ्च् शब्द होगा। २. भ-स्थानों में अ का लोप और इ को दीर्घ ई होने से प्रतीच् शब्द रहेगा। जैसे—प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः। प्रतीचः। प्रत्यग्भ्याम् आदि।

उद् + अञ्च्—उदञ्च् (उत्तर दिशा आदि)। सूचना—इसमें भी सभी कार्य प्राञ्च् के तुल्य होंगे। १. पंचस्थानों में उदञ्च शब्द होगा। २. भस्थानों में अच् के अ को ई होने से उदीच् शब्द होगा। जैसे—उदङ् उदञ्चौ उदञ्चः।

३३७. उद ईत् (६-४-१३९)

उद् शब्द के बाद अच् (न्-लोप युक्त अञ्च्) के अ को ई हो जाता है, भ-स्थानों में। उदीचः—उदच् + शस् (अः)। अ को इससे ई। उदीचा—उदच् + आ। अ को ई। उदग्भ्याम्—उदच् + भ्याम्। च् को ज् और ग्।

३३८. समः समि (६-३-९३)

सम् को समि हो जाता है, यदि क्विन्-प्रत्ययान्त अञ्च् धातु बाद में हो तो।

सम् + अञ्च्—सम्यञ्च् (ठीक चलने वाला)। सूचना—इसमें भी सभी कार्य प्राञ्च् के तुल्य होंगे। १. सम् को समि होने और यण् होने से सम्यच् शब्द रहता है। २. पंचस्थानों न् होने से सम्यञ्च् शब्द होगा। ३. भ-स्थानों में अ-लोप और इ को दीर्घ ई होने से समीच् शब्द होगा। जैसे—सम्यङ् सम्यञ्चौ सम्यञ्चः। समीचः। सम्यग्भ्याम्।

३३९. सहस्य सध्रिः (६-३-९५)

सह को सध्रि हो जाता है, क्विन्-प्रत्ययान्त अञ्च् धातु बाद में हो तो।

सह + अञ्च्—सध्र्यञ्च् (साथ चलने वाला)। सूचना—प्राञ्च् के तुल्य सभी कार्य होंगे। १. सह को सध्रि होने और यण् होने से सध्र्यच् शब्द रहता है। २. पंच-स्थानों में सध्र्यञ्च्। ३. भ-स्थानों में सध्रीच्। जैसे—सध्र्यङ् सध्र्यञ्चौ सध्र्यञ्चः। सध्रीचः। सध्र्यग्भ्याम्।

३४०. तिरसस्तिर्यलोपे (६-३-९४)

तिरस् को तिरि हो जाता है, यदि अ-लोप-रहित और क्विन् प्रत्ययान्त अञ्च् धातु बाद में हो तो।

तिरस्-अञ्च्--तिर्यञ्च् (तिर्यग्योनि, पशु पक्षि आदि)। सूचना—इसमें भी प्राञ्च् शब्द वाले कार्य होते हैं। १. पंचस्थानों और पदस्थानों में तिरस् को तिरि और यण् होने से तिर्यच् शब्द होता है। पंचस्थानों में न् होने से तिर्यञ्च् होगा। २. भ-स्थानों में अ का लोप होने और श्चुत्व होने से तिरश्च् शब्द रहता है। जैसे—तिर्यङ् तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चः। तिरश्चः। तिरश्चा। तिर्यग्भ्याम्।

३४१. नाञ्चेः पूजायाम् (६-४-३०)

पूजा अर्थ वाली अञ्च् धातु की उपधा के न् का लोप नहीं होता है।

प्र+अञ्च्-प्राञ्च्। सूचना-१. पूजा अर्थ वाली अञ्च धातु के न् का लोप न होने से प्राञ्च् शब्द रहेगा। २. सु और पदस्थानों में संयोगान्त होने से च् का लोप, क्विन्० (३०४) से न् को ङ् होने से प्राङ् रूप रहेगा। ३. भस्थानों में अ का लोप न होने से प्राञ्च् शब्द ही रहेगा। विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे-प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः। प्राञ्चः। प्राङ्भ्याम्। प्राङ्षु, प्राङ्क्षु। स० बहु० में कुक् (क्) होने से प्राङ्क्षु भी बनेगा। इसी प्रकार पूजा अर्थ में प्रत्यङ् आदि के रूप चलेंगे।

क्रुञ्च् (क्रौञ्च पक्षी)। सूचना-क्रुञ्च् में भी क्विन् (०) प्रत्यय होने पर न् का लोप नहीं होता। अतः इसके रूप भी पूजार्थक प्राञ्च् के तुल्य चलेंगे। सु और पदस्थानों में ङ् रहेगा। क्रुङ् क्रुञ्चौ क्रुञ्चः। क्रुङ्भ्याम्।

पयोमुच् (बादल)। सूचना-१. सु और पदस्थानों में च् को जश्त्व से ज्, ज् को चोः कुः (३०६) से ग्। सु में ग् और क्। स० बहु० में क् होने से क्षु। २. अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे-पयोमुक्-ग्। पयोमुचौ। पयोमुग्भ्याम्। पयोमुक्षु।

३४२. सान्तमहतः संयोगस्य (६-४-१०)

स् अन्त वाले संयोग और महत् शब्द के न् की उपधा को दीर्घ होता है, सर्वनाम-स्थान (पंचस्थान) बाद में हो तो।

महत् (बड़ा)। सूचना-पंचस्थानों में उगिदचा० (२८९) से त् से पहले न्, इससे न् की उपधा वाले अ को दीर्घ होने से महान्त् शब्द बन जाता है। सु में स् और त् का लोप होने से महान् बनता है। सं० एक० में महन्। २. पदस्थानों में त् को द्। स० बहु० में त्। ३. भस्थानों में विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे-महान् महान्तौ महान्तः। हे महन्। महद्भ्याम्।

३४३. अत्वसन्तस्य चाधातोः (६-४-१४)

अतु (अत्) अन्त वाले शब्दों तथा धातुभिन्न अस् अन्त वाले शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है, बादमें संबुद्धि से भिन्न सु हो तो'

(१८८) से जस् और शस् का लोप। २. पदस्थानों में ष् को ड्। स० बहु० में ट्। ३. षष्ठी बहु० में षण्णाम् रूप होता है। इसके रूप हैं—षट्-ड्; षट्-ड्, षड्भिः, षड्भ्यः, षड्भ्यः, षण्णाम्, षट्सु।

३५१. र्वोरुपधाया दीर्घ इकः (८-२-७६)

र् और व् अन्त वाले शब्दों की उपधा के इक् (इ, उ ऋ) को दीर्घ होता है, पदान्त में।

पिपठिष् (पढ़ने का इच्छुक)। सूचना—१. सु और पदस्थानों में ष् असिद्ध होने से स् मानकर ससजुषो० (१०५) से रु (र्) और इससे इ को दीर्घ ई, सु में ईः। पदस्थानों से ईर्। स० बहु० में र् को विसर्ग और विकल्प से स्, सु को नुम्० (३५२) से षु। २. अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे—पिपठीः, पिपठिषौ, पिपठिषः। पिपठीर्भ्याम्।

३५२. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि (८-३-५८)

नुम् (न्), विसर्ग (:) और शर् (श ष स), इनमें से प्रत्येक के व्यवधान होने पर इण् (अ-भिन्न स्वर, अन्तःस्थ, ह) और कवर्ग के बाद स् को ष् होता है। ष्टुत्व होने से पूर्ववर्ती सु को भी षु। पिपठीष्षु, पिपठीःषु—पिपठिस्+सु। स् को विसर्ग, इ को दीर्घ, सु को इससे षु। पक्ष में विसर्ग को स्, उसे ष्टुत्व से ष्।

चिकीर्ष् (काम करने का इच्छुक)। सूचना—सु और पदस्थानों से रात्सस्य (२०९) से स् का लोप। सु में र् को विसर्ग। पदस्थानों में र् रहेगा। स० बहु० में र्+सु=र्षु। जैसे-चिकीः, चिकीर्षौ, चिकीर्षः। चिकीर्भ्याम्। चिकीर्षु।

विद्वस् (विद्वान्)। सूचना—१. पंचस्थानों में उगिदचां० (२८९) से नुम् (न्) और सान्त० (३४२) से अ को दीर्घ होने से विद्वांस् शब्द बनेगा। सु में दोनों स् का लोप होने से विद्वान् बनेगा। सं० एक० में हे विद्वन्। २. पदस्थानों में वसुस्रंसु० (२६२) से स् को द्। स० बहु० में द् को चर्त्व से त्। ३. भस्थानों में संप्रसारण होने से व् को उ, अ को संप्रसारणाच्च (२५८) से पूर्वरूप, स् को मूर्धन्य ष् होकर विदुष् शब्द रहेगा। जैसे—विद्वान्, विद्वांसौ, विद्वांसः। हे विद्वन्।

३५३. वसोः संप्रसारणम् (६-४-१३१)

वसु (वस्) प्रत्ययान्त शब्द के व् को उ संप्रसारण होता है, भ-स्थानों में। विदुषः—विद्वस्+शस् (अः)। व् को उ, अ को पूर्वरूप, स् को ष्। विद्वद्भ्याम्—विद्वस्+भ्याम्। वसुस्रंसु० (२६२) से स् को द्।

३५४. पुंसोऽसुङ् (७-१-८९)

पुंस् शब्द के स को असुङ् (अस्) होता है, सर्वनामस्थान में।

पुंस् (पुरुष)। सूचना—पंचस्थानों में स् को असु होने से पुमस् होता है। उगिदचां (२८९) से न्, सान्त० (३४२) से अ को आ होकर पुमास् शब्द बनता है। सु में दोनों स् का लोप होने से पुमान्। सं० एक० में हे पुमन्। २. पदस्थानों में संयोगान्तस्य० से स् का लोप होने और म् को अनुस्वार होने से पुं रूप रहेगा। जैसे—पुमान्, पुमांसौ, पुमांसः। हे पुमन्। पुंसः। पुंभ्याम्। पुंसु।

उशनस् (शुक्राचार्य)। सूचना—१. सु में ऋदुशन० (२०५) से उशनस् के स् को अन्, सर्वनाम० (१७७) से अ को आ, सवर्णदीर्घ, स् का लोप, नलोपः० से न् का लोप होकर उशना बनता है। सं० एक० में अन् और न् का लोप विकल्प से होने से तीन रूप बनते हैं—हे उशन, हे उशनन्, हे उशनः। २. पदस्थानों में संधि-नियमों से स् को उ, गुण-संधि होकर उशनो बनेगा। स० बहु० में स् रहेगा, अतः उशनस्सु बनेगा। इसके रूप होते हैं—उशना, उशनसौ, उशनसः। हे उशन, हे उशनन्, हे उशनः, हे उशनसौ। उशनोभ्याम्। उशनस्सु।

(अस्य संबुद्धौ वाऽनङ्, नलोपश्च वा वाच्यः, वा०) उशनस् को संबोधन एक० में अनङ् विकल्प से होता है और न का लोप भी विकल्प से होता है। अतः तीन रूप बनते हैं। हे उशन (अन् और न्-लोप), हे उशनन् (अन् और न्-लोप नहीं), हे उशनः (अन् और न्-लोप दोनों नहीं, स् को विसर्ग)।

अनेहस् (समय)। सूचना—१. सु में उशना के तुल्य अनेहा। सं० एक० में स को विसर्ग–हे अनेहः। २. अन्यत्र उशनस् के तुल्य। जैसे—अनेहा, अनेहसौ, अनेहसः। हे अनेहः। अनेहोभ्याम्।

वेधस् (ब्रह्मा)। सूचना—१. सु में अत्वसन्तस्य० (३४३) से अ को दीर्घ आ, सु का लोप, स् को विसर्ग होकर वेधाः बनेगा। सं० एक० में दीर्घ न होने से हे वेधः। २. शेष उशनस् के तुल्य रूप चलेंगे। पदस्थानों में स् को उ, गुण होकर ओ। स० बहु० में स् रहेगा। जैसे—वेधाः, वेधसौ, वेधसः। हे वेधः। वेधोभ्याम्।

अदस् (वह)। सूचना—इसके अधिकांश रूप अनियमित बनते हैं। मुख्य कार्य ये होते हैं—१. सु में अदस् के स् को औ, वृद्धि, तदोः० (३१०) से द को स, सु का लोप होकर असौ होता है। २. अन्यत्र त्यदादीनामः से स् को अ, पररूप होकर अद शब्द बनता है। इसके रूप चलते हैं। द के बाद ह्रस्व स्वर को उ और दीर्घ स्वर को ऊ। द को म। ३. बहुवचन में द को म और ए को ई। ४. तृतीया एक० में अमुना।

अदस् (वह)

असौ	अमू	अमी	प्र०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः	पं०
अमुम्	,,	अमून्	द्वि०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्	ष०
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	तृ०	अमुष्मिन्	,,	अमीषु	स०
अमुष्मै	,,	अमीभ्यः	च०				

३५५. अदस औ सुलोपश्च (७–२–१०७)

अदस् के स् को औ होता है, बाद में सु हो तो और सु का लोप होता है। त्यदाः० (२१०) से द को स। असौ—अदस्+सु।

३५६. अदसोऽसेर्दादु दो मः (८–२–८०)

स्-रहित अदस् के द के बाद ह्रस्व स्वरों को उ और दीर्घ स्वरों को ऊ होता है तथा द् को म् होता है। अमू—अदस्+औ।

३५७. एत ईद् बहुवचने (८–२–८१)

बहुवचन में अदस् शब्द के द के बाद ए को ई होता है और द् को म् होता है। अमी—अदस्+जस्। स् को अ, पररूप, जस् को शी (ई), गुण, अदे बना। द् को म् और ए को ई—अमी। अमुम्—अदस्+अम्। स् को अ, पररूप, 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप अदम्, द् को म, अ को उ। अमून्—अदस्+शस्। सर्वान् के तुल्य अदान् बनाकर द् को म्, अ को ऊ।

३५८. न मु ने (८–२–३)

'ना' करने में मुत्व असिद्ध नहीं होता। अमुना—अदस्+टा। स् को अ, पररूप, द् को म्, अ को उ। उकारान्त होने से घि संज्ञा और टा को ना। शेष रूपों में द् को म्, अ को उ, आ को ऊ होता है। बहुवचन में ए को ई होता है। रूप ऊपर दिये हैं।

हलन्त-पुंलिंग समाप्त।

हलन्तस्त्रीलिंग-प्रकरण

३५९. नहो धः (८–२–३४)

नह् के ह् को ध् होता है, बाद में झल् हो तो और पदान्त में।

३६०. नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ (६–३–११६)

क्विप् (०) प्रत्ययान्त नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह् और तन् धातु बाद में हों तो पूर्वपद के अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है।

उप + नह् = उपानह् (जूता)। सूचना—१. उप + नह् + क्विप् (०)। इस सूत्र से प के अ को दीर्घ होकर उपानह् बनता है। २. सु और पद-स्थानों में ह् को नहो धः (३५९) से ध्, जश्त्व से द् होकर उपानद् शब्द रहेगा। सु में त्-द्, स० बहु० में त्। ३. अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे—उपानत्-द्, उपानहौ। उपानद्भ्याम्। उपानत्सु।

उष्णिह् (वेद का एक छन्द)। सूचना—ऋत्विग्० (३०१) से क्विन् (०) प्रत्यय होकर उष्णिह् शब्द बना। १. सु और पद-स्थानों में क्विन्० (३०४) से ह् को घ्, जश्त्व से घ् को ग्। सु में क्-ग्, स० बहु० में क् + षु = क्षु। जैसे—उष्णिक्-ग्, उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्।

दिव् (आकाश)। सूचना—इसके रूप पुंलिंग सुदिव् के तुल्य बनते हैं। १. सु में व् को 'दिव औत्' (२६४) से औ, स् को विसर्ग। २. पदस्थानों में दिव उत् (२६५) से व् को उ, यण्, द्यु शब्द बनेगा। जैसे—द्यौः, दिवौ, दिवः। द्युभ्याम्।

गिर् (वाणी)। सूचना—सु और पदस्थानों में र्वोरुपधाया० (३५१) से इ को दीर्घ ई। सु में गीः, स० बहु० में गीर्षु। जैसे—गीः, गिरौ, गिरः। इसी प्रकार पुर् (नगर) के रूप बनेंगे। पूः, पुरौ, पुरः।

चतुर् (चार)। सूचना—१. त्रिचतुरोः० (२२४) से स्त्रीलिंग में चतुर् को चतसृ शब्द हो जाता है। २. षष्ठी बहु० में ऋ को दीर्घ नहीं होगा। इसके रूप होते हैं—चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्, चतसृषु।

किम् (कौन)। सूचना—किम् को स्त्रीलिंग में 'किमः कः' (२७१) से क होकर टाप् (आ) लगने पर का शब्द हो जाता है। सर्वा के तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—का, के, काः।

३६१. यः सौ (७-२-११०)

इदम् के द् को य् होता है, बाद में सु हो तो स्त्रीलिंग में।

इदम् (यह)। सूचना—१. प्रथमा एक० में द को य होने से इयम् रूप होगा। २. शेष पंचस्थानों में और शस् में 'त्यदादीनामः' से म् को अ, पररूप, टाप् (आ) और दश्च (२७५) से द् को म् होने से इमा शब्द बनता है, सर्वा के तुल्य रूप चलेंगे। ३. तृतीया एक०, षष्ठी तथा स० द्विवचन में इद् को अन् होने से अना के रूप चलेंगे। अनया, अनयोः। ४. अन्यत्र हलि लोपः (२७७) से इदा के इद् का लोप होने से केवल आ शब्द शेष रहेगा और इसके रूप सर्वा (स्त्रीलिंग) के तुल्य चलेंगे।

इदम् (यह)—स्त्रीलिंग

इयम्	इमे	इमाः	प्र०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः	पं०
इमाम्	,,	,,	द्वि०	,,	अनयोः	आसाम्	ष०
अनया	आभ्याम्	आभिः	तृ०	अस्याम्	,,	आसु	स०
अस्यै	,,	आभ्यः	च०				

त्यद् (वह), तद् (वह), एतद् (यह)। सूचना—इन तीनों के द् को 'त्यदादीनामः' से अ, पररूप, टाप् (आ) होने से क्रमशः त्या, ता और एता रूप होते हैं। इनके रूप सर्वा के तुल्य चलेंगे। प्रथमा एक० में तदोः सः० (३१०) से त् को स् होने से क्रमशः स्या, सा और एषा रूप बनेंगे। शेष सर्वावत्।

तद् (वह)—स्त्रीलिंग				एतद् (यह)—स्त्रीलिंग		
सा	ते	ताः	प्र०	एषा	एते	एताः
ताम्	,,	,,	द्वि०	एताम्	,,	,,
तया	ताभ्याम्	ताभिः	तृ०	एतया	एताभ्याम्	एताभिः
तस्यै	,,	ताभ्यः	च०	एतस्यै	,,	एताभ्यः
तस्याः	,,	,,	पं०	एतस्याः	,,	,,
,,	तयोः	तासाम्	ष०	,,	एतयोः	एतासाम्
तस्याम्	,,	तासु	स०	एतस्याम्	,,	एतासु

वाच् (वाणी)। सूचना—१. सु और पदस्थानों में च् को जश्त्व से ज् और 'चोः कुः' से ज् को ग्। सु में चर्त्व भी होने से क्-ग् रहेगा। अन्यत्र ग्। स० बहु० क्+षु=क्षु। २. शेष स्थानों पर केवल विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे—वाक्-ग्, वाचौ, वाचः। वाग्भ्याम्। वाक्षु।

अप् (जल)। सूचना—१. इसके रूप केवल बहु० में ही चलते हैं। २. जस् (प्र० बहु०) में अप्तृन्० (२०६) से दीर्घ होने से आपः रूप होगा। ३. भिः, भ्यः में अपो भि (३६२) से प् को द्। अद्भिः, अद्भ्यः। ४. अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। इसके रूप होते हैं—आपः, अपः, अद्भिः, अद्भ्यः, अद्भ्यः, अपाम्, अप्सु।

३६२. अपो भि (७-४-४८)

अप् के प् को त् होता है, बाद में भ से प्रारम्भ होनेवाला प्रत्यय हो तो। इस त् को जश्त्व से द्। जैसे—अद्भिः, अद्भ्यः, अद्भ्यः।

दिश् (दिशा)। सूचना—१. ऋत्विग्० (३०१) से क्विन् (०) प्रत्यय होने से दिश्+क्विन् (०) = दिश् शब्द बनता है। २. सु और पदस्थानों में व्रश्च० (१०७) से श् को ष्, क्विन् (१०४) से ष् को ग् होकर दिग् शब्द रहता है, सु में चर्त्व होने से दिक्-ग्। पदस्थानों में दिग्। स० बहु० में क्+षु=क्षु। अन्यत्र विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे—दिक्-दिग्, दिशौ, दिशः। दिग्भ्याम्। दिक्षु।

दृश् (आँख)। सूचना—त्यदादिषु० (३४७) से दृश् से क्विन् (०) होता है। पूर्वपद न रहने पर भी क्विन्० (१०४) से कुत्व होगा। [illegible] पुं० के तुल्य रूप चलेंगे। सु और पदस्थानों में ग्। सु में क्-ग्। स० बहु० में क्षु। जैसे—दृक्-ग्, दृशौ, दृशः। दृग्भ्याम्। दृक्षु।

त्विष् (कान्ति)। सूचना–सु और पदस्थानों में ष् को जश्त्व से ड्। सु में चर्त्व से ट्-ड्। स० बहु० में ट्। जैसे–त्विट्-ड्, त्विषौ, त्विषः। त्विड्भ्याम्। त्विट्सु।

सजुष् (मित्र)। सूचना–१. सु और पदस्थानों में ससजुषो रुः (१०५) से रु (र्) और र्वोरुपधाया० (३५१) से उ को दीर्घ ऊ। सु में सजूः। स० बहु० में सजूःषु, सजूष्षु। अन्यत्र केवल विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे–सजूः सजुषौ सजुषः। सजूर्भ्याम्। सजूःषु, सजूष्षु।

आशिष् (आशीर्वाद)। सूचना–१. आशिष् का ष् असिद्ध होने के कारण यह स् माना जाएगा और ससजुषो रुः (१०५) से रु (र्) और र्वोरुपधाया० (३५१) से इ को ई। आशीर् रूप रहेगा। सु में र् को विसर्ग आशीः। स० बहु० में आशीःषु, आशीष्षु। सजुष् के तुल्य कार्य होंगे। २. अन्यत्र केवल विभक्तियाँ जुड़ेंगी। जैसे–आशीः आशिषौ आशिषः। आशीर्भ्याम्। आशीःषु, आशीष्षु।

अदस् (वह)। सूचना–१. सु में असौ, अदस् के स् को 'त्यदादीनामः' से अ, पररूप, टाप्, अदस औ० (३५५) से सु को औ, वृद्धि, सु का लोप। २. अन्यत्र अदस् के स् को अ, पररूप, टाप् होकर अदा बनता है और अदसो० (३५६) से द् को म् और आ को ऊ होने से अमू शब्द साधारणतया बचता है। सर्वा शब्द (स्त्रीलिंग) के तुल्य अन्य कार्य होंगे।

अदस् (वह)

असौ	अमू	अमूः	प्र०	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः	पं०
अमूम्	,,	,,	द्वि०	,,	अमुयोः	अमूषाम्	ष०
अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः	तृ०	अमुष्याम्	,,	अमूषु	स०
अमुष्यै	,,	अमूभ्यः	च०				

हलन्तस्त्रीलिंग समाप्त

हलन्त-नपुंसकलिङ्ग-प्रकरण

स्वनडुह् (अच्छे बैलवाला, कुल आदि)। सूचना—१. सु और अम् में सु और अम् का स्वमोर्नपुंसकात् (२४४) से लोप, ह को वसुस्रंसु० (२६२) से ह् को द्, विकल्प से चर्त्व से त्, स्वनडुत्-द्। २. औ को नपुंसकाच्च (२३५) से शी (ई), स्वनडुही। ३. जस् और शस् को जश्शसोः शि (२३७) से शि (इ), चतुर० (२५९) से

३६४. वा नपुंसकस्य (७-१-७९)

अभ्यस्त (द्वित्व वाले) के बाद शतृ-प्रत्ययवाले नपुंसकलिंग शब्द को विकल्प से नुम् (न्) होता है, सर्वनामस्थान परे होने पर। ददन्ति, ददति—जस् और शस् को इ, इससे विकल्प से न्।

तुदत् (दुःख देता हुआ)। सूचना—१. तुदत्—सु और अम् का लोप। २. तुदन्ती, तुदती—औ को ई, विकल्प से न्। ३. तुदन्ति—जस् और शस् को इ, नुम्। तुदत्, तुदन्ती—तुदती, तुदन्ति।

३६५. आच्छीनद्योर्नुम् (७-१-८०)

अकारान्त अंग के बाद शतृ-प्रत्यय के अवयववाले शब्द को विकल्प से नुम (न्) होता है, बाद में शी (ई) और नदी-संज्ञक ङीप् का ई हो तो। तुदन्ती-तुदती—औ को शी (ई), विकल्प से न्। तुदन्ति—जस् और शस् को इ, न्।

३६६. शप्श्यनोर्नित्यम् (७-१-८१)

शप् और श्यन् के अ के बाद शतृ-प्रत्यय के अवयववाले शब्द को नित्य नुम् (न्) होता है, बाद में शी (ई) और नदी (ङीप् का ई) हो तो।

पचत् (पकाता हुआ)। सूचना-१. पचत्—सु और अम् का लोप। २. पचन्ती—औ को ई नित्य न्। ३. पचन्ति—जस् और शस् को इ, न्। ४. पदस्थानों में त् को द्। स० बहु० में त्। जैसे—पचत्, पचन्ती, पचन्ति।

दीव्यत् (चमकता हुआ, खेलता हुआ)। सूचना—पचत् के तुल्य सभी कार्य होंगे। जैसे—दीव्यत्, दीव्यन्ती, दीव्यन्ति।

धनुष् (धनुष)। सूचना १. धनुः—सु और अम् का लोप, ष् के असिद्ध होने से स् को रु और विसर्ग। २. धनुषी—औ को ई। ३. धनूंषि—जस् और शस् को इ, नुम (न्), सान्त० (३४२) से उ को दीर्घ ऊ, न् को अनुस्वार, नुम० (३५२) से स् को ष्। ४. पदस्थानों में ष् को असिद्ध मानकर स् को र् रहेगा। स० बहु० में धनुष्षु, धनुःषु। इसी प्रकार चक्षुष् (आँख) और हविष् (घी) आदि के रूप चलेंगे। जैसे—धनुः, धनुषी, धनूंषि। धनुषा। धनुर्भ्याम्। धनुःषु, धनुष्षु।

पयस् (दूध, जल)। सूचना—१. पयः—सु और अम् का लोप, स् को रु और विसर्ग। २. पयसी—औ को ई। ३. पयांसि—जस् और शस् को इ, न्, सान्त० (३४२) से उपधा के अ को दीर्घ आ। ४. पदस्थानों में स् को रु, रु को उ और गुण होकर पयो रूप होगा। स० बहु० में विसर्ग, पयःसु, पयस्सु। जैसे—पयः, पयसी, पयांसि। पयसा। पयोभ्याम्।

सुपुंस् (अच्छे पुरुषोंवाला, कुल आदि)। सूचना—१. सुपुम्—सु और अम् का लोप, स् का संयोगान्त होने से लोप। २. सुपुंसी—औ को ई। ३. सुपुमांसि—जस् और

शस् को इ, पुंसोऽसुङ् (३५४) से स् को अस्, सुपुमस्, नुम् और सान्त० (३४२) से दीर्घ, न् को अनुस्वार। ४. शेष रूप पुंस् पुंलिंग के तुल्य होंगे। जैसे—सुपुम्, सुपुंसी, सुपुमांसि।

अदस् (वह)। सूचना--१. अदः—सु औ अम् का लोप, स् को रु और विसर्ग। २. अमू—अदस्+औ। औ को ई, स् को 'त्यदादीनामः' से अ, पररूप, गुण होकर अदे बना, अदसो० (३५६) से द् को म् और ए को ऊ। ३. अमूनि—जस् और शस् को इ, 'त्यदादीनामः' से स को अ, पररूप, नुम्, उपधा के अ को दीर्घ आ होकर अदानि बना। अदसो० (३५६) से द् को म् और आ को ऊ। ४. शेष रूप अदस् पुंलिंग के तुल्य बनेंगे। जैसे—अदः, अमू, अमूनि। अमुना।

हलन्त-नपुंसकलिंग समाप्त।

अव्यय-प्रकरण

३६७. स्वरादिनिपातमव्ययम् (१-१-३७)

स्वर् आदि शब्द तथा च आदि निपातों की अव्यय संज्ञा होती है। सूचना—अव्यय संज्ञा का फल यह है कि अव्यय शब्दों के बाद टाप् (आ) नहीं होता है और सुप् विभक्तियों का लोप होता है।

स्वर् आदि शब्द ये हैं:—१. स्वर् (स्वर्ग), २. अन्तर् (अन्दर), ३. प्रातर् (प्रातःकाल), ४. पुनर् (फिर), ५. सनुतर् (अन्तर्धान होना), ६. उच्चैस् (ऊँचा) ७. नीचैस् (नीचा), ८. शनैस् (धीरे), ९. ऋधक् (सत्य), १०. ऋते (विना), ११. युगपत् (एकदम), १२. आरात् (दूर, समीप), १३. पृथक् (अलग), १४. ह्यस् (बीता हुआ कल), १५. श्वस् (आनेवाला कल), १६. दिवा (दिन में), १७ रात्रौ (रात में), १८. सायम् (सायंकाल), १९. चिरम् (देर), २०. मनाक् (थोड़ा), २१. ईषत् (थोड़ा), २२. जोषम् (चुप), २३. तूष्णीम् (चुप), २४. बहिस् (बाहर), २५. अवस् (बाहर), २६. अधस् (नीचे), २७. समया (समीप), २८. निकषा (समीप), २९. स्वयम् (अपने आप), ३०. वृथा (व्यर्थ), ३१. नक्तम् (रात), ३२. न (नहीं), ३३. नञ् (नहीं), ३४. हेतौ (कारण), ३५. इद्धा (स्पष्ट), ३६. अद्धा (स्पष्ट), ३७. सामि (आधा), ३८. वत् (तुल्य), ३९. ब्राह्मणवत् (ब्राह्मण के तुल्य), ४०. क्षत्रियवत् (क्षत्रिय के तुल्य), ४१. सना (नित्य), ४२. सनत् (नित्य), ४३. सनात् (नित्य), ४४. उपधा (भेद), ४५.

(सु औ आदि) का लोप होता है। तत्र शालायाम् (उस शाला में)—अव्यय होने के कारण तत्र के बाद टाप् का लोप।

> सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिषु।
> वचनेषु च सर्वेषु, यन्न व्येति तदव्ययम्॥
> वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
> आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा॥

वगाहः, अवगाहः। पिधानम्, अपिधानम्।

जो तीनों लिंगों में, सब विभक्तियों और सब वचनों में एक जैसा रहता है तथा जिसमें कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता है, उसे अव्यय कहते हैं।

भागुरि आचार्य के मतानुसार अव और अपि उपसर्गों के आदि-वर्ण अ का लोप होता है तथा हलन्त शब्दों से स्त्रीलिंग-बोधक आप् (आ) प्रत्यय होता है। जैसे—वाच् का वाचा (वाणी), निश् का निशा (रात), दिश् का दिशा (दिशा)।

वगाहः, अवगाहः (स्नान करना)—अव + गाह + घञ् (अ)। अवगाहः के अ का विकल्प से लोप। पिधानम्, अपिधानम् (ढकना)—अपि + धा + ल्युट् (अन)। अपि के अ का विकल्प से लोप।

अव्यय-प्रकरण समाप्त।

तिङन्त-प्रकरण

भ्वादिगण

आवश्यक-निर्देश

तिङन्त-प्रकरण के लिए इन निर्देशों को बहुत सावधानी से स्मरण कर लें।

१. दस गणों के नाम

संस्कृत में प्रयोग में आने वाली सभी धातुएँ १० गणों में विभक्त हैं। प्रत्येक गण की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं। जिनके आधार पर प्रत्येक धातु को किसी विशेष गण में रखा गया है। संक्षेप के लिए संख्याओं के द्वारा गणों का संकेत किया गया है। दस गणों के नाम ये हैं तथा कोष्ठ में संकेत हैं:—

१. भ्वादिगण (१), २. अदादिगण (२), ३. जुहोत्यादिगण (३), ४. दिवादिगण (४), ५. स्वादिगण (५), ६. तुदादिगण (६), ७. रुधादिगण (७), ८. तनादिगण (८), ९. क्र्यादिगण (९), १०. चुरादिगण (१०), ११. कण्ड्वादिगण (११)। कुछ धातुएँ कण्ड्वादिगण में भी हैं, अतः इसे ११ वाँ गण कहा जाता है।

१० गणों के क्रमपूर्वक नाम याद करने के लिए यह श्लोक स्मरण कर लें:—

भ्वाद्यदादिजुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रीचुरादयः॥

२. कतिपय संकेत

सूचना—तिङन्त-प्रकरण में संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है:—

प्र० पु० या प्र० = प्रथम पुरुष या अन्य पुरुष; म० पु० या म० = मध्यमपुरुष; उ० पु० या उ० = उत्तम पुरुष। पर० या प० = परस्मैपद, आत्मने० या आ० = आत्मनेपद, उभय० या उ० = उभयपद। एक० या १ = एकवचन, द्वि० या २ = द्विवचन, बहु० या ३ = बहुवचन।

३. तीन पद

धातुएँ तीन प्रकार की हैं, अतः धातुओं के रूप तीन प्रकार से चलते हैं। १. परस्मैपदी (प०, अन्त में तिः तः अन्ति आदि लगते हैं), २. आत्मनेपदी (आ०, अन्त में ते एते अन्ते आदि लगते हैं), ३. उभयपदी (उ०, दोनों प्रकार से रूप चलते हैं, ति तः आदि और ते एते आदि)।

४. तिङ् और तिङन्त

(तिप्तस्झि''महिङ्, सूत्र ३७४) परस्मैपद और आत्मनेपद में तिप् तस् आदि प्रत्यय होते हैं। तिङ् यह प्रत्याहार है--सूत्र में तिप् के ति से प्रारम्भ होकर महिङ् के ङ् तक है, अतः तिङ् का अर्थ है—धातुओं के अन्त में लगने वाले परस्मैपद और आत्मनेपद के सूचक ति तः आदि तथा त आताम् आदि सभी प्रत्यय। तिङन्त का अर्थ है—ति तः आदि प्रत्ययों को लगाकर बने हुए सभी धातुरूप। तिङन्त का प्रयोग होता है, अतः तिङन्त को पद भी कहते हैं।

५. तिङ् प्रत्यय, मूलरूप और अवशिष्ट रूपः—

तिङ् प्रत्ययों के मूलरूप नीचे दिए जा रहे हैं। इनमें से कुछ वर्ण इत्संज्ञक होने से लुप्त हो जाते हैं और कुछ में सन्धिकार्य या पदान्त कार्य होते हैं, अतः जो रूप वस्तुतः बचता है, वह अवशिष्ट रूप में दिया गया है। वही धातु के साथ लगता है।

परस्मैपद

मूलरूप				अवशिष्ट रूप		
तिप्	तस्	झि	प्र० पु०	ति	तः	झि (अन्ति)
सिप्	थस्	थ	म० पु०	सि	थः	थ
मिप्	वस्	मस्	उ० पु०	मि	वः	मः

आत्मनेपद

मूलरूप				अवशिष्ट रूप		
त	आताम्	झ	प्र० पु०	त	आताम्	झ (अन्त)
थास्	आथाम्	ध्वम्	म० पु०	थाः	आथाम्	ध्वम्
इट्	वहि	महिङ्	उ० पु०	इ	वहि	महि

६. भ्वादिगण की विशेषताएँः—

(१) कर्तरि शप् (३८६)। धातु और तिङ् प्रत्यय (ति, तः आदि) के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में शप् (अ) लगता है। इसलिए अति अतः आदि प्रत्यय हो जाते हैं। (सूचना—विकरण—धातु और प्रत्यय के बीच में लगने वाले को विकरण कहते हैं। शप् (अ) विकरण है।) (२) सार्वधातुकार्ध० (३८७), पुगन्त० (४५०)। धातु के अन्तिम इक् (इ, उ, ऋ) को गुण होता है, अर्थात् इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ को अर्। उपधा के ह्रस्व इक् (इ, उ, ऋ) को गुण होता है, अर्थात् धातु के अन्तिम वर्ण से पूर्व इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् होगा। (३) गुण होने के बाद धातु के अन्तिम ए को अय्, ओ को अव् होगा, बाद में कोई स्वर होगा तो। अन्यत्र सन्धि-कार्य यण्, अयादि-सन्धि आदि होते हैं।

७. १० लकार और उनके अर्थ :—

संस्कृत में १० लकार (वृत्तियाँ) होते हैं। लेट् लकार का प्रयोग केवल वेद में ही होता है। लेट् का अर्थ है--शर्त लगाना, आशंका, आदेश। लिङ् दो होने से १० लकार होते हैं। इनके नाम और अर्थ ये हैं :—

१. लट्—वर्तमान काल।
२. लिट्—परोक्ष अनद्यतन भूत।
३. लुट्—अनद्यतन भविष्यत्।
४. लृट्—सामान्य भविष्यत्।
५. लोट्—विधि (आज्ञा) आदि।
६. लङ्—अनद्यतन भूतकाल।
७. विधिलिङ्—आज्ञा या चाहिए अर्थ।
८. आशीर्लिङ्—आशीर्वाद।
९. लुङ्—सामान्य भूत।
१०. लृङ्—हेतुहेतुमद् भूत या भविष्यत्।

८. लकारों के अन्तिम अंश

सूचना—साधारणतया लकारों के अन्त में ये अन्तिम अंश रहते हैं। १. चार सार्वधातुक लकारों अर्थात् लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में प्रत्येक गण में अन्तिम अंश में कुछ अन्तर होते हैं, उनका प्रत्येक गण के प्रारम्भ में अन्तिम अंश में निर्देश कर दिया गया है। २. छः आर्धधातुक लकारों अर्थात् लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् में गण के अन्तर से कोई अन्तर नहीं होता है। अतः इन ६ लकारों में अन्तिम अंश वही रहेगा। इन अन्तिम-अंशों को विशेष सावधानी से स्मरण कर लें।

(सार्वधातुक लकार)

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्				लट्		
ति	तः	अन्ति	प्र०	ते	इते (आते)	अन्ते (अते)
सि	थः	थ	म०	से	इथे (आथे)	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	इ (ए)	वहे	महे
लोट्				लोट्		
तु	ताम्	अन्तु	प्र०	ताम्	इताम् (आताम्)	अन्ताम् (अताम्)
–, हि	तम्	त	म०	स्व	इयाम् (आथाम्)	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पहले अ या आ लगेगा)				लङ् (धातु से पहले अ या आ लगेगा)		
त्	ताम्	अन्	प्र०	त	इताम् (आताम्)	अन्त (अत)
:	तम्	त	म०	थाः	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि

विधिलिङ्								विधिलिङ्	
ईत्	ईताम्	ईयुः	यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
ईः	ईतम्	ईत	याः	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
ईयम्	ईव	ईम	याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

(आर्धधातुक लकार)

लिट् (सेट् में इ लगेगा)				लिट् (सेट् में इ लगेगा)		
अ	अतुः	उः	प्र०	ए	आते	इरे
(इ) थ	अथुः	अ	म०	(इ) से	आथे	(इ) ध्वे
अ	(इ) व	(इ) म	उ०	ए	(इ) वहे	(इ) महे

लुट् (सेट् में इ लगेगा)				लुट् (सेट् में इ लगेगा)		
(इ) ता	(इ) तारौ	(इ) तारः	प्र०	(इ) ता	(इ) तारौ	(इ) तारः
(इ) तासि	(इ) तास्थः	(इ) तास्थ	म०	(इ) तासे	(इ) तासाथे	(इ) ताध्वे
(इ) तास्मि	(इ) तास्वः	(इ) तास्मः	उ०	(इ) ताहे	(इ) तास्वहे	(इ) तास्महे

लृट् (सेट् में इ लगेगा)				लृट् (सेट् में इ लगेगा)		
(इ) स्यति	(इ) स्यतः	(इ) स्यन्ति	प्र०	(इ) स्यते	(इ) स्येते	(इ) स्यन्ते
(इ) स्यसि	(इ) स्यथः	(इ) स्यथ	म०	(इ) स्यसे	(इ) स्येथे	(इ) स्यध्वे
(इ) स्यामि	(इ) स्यावः	(इ) स्यामः	उ०	(इ) स्ये	(इ) स्यावहे	(इ) स्यामहे

आशीर्लिङ्				आशीर्लिङ् (सेट् में इ लगेगा)		
यात्	यास्ताम्	यासुः	प्र०	(इ) सीष्ट	(इ) सीयास्ताम्	(इ) सीरन्
याः	यास्तम्	यास्त	म०	(इ) सीष्ठाः	(इ) सीयास्थाम्	(इ) सीध्वम्
यासम्	यास्व	यास्म	उ०	(इ) सीय	(इ) सीवहि	(इ) सीमहि

लृङ् (सेट् में इ लगेगा) (धातु से पहले अ या आ लगेगा)				लृङ् (सेट् में इ लगेगा) (धातु से पहले अ या आ लगेगा)		
(इ) स्यत्	(इ) स्यताम्	(इ) स्यन्	प्र०	(इ) स्यत	(इ) स्येताम्	(इ) स्यन्त
(इ) स्यः	(इ) स्यतम्	(इ) स्यत	म०	(इ) स्यथाः	(इ) स्येथाम्	(इ) स्यध्वम्
(इ) स्यम्	(इ) स्याव	(इ) स्याम	उ०	(इ) स्ये	(इ) स्यावहि	(इ) स्यामहि

लुङ् के सात भेद

सूचना—लुङ् में सात विभिन्न कार्य होते हैं, उनके आधार पर लुङ् के सात भेद हैं। प्रत्येक भेद में अन्तिम अंश भी भिन्न होते हैं। वे नीचे दिये गये हैं। धातुरूपों में लुङ् के आगे संख्या से इसका निर्देश किया गया है कि लुङ् का कौन सा भेद है। अन्तिम अंशों को लगाकर रूप बनावें।

लुङ् (परस्मैपद) — लुङ् (आत्मनेपद)

१. स्-लोप वाला भेद (सिच्-लोप)

त्	ताम्	उः (अन्)	प्र०
:	तम्	त	म०
अम्	व	म	उ०

१. स्-लोप वाला भेद

सूचना—आत्मनेपद में यह भेद नहीं होता है।

२. अ-वाला भेद (अङ्, अ) — **२. अ-वाला भेद (अङ्, अ)**

अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि

३. द्वित्व-वाला भेद (चङ् + द्वित्व) — **३. द्वित्व-वाला भेद (चङ् + द्वित्व)**

अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि

४. स्-वाला भेद (सिच्, स्) — **४. स्-वाला भेद (सिच्, स्)**

सीत्	स्ताम्	सुः	प्र०	स्त	साताम्	सत
सीः	स्तम्	स्त	म०	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
सम्	स्व	स्म	उ०	सि	स्वहि	स्महि

५. इष्-वाला भेद (इट् + सिच्) — **५. इष्-वाला भेद (इट् + सिच्)**

ईत्	इष्टाम्	इषुः	प्र०	इष्ट	इषाताम्	इषत
ईः	इष्टम्	इष्ट	म०	इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम्–ढ्वम्
इषम्	इष्व	इष्म	उ०	इषि	इष्वहि	इष्महि

६. सिष्-वाला भेद (सक् + इट् + सिच्)

सीत्	सिष्टाम्	सिषुः	प्र०
सीः	सिष्टम्	सिष्ट	म०
सिषम्	सिष्व	सिष्म	उ०

६. सिष्-वाला भेद

सूचना—आत्मनेपद में यह भेद नहीं होता।

७. स-वाला भेद (क्स, स) — **७. स-वाला भेद (क्स, स)**

सत्	सताम्	सन्	प्र०	सत	साताम्	सन्त
सः	सतम्	सत	म०	सथाः	साथाम्	सध्वम्
सम्	साव	साम	उ०	सि	सावहि	सामहि

९. दस गणों की मुख्य विशेषताएँ

सूचना—लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, इन चार लकारों में ही विकरण लगते हैं।

सं०	गणनाम	विकरण	मुख्य विशेषताएँ
१	भ्वादि-गण	शप् (अ)	(१) लट् आदि में धातु और प्रत्यय के बीच में 'अ' लगेगा। (२) धातु के अन्तिम स्वर को गुण होता है अर्थात् इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर् होता है। धातु के अन्तिम अक्षर से पूर्ववर्ती इ को ए, उ को ओ, ऋ को अर् होगा। (३) गुण होने के बाद धातु के अन्तिम ए को अय् और ओ को अव् हो जाता है।
२	अदादि-गण	शप् का लोप (×)	(१) धातु और प्रत्यय के बीच में कोई विकरण नहीं लगेगा। धातु में केवल ति तः अन्ति आदि जुड़ेंगे। (२) लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में धातु को एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।
३	जुहोत्यादि-गण	शप् का लोप (×)	(१) धातु और प्रत्यय के बीच में लट् आदि में कोई विकरण नहीं लगता। (२) लट् आदि में धातु को द्वित्व होगा। (३) लट् आदि में धातु को एक० में गुण होता है, अन्यत्र नहीं।
४	दिवादि-गण	श्यन् (य)	(१) धातु और प्रत्यय के बीच में लट् आदि में 'य' लगता है। (२) धातु को लट् आदि में गुण नहीं होता। (३) लट् आदि में गुण होता है।
५	स्वादि-गण	श्नु (नु)	(१) लट् आदि में धातु और प्रत्यय के बीच में 'नु' लगता है। (२) धातु को गुण नहीं होता। (३) 'नु' को परस्मैपद एक० में प्रायः 'नो' होता है।
६	तुदादि-गण	श (अ)	(१) लट् आदि में धातु और प्रत्यय के बीच में 'अ' लगता है। (२) लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता। (३) लट् आदि में धातु को गुण होगा।
७	रुधादि-गण	श्नम् (न)	(१) लट् आदि में धातु के प्रथम स्वर के बाद 'न' लगता है। (२) इस न को कभी-कभी न् हो जाता है। (३) लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता है।
८	तनादिगण	उ	(१) लट् आदि में धातु और प्रत्यय के बीच में 'उ' लगता है। (२) इस उ को एकवचन आदि में ओ हो जाता है।

सं०	गणनाम	विकरण	मुख्य विशेषताएँ
९	क्र्यादि-गण	श्ना (ना)	(१) लट् आदि में धातु और प्रत्यय के बीच में 'ना' विकरण लगता है। (२) इसको कभी नी और कभी न् हो जाता है। (३) धातु को गुण नहीं होता। (४) परस्मैपद लोट् म० पु० एक० में हलन्त धातुओं में 'हि' के स्थान पर 'आन' लगता है।
१०	चुरादि-गण	णिच् (अय)	(१) सभी लकारों में धातु के बाद णिच् (अय) लगता है। (२) धातु के अन्तिम इ ई को ऐ, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर् वृद्धि होती है। उपधा के अ को आ, इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् होता है। (३) कथ्, गण्, रच् आदि कुछ धातुओं में उपधा के अ को आ नहीं होता।

१०. भ्वादिगण के अन्तिम अंश

सूचना—सार्वधातुक लकारों अर्थात् लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में ही विकरण लगते हैं, अतः इन चार लकारों में ही प्रत्येक गण में कुछ विभिन्नताएँ हैं। इनके ही अन्तिम अंश यहाँ दिये जाते हैं। ये अन्तिम अंश भ्वादिगण की सभी धातुओं के अन्त में लगेंगे। जहाँ पर कोई परिवर्तन या अन्तर होगा, उसका यथास्थान निर्देश किया गया है। आर्धधातुक लकारों अर्थात् शेष ६ लकारों लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् में गण-भेद के कारण कोई अन्तर नहीं होता है। अतः निर्देश संख्या ८ में दिए अन्तिम अंश सभी गणों में समानरूप से लगेंगे। आगे भी सार्वधातुक लकारों के ही अन्तिम अंश दिये जाएँगे।

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्				लट्		
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
लोट्				लोट्		
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै

उ० पु० व और म में इ होगा। (ग) न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः (५३९)। वृत्, वृध्, शृध् और स्यन्द्, इन चार धातुओं के बाद सकारादि आर्धधातुक को इ नहीं होता है, परस्मैपद में।

५. ङित्—ये प्रत्यय ङित् हैं। इनमें गुण या वृद्धि नहीं होते हैं। संप्रसारण प्राप्त होगा तो होगा। (क) यासुट्० (४२५)। परस्मैपद विधिलिङ् में यास्। (ख) सार्वधातुकमपित् (४९९)। पित् (ति, सि, मि) को छोड़कर शेष सभी सार्वधातुक प्रत्यय ङित् होते हैं। अतः परस्मैपद में एकवचन अङित् हैं, द्विवचन और बहुवचन ङित् हैं। आत्मनेपद में सारे प्रत्यय ङित् हैं, केवल लोट् उ० पु० अङित् है।

६. कित्—ये प्रत्यय कित् हैं। इनमें गुण या वृद्धि नहीं होते हैं। संप्रसारण प्राप्त होगा तो होगा। (क) किदाशिषि (४३१)। आशीर्लिङ् का यास् कित् होता है। (ख) क्ङिति च (४३२)। कित् और ङित् प्रत्यय बाद में होने पर इक् (इ उ ऋ लृ) को गुण और वृद्धि नहीं होते हैं। (ग) असंयोगाल्लिट् कित् (४५१)। असंयुक्त अक्षर के बाद पित्-भिन्न लिट् कित् होता है। (घ) उश्च (५४३)। ऋ के बाद झलादि (वर्ग के १, २, ३, ४, श ष स ह से प्रारम्भ होनेवाले) लिङ् और सिच् कित् होते हैं।

७. गुण—इन स्थानों पर गुण होता है, अर्थात् इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर् और लृ को अल्। (क) सार्वधातुकार्धधातुकयोः (३८७)। सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय बाद में हों तो इगन्त अंग (जिसके अन्त में इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, हों) को गुण होता है। (ख) पुगन्तलघूपधस्य च (४५०)। पुक् (प्) अन्त वाले तथा उपधा में लघु वर्णवाले अंग के इक् (इ उ ऋ) को गुण होता है, बाद में कोई सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय हो तो। अर्थात् उपधा की इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर्। (ग) ऋतश्च० (४९५)। संयुक्त वर्ण आदिवाले ॠकारान्त अंग को लिट् में गुण होता है। (घ) गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः (४९७)। ऋ धातु और संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण होता है, बाद में यक् (य) और य से प्रारम्भ होनेवाला आशीर्लिङ् हो तो।

८. वृद्धि—इन स्थानों पर वृद्धि होती है, अर्थात् अ को आ, इ ई को ऐ, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, लृ को आल्, ए को ऐ और ओ को औ। (क) अचो ञ्णिति (१८२)। अच् अन्तवाले अंग को वृद्धि होती है, बाद में ञित् (जिसमें से ञ् हटा हो) और णित् (जिसमें से ण् हटा हो) प्रत्यय हो तो। (ख) अतो हलादेर्लघोः (४५६)। हलादि धातु के अवयव ह्रस्व अ को विकल्प से वृद्धि होती है, परस्मैपद में इट्-सहित सिच् बाद में हो तो। यह नियम लुङ् में लगेगा। (ग) वदव्रजहलन्तस्याचः (४६४)। वद्, व्रज् और हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि होती है, बाद में परस्मैपद का सिच् हो तो। यह नियम भी लुङ् में लगेगा। (घ) ह्म्यन्त० (४६५)। ह्, म् और य् अन्तवाली धातुओं तथा क्षण्, श्वस्, जागृ, ण्यन्त, श्वि और एदित् (जिसमें से ए हटा हो) धातुओं के अच् को वृद्धि होती है, सेट् सिच् बाद में हो तो। यह लुङ् में

वृद्धि का निषेध करता है। (ङ) नेटि (४७६)। हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि नहीं होती है, बाद में सेट् सिच् हो तो। (च) सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु (४८३)। इक् (इ उ ऋ) अन्तवाले अंग को वृद्धि होती है, बाद में परस्मैपद का सिच् हो तो।

९. संप्रसारण—इन स्थानों पर संप्रसारण होता है, अर्थात् य् को इ, व् को उ, र् को ऋ और ल् को लृ। (क) द्युतिस्वाप्योः० (५३६)। द्युत् और स्वप् धातु के अभ्यास (लिट् में द्वित्व का पूर्व अंश) को संप्रसारण होता है। (ख) लिट्यभ्यासस्यो-भयेषाम् (५४५)। वच् आदि और ग्रह आदि दोनों गण की धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होता है, लिट् में। (ग) वचिस्वपियजादीनां किति (५४६)। वच्, स्वप् और यज् आदि धातुओं को संप्रसारण होता है, बाद में कित् (जिसमें से क् हटा हो) प्रत्यय हो तो।

१०. दीर्घ—इन स्थानों पर दीर्घ होता है, अर्थात् अ को आ, इ को ई, उ को ऊ और ऋ को ॠ। (क) अतो दीर्घो यञि (३८९)। अकारान्त अंग के अ को आ हो जाता है, बाद में यञ् (अन्तःस्थ, झ भ और वर्ग के पञ्चम वर्ण) से प्रारम्भ होने-वाला सार्वधातुक प्रत्यय हो तो। (ख) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः (४८२)। अजन्त अंग को दीर्घ होता है, बाद में य से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय हो तो, कृत्-प्रत्यय और सार्वधातुक प्रत्यय बाद में होगा तो नहीं। (ग) क्रमः परस्मैपदेषु (४८५)। क्रम् धातु के अ को आ होता है, बाद में परस्मैपद का शित् (जिसमें से श् हटा है) प्रत्यय हो तो।

१३. दस लकारों के मुख्य कार्य

सूचना—(१) भ्वादिगण परस्मैपद और आत्मनेपद के दस लकारों के मुख्य कार्यों का संक्षेप में यहाँ पर विवरण दिया जा रहा है। ये कार्य प्रायः सभी धातुओं में होते हैं। आगे इन कार्यों का प्रत्येक स्थान पर विवरण न देकर केवल संकेत किया जाएगा। अतः नीचे के विवरण को सावधानी से स्मरण कर लें। केवल सार्वधातुक लकारों में ही प्रत्येक गण में कुछ अन्तर होता है, अतः प्रत्येक गण के साथ केवल सार्वधातुक लकारों में होनेवाले विशिष्ट कार्यों का उल्लेख किया जाएगा। आर्धधातुक लकारों में १० गणों में कोई अन्तर गण-भेद के कारण नहीं होता है, अतः उनके लिए जो विवरण दिया गया है। वह दसों गणों के लिए समझें।

(२) प्रत्येक धातु में जो कुछ विशेष कार्य होते हैं, उनका ही यथास्थान निर्देश किया जाएगा।

(३) प्रत्येक धातु के दस लकारों के प्रथम पुरुष एकवचन के रूप दिए जाएँगे। उनके रूप आदर्श धातु के अनुसार चलावें और उनके अनुसार ही उनके रूप भी बनावें।

(२) इतश्च (४२३)। ति और सि के इ का लोप होगा। सि के स् को विसर्ग। (३) तस्थस्० (४१३)। तः को ताम्, थः को तम्, थ को त, मि को अम् होगा। (४) नित्यं ङितः (४२०)। वः, मः के विसर्ग का लोप होगा। (५) यासुट्० (४२५)। तिङ् प्रत्ययों से पहले परस्मैपद में यासुट् (यास्) लगेगा। (६) अतो येयः (४२७)। अ के बाद यास् को इय् होता है। इस इय् को पूर्ववर्ती शप् के अ के साथ गुण हो जाएगा। (७) लोपो व्योर्वलि (४२८)। व् और य् का लोप होता है, बाद में वल् (य् को छोड़कर कोई भी व्यंजन) हो तो। इससे इय् के य् का लोप होता है। (८) झेर्जुस् (४२९)। लिङ् के झि को जुस् (उः) होता है। जुस् का उस् रहता है, स् को विसर्ग होकर उः।

१. प्र० १—एत्। शप्, यास्, यास् को इय्, गुण, य् और ति के इ का लोप।
२. प्र० २—एताम्। शप्, यास्, यास् को इय्, गुण, तः को ताम्, य् का लोप।
३. प्र० ३—एयुः। ,, ,, ,, ,, ,, झि को उः।
४. म० १—एः। ,, ,, ,, ,, ,, य् और सि के इ का लोप, विसर्ग।
५. म० २—एतम्। ,, ,, ,, ,, ,, थः को तम्, य् का लोप।
६. म० ३—एत। ,, ,, ,, ,, ,, थ को त, य् का लोप।
७. उ० १—एयम्। ,, ,, ,, ,, ,, मि को अम्।
८. उ० २—एव। ,, ,, ,, ,, ,, य् और वः के विसर्ग का लोप।
९. उ० ३—एम। ,, ,, ,, ,, ,, य् और मः के विसर्ग का लोप।

आर्धधातुक लकार—(५) लिट्

सूचना—(१) परस्मैपदानां० (३९१)। परस्मैपद लिट् के ति तः आदि के स्थान पर क्रमशः ये ९ आदेश होते हैं:—णल् (अ), अतुस् (अतुः), उस् (उः), थल् (थ), अथुस् (अथुः), अ, णल् (अ), व, म। (२) लिटि धातो० (३९३)। लिट् में धातु को द्वित्व होता है। धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है, यदि धातु अजादि और अनेकाच् है तो उसके द्वितीय अच् को द्वित्व होगा। (३) पूर्वोऽभ्यासः (३९४)। द्वित्व होने पर पहले अंश को अभ्यास कहते हैं। (४) हलादिः शेषः (३९५)। अभ्यास का पहला हल् (व्यंजन) शेष रहता है, शेष व्यंजनों का लोप हो जाता है। (५) अभ्यासे चर्च (३९८)। अभ्यास (द्वित्व के प्रथम अंश) में वर्ग के प्रथम और तृतीय वर्ण तथा श ष स में कोई परिवर्तन नहीं होता है। वर्ग के द्वितीय वर्णों को प्रथम वर्ण होते हैं और वर्ग के चतुर्थ वर्णों को तृतीय वर्ण होते हैं। जैसे—ढ् को ड्, भ् को ब्। (६) कुहोश्चुः (४५३)। कवर्ग और ह को चवर्ग होते हैं। अर्थात् क् > च्, ख > च्, ग् > ज्, घ > ज्, ह् > ज्। (७) ह्रस्वः (३९६)। अभ्यास के दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर हो जाता है। (८) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। वलादि (य्-भिन्न व्यंजन से प्रारम्भ होनेवाले) आर्धधातुक से पहले इ लगता है। (९) अत उपधायाः (४५४)। उपधा के अ को वृद्धि होती है, अर्थात् अ को आ होता है, बाद में ञित् और णित् प्रत्यय हो तो। इससे प्र० १ में अ को आ होता है। (१०) णलुत्तमो वा

(४५५)। उत्तम पुरुष का णल् (अ) विकल्प से णित् होता है। अतः उ० १ में विकल्प से अ को आ होगा। (११) कास्यनेकाच्० (वा०)। अनेक अच् वाली धातुओं से लिट् में आम् हो जाता है। (१२) कृञ् चा० (४७१)। धातु से आम् लगने पर उसके बाद कृ, भू और अस् धातुएँ जुड़ती हैं और कृ आदि के ही लिट् के रूप उनमें लगते हैं।

१. प्र० १—अ। णल् (अ), द्वित्व, अभ्यास-कार्य, णित् होने से गुण या वृद्धि।
२. प्र० २—अतुः। अतुस् (अतुः), द्वित्व, अभ्यास कार्य।
३. प्र० ३—उः। उस् (उः), ,, ,, ।
४. म० १—थ। थल् (थ), ,, ,, , सेट् में इ लगेगा।
५. म० २—अथुः। अथुस् (अथुः) ,, ,, ।
६. म० ३—अ। अ, ,, ,, ।
७. उ० १—अ। णल् (अ), ,, ,, , विकल्प से गुण या वृद्धि।
८. उ० २—व। व, ,, ,, , सेट् में इ लगेगा।
९. उ० ३—म। म, ,, ,, , ,, ,, ।

(६) लुट्

सूचना—(१) स्यतासी लृलुटोः (४०२)। लुट् में तिङ् प्रत्यय से पहले तास् लगता है। (२) लुटः प्रथमस्य० (४०४)। लुट् के प्रथम पुरुष के एक० को डा (आ), द्वि० को रौ और बहु० को रस् (रः) होते हैं। (३) तासस्त्योर्लोपः (४०५)। तास् के स् का लोप होगा, बाद में स् से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय हो तो। इससे सि में स् का लोप होगा। (४) रि च (४०६)। र् से प्रारम्भ होनेवाला प्रत्यय होगा तो भी तास् के स् का लोप होगा। इससे प्र० २, ३ में स् का लोप होगा। (५) आर्धधातुक-स्येड्० (४००)। सेट् धातुओं में तास् से पहले इ लगेगा।

१. प्र० १—ता। तास्, ति को डा (आ), आस् का लोप, सेट् में इट् (इ)।
२. प्र० २—तारौ। तास्, तः को रौ, स् का लोप, ,, ,, ,, ।
३. प्र० ३—तारः। तास्, झि को रः, ,, ,, ,, ,, ,, ।
४. म० १—तासि। तास्, ,, ,, ,, ,, ,, ।
५. म० २—तास्थः। तास्, सेट् में इट् (इ)।
६. म० ३—तास्थ। ,, ,, ,, ।
७. उ० १—तास्मि। ,, ,, ,, ।
८. उ० २—तास्वः। ,, ,, ,, ।
९. उ० ३—तास्मः। ,, ,, ,, ।

(७) लृट्

सूचना—(१) स्यतासी० (४०२)। लृट् में तिङ् से पहले स्य लगता है। (२) आर्धधातुकस्येड् (४००)। सेट् धातुओं में स्य से पहले इ लगेगा। (३) आदेशट्।

प्रत्ययचोः (१५०)। सेट् धातुओं में स्य के स् को ष् होगा। (४) लट् लकार में होनेवाले ये कार्य होंगे—झि > अन्ति, मि वः मः में स्य के अ को अतो दीर्घो० से दीर्घ आ।

१. प्र० १—स्यति। स्य + ति, सेट् में इ लगेगा और स् को ष्।
२. प्र० २—स्यतः। स्य + तः। „ „ ।
३. प्र० ३—स्यन्ति। स्य, झि > अन्ति, „ „ ।
४. म० १—स्यसि। स्य + सि, „ „ ।
५. म० २—स्यथः। स्य + थः, „ „ ।
६. म० ३—स्यथ। स्य + थ, „ „ ।
७. उ० १—स्यामि। स्य + मि, अ को आ, „ ।
८. उ० २—स्यावः। स्य + वः, „ „ ।
९. उ० ३—स्यामः। स्य + मः, „ „ ।

(८) आशीर्लिङ्

सूचना—(१) यासुट्० (४२५)। लिङ् प्रत्ययों से पहले परस्मैपद में यास् लगेगा। (२) तस्थस्० (४१२)। तः को ताम्, थः को तम्, थ को त और मि को अम् होगा। (३) नित्यं ङितः (४२०)। वः और मः के विसर्ग का लोप होगा। (४) झेर्जुस् (४२९)। झि को जुस् (उः) होगा। (५) लिङाशिषि (४३०)। आशीर्लिङ् आर्धधातुक होता है। (६) किदाशिषि (४३१)। आशीर्लिङ् में यास् कित् होता है। अतः क्ङिति च (४३२) से आशीर्लिङ् में गुण का निषेध होता है। (७) स्कोः० (३०९)। प्र० १ और म० १ में यास् के स् का लोप होगा। (८) रिङ् शयग्० (५४२)। आशीर्लिङ् में धातु के अन्तिम ऋ को रि हो जाता है। (९) इतश्च (४२३)। ति और सि के इ का लोप हो जाता है।

१. प्र० १—यात्। यास् + ति, ति के इ का लोप, स् का लोप।
२. प्र० २—यास्ताम्। यास् + तः, तः को ताम्।
३. प्र० ३—यासुः। यास् + झि, झि को उः।
४. म० १—याः। यास् + सि, सि के इ का लोप, यास् के स् का लोप, विसर्ग।
५. म० २—यास्तम्। यास् + थः, थः को तम्।
६. म० ३—यास्त। यास् + थ, थ को त।
७. उ० १—यासम्। यास् + मि, मि को अम्।
८. उ० २—यास्व। यास् + वः, वः के विसर्ग का लोप।
९. उ० ३—यास्म। यास् + मः, मः के विसर्ग का लोप।

(९) लुङ्

(क) स्-लोप वाला भेद (सिच्-लोप)

सूचना—(१) च्लि लुङि (४३६)। लुङ् में तिङ् से पहले च्लि होता है। इस च्लि

को ही प्रायः सिच् (स) होता है। इसे कहीं पर अङ् (अ) और कहीं पर चङ् (अ) भी होता है। इसका यथास्थान निर्देश किया गया है। (२) च्लेः सिच् (४३७)। च्लि को सिच् (स्) हो जाता है। इसका स् शेष रहता है। (३) गातिस्था० (४३८)। इन धातुओं के बाद परस्मैपद में सिच् का लोप हो जाता है। सिच् का लोप होने पर केवल तिङ् प्रत्यय अन्त में जुड़ेंगे। (४) लुङ्लङ्० (४२२)। लुङ् में धातु से पहले अ लगता है। (५) आडजादीनाम् (४४३)। यदि धातु अजादि है तो धातु से पहले आ लगेगा। आ को अगले स्वर के साथ वृद्धि एकादेश हो जाएगा। (६) इतश्च (४२३)। ति, अन्ति और सि के इ का लोप हो जाता है। अतएव ति का त् रहता है, अन्ति के इ का लोप होने पर संयोगान्त होने से त् का लोप होकर अन् शेष रहता है और सि के इ का लोप होने पर स् को विसर्ग हो जाता है। (७) तस्थस्० (४१३)। तस् को ताम्, थस् को तम्, थ को त और मि को अम् होता है। (८) नित्यं ङितः (४२०)। वः और मः के विसर्ग का लोप होता है। (९) आतः (४९०)। आकारान्त धातुओं के बाद झि को जुस् (उः) हो जाता है। इस उः को उस्य० (४९१) से पररूप होकर आ + उः = उः शेष रहता है। (१०) विभाषा घ्राधेट्० (६३३)। इन धातुओं के बाद सिच् का लोप विकल्प से होता है—घ्रा, धेट्, शो, छो और षो (सो)। (११) तनादिभ्य० (६७४)। तनादिगणी धातुओं के बाद सिच् का लोप विकल्प से होता है, बाद में त और थाः होने पर।

इस भेदवाले धातुओं में धातु से पहले अ या आ लगेगा तथा अन्त में अन्तिम अंश ये लगेंगे :—

त् ताम् उः (अन्)। : तम् त। अम् व म।

(ख) अ-वाला भेद (च्लि को अङ्)

सूचना—(१) पुषादि० (५०६)। पुष् आदि धातुओं, द्युत् आदि धातुओं और लृदित् (जिनमें से लृ हटा है) धातुओं के बाद च्लि को अङ् (अ) हो जाता है, परस्मैपद में। अङ् ङित् है, अतः *धातु को गुण नहीं होगा।* (२) *अस्यति०* (५९७)। अस् (फेंकना), वच् (बोलना) और ख्या (कहना) धातुओं के बाद च्लि को अङ् (अ) होता है। (३) लिपिसिचि० (६५५)। लिप्, सिच् और ह्वे धातुओं के बाद च्लि को अङ् (अ) होता है। (४) आत्मने० (६५६)। लिप्, सिच् और ह्वे धातुओं के बाद च्लि को विकल्प से अङ् (अ) होता है, आत्मनेपद में। (५) इरितो वा (६२८)। जिन धातुओं में से इर् हटता है, उनके बाद च्लि को विकल्प से अङ् होता है, परस्मैपद में। (६) जॄस्तम्भु० (६८८)। इन धातुओं के बाद च्लि को विकल्प से अङ् होता है—जॄ, स्तम्भ्, म्रुच्, म्लुच्, ग्रुच्, ग्लुच्, ग्लुञ्च् और श्वि। (७) शेष कार्य (क) के तुल्य होंगे—धातुओं से पहले अ या आ; ति अन्ति सि के इ का लोप; तस् आदि को ताम् तम् त अम्; वः मः के विसर्ग का लोप। धातुओं के अन्त में अन्तिम अंश ये लगेंगे :—अत् अताम् अन्। अः अतम् अत। अम् आव आम।

है। शेष सभी कार्य इट्-वाले भेद के तुल्य होंगे। इष्-वाले अन्तिम अंश में इष् से पहले स् और जोड़ दें। जैसे—

सीत् सिष्टाम् सिषुः। सीः सिष्टम् सिष्ट। सिषम् सिष्व सिष्म।

(छ) स-वाला भेद (क्स-स)

सूचना-(१) शल इगुपधाद्० (५९०)। जो धातु इगुपध (जिसकी उपधा में इ, उ या ऋ हैं), शल् (श् ष् स् ह्) अन्तवाली और अनिट् हैं, उसके बाद च्लि को क्स (स) होता है। क्स का स शेष रहता है। (२) अ-वाले भेद में जो अन्तिम अंश लगते हैं और उनमें जो कार्य होते हैं, वे इसमें भी होंगे। इसमें अ के स्थान पर स लगेगा। अन्य कार्य उसी प्रकार होंगे। अन्तिम अंश ये हैं;—

सत् सताम् सन्। सः सतम् सत। सम् साव साम।

(१०) लृङ्

सूचना (१) स्यतासी० (४०२)। लृङ् में तिङ् प्रत्ययों से पहले स्य लगता है। (२) लुङ्लङ्० (४२२)। धातु से पहले अ लगता है। (३) आडजादीनाम् (४४३)। *यदि धातु अजादि है तो धातु से पहले आ लगेगा। इस आ को अगले स्वर के साथ* वृद्धि एकादेश हो जाएगा। (४) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। सेट् धातुओं में स्य से पहले इ लगेगा। (५) आदेशप्रत्यययोः (१५०)। सेट् धातुओं में स्य के स् को ष् होगा। (६) तस्थस्० (४१३)। तः को ताम्, थः को तम्, थ को त और मि को अम् होता है। (७) इतश्च (४२३)। ति, अन्ति और सि के इ का लोप होता है। अतः ति का त् रहेगा, अन्ति के इ का लोप और संयोगान्त होने से त् का लोप होकर अन् रहेगा, सि का स् बचेगा, उसे विसर्ग (:) हो जाएगा। (८) नित्यं ङितः (४२०)। वः और मः के विसर्ग का लोप होता है। (९) अतो दीर्घो० (३८९)। व और म से पहले स्य के अ को आ होगा। (१०) अतो गुणे (२७४)। *अ के बाद अ होगा तो पररूप से एक अ रहेगा।*

विशेष—*धातु से पहले अ या आ लगेगा। सेट् धातुओं में स्य से पहले इ लगेगा* और स्य के स् को ष् होगा।

१. प्र० १—स्यत्। स्य + ति, ति के इ का लोप।
२. प्र० २—स्यताम्। स्य + तः, तः को ताम्।
३. प्र० ३—स्यन्। स्य + झि, झि को अन्ति, इ और त् का लोप, पररूप।
४. म० १—स्यः। स्य + सि, सि के इ का लोप, स् को विसर्ग।
५. म० २—स्यतम्। स्य + थः, थः को तम्।
६. म० ३—स्यत। स्य + थ, थ को त।
७. उ० १—स्यम्। स्य + मि, मि को अम्, पररूप अ + अ = अ।
८. उ० २—स्याव। स्य + वः, वः के विसर्ग का लोप, स्य के अ को आ।
९. उ० ३—स्याम। स्य + मः, मः ,, ,, ,,।

भ्वादिगण–आत्मनेपद

सार्वधातुक–(१) लट्

सूचना—(१) कर्तरि शप् (३८६)। सार्वधातुक लकारों में भ्वादिगण में शप् (अ) विकरण होता है। इसका अ शेष रहता है। शप् पित् है, अतः शप् बाद में होने पर धातु को गुण होता है। (२) सार्वधातुक० (३८७)। शप् बाद में होने पर धातु के इक् (इ उ ऋ) को गुण होगा। अर्थात् इ ई को ए, उ ऊ को ओ और ऋ ॠ को अर् होगा। (३) पुगन्त० (४५०)। उपधा के ह्रस्व इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् होगा। (४) झोऽन्तः (३८८)। झ् को अन्त् होता है। (५) अतो दीर्घो० (३०९)। उ० २ और ३ में शप् के अ को आ, अतः आवहे, आमहे होगा। (६) टित० (५०७)। टित् लकारों (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्) के आत्मनेपद तिङ् प्रत्ययों के टि (अन्तिम स्वर सहित अंश) को ए होता है। इसलिए तिङ् प्रत्ययों के ये रूप हो जाते हैं—त> ते, आताम्> आते, झ> अन्त> अन्ते, आथाम्> आथे, ध्वम्> ध्वे, इ> ए, वहि> वहे, महि> महे। (७) आतो ङितः (५०८)। अ के बाद ङित् प्रत्ययों के आ को इय् होता है। इससे आताम् और आथाम् के आ को इय् होगा। इय् के इ को शप् के अ के साथ 'आद्गुणः' (२७) से गुण होकर एय् होगा और 'लोपो व्योर्वलि' (४२८) से य् का लोप होकर एय् + ताम् = एताम् और एय् + थाम् = एथाम् होगा। (८) थासः से (५०९)। टित् लकारों (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्) में थास् को से हो जाता है। (९) अतो गुणे (२७४)। अ + अ = अ, अ + ए = ए पररूप हो जाएगा। अतः प्र० ३ में अ + अन्ते = अन्ते और उ० १ में अ + ए = ए रहेगा।

आत्मनेपद लट् में अन्तिम अंश ये लगेंगे:—

१. प्र० १—अते। शप् (अ) + त, त के अ को ए।
२. प्र० २—एते। शप् + आताम्, आ को इय्, गुणसन्धि, य्-लोप, आम् को ए।
३. प्र० ३—अन्ते। शप् + झ, झ को अन्त, त के अ को ए, पररूप।
४. म० १—असे। शप् + थास्, थास् को से।
५. म० २—एथे। शप् + आथाम्, आम् को ए, आ को इय्, गुणसन्धि, य्-लोप।
६. म० ३—अध्वे। शप् + ध्वम्, ध्वम् के अम् को ए।
७. उ० १—ए। शप् + इ, इ को ए, पररूप।
८. उ० २—आवहे। शप् + वहि, वहि के इ को ए, अ को दीर्घ आ।
९. उ० ३—आमहे। शप् + महि, महि ,, ,, ।

आत्मनेपद–(२) लोट्

सूचना—(१) लोट् में लट्वाले सभी कार्य होंगे। (२) आमेतः (५१६)। लोट् के ए को आम् हो जाता है। अतएव लट् के अन्तिम अंशों में ये परिवर्तन होंगे—

है। शेष सभी कार्य इट्-वाले भेद के तुल्य होंगे। इष्-वाले अन्तिम अंश में इष् से पहले स् और जोड़ दें। जैसे—

सीत् सिष्टाम् सिषुः। सीः सिष्टम् सिष्ट। सिषम् सिष्व सिष्म।

(छ) स-वाला भेद (क्स-स)

सूचना-(१) शल इगुपधाद० (५९०)। जो धातु इगुपध (जिसकी उपधा में इ, उ या ऋ हैं), शल् (श् ष् स् ह्) अन्तवाली और अनिट् हैं, उसके बाद च्लि को क्स (स) होता है। क्स का स शेष रहता है। (२) अ-वाले भेद में जो अन्तिम अंश लगते हैं और उनमें जो कार्य होते हैं, वे इसमें भी होंगे। इसमें अ के स्थान पर स लगेगा। अन्य कार्य उसी प्रकार होंगे। अन्तिम अंश ये हैं;—

सत् सताम् सन्। सः सतम् सत। सम् साव साम।

(१०) लृङ्

सूचना (१) स्यतासी० (४०२)। लृङ् में तिङ् प्रत्ययों से पहले स्य लगता है। (२) लुङ्लङ्० (४२२)। धातु से पहले अ लगता है। (३) आडजादीनाम् (४४३)। यदि धातु अजादि है तो धातु से पहले आ लगेगा। इस आ को अगले स्वर के साथ वृद्धि एकादेश हो जाएगा। (४) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। सेट् धातुओं में स्य से पहले इ लगेगा। (५) आदेशप्रत्यययोः (१५०)। सेट् धातुओं में स्य के स् को ष् होगा। (६) तस्थस्० (४१३)। तः को ताम्, थः को तम्, थ को त और मि को अम् होता है। (७) इतश्च (४२३)। ति, अन्ति और सि के इ का लोप होता है। अतः ति का त् रहेगा, अन्ति के इ का लोप और संयोगान्त होने से त् का लोप होकर अन् रहेगा, सि का स् बचेगा, उसे विसर्ग (:) हो जाएगा। (८) नित्यं ङितः (४२०)। वः और मः के विसर्ग का लोप होता है। (९) अतो दीर्घो० (३८९)। व और म से पहले स्य के अ को आ होगा। (१०) अतो गुणे (२७४)। अ के बाद अ होगा तो पररूप से एक अ रहेगा।

विशेष—धातु से पहले अ या आ लगेगा। सेट् धातुओं में स्य से पहले इ लगेगा और स्य के स् को ष् होगा।

१. प्र० १—स्यत्। स्य + ति, ति के इ का लोप।
२. प्र० २—स्यताम्। स्य + तः, तः को ताम्।
३. प्र० ३—स्यन्। स्य + झि, झि को अन्ति, इ और त् का लोप, पररूप।
४. म० १—स्यः। स्य + सि, सि के इ का लोप, स् को विसर्ग।
५. म० २—स्यतम्। स्य + थः, थः को तम्।
६. म० ३—स्यत। स्य + थ, थ को त।
७. उ० १—स्यम्। स्य + मि, मि को अम्, पररूप अ + अ = अ।
८. उ० २—स्याव। स्य + वः, वः के विसर्ग का लोप, स्य के अ को आ।
९. उ० ३—स्याम। स्य + मः, मः ,, ,, ,, ।

भ्वादिगण—आत्मनेपद

सार्वधातुक—(१) लट्

सूचना—(१) कर्तरि शप् (३८६)। सार्वधातुक लकारों में भ्वादिगण में शप् (अ) विकरण होता है। इसका अ शेष रहता है। शप् पित् है, अतः शप् बाद में होने पर धातु को गुण होता है। (२) सार्वधातुका० (३८७)। शप् बाद में होने पर धातु के इक् (इ उ ऋ) को गुण होगा। अर्थात् इ ई को ए, उ ऊ को ओ और ऋ ॠ को अर् होगा। (३) पुगन्त० (४५०)। उपधा के ह्रस्व इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् होगा। (४) झोऽन्तः (३८८)। झ् को अन्त् होता है। (५) अतो दीर्घो० (३०९)। उ० २ और ३ में शप् के अ को आ, अतः आवहे, आमहे होगा। (६) टित० (५०७)। टित् लकारों (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्) के आत्मनेपद तिङ् प्रत्ययों के टि (अन्तिम स्वर सहित अंश) को ए होता है। इसलिए तिङ् प्रत्ययों के ये रूप हो जाते हैं—त>ते, आताम्> आते, झ> अन्त> अन्ते, आथाम्> आथे, ध्वम्> ध्वे, इ> ए, वहि> वहे, महि> महे। (७) आतो ङितः (५०८)। अ के बाद ङित् प्रत्ययों के आ को इय् होता है। इससे आताम् और आथाम् के आ को इय् होगा। इय् के इ को शप् के अ के साथ 'आद्गुणः' (२७) से गुण होकर एय् होगा और 'लोपो व्योर्वलि' (४२८) से य् का लोप होकर एय्+ताम्=एताम् और एय्+थाम्=एथाम् होगा। (८) थासः से (५०९)। टित् लकारों (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्) में थास् को से हो जाता है। (९) अतो गुणे (२७४)। अ+अ=अ, अ+ए=ए पररूप हो जाएगा। अतः प्र० ३ में अ+अन्ते= अन्ते और उ० १ में अ+ए=ए रहेगा।

आत्मनेपद लट् में अन्तिम अंश ये लगेंगेः—

१. प्र० १—अते। शप् (अ)+त, त के अ को ए।
२. प्र० २—एते। शप्+आताम्, आ को इय्, गुणसन्धि, य्-लोप, आम् को ए।
३. प्र० ३—अन्ते। शप्+झ, झ को अन्त, त के अ को ए, पररूप।
४. म० १—असे। शप्+थास्, थास् को से।
५. म० २—एथे। शप्+आथाम्, आम् को ए, आ को इय्, गुणसन्धि, य्-लोप।
६. म० ३—अध्वे। शप्+ध्वम्, ध्वम् के अम् को ए।
७. उ० १—ए। शप्+इ, इ को ए, पररूप।
८. उ० २—आवहे। शप्+वहि, वहि के इ को ए, अ को दीर्घ आ।
९. उ० ३—आमहे। शप्+महि, महि ,, ,, ।

आत्मनेपद—(२) लोट्

सूचना—(१) लोट् में लट् वाले सभी कार्य होंगे। (२) आमेतः (५१६)। लोट् के ए को आम् हो जाता है। अतएव लट् के अन्तिम अंशों में ये परिवर्तन होंगे—

अते> अताम्, एते> एताम् , अन्ते> अन्ताम्, एथे> एथाम् । (३) सवाभ्यां वामौ (५१७) । स् और व् के बाद लोट् के ए को क्रमशः व और अम् होते हैं । अतः से> स्व, ध्वे> ध्वम् । (४) एत ऐ (५१८) । लोट् उत्तमपुरुष के ए को ऐ हो जाता है । इसलिए ए> ऐ,आवहे> आवहै, आमहे> आमहै । (५) आडुत्तमस्य पिच्च (४१७) । लोट् उत्तमपुरुष में तिङ् से पूर्व आ लगता है । अतः उ० १ में आ + ऐ = ऐ, 'आटश्च' (१९७) से वृद्धि । उ० २ और ३ में शप् (अ) + आ + वहै = आवहै, शप् (अ) + आ + महै = आमहै, सवर्णदीर्घ से अ + आ = आ ।

१. प्र० १—अताम् । शप् (अ) + त । अ को ए, ए को आम् ।
२. प्र० २—एताम् । शप् + आताम् आम् को ए, ए को आम् , आ को इय्, गुण, य्-लोप ।
३. प्र० ३ —अन्ताम् । शप् + झ, झ को अन्त, त के अ को ए, ए को आम्, पररूप ।
४. म० १—अस्व । शप् + थाः, थाः को से, से को स्व ।
५. म० २—एथाम् । शप् + आथाम्, आम् को ए, ए> आम् , आ> इय्, गुण, य्-लोप ।
६. म० ३—अध्वम् । शप् + ध्वम्, अम् को ए, ए को अम् ।
७. उ० १—ऐ । शप् + आ + इ, इ को ए, ए को ऐ, अ + आ = आ । आ + ऐ = ऐ ।
८. उ० २—आवहै । शप् + आ + वहि, इ को ए, ए को ऐ, अ + आ = आ दीर्घ ।
९. उ० ३—आमहै । शप् + आ + महि, ,, ,, ,, ।

आत्मनेपद—(२) लङ्

सूचना (१) लुङ्लङ्० (४२२) । धातु से पहले अ लगेगा । (२) आडजादीनाम् (४४३) । यदि धातु अजादि है तो धातु से पहले आ लगेगा और 'आटश्च' (१९७) से आ + धातु के स्वर को वृद्धि एकादेश हो जाएगा । (३) आतो ङितः (५०८) । आताम् और आथाम् के आ को इय् होगा । इस इ को पूर्ववर्ती शप् के अ के साथ गुणसन्धि होकर अ + इय् = एय होगा और 'लोपो व्योर्वलि' (४२८) से य् का का लोप होगा । अतः एताम्, एथाम् बनेगा । (४) झोऽन्तः (३८८) । झ को अन्त होगा । अ + अन्त = अन्त, 'अतो गुणे' से पररूप । (५) अतो दीर्घो० (३८९) । वहि और महि से पूर्ववर्ती शप् के अ को दीर्घ होकर आ होगा । (६) कर्तरि शप् (३८६) । सभी स्थानों पर शप् (अ) विकरण लगेगा ।

विशेष—धातु से पहले अ या आ लगेगा ।

१. प्र० १—अत । शप् (अ) + त ।
२. प्र० २—एताम् । शप् + आताम् , आ को इय् , गुणसन्धि, य् का लोप ।
३. प्र० ३—अन्त । शप् + झ, झ को अन्त, अतो गुणे से पररूप ।

४. म० १—अथाः। शप् (अ) + थाः।
५. म० २—एथाम्। शप् + आथाम्, आ को इय्, गुणसन्धि, य् का लोप।
६. म० ३—अध्वम्। शप् (अ) + ध्वम्।
७. उ० १—ए। शप् (अ) + इ, गुणसन्धि से ए।
८. उ० २—आवहि। शप् (अ) + वहि, अ को दीर्घ आ।
९. उ० ३—आमहि। शप् (अ) + महि, अ को दीर्घ आ।

आत्मनेपद—(४) विधिलिङ्

सूचना—(१) कर्तरि शप् (३८६)। विधिलिङ् में सभी स्थानों पर शप् (अ) लगेगा। (२) लिङः सीयुट् (५१९)। आत्मनेपद विधिलिङ् और आशीर्लिङ् के तिङ् प्रत्ययों से पहले सीयुट् (सीय्) लगता है। (३) लिङः सलोपो० (४२६)। विधिलिङ् में सीय् के स् का लोप होगा। (४) लोपो व्योर्वलि (४२८)। सीय् के य् का लोप इन स्थानों पर होगा:—एय् + त = एत, एय् + रन् = एरन्, एय् + थाः = एथाः, एय् + ध्वम् = एध्वम्, एय् + वहि = एवहि, एय् + महि = एमहि। (५) झस्य रन् (५२०)। विधिलिङ् और आशीर्लिङ् के झ को रन् हो जाता है। (६) इटोऽत् (५२१)। उ० १ इ को अत् (अ) हो जाता है।

विशेष—विधिलिङ् में सर्वत्र सीय् के स् का लोप होने से ईय् शेष रहेगा।

१. प्र० १—एत। शप् (अ) + ईय् + त, गुणसन्धि, य् का लोप।
२. प्र० २—एयाताम्। शप् + ईय् + आताम्, गुणसन्धि से अ + ई = ए।
३. प्र० ३—एरन्। शप् + ईय् + झ, झ को रन्, गुणसन्धि से ए, य् का लोप।
४. म० १—एथाः। शप् + ईय् + थाः, गुणसन्धि से ए, य् का लोप।
५. म० २—एयाथाम्। शप् + ईय् + आथाम्, गुणसन्धि से अ + ई = ए।
६. म० ३—एध्वम्। शप् + ईय् + ध्वम, गुणसन्धि से ए, य् का लोप।
७. उ० १—एय। शप् + ईय् + इ, गुणसन्धि से ए, इ को अ।
८. उ० २—एवहि। शप् + ईय् + वहि, गुणसन्धि से ए, य् का लोप।
९. उ० ३—एमहि। शप् + ईय् + महि, गुणसन्धि से ए, य् का लोप।

आर्धधातुक लकार

आत्मनेपद—(५) लिट्

सूचना—(१) लिटि धातो० (३९३)। धातु को द्वित्व होगा। (२) हलादिः शेषः (३९५)। अभ्यास (द्वित्व का पहला अंश) का पहला व्यंजन शेष रहेगा, शेष व्यंजनों

का लोप होगा। (३) अभ्यासे चर्च (३९८)। अभ्यास में वर्ग के द्वितीय वर्ण को प्रथम वर्ण होगा और चतुर्थ वर्ण को तृतीय वर्ण होंगे। (४) कुहोश्चुः (४५३)। कवर्ग और ह् को चवर्ग होते हैं। अर्थात् क्>च्, ख्>च्, ग्>ज्, घ्>ज्, ह्>ज्। (५) ह्रस्वः (३९६)। अभ्यास के दीर्घ स्वर को ह्रस्व हो जाता है। (६) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। *वलादि (य्-भिन्न व्यंजन से प्रारम्भ होनेवाले) आर्धधातुक* से पहले इ लगता है। (७) कास्यनेकाच आम्० (वा०)। अनेक अच् वाली धातुओं में लिट् में आम् जुड़ता है। (८) इजादेश्च० (५०१)। *ऋच्छ धातु से भिन्न गुरु वर्णवाले* इजादि (अ-भिन्न कोई भी स्वर प्रारम्भ में हो) धातु से आम् होता है। लिट् में। (९) *कृञ्चा० (४७१)। धातु से आम् लगने पर उसके बाद कृ, भू और अस् धातुओं का* प्रयोग होता है। कृ आदि के ही लिट् के रूप उनके अन्त में लगते हैं धातु परस्मैपदी *होगी तो कृ आदि के रूप लिट् परस्मैपद के लगेंगे। यदि धातु आत्मनेपदी है तो कृ के* आत्मनेपद लिट् के रूप लगेंगे। भू और अस् के सदा परस्मैपद के ही रूप लगते हैं। (१०) *लिटस्तझयो० (५१२)। लिट् के त को ए होता है और झ को इरे।* (११) टित० (५०७)। लिट् में तिङ् प्रत्ययों की टि (अन्तिम स्वर-सहित अंश) को ए होता है। *अतः आताम्>आते, आथाम्>आथे, ध्वम्>ध्वे, इ>ए, वहि>वहे, महि>* महे। (१२) थासः से (५०९)। लिट् में थास् को से होता है। (१३) इणः षीर्ध्वं० (५१३)। *इण् (अ-भिन्न स्वर) अन्तवाले अंग के बाद लिट् के ध्वम् के ध् को ढ्* होता है। (१४) विभाषेटः (५२६)। इण् के बाद इट् (इ) होगा तो *लिट् के ध्वम्* *के ध् को ढ् विकल्प से होगा।*

विशेष—लिट् लकार में धातु को द्वित्व होगा और अभ्यासकार्य होगा। सेट् धातुओं में से, वहे, महे से पहले इ लगेगा।

१. प्र० १—ए। धातु को द्वित्व, अभ्यास-कार्य, त को ए।
२. प्र० २—आते। „ „ „ आताम् के आम् को ए।
३. प्र० ३—इरे। „ „ „ झ को इरे।
४. म० १—से। „ „ „ थाः को से।
५. म० २—आथे। „ „ „ आथाम् के आम् को ए।
६. म० ३—ध्वे। „ „ „ ध्वम् के अम् को ए।
७. उ० १—ए। „ „ „ इ को ए।
८. उ० २—वहे। „ „ „ वहि के इ को ए।
९. उ० ३—महे। „ „ „ महि के इ को ए।

आत्मनेपद—(६) लुट्

सूचना—(१) स्यतासी० (४०२)। *लुट् में तिङ् प्रत्ययों से पहले तास् लगता है।* (२) लुटः प्रथमस्य० (४०४)। लुट् प्रथमपुरुष के एक० को डा (आ), द्वि० को रौ

और बहु० को रस् (रः) होते हैं। (३) तासस्त्योर्लोपः (४०५)। तास् के स् का लोप होता है, बाद में स् से प्रारम्भ होनेवाला प्रत्यय हो तो। इससे म० १ में से के पूर्ववर्ती स् का लोप होकर तासे बनेगा। (४) रि च (४०६)। इससे प्र० २ और प्र० ३ में स् का लोप होकर तारौ और तारः बनेंगे। (५) धि च (५१४)। ध् से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय बाद में होने पर स् का लोप होगा। इससे तास् + ध्वे = ताध्वे होगा। (६) ह एति (५१५) तास् के स् को ह् होगा, बाद में ए होने पर। तास् + ए = ताहे। (७) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। सेट् धातुओं में तास् से पहले इ लगेगा। (८) शेष परस्मै० लुट् के तुल्य। (९) लट् के तुल्य टि को ए। आथाम् > आथे, ध्वम् > ध्वे, इ > ए, वहि > वहे; महि > महे।

१. प्र० १—ता। तास्, ति को डा (आ), आस् का लोप, सेट् में इट् (इ)।
२. प्र० २—तारौ तास्, तः को रौ, स् का लोप, „ „ ।
३. प्र० ३—तारः। तास्, झि को रः, „ „ „ „ ।
४. म० १—तासे। तास्, थाः को से, „ „ „ „ ।
५. म० २—तासाथे। तास्, आथाम् के आम् को ए।
६. म० ३—ताध्वे। तास्, ध्वम् के अम् को ए, स् का लोप, सेट् में इ।
७. उ० १—ताहे। तास्, इ को ए, स् को ह्, सेट् में इ।
८. उ० २—तास्वहे। तास्, वहि के इ को ए, सेट् में इ।
९. उ० ३—तास्महे। तास्, महि के इ को ए, सेट् में इ।

आत्मनेपद-(७) लृट्

सूचना—(१) स्यतासी० (४०२)। लृट् में तिङ् से पहले स्य लगेगा। (२) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। सेट् धातुओं में स्य से पहले इ लगेगा। (३) आदेश० (१५०)। सेट् धातुओं में स्य के स् को ष् होगा। (४) लट् में होनेवाले ये कार्य होंगे—(क) टि-भाग को ए—त > ते, आताम् > आते, अन्त > अन्ते, आथाम् > आथे, ध्वम् > ध्वे, इ > ए, वहि > वहे, महि > महे। (ख) झ् को अन्त—झ > अन्ते। (ग) थाः को से। (घ) आताम् और आथाम् के आ को इय्, पूर्ववर्ती अ के साथ गुण होकर ए और य् का लोप होकर स्येते, स्येथे। (ङ) वहे और महे से पहले स्य के अ को आ, अतो दीर्घो (३८९) से। इससे स्यावहे, स्यामहे बनेंगे।

१. प्र० १—स्यते। स्य + त, त > ते, सेट् में इ, स् को ष्।
२. प्र० २—स्येते। स्य + आताम्, आ को इय्, गुण, य्-लोप, आम् को ए, सेट् में इ।
३. प्र० ३—स्यन्ते। स्य + झ, झ > अन्त, पररूप, त > ते, „ „ ।
४. म० १—स्यसे। स्य + थाः, थाः को से।
५. म० २—स्येथे। स्य + आथाम्, आ को इय्, गुण, य्-लोप, आम् को ए, सेट् में इ।
६. म० ३—स्यध्वे। स्य + ध्वम्, ध्वम् को ध्वे, सेट् में इ।

७. उ० १—स्ये । स्य + इ, इ को ए, पररूप, सेट् में इ ।
८. उ० २—स्यावहे । स्य + वहि, वहि के इ को ए, स्य को स्या, सेट् में इ ।
९. उ० ३—स्यामहे । स्य + महि, महि के　„　„　„　।

आत्मनेपद–(८) आशीर्लिङ्

सूचना—(१) लिङः सीयुट् (५१९)। आशीर्लिङ् में तिङ् प्रत्ययों से पहले सीयुट् (सीय्) लगता है। (२) लिङाशिषि (४३०)। आशीर्लिङ् आर्धधातुक होता है। अतः 'लिङः सलोपो०' (४२६) से सीय् के स् का लोप नहीं होगा। (३) लोपो व्योर्वलि (४२८)। सीय् के य् का लोप इन स्थानों पर होगा—प्र० १, प्र० ३, म० १, म०३, उ० २, उ० ३। सीय् + स्त = सीस्त> सीष्ट, सीय् + रन् = सीरन्, सीय् + स्थाः = सीस्थाः> सीष्ठाः, सीय् + ध्वम् = सीध्वम्, सीय् + वहि = सीवहि, सीय् + महि = सीमहि। (४) झस्य रन् (५२०)। आशीर्लिङ् के झ को रन् होता है। (५) इटोऽत् (५२१)। आशीर्लिङ् के उ० १ के इ को अत् (अ) होता है। (६) सुट् तिथोः (५२२)। विधिलिङ् और आशीर्लिङ् के त और थ से पहले सुट् (स्) लगता है। इस नियम से इन स्थानों पर स् लगेगाः—प्र०१–त> स्त, प्र०२–आताम्> आस्ताम्, म०१–थाः> स्थाः, म०२–आथाम्> आस्थाम्। (७) आदेश० (१५०)। प्रत्यय होने के कारण इससे इन स्थानों पर स् को ष् होगा–प्र० १, म० १। सेट् धातुओं में सी के स् को ष् होने से षी हो जाएगा। (८) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। सेट् धातुओं से सीय् से पहले इ लगेगा। 'आदेश०' (१५०) से स् को ष् होने से इषीय् हो जाएगा। (९) इणः षीध्वं० (५१३)। इण् (अ-भिन्न स्वर) अन्तवाले अंग के बाद षीध्वम् के तथा लुङ् और लिट् के ध् को ढ् होता है। (१०) विभाषेटः (५२६)। इण् के बाद इट् (इ) होगा तो षीध्वम् के ध् को ढ् विकल्प से होगा।

१. प्र० १—सीष्ट। सीय् + त, बीच में स्, य् का लोप, स् को ष्, ष्टुत्व।
२. प्र० २—सीयास्ताम्। सीय् + आताम्, त से पहले स्।
३. प्र० ३—सीरन्। सीय् + झ, झ को रन्, य् का लोप।
४. म० १—सीष्ठाः। सीय् + थाः, बीच में स्, य्-लोप, स् को ष्, ष्टुत्व।
५. म० २—सीयास्थाम्। सीय् + आथाम्, थ से पहले स्।
६. म० ३—सीध्वम्। सीय् + ध्वम्, य् का लोप।
७. उ० १—सीय। सीय् + इ, इ को अ।
८. उ० २—सीवहि। सीय् + वहि, य् का लोप।
९. उ० ३—सीमहि। सीय् + महि, य् का लोप।

आत्मनेपद–(९) लुङ्

(क) स्-लोप वाला भेद (सिच्-लोप)

सूचना—यह भेद आत्मनेपद में नहीं होता।

(ख) अ-वाला भेद (च्लि को अङ्)

सूचना—(१) लुङ्लङ्० (४२२)। लुङ् में धातु से पहले अ लगता है। (२) आडजादीनाम् (४४३)। यदि धातु अजादि है तो धातु से पहले आ लगेगा। आ को अगले स्वर के साथ 'आटश्च' (१९७)। से वृद्धि होकर आ, ऐ या औ रहेगा। (३) च्लि लुङि (४३६)। लुङ् में तिङ् प्रत्ययों से पहले च्लि होता है। इस च्लि को प्रायः सिच् (स्) होता है। इसे कहीं पर अङ् (अ) और कहीं पर चङ् (अ) भी होता है। (४) अस्यति० (५९७)। अस्, वच् और ख्या धातुओं के बाद च्लि को अङ् (अ) होता है। अङ् का अ शेष रहता है। अङ् ङित् है, अतः धातु को गुण नहीं होगा। (५) आत्मने० (६५६)। लिप्, सिच् और ह्वे धातुओं के बाद च्लि को विकल्प से अङ् (अ) होता है, आत्मनेपद में। पक्ष से सिच् (स्) होगा। (६) आतो ङितः (५०८)। आताम् और आथाम् के आ को इय् होगा। पूर्ववर्ती अ के साथ गुणसन्धि होकर एय् बनेगा और 'लोपो०' (४२८) से य् का लोप होकर एताम्, एथाम् रहेगा। (७) झोऽन्तः (३८८)। झ को अन्त होता है। 'अतो गुणे' से पररूप होकर अ + अन्त = अन्त रहेगा। (८) अतो दीर्घो० (३८९)। वहि और महि के अ को आ होकर आवहि, आमहि बनेगा।

विशेष—धातु से पहले अ या आ लगेगा।

१. प्र० १—अत। च्लि को अ + त।
२. प्र० २—एताम्। ,, + आताम्—आ को इय्, गुण, य्-लोप।
३. प्र० ३—अन्त। ,, + झ, झ को अन्त।
४. म० १—अथाः। ,, + थाः।
५. म० २—एथाम्। ,, + आथाम्, आ को इय्, गुण, य्-लोप।
६. म० ३—अध्वम्। ,, + ध्वम्।
७. उ० १—ए। ,, + इ, गुण-सन्धि।
८. उ० २—आवहि। ,, + वहि, अ को दीर्घ आ।
९. उ० ३—आमहि। ,, + महि, अ को दीर्घ आ।

(ग) द्वित्व-वाला भेद (च्लि को चङ्, द्वित्व)।

सूचना—(१) णिश्रिद्रुस्रुभ्यः० (५२७)। ण्यन्त, श्रि, द्रु और स्रु धातुओं के बाद च्लि को चङ् (अ) होता है, कर्तृवाच्य लुङ् में। चङ् का अ शेष रहता है। चङ् ङित् है, अतः धातु को गुण नहीं होगा। (२) णेरनिटि (५२८)। चङ् होने पर णि का लोप होता है। (३) चङि (५३०)। चङ् होने पर धातु को द्वित्व होता है। द्वित्व होने पर लिट् के तुल्य अभ्यास-कार्य होंगे। (४) सन्वत० (५३१), सन्यतः (५३२)। चङ् होने पर अभ्यास के अ को इ होता है। (५) दीर्घो लघोः (५३३)। चङ् होने पर अभ्यास के ह्रस्व स्वर को दीर्घ हो जाता है। (६) चङ् का अ शेष

रहता है, अतः अन्तिम अंश (ख) के तुल्य ही रहेंगे। इसमें धातु को द्वित्व-कार्य मुख्य रूप से होता है। अन्तिम-अंश ये हैं—

अत एताम् अन्त। अथाः एथाम् अध्वम्। ए आवहि आमहि।

(घ) स्-वाला भेद (च्लि को सिच्, स्)

सूचना—यह भेद सबसे अधिक प्रचलित है। (१) लुङ् लङ्० (४२२)। धातु से पहले अ लगेगा। (२) आडजादीनाम् (४४३)। यदि धातु अजादि है तो धातु से पहले आ लगेगा। (३) च्लेः सिच् (४३७)। च्लि को सिच् (स्) होता है। सिच् का स् शेष रहता है। (४) सार्वधातुका० (३८७)। सिच् से पूर्ववर्ती धातु के इक् को गुण होता है। इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर्। (५) पुगन्त० (४५०)। पुगन्त की उपधा को तथा धातु की उपधा के ह्रस्व इक् को गुण होगा। इससे उपधा के इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् होगा। (६) आत्मनेपदेष्वनतः (५२३)। अ से भिन्न के बाद झ् को अत होता है। अतः झ का अत शेष रहेगा। (७) धि च (५१४)। ध्वम् बाद में होने पर स् का लोप होगा। (८) झलो झलि (४७७)। झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) के बाद स् का लोप होता है, बाद में झल् हो तो। इससे कुछ स्थानों पर सिच् के स् का लोप होता है।

१. प्र० १—स्त। स्+त।
२. प्र० २—साताम्। स् + आताम्।
३. प्र० ३—सत। स्+झ, झ को अत।
४. म० १—स्थाः। स्+थाः।
५. म० २—साथाम्। स्+आथाम्।
६. म० ३—ध्वम्। स्+ध्वम्, स् का लोप।
७. उ० १—सि। स्+इ।
८. उ० २—स्वहि। स्+वहि।
९. उ० ३—स्महि। स्+महि।

(ङ) इष्-वाला भेद (इट्+सिच्)

सूचना—(१) स्-वाले भेद में ही सेट् धातुओं में स से पहले इ लग जाता है और 'आदेश०' (१५०) से स् को ष् होकर सभी स्थानों पर इष् हो जाता है। शेष कार्य स्-वाले भेद के तुल्य ही होते हैं। (२) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। सेट् धातुओं में स् से पहले इ लगेगा और 'आदेश०' (१५०) स् को ष् होकर इष् बनेगा। (३) इणः षीध्वं० (५१३)। इण् (अ-भिन्न स्वर) अन्त वाले अंग के बाद लुङ् के ध् अर्थात् ध्वम् के ध् को ढ् होता है। (४) विभाषेटः (५२६)। इण् के बाद इट् (इ) होगा तो लुङ् के ध्वम् के ध् को विकल्प से ढ् होगा। (५) इसमें अन्तिम अंश ये लगेंगे:—इष्ट इषाताम् इषत। इष्ठाः इषाथाम् इध्वम्-ढ्वम्। इषि इष्वहि इष्महि।

(च) सिप्-वाला भेद (सक्+इट्+सिच्)

सूचना—आत्मनेपद में यह भेद नहीं होता है।

(छ) स-वाला भेद (क्स-स)

सूचना—(१) शल इगुपधा० (५९०)। जो धातु इगुपध (जिसकी उपधा में इ, उ, ऋ है), शल् (श् ष् स् ह्) अन्त वाली और अनिट् है, उसके बाद च्लि को क्स (स) होता है। क्स का स शेष रहता है। क्स कित् है, इसलिए क्स होने पर धातु को गुण नहीं होगा। (२) लुग्वा० (५९१)। दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं के क्स का विकल्प से लोप होता है, बाद में दन्त्य आत्मनेपद प्रत्यय हो तो। इससे त, थाः, ध्वम् और वहि में विकल्प से स का लोप होगा। (३) क्सस्याचि (५९२)। अजादि आत्मनेपद प्रत्यय बाद में होने पर स के अ का लोप होता है। इससे इन स्थानों पर स के अ का लोप होगा—आताम्, अन्त, आथाम्, इ। (४) अतो दीर्घो० (३८९)। वहि और महि से पहले स के अ को आ होगा।

विशेष—धातु से पहले अ या आ लगेगा।

१. प्र० १—सत। क्स (स)+त। स का लोप विकल्प से।
२. प्र० २—साताम्। स+आताम्, स के अ का लोप।
३. प्र० ३—सन्त। स+झ, झ को अन्त, स के अ का लोप।
४. म० १—सथाः। स+थाः। स का विकल्प से लोप।
५. म० २—साथाम्। स+आथाम्, स के अ का लोप।
६. म० ३—सध्वम्। स+ध्वम्। स का विकल्प से लोप।
७. उ० १—सि। स+इ, स के अ का लोप।
८. उ० २—सावहि। स+वहि, अ को दीर्घ आ। स का विकल्प से लोप।
९. उ० ३—सामहि। स+महि, अ को दीर्घ आ।

आत्मनेपद-(१०) लङ्

सूचना—(१) लुङ्लङ्० (४२२)। धातु से पहले अ लगता है। (२) आडजादीनाम् (४४३)। यदि धातु अजादि है तो धातु से पहले आ लगेगा। (३) स्यतासी० (४०२)। लङ् में तिङ् प्रत्ययों से पहले स्य लगता है। (४) आर्धधातुकस्येड्० (४००)। सेट् धातुओं में स्य से पहले इ लगेगा। (५) आदेश० (१५०)। सेट् धातुओं में स्य के स् को ष् होगा। (६) आतो ङितः (५०८)। आताम् और आथाम् के आ को इय् होगा। इस इ को स्य के अ के साथ गुण होगा और 'लोपो०' (४२८) से य्-लोप होकर स्येताम्, स्येथाम् बनेंगे। (७) झोऽन्तः (३८८)। झ को अन्त होगा और 'अतो गुणे' (२७४) से पररूप होकर स्य+अन्त=स्यन्त बनेगा। (८) अतो दीर्घो० (३८९)। वहि और महि में स्य के अ को आ हो जाएगा।

३८१. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः (१-४-१०२)

प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष के त्रिक में से क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन हैं। इसका विवरण सूत्र ३८० में दिया गया है।

३८२. युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः (१-४-१०५)

तिङ् प्रत्ययों के द्वारा युष्मद् (तू) शब्द का अर्थ होने पर मध्यम पुरुष प्रत्यय होते हैं, युष्मद् शब्द का प्रयोग चाहे हो या न हो।

३८३. अस्मद्युत्तमः (१-४-१०७)

तिङ् प्रत्ययों के द्वारा अस्मद् (मैं) शब्द का अर्थ होने पर उत्तम पुरुष प्रत्यय होते हैं, अस्मद् शब्द का प्रयोग चाहे हो या न हो।

३८४. शेषे प्रथमः (१-४-१०८)

जहाँ प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष प्राप्त नहीं है, ऐसे सभी स्थानों पर प्रथमपुरुष होता है।

३८५. तिङ्शित् सार्वधातुकम् (३-४-११३)

धातोः (३-१-९१) सूत्र के अधिकार में कहे गए तिङ् (ति से महिङ् तक) और शित् (जिसमें से श् हटा हो) प्रत्ययों को सार्वधातुक कहते हैं।

३८६. कर्तरि शप् (३-१-६८)

कर्तृवाच्य सार्वधातुक प्रत्यय बाद में होने पर धातु से शप् (अ) होता है।
सूचना—धातु और तिङ् के बीच में होने वाले शप्, श्यन्, श्नु, श, श्नम्, उ, श्ना और णिच् को विकरण कहते हैं।

३८७. सार्वधातुकार्धधातुकयोः (७-३-८४)

सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय बाद में हों तो इक् (इ, उ, ऋ) अन्त वाले अंग को गुण होता है। इससे धातु के अन्तिम इ ई को ए, उ ऊ को ओ और ऋ ॠ को अर् होगा। भवति-भू + शप् (अ) + ति। ऊ को गुण होकर ओ और ओ को 'एचो०' (२२) से अव्। इसी प्रकार भवतः-भू + अ + तः।

३८८. झोऽन्तः (७-१-३)

प्रत्यय के अवयव झ् को अन्त् आदेश होता है। भवन्ति-भू + अ + झि, झि > अन्ति, गुण, अव्, 'अतो गुणे' से अ + अ = अ पररूप हुआ। भवसि, भवथः, भवथ—भवति के तुल्य।

३८९. अतो दीर्घो यञि (७-३-१०१)

ह्रस्व अ अन्तवाले अंग को दीर्घ होता है, बाद में यञ् (अन्तःस्थ, वर्ग के ५, झ भ) आदि वाला सार्वधातुक प्रत्यय हो तो। इससे भवामि, भवावः, भवामः, में शप् के अ को आ। धातु के प्रथम पुरुष आदि का इस प्रकार प्रयोग होता है। स भवति (वह होता है)। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः।

३९०. परोक्षे लिट् (३-२-११५)

अनद्यतन (जो आज का न हो) परोक्ष (जो दृष्टिगोचर न हो) भूत अर्थ में लिट् होता है।

३९१. परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः (३-४-८२)

लिट् के तिप् आदि के स्थान में णल् आदि होते हैं, परस्मैपद में।

तिप् > णल् (अ)	सिप् > थल् (थ)	मिप् > णल् (अ)
तस् > अतुस् (अतुः)	थस् > अथुस् (अथुः)	वस् > व
झि > उस् (उः)	थ > अ	मस् > म

३९२. भुवो वुग् लुङ्लिटोः(६-४-८८)

भू धातु को वुक् (व्) आगम होता है, लुङ् और लिट् का अच् बाद में हो तो।

३९३. लिटि धातोरनभ्यासस्य(६-१-८)

लिट् बाद में होने पर अभ्यास-रहित (द्वित्व-रहित) धातु के अवयव प्रथम एकाच् (एक अच् वाले भाग) को द्वित्व होता है, यदि धातु के प्रारम्भ में अच् (स्वर) है तो सम्भव होने पर द्वितीय एकाच् को द्वित्व होगा। सूचना—यदि धातु के प्रारम्भ में हल् (व्यंजन) हो तो धातु चाहे एकाच् हो या अनेकाच्, उसके प्रथम एकाच् को द्वित्व होगा। यदि धातु अजादि और एकाच् है तो पूरे एकाच् को द्वित्व होगा। यदि धातु अजादि अनेकाच् है तो द्वितीय एकाच् को द्वित्व होगा।

३९४. पूर्वोऽभ्यासः (६-१-४)

द्वित्व होने पर दो रूपों में से पहले रूप को अभ्यास कहते हैं। जैसे—भूव् भूव् + अ, में पहला भूव् अभ्यास है।

३९५. हलादिः शेषः (७-४-६०)

अभ्यास का पहला हल् (व्यंजन) शेष रहता है, अन्य व्यंजनों का लोप होता है। इससे पहले भूव् के व् का लोप।

४१०. एरुः (३-४-८६)

लोट् के इ को उ हो जाता है। भवतु—भू + लोट् प्र० १। शप् (अ), गुण, अव् आदेश, ति के इ को उ।

४११. तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् (७-१-३५)

आशीर्वाद अर्थ में लोट् के तु और हि को विकल्प से तातङ् (तात्) हो जाता है। भवतात्—भवतु के तु को तात्।

४१२. लोटो लङ्वत् (३-४-८५)

लोट् के स्थान पर लङ् के तुल्य कार्य होते हैं, जैसे—ताम् आदि आदेश और स् का लोप।

४१३. तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः (३-४-१०१)

ङित् लकारों (अर्थात् लङ्, लिङ्, लुङ् और लृङ्) के *तस्* को *ताम्*, *थस्* को *तम्*, *थ* को *त* और *मिप्* को *अम्* आदेश होता है। *भवताम्—भू + लोट् प्र० २। तः को ताम्। भवन्तु—भू + लोट् प्र० ३।*

४१४. सेर्ह्यपिच्च (३-४-८७)

लोट् के सि को हि होता है और वह अपित् होता है। अपित् होने से ङित् होगा और गुण आदि नहीं होंगे।

४१५. अतो हेः (६-४-१०५)

ह्रस्व अ के बाद हि का लोप हो जाता है। भव—भू + लोट् म० १। सि को हि, हि का लोप। भवतात्। भवतम्—भू + लोट् म० २। थः को तम्। भवत—भू + लोट् म० ३। थ को त।

४१६. मेर्निः (३-४-८९)

लोट् के मि को नि होता है।

४१७. आडुत्तमस्य पिच्च (३-४-९२)

लोट् के उत्तमपुरुष को आट् (आ) आगम होता है और वह पित् होता है। पित् होने से गुण होगा। हि और नि के इ को उ नहीं होता है, यदि उ करना होता तो उन्हें हु नु ही पढ़ते। भवानि—भू + लोट् उ० १। शप्, आट् (आ), गुण, अव् आदेश, मि को नि।

४१८. ते प्राग्धातोः (१-४-८०)

गति और उपसर्ग संज्ञावाले प्र परा आदि का धातु से पहले ही प्रयोग होता है।

४१९. आनि लोट् (८-४-१६)

उपसर्ग में विद्यमान निमित्त (र और ष) से परे लोट् के स्थान में हुए आनि के न को ण होता है। प्रभवाणि—प्र+भवानि। न को ण। (दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्व-प्रतिषेधो वक्तव्यः, वा०) ष को ण करना हो तो दुर् को उपसर्ग नहीं मानना चाहिए। दुःस्थिति—इसमें उपसर्गात् सुनोति० से प्राप्त स् को ष् नहीं होता। दुर्भवानि—इसमें इससे न को ण नहीं हुआ। (अन्तश्शब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्, वा०) अङ्, कि-विधि और णत्व के बारे मे अन्तर् शब्द को उपसर्ग मानना चाहिए। अन्तर्भवाणि—अन्तर्+भवानि। 'आनि लोट्' (४१९) से न को ण।

४२०. नित्यं ङितः (३-४-९९)

ङित् लकारों (लङ्, लिङ्, लुङ् और लृङ्) के उत्तमपुरुष के स् का लोप नित्य होता है। अर्थात् वः और मः के विसर्ग का लोप होगा। भवाव—भू+लोट् उ० २। वः के विसर्ग का लोप। भवाम—भू+लोट् उ० ३। मः के विसर्ग का लोप। शेष भवानि के तुल्य।

४२१. अनद्यतने लङ् (३-२-१११)

अनद्यतन (जो आज का न हो) भूतकाल अर्थ में धातु से लङ् लकार होता है।

४२२. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (६-४-७१)

लङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में धातुओं से पहले अट् (अ) का आगम होता है और वह अट् उदात्त होता है।

४२३. इतश्च (३-४-१००)

परस्मैपद में ङित् लकारों (लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्) के अन्तिम इ का लोप होता है। इससे ति का त् रहेगा, अन्ति का अन्त्>अन् रहेगा और सि का स्> विसर्ग (:) रहेगा। सूचना—लङ् में सर्वत्र धातु से पहले अ लगेगा और शप् (अ) होगा। भू को गुण और अव् आदेश होगा। ति का त् रहेगा। तः को ताम् होगा। न्ति का अन् रहेगा। सि का विसर्ग रहेगा। थस् को तम् होगा। थ को त होगा। मि को अम् होगा। वः और मः के विसर्ग का लोप होगा। शेष भू लट् के तुल्य। अभवत्, अभवताम्, अभवन्। अभवः, अभवतम्, अभवत। अभवम्, अभवाव, अभवाम।

४२४. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् (३-३-१६१)

इन अर्थों में धातु से लिङ् (विधिलिङ्) लकार होता है—१. विधि (आज्ञा देना, नौकर आदि को), २. निमन्त्रण (आज्ञा देना, समकोटि के व्यक्तियों को), ३. आम-

एक अव्यय है। उसके साथ अन्य लकार भी होते हैं। मा और माङ् दो भिन्न अव्यय हैं।

४४१. लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ (१-३-१३९)

हेतु-हेतुमद्भाव (ऐसा करेगा या होगा तो ऐसा होगा) में विधिलिङ् होता है, यदि उसमें क्रिया का भविष्यत् काल में होना अर्थ प्रकट करना होगा तो लृङ् लकार होगा, यदि क्रिया की असिद्धि (पूर्ण न होना) प्रतीत हो तो।

सूचना—लृङ् लकार में धातु से पहले अ लगेगा। अन्तिम इ का लोप, तः आदि को ताम् आदि आदेश, वः मः के विसर्ग का लोप होगा। शेष कार्य लट् के तुल्य होंगे। लृङ् में ये रूप बनते हैं :—अभविष्यत्, अभविष्यताम्, अभविष्यन्। अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत। अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम। जैसे— सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्, तदा सुभिक्षमभविष्यत् (यदि सुवृष्टि होती तो सुभिक्ष होता)।

२. अत (अत्) सातत्यगमने (निरन्तर जाना या चलना)। सूचना-भू के तुल्य रूप चलेंगे। १० लकारोंके प्र०पु०एक० के रूप क्रमशः ये हैं :—अतति। आत। अतिता। अतिष्यति। अततु। आतत्। अतेत्। अत्यात्। आतीत् (५)। आतिष्यत्।

४४२. अत आदेः (७-४-७०)

अभ्यास के आदि अ को दीर्घ (अर्थात् आ) होता है। आत—अत्+लिट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यास-कार्य, अभ्यास के अ को आ, सवर्णदीर्घ होकर आत्+अ =आत बनेगा। सूचना—लिट् में सर्वत्र द्वित्व, अभ्यासकार्य, अ को आ, सवर्णदीर्घ होकर 'आत्' रहेगा। थ, व, म में इट् (इ) होगा। जैसे—आततुः, आतुः। आतिथ, आतथुः, आत। आत, आतिव, आतिम। लुट् प्र० १–अतिता। लृट् प्र० १–अतिष्यति। लोट् प्र० १–अततु।

४४३. आडजादीनाम् (६-४-७२)

अजादि धातु से पहले आट् (आ) लगता है, लङ् लुङ् और लृङ् में। आतत्—अत्+लङ् प्र० १। धातु से पहले आट् (आ), आटश्च से वृद्धि होकर आ+अ=आ, शप् आदि। विधिलिङ् प्र० १–अतेत्। आशीर्लिङ् प्र० १–अत्यात्। अत्यास्ताम् आदि।

४४४. अस्तिसिचोऽपृक्ते (७-३-९६)

सिच्-युक्त धातु और अस् धातु को अपृक्त हल् (एक व्यंजन) से पहले ईट् (ई) आगम होता है।

४४५. इट ईटि (८-२-२८)

इट् (इ) के बाद स् का लोप होता है, बाद में ईट् (ई) हो तो। (सिज्लोप

एकादेशे सिद्धो वाच्यः, वा०)। सवर्णदीर्घ आदि एकादेश के बारे में सिच् का लोप सिद्ध समझना चाहिए। सिच् के लोप को सिद्ध मान कर यहाँ पर सवर्णदीर्घ हो जायेगा। आसीत्—अत् + लुङ् प्र० १। धातु से पूर्व आ, सिच्, इट् (इ), ति का त् शेष, त् से पहले ईट् (ई), बीचके स् का लोप, सवर्णदीर्घ होकर इ + ई = ई। आतिष्टाम्—अत् + लुङ् प्र० २।

४४६. सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च (३-४-१०९)

सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त-संज्ञावाले जागृ आदि धातुओं तथा विद् धातु के बाद ङित् लकारों के झि को जुस् (उः) हो जाता है। आतिषुः-अत् + लुङ् प्र० ३। झि को जुस् (उः) होगा। सूचना—लुङ् में सर्वत्र आट्, सिच्, इट्, स् को ष् होगा। ति और सि में ईट् होकर स् का लोप और सवर्णदीर्घ होगा। लुङ् के शेष रूप हैं—आतीः, आतिष्टम्, आतिष्ट। आतिषम्, आतिष्व, आतिष्म। लृङ् प्र० १—आतिष्यत्।

३-षिध (सिध्) गत्याम् (जाना)। सूचना—भू के तुल्य रूप चलेंगे। १० लकारों के प्र० १ के रूप क्रमशः ये हैं:—सेधति। सिषेध। सेधिता। सेधिष्यति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। असेधीत् (५)। असेधिष्यत्।

४४७. ह्रस्वं लघु (१-४-१०)

ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) को लघु कहते हैं।

४४८. संयोगे गुरु (१-४-११)

संयुक्त वर्ण बाद में हो तो ह्रस्व स्वर गुरु माना जाता है।

४४९. दीर्घं च (१-४-१२)

दीर्घ स्वर (आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ) को गुरु कहते हैं।

४५०. पुगन्तलघूपधस्य च (७-३-८६)

पुगन्त (जिसके अन्त में प् लगा हो) और लघूपध (जिसका उपान्त्य स्वर लघु हो) अंग के इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) को गुण होता है, बाद में सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय हों तो। धात्वादेः षः सः (२५५) से षिध् के ष् को स् होगा। सेधति—सिध् + लट् प्र० १। पुगन्त० (४५०) से सि के इ को गुण ए। लिट् प्र० १—सिषेध। द्वित्व, अभ्यासकार्य, उपधा के इ को गुण, आदेश० (१५०) से स् को ष्।

४५१. असंयोगाल्लिट् कित् (१-२-५)

असंयोग (संयुक्त-वर्ण से रहित) के बाद अपित् लिट् कित् होता है। तिप् सिप् और मिप्, ये तीन पित् हैं। शेष सभी तिङ्-प्रत्यय अपित् हैं। कित् होने से क्ङिति च से गुण और वृद्धि का निषेध हो जाता है। सिषिधतुः—सिध् + लिट् प्र० २। इससे गुण का

४६२. इदितो नुम् धातोः (७-१-५८)

यदि धातु में से इ हटा है तो उसे नुम् (न्) आगम होता है। नदि में इ हटा है, अतः नुम् होकर नद् का नन्द् बनता है। दसों लकारों में नन्द् धातु रहती है। नन्दति—नन्द + लट् प्र० १।

९. अर्च (अर्च्) पूजायाम् (पूजा करना)। सूचना—भू के तुल्य। १० लकारों के प्र० १ के रूपः—अर्चति। आनर्च। अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत्। अर्चेत्। आर्चीत् (५)। आर्चिष्यत्। धातु अजादि है, अतः लङ्, लुङ् और लृङ् में धातु से पहले आ लगेगा। वृद्धि होकर आ + अ = आ बनेगा।

४६३. तस्मान्नुड् द्विहलः (७-४-७१)

जिस धातु में दो (अनेक) हल् (व्यंजन) हों, उसके दीर्घ आ के बाद नुट् (न्) लग जाता है। आनर्च—अर्च् + लिट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, अत आदेः (४४२) से अ को आ, नुट् (न्)। आनर्चतुः—अर्च् + लिट् प्र० २।

१०. व्रज (व्रज्) गतौ (जाना)। सूचना—भू के तुल्य। १० लकारों के प्र०१ के रूपः—व्रजति। वव्राज। व्रजिता। व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत्। व्रज्यात्। अव्राजीत् (५)। अव्रजिष्यत्।

४६४. वदव्रजहलन्तस्याचः (७-२-३)

वद्, व्रज् और हलन्त धातुओंके अच् (स्वर) को वृद्धि होती है, परस्मैपदी सिच् बाद में हो तो। अव्राजीत्—व्रज् + लुङ् प्र० १। सिच्, इट्, ईट्, स्-लोप, दीर्घ और इससे व्रज् के अ को आ।

११. कटे (कट्) वर्षावरणयोः (वर्षा होना, ढकना)। सूचना—भू के तुल्य। १० लकारों के प्र० १ के रूपः—कटति। चकाट, चकटतुः प्र० २। कटिता। कटिष्यति। कटतु। अकटत्। कटेत्। कट्यात्। अकटीत् (५)। अकटिष्यत्।

४६५. ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् (७-२-५)

इन धातुओं के अच् को वृद्धि नहीं होती है, सेट् सिच् (इष्) बाद में हो तोः—हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त धातुएँ तथा क्षण्, श्वस्, जागृ, ण्यन्त (णि-प्रत्यय अन्त वाली), श्वि और एदित् (जिस धातु में से ए हटा हो)। सूचना—कटे धातु में से ए हटा है, अतः यह नियम यहाँ पर लगेगा। अकटीत्—कट् + लुङ् प्र० १। अतो हलादेः (४५६) से प्राप्त वृद्धि का इससे निषेध होता है।

१२. गुपू (गुप्) रक्षणे (रक्षा करना)। सूचना—गुप् धातु से आय प्रत्यय होकर गोपाय रूप बनता है। सार्वधातुक लकारोंमें गोपाय के भू के तुल्य रूप चलेंगे। आर्धधातुक लकारों में आय और इट् विकल्प से होगा, अतः दो या तीन रूप बनेंगे। १० लकारों के प्र० १ के रूपः—गोपायति। गोपायाञ्चकार,

गोपायाम्बभूव, गोपायामास, जुगोप। गोपायिता, गोपिता, गोप्ता। गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्। गोपाय्यात्, गुप्यात्। अगोपायीत् (५), अगोपीत् (५), अगौप्सीत् (४)। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्।

४६६. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः (३–१–२८)

गुप्, धूप्, विच्छ्, पण् और पन् धातुओं से स्वार्थ में आय प्रत्यय होता है।

४६७. सनाद्यन्ता धातवः (३–१–३२)

'सन्' से लेकर 'कमेर्णिङ्' सूत्र के णिङ् प्रत्यय तक जो प्रत्यय कहे गए हैं, वे जिनके अन्त में होंगे उनकी धातु-संज्ञा होती है। धातु होने से लट् आदि होंगे। गोपायति–गुप्+आय+लट् प्र० १। धातु को गुण, शेष भवतिवत्।

४६८. आयादय आर्धधातुके वा (३–१–३१)

आर्धधातुक लकारों में आय आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं। (कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः, वा०)। कास् धातु और अनेकाच् (एक से अधिक स्वर वाली) धातुओं से लिट् में आम प्रत्यय होता है। सूचना—यह आम् आय आदि के बाद जुड़ जाता है। आम् के म् का लोप नहीं होता है, अन्यथा आस् और कास् धातु से आम् करना व्यर्थ होता, क्योंकि मित् होने से इनका आस् और कास् ही रूप रह जाता।

४६९. अतो लोपः (६–४–४८)

आर्धधातुक के उपदेश-काल (प्रारम्भिक अवस्था) में जो ह्रस्व अकारान्त अंग है, उसके अ का लोप हो जाता है, बादमें आर्धधातुक लकार हो तो।

४७०. आमः (२–४–८१)

आम् के बाद लिट् का लोप होता है।

४७१. कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि (३–१–४०)

आम्-प्रत्ययान्त के बाद लिट्-युक्त कृ, भू और अस् धातुओं का अनुप्रयोग होता है। सूचना—आम्-प्रत्ययान्त के बाद लिट् में केवल कृ भू अस् को ही द्वित्व होगा, मूल धातु को नहीं। द्वित्व होने पर अभ्यास-कार्य होंगे।

४७२. उरत् (७–४–६६)

अभ्यास के ऋ को अ होता है। बाद में र् जुड़ जाने से अर् होता है। गोपायाञ्चकार—गुप्+आय+आम्+कृ+लिट् प्र० १। कृ को द्वित्व, अभ्यासकार्य, ऋ को अर्, र् का लोप, क को च, णित् होने से अन्तिम ऋ को वृद्धि आर्।

इसमें उ को वृद्धि नहीं हुई, इट् होने पर यह रूप है। अगौप्सीत्-गुप्+लुङ् प्र० १, इट्के अभाव पक्षमें सिच्, ई, वृद्धि।

४७७. झलो झलि (८-२-२६)

झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) के बाद स् का लोप होता है, बाद में झल् हो तो। सूचना-इससे इन स्थानों पर स् का लोप हो जाएगा:- प्र० २, म० २ और ३। अगौप्ताम्-स् का लोप इस सूत्र से होगा। अगौप्सुः। अगौप्सीः, अगौप्तम्, अगौप्त। अगौप्सम्, अगौप्स्व, अगौप्स्म। लृङ् प्र० १-अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्।

१३. क्षि क्षये (नष्ट होना)। सूचना-भू के तुल्य। १० लकारोंके प्र० १ के रूप- क्षयति। चिक्षाय। क्षेता। क्षेष्यति। क्षयतु। अक्षयत्। क्षयेत्। क्षीयात्। अक्षैषीत् (४)। अक्षेष्यत्।

सूचना-लिट् प्र० २, ३, म० २, ३ और उ० २, ३ में अचि श्नु० (१९९) से इय् होगा। चिक्षाय, चिक्षियतुः, चिक्षियुः। थ में अनिट् होने से निषेध प्राप्त था, परन्तु आगे वर्णित नियम से विकल्प से इ होगा।

४७८. कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि (७-२-१३)

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु और श्रु, इन ८ धातुओंके बाद ही लिट् को इट् (इ) नहीं होता है, इनसे भिन्न अनिट् धातुओं को भी इट् होता है।

४७९. अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम् (७-२-६१)

जो धातु उपदेशमें अजन्त है और लुट् में नित्य अनिट् है, उसके बाद थ को इट् नहीं होता है।

४८०. उपदेशेऽत्वतः (७-२-६२)

जो धातु उपदेशमें ह्रस्व अ वाली है और लुट्में नित्य अनिट् है, उसके बाद थ को इट् (इ) नहीं होता है।

४८१. ऋतो भारद्वाजस्य (७-२-६३)

लुट् में नित्य अनिट् ह्रस्व ऋकारान्त धातु के बाद ही थ को इट् नहीं होता है, भारद्वाज के मतानुसार। अतः ऋकारान्त से भिन्न धातुओं के बाद थ को इट् हो जाएगा।

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥

उपर्युक्त चार सूत्रों में वर्णित नियमों का सारांश यह है:—(१) लुट् में अनिट् अजन्त धातुओं को थल (थ) में विकल्प से इट् (इ) होता है। (२) लुट् में अनिट् अ-वाली धातुओं को थल् में विकल्प से इट् (इ) होता है। (३) लुट् में अनिट् ह्रस्व

ऋकारान्त धातुओं को थल् में इट् सर्वथा नहीं होता। (४) कृ सृ आदि आठ धातुओं से भिन्न सभी अनिट् धातुओं को लिट् के व, म में इट् (इ) होता है। (५) कृ सृ आदि ८ धातुओं के सारे लिट् में इट् नहीं होगा।

अतएव क्षि को लिट् म० १ में विकल्प से इट् (इ) होगा। चिक्षयिथ , चिक्षेथ। लिट् के अन्य रूप हैं—चिक्षियथुः, चिक्षिय। चिक्षाय-चिक्षय, चिक्षियिव, चिक्षियिम।

४८२. अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः (७-४-२५)

अजन्त अंग को दीर्घ होता है, बाद में यकारादि प्रत्यय हो तो। यदि कृत् और सार्वधातुक यकारादि प्रत्यय होगा तो नहीं। क्षीयात्-क्षि+आशीर्लिङ् प्र० १। इससे इ को दीर्घ।

४८३. सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु (७-२-१)

इक् (इ, उ, ऋ) अन्तवाले अंग को वृद्धि होती है, बाद मे परस्मैपद का सिच् हो तो। अक्षैषीत्-क्षि+लुङ् प्र० १। इससे क्षि के इ को वृद्धि। अक्षैष्टाम्, अक्षैषुः आदि रूप होंगे।

१४. तप (तप्) संतापे (जलना, तपना, तप करना)। सूचना-भू के तुल्य। १० लकारों के प्र० १ के रूपः—तपति। तताप, तेपतुः प्र० २, तेपुः प्र० ३। तप्ता। तप्स्यति। तपतु। अतपत्। तपेत्। तप्यात्। अताप्सीत् (४), अताप्ताम् प्र० २। अतप्स्यत्।

१५. क्रमु (क्रम्) पादविक्षेपे (चलना)। सूचना-भू के तुल्य। इसमें लट् लोट् लङ् विधिलिङ् में श्यन् (य) और शप् (अ) दोनों होंगे, अतः दो-दो रूप होंगे। १० लकारों के प्र० १ के रूपः—क्राम्यति, क्रामति। चक्राम। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्राम्यतु, क्रामतु। अक्राम्यत्, अक्रामत्। क्राम्येत्, क्रामेत्। क्रम्यात्। अक्रमीत् (५)। अक्रमिष्यत्।

४८४. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः (३-१-७०)

भ्राश्, भ्लाश्, भ्रम्, क्रम्, क्लम्, त्रस्, त्रुट् और लष्, इन ८ धातुओंसे कर्तृवाच्य में सार्वधातुक लकारों में विकल्प से श्यन् (य) होता है। पक्ष में शप् (अ) भी होगा। अतः दो-दो रूप बनेंगे।

४८५. क्रमः परस्मैपदेषु (७-३-७६)

क्रम् धातु के अ को दीर्घ होता है, परस्मैपद शित् (जिसमें से श् हटा हो) प्रत्यय बाद में हो तो। क्राम्यति, क्रामति—क्रम्+लट् प्र० १। श्यन् और शप्, इससे अ को आ।

१६. पा पाने (पीना)। सूचना—भू के तुल्य। सार्वधातुक लकारोंमें पा को पिब होगा। लट् आदि में अतो गुणे से पिब+अ=पिब पररूप होगा। १० लकारों के प्र०

१ के रूपः—पिबति । पपौ । पाता । पास्यति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् । पेयात् । अपात् । अपास्यत् ।

४८६. पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः (७-३-७८)

इन धातुओं को शित् प्रत्यय बाद में होने पर ये आदेश होते हैं :—पा>पिब, घ्रा>जिघ्र्, ध्मा>धम्, स्था> तिष्ठ्, म्ना> मन्, दाण् (दा)> यच्छ्, दृश्> पश्य्, ऋ> ऋच्छ्, सृ>धौ, शद्> शीय्, सद्>सीद् । पा को पिब अकारान्त आदेश होता है, अतएव उपधा में इ न होने से इसे गुण नहीं होता है । पिबति—पा + लट् प्र० १ । अतो गुणे से पररूप ।

४८७. आत औ णलः (७-१-३४)

आकारान्त धातु के बाद णल् को औ आदेश होता है । पपौ—पा + लिट् प्र० १ । द्वित्व, अभ्यासकार्य, वृद्धि-संधि ।

४८८. आतो लोप इटि च (६-४-६४)

आर्धधातुक अजादि कित् ङित् प्रत्यय और इट् (इ) बाद में हो तो धातु के अवयव आ का लोप हो जाता है । सूचना—इससे लिट् प्र० २, ३, म० १, २, ३, उ० २, ३ में आ का लोप होगा । पपतुः—पा + लिट् प्र० २, इससे आ का लोप । लिट् के शेष रूप हैं:—पपुः । पपिथ-पपाथ, पपथुः, पप । पपौ, पपिव, पपिम ।

४८९. एर्लिङि (६-४-६७)

घु-संज्ञा वाले दा धा, मा, स्था, गा, पा (भ्वादि०), हा (छोड़ना) और सो (सा) के आ को ए होता है, बाद में आर्धधातुक कित् लिङ् (अर्थात् आशीर्लिङ्) हो तो । पेयात्—पा + आशीर्लिङ् प्र० १ । इससे पा के आ को ए । अपात्—पा + लुङ् प्र० १ । गातिस्था० (४३८) से सिच् (स्) का लोप । सूचना—पूरे लुङ् में स् का लोप होगा । *अपाताम्—पा + लुङ् प्र० २ । स्-लोप ।*

४९०. आतः (३-४-११०)

सिच् का लोप होने पर आकारान्त धातुओं के बाद ही झि को जुस् (उः) होगा ।

४९१. उस्यपदान्तात् (६-१-९६)

अपदान्त अ के बाद उस् हो तो दोनों के स्थान पर पररूप एकादेश होता है । अर्थात् अ + उः = उः । अपुः—पा + लुङ् प्र० ३ । स्-लोप, झि को उः, पररूप से अ + उः = उः ।

१७. ग्लै हर्षक्षये (ग्लानि करना)। सूचना—१. भू के तुल्य। २. आर्धधातुक लकारों में ऐ को आ होता है। ३. आशीर्लिङ् में आ को ए विकल्प से होता है। ४. लुङ् में सक् होने से सिष् (६)—वाला भेद होगा। १० लकारों के प्र० १ के रूपः—ग्लायति। जग्लौ। ग्लाता। ग्लास्यति। ग्लायतु। अग्लायत्। ग्लायेत्। ग्लेयात्, ग्लायात्। अग्लासीत् (६)। अग्लास्यत्।

४९२. आदेच उपदेशेऽशिति (६-१-४५)

उपदेश में एच् (ए ओ ऐ औ) अन्त वाली धातुओं को आ होता है, शित् प्रत्यय बाद में हों तो नहीं। अर्थात् सार्वधातुक लकारों में एच् को आ नहीं होगा। जग्लौ—ग्लै + लिट् प्र० १। ऐ को आ, द्वित्व, अभ्यासकार्य, णल् को औ, वृद्धिसंधि।

४९३. वाऽन्यस्य संयोगादेः (६-४-६८)

सूत्र ४८९ में उक्त दा, धा आदि से भिन्न संयोगादि (जिसके प्रारम्भ में संयुक्त वर्ण हो) धातु के आ को विकल्प से ए होता है, आर्धधातुक कित् लिङ् (आशीर्लिङ्) में। ग्लेयात्, ग्लायात्—ग्लै + आशीर्लिङ् प्र० १। विकल्प से आ को ए।

४९४. यमरमनमातां सक् च (७-२-७३)

यम्, रम्, नम् और आकारान्त धातुओं को सक् (स्) आगम होता है और इससे परवर्ती सिच् (स्) को इट् (इ) होता है, परस्मैपद में। स् को ष् होकर स् + इ + स् = सिष् हो जाता है। अग्लासीत्—ग्लै + लुङ् प्र० १। ऐ को आ, सिच्, सक्, इट्, ईट्, स्-लोप, दीर्घ। लुङ् के अन्य रूप हैं—अग्लासिष्टाम्, अग्लासिषुः, आदि।

१८. ह्वृ कौटिल्ये (कुटिल आचरण करना)। सूचना—१. भू के तुल्य। २. लिट् में ऋ को गुण अर् होता है। ३. लट् और लङ् में इट् (इ) लगेगा। ४. आशीर्लिङ् में ऋ को गुण अर् होगा। ५. लुङ् में ऋ को वृद्धि आर् होगी। १० लकारों के प्र० १ के रूप—ह्वरति। जह्वार। ह्वर्ता। ह्वरिष्यति। ह्वरतु। अह्वरत्। ह्वरेत्। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वरिष्यत्।

४९५. ऋतश्च संयोगादेर्गुणः (७-४-१०)

संयोगादि ह्रस्व ऋकारान्त धातु को गुण (अर्) होता है, लिट् बाद में हो तो।

जह्वार—ह्वृ + लिट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, गुण, उपधा-वृद्धि। सूचना—पूरे लिट् में गुण होगा। लिट् के अन्य रूप हैं—जह्वरतुः, जह्वरुः। जह्वर्थ, जह्वरथुः, जह्वर। जह्वार-जह्वर, जह्वरिव, जह्वरिम।

४९६. ऋद्धनोः स्ये (७-२-७०)

ह्रस्व ऋकारान्त और हन् धातु के बाद स्य को इट् (इ) होता है। हरिष्यति—हृ + लृट् प्र० १, इससे इ, धातु को गुण।

४९७. गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः (७-४-२९)

ऋ (जाना) धातु और संयोगादि ह्रस्व ऋकारान्त धातु के ऋ को गुण (अर्) होता है, बाद में यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् (आशीर्लिङ्) हो तो। ह्रर्यात्—ह्वृ + आशीर्लिङ् प्र० १। ऋ को गुण अर्। अह्वार्षीत्—ह्वृ + लुङ् प्र० १। सिच्, ईट्, ऋ को सिचि वृद्धिः० (४८३) से वृद्धि आर्।

१९. श्रु श्रवणे (सुनना)। सूचना—१. लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में श्रु को शृ होता है और श्नु (नु) विकरण लगता है। अतः इनमें 'शृणु' बन जाता है। २. नु को प्र० म० उ० एकवचन में गुण होता है, अन्यत्र नहीं। लोट् म० १ और विधिलिङ् में गुण नहीं होगा। ३. लट् और लङ् में उ० २, ३ में उ का लोप विकल्प से होता है। ४. आशीर्लिङ् में श्रु को दीर्घ होकर श्रू बनेगा। ५. लुङ् में वृद्धि होकर श्रु को श्री होता है। ६. १० लकारोंके प्र० १ के रूप—शृणोति। शुश्राव। श्रोता। श्रोष्यति। शृणोतु। अशृणोत्। शृणुयात्। श्रूयात्। अश्रौषीत्। अश्रोष्यत्।

४९८. श्रुवः शृ च (३-१-७४)

श्रु धातु को शृ आदेश होता है और श्नु (नु) प्रत्यय होता है, सार्वधातुक लकारों में। लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्रु का शृणु रूप रहेगा। शृणोति—श्रु + लट् प्र० १। श्रु को शृ, नु, नु को गुण।

४९९. सार्वधातुकमपित् (१-२-४)

अपित् सार्वधातुक ङित् के तुल्य होते हैं। सूचना—तिप्, सिप्, मिप् को छोड़ कर शेष तिङ् अपित् हैं तथा शप् को छोड़कर शेष विकरण (श्लु, श्यन्, श्नु, श, श्नम्, श्ना) अपित् हैं। ये बाद में होने पर धातु या प्रत्यय को गुण नहीं होगा। शृणुतः—श्रु + लट् प्र० २। नु और तः अपित् हैं, अतः शृ और नु को गुण नहीं हुआ।

५००. हुश्नुवोः सार्वधातुके (६-४-८७)

हु धातु और अनेकाच् श्नुप्रत्ययान्त अंग के असंयोगपूर्व उ को यण् (व्) होता है, बाद में अजादि सार्वधातुक हो तो। शृण्वन्ति—श्रु + लट् प्र० ३, इससे उ को व्। शृणोषि, शृणुथः, शृणुथ। शृणोमि।

५०१. लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः (६-४-१०७)

यदि संयुक्त वर्ण पूर्व में न हो तो प्रत्यय के उ का विकल्प से लोप होता है, बाद में म् और व् हों तो। शृण्वः, शृणुवः—श्रु + लट् उ० २। उ का विकल्प से लोप।

शृण्मः, शृणुमः—श्रु + लट् उ० ३। विकल्प से उ का लोप। लिट् के रूप—शुश्राव, शुश्रुवतुः, शुश्रुवुः। शुश्रोथ, शुश्रुवथुः, शुश्रुव। शुश्राव—शुश्रव, शुश्रुव, शुश्रुम। लोट्—शृणोतु, शृणुताम्, शृण्वन्तु।

५०२. उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् (६-४-१०६)

यदि संयोग पूर्व में न हो तो प्रत्यय के उ के बाद हि का लोप हो जाता है। शृणु—श्रु + लोट् म० १। सि को हि और हि का इससे लोप। शृणुतम्, शृणुत। शृणवानि, शृणवाव, शृणवाम। लङ्—अशृणोत्, अशृणुताम्, अशृण्वन्। अशृणोः, अशृणुतम्, अशृणुत। अशृणवम्, अशृण्व—अशृणुव, अशृण्म—अशृणुम। शृणुयात्, शृणुयाताम्, शृणुयुः। शृणुयाः, शृणुयातम्, शृणुयात। शृणुयाम्, शृणुयाव, शृणुयाम। लुङ्—अश्रौषीत्, अश्रौष्टाम्, अश्रौषुः। अश्रौषीः, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट। अश्रौषम्, अश्रौष्व, अश्रौष्म।

२०. गम्लृ (गम्) गतौ (जाना)। सूचना—१. भू के तुल्य। २. लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में गम् को गच्छ् हो जाता है। ३. लिट् द्विवचन और बहुवचन में गम् के अ का लोप होकर ग्म् हो जाता है। ४. लृट् और लृङ् में गम् को इट् (इ) होता है। ५. लुङ् में च्लि को अङ् (अ) हो जाता है। १० लकारोंके प्र० १ के रूप—गच्छति। जगाम। गन्ता। गमिष्यति। गच्छतु। अगच्छत्। गच्छेत्। गम्यात्। अगमत् (२)। अगमिष्यत्।

५०३. इषुगमियमां छः (७-३-७७)

इष्, गम् और यम् धातुओं के ष् और म् को छ् (च्छ्) आदेश होता है, बाद में शित् (जिसमें से श् हटा हो) प्रत्यय हो तो। गच्छति—गम् + लट् प्र० १। म् को च्छ्। जगाम—गम् + लिट् प्र० १।

५०४. गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि (६-४-९८)

गम्, हन्, जन्, खन् और घस् धातुओं की उपधा (अ) का लोप हो जाता है, बाद में अजादि कित् और ङित् प्रत्यय हों तो। अङ् बाद में होगा तो लोप नहीं होगा। जग्मतुः—गम् + लिट् प्र० २। द्वित्व, अभ्यासकार्य, गम् के अ का लोप। लिट् के शेष रूप हैं—जग्मुः। जगमिथ—जगन्थ, जग्मथुः, जग्म। जगाम—जगम, जग्मिव, जग्मिम।

५०५. गमेरिट् परस्मैपदेषु (७-२-५८)

गम् धातु के बाद सकारादि (स्य, सन् आदि) आर्धधातुक को इट् (इ) होता है, परस्मैपदी प्रत्यय बाद में होने पर। गमिष्यति—गम् + लृट् प्र० १। इससे इट्।

५०६. पुष्पादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु (३-१-५५)

दिवादिगणी पुष् आदि, द्युत् आदि और ऌदित् (जिसमें से ऌ हटा हो) धातुओं के बाद च्लि को अङ् (अ) होता है, परस्मैपद में। अगमत्—गम्+लुङ् प्र० १। च्लि को अङ् (अ)। लुङ् के शेष रूप हैं—अगमताम्, अगमन्। अगमः, अगमतम्, अगमत। अगमम्, अगमाव, अगमाम।

परस्मैपदी धातुएँ समाप्त।

---

२१. एध (एध्) वृद्धौ (बढ़ना)। सूचना—यह आत्मनेपदी धातु है। इसी प्रकार आगे की आत्मनेपदी धातुओं के रूप चलेंगे। इसमें त आताम् झ, थाः आथाम् ध्वम्, इ वहि महि, प्रत्यय लगेंगे। आत्मनेपदी प्रत्ययों को 'तङ्' कहते हैं। इसके रूप आगे दिए गए हैं।

५०७. टित आत्मनेपदानां टेरे (३-४-७९)

टित् लकारों के स्थान में हुए आत्मनेपद प्रत्ययों (तङ्) की टि (अन्त की ओर से स्वर-सहित अंश) को ए होता है। सूचना—लट्, लिट्, लुट्, लृट् और लोट् में सभी स्थानों पर यह नियम लगता है। अन्तिम स्वर और अन्तिम स्वर-सहित अंश को ए होगा। एधते—एध्+लट् प्र० १। शप् (अ), त, त के अ को ए।

५०८. आतो ङितः (७-२-८१)

अ के बाद ङित् प्रत्ययों के आ को इय् होता है। सूचना—यह नियम प्रायः सभी लकारों में लगता है। इससे आताम्, आथाम् के आ को इय् होता है। लट् आदि में पूर्ववर्ती अ के साथ गुण होकर एय् और लोपो व्योर्वलि (४२८) से य् का लोप। एधेते—एध्+लट् प्र० २। शप्, आताम् के आ को इय्, गुण-संधि, य्—लोप, आताम् के आम् को ए। एधन्ते—एध्+लट् प्र० ३। शप् (अ), झ को अन्त, त के अ को ए, अतो गुणे से पररूप अ+अ=अ।

५०९. थासः से (३-४-८०)

टित् लकारों (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्) में थास् (थाः) को 'से' आदेश होता है। एधसे—एध्+लट् म० १। शप्, थास् को से। एधेथे—म० २। एधेते के तुल्य। एधध्वे—म० ३। शप्, ध्वम् को ए। एधे—उ० १। शप्, इ को ए, अतो गुणे से पररूप होकर ए। एधावहे (उ० २), एधामहे (उ० ३)—शप्, इ को ए, अ को दीर्घ आ।

५१०. इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः (३-१-३६)

ऋच्छ् धातु से भिन्न, गुरु वर्ण वाले, इजादि (अ-भिन्न स्वर से प्रारम्भ होने वाले) धातुओं से आम् होता है, लिट् में।

५११. आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य (१-३-६३)

आम् प्रत्यय होने पर धातु यदि आत्मनेपदी है तो बाद में प्रयुक्त कृ धातु से भी आत्मनेपद ही होता है।

५१२. लिटस्तझयोरेशिरेच् (३-४-८१)

लिट् के स्थान में हुए त को एश् (ए) और झ को इरेच् (इरे) आदेश होते हैं। एधांचक्रे—एध् + लिट् प्र० १। आम्, कृ का अनुप्रयोग, द्वित्व, अभ्यासकार्य, त को ए, यण्। एधांचक्राते—प्र० २। आताम् के आम् को ए। एधांचक्रिरे—प्र०३। झ को इरे। एधांचकृषे—म० १। थाः को से, स् को ष्। एधांचक्राथे—म० २। आथाम् के आम् को ए।

५१३. इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् (८-३-७८)

इण् (अ-भिन्न स्वर, ह, अन्तःस्थ) अन्त वाले अंग से परे षीध्वम् तथा लुङ् और लिट् के ध को ढ होता है। एधांचकृढ्वे—लिट् म० ३। ध्वम् के अम् को ए, इससे ध् को ढ्। एधांचक्रे—उ० १। इ को ए, यण्। एधांचकृवहे—उ० २। इ को ए। एधांचकृमहे—उ० ३। इ को ए। एधांबभूव, एधांबभूवतुः आदि। एधामास, एधामासतुः आदि। लुट्—एधिता, एधितारौ, एधितारः। एधितासे, एधितासाथे।

५१४. धि च (८-२-२५)

ध् से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय बाद में हो तो स् का लोप हो जाता है। एधिताध्वे—लुट् म० ३। तास् के स् का लोप, अम् को ए।

५१५. ह एति (७-४-५२)

तास् प्रत्यय और अस् धातु के स् को ह् होता है, बाद में ए हो तो। एधिताहे—लुट् उ० १। इ को ए, स् को ह्। एधितास्वहे। एधितास्महे। लृट्—एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते। एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे। एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।

५१६. आमेतः (३-४-९०)

लोट् के ए को आम् आदेश होता है। सूचना—यह नियम लोट् आ० में इन स्थानों पर लगता है—प्र० १, २, ३, म० २। लट् वाले रूपों में ए को आम् इन स्थानों पर कर दें। एधताम्—एध् + लोट् प्र० १। ए को आम्। एधेताम्—प्र० २। ए को आम्। एधन्ताम्—प्र० ३। ए को आम्।

५१७. सवाभ्यां वामौ (३-४-९१)

स और व के बाद लोट् के ए को क्रमशः व और अम् आदेश होते हैं। एधस्व—एध्+लोट् म० १। इससे ए को व। एधेथाम्—म० २। ए को आम्। एधध्वम्—म० ३। इससे ए को आम्।

५१८. एत ऐ (३-४-९३)

लोट् उत्तम पुरुष के ए को ऐ होता है। एधै—एध्+लोट् उ० १। शप्, आट् (आ), इ को ए, इससे ए को ऐ, आटश्च (१९७) से आ+ऐ=ऐ वृद्धि एकादेश। एधावहै—उ० २। ए को ऐ। एधामहै—उ० ३। ए को ऐ।

लङ्—सूचना—१. लङ् में धातु से पहले आट् (आ) होगा और आटश्च (१९७) से वृद्धि हो कर ऐध् रूप बन जाएगा। २. आताम्, आथाम् के आ को इय्, गुणसंधि य्-लोप होगा। ३. उ० २, ३ में अ को दीर्घ होगा। लङ्—ऐधत, ऐधेताम्, ऐधन्त। ऐधथाः, ऐधेथाम्, ऐधध्वम्। ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि।

विधिलिङ्—सूचना—१. विधिलिङ् में सीयुट् (सीय्) लगेगा और लिङः सलोपो० (४२६) से स् का लोप होकर ईय् बचेगा। शप् (अ) होगा। गुणसंधि होकर एधेय् रूप रहेगा। २. प्र० १, ३, म० १, ३, उ० २, ३ में लोपो व्योर्वलि (४२८) से य् का लोप होगा। ३. प्र० ३ में झ को रन् होगा। ४. उ० १ में इ को अ होगा।

५१९. लिङः सीयुट् (३-४-१०२)

लिङ् (विधिलिङ्, आशीर्लिङ्) के आत्मनेपद प्रत्ययों को सीयुट् (सीय्) आगम होता है। एधेत—एध्+विधिलिङ् प्र० १। शप्, सीय्, स्-लोप, गुण-संधि, य्-लोप। एधेयाताम्—प्र० २।

५२०. झस्य रन् (३-४-१०५)

लिङ् (विधिलिङ्, आशीर्लिङ्) के झ को रन् आदेश होता है। एधेरन्—विधि० प्र० ३। झ को रन्, य्-लोप। एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम्।

५२१. इटोऽत् (३-४-१०६)

लिङ् के स्थान में हुए इट् (इ, उ० १) को अ होता है। एधेय—विधि० उ० १। इ को अ। एधेवहि, एधेमहि। य् का लोप।

आशीर्लिङ्—सूचना—१. आशीर्लिङ् में सर्वत्र सीयुट् (सीय्) होगा। इट् और स् को ष् होकर एधिषीय् रूप बनेगा। २. प्र० १,२ और म० १,२ में त और थ से पहले एक स् और लगेगा। य्-लोप, स् को ष् होकर षीष्ट, षीयास्ताम्, षीष्ठाः, षीयास्थाम् अन्तिम अंश रहते हैं। ३. प्र० १, ३, म० १, ३, उ० २, ३ में लोपो

व्योवलि (४२८) से य् का लोप होगा। ४. आशीर्लिङ् में आर्धधातुक होने से सीय् के स् का लोप नहीं होता है।

५२२. सुट् तिथोः (३-४-१०७)

लिङ् के त और थ को सुट् (स्) आगम होता है। एधिषीष्ट–एध्+आशीर्लिङ् प्र० १। सीय्, इट्, स् को ष्, सुट् (स्), य्–लोप, स् को ष्, ष्टुत्व। आशीर्लिङ् के शेष रूप हैं—एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः, एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वम्। एधिषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि।

लुङ्—सूचना–१. लुङ् मे धातु से पूर्व आट् (आ) होगा। सिच् (स्) और इट् (इ) होगा। वृद्धि सन्धि होकर आ+ए=ऐ होगा। स् को आदेश० से मूर्धन्य होकर ऐधिष् रूप बनता है। इसमें तङ् प्रत्यय जुड़ेंगे। २. प्र० ३ में झ को अत होगा। ३. म० ३ में स् का धि च (५१४) से लोप और इणः० (५१३) से ध्वम् के ध् को ढ्। ४. त और थाः में ष्टुत्व–सन्धि। ऐधिष्ट (५)—एध्+लुङ् प्र० १। आट् (आ), स्, इट्, वृद्धि, स् को ष्, ष्टुत्व। ऐधिषाताम्।

५२३. आत्मनेपदेष्वनतः (७-१-५)

अ–भिन्न वर्णसे परे आत्मनेपद के झ् को अत् आदेश होता है। ऐधिषत–एध्+लुङ् प्र० ३। झ को अत। ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम्, ऐधिढ्वम्। ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि।

लृङ्—सूचना–१. लृङ् में धातु से पहले आ लगेगा। आ+ए को वृद्धि ऐ। स्य, इट् (इ), स् को ष् होकर ऐधिष्य रूप बनेगा। २. लट् के तुल्य अन्य कार्य होंगे। ३. प्रत्ययों के अन्तिम टि को ए नहीं होगा। थाः को से नहीं होगा। ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि।

२२. कमु (कम्) कान्तौ (इच्छा करना, चाहना)। सूचना–१. कम् धातु से णिङ् (इ, अय्) प्रत्यय होता है। अत उपधायाः (४५४) से वृद्धि होकर कामि रूप बनता है। २. सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में शप् (अ) होगा। इ को गुण और अय् होकर 'कामय' रूप बनेगा। इसके रूप इन चार लकारोंमें एध् के तुल्य चलेंगे। ३. आर्धधातुक लकारों में णिङ् विकल्प से होगा, अतः उनमें दो–दो रूप बनेंगे। एक कामि और दूसरा कम् का एध् के तुल्य। ४. लुङ् में च्लि को चङ् (अ), णि–लोप, काम् को कम्, द्वित्व, अभ्यास-कार्य, अभ्यास के अ को ई होकर अचीकमत और अचकमत दो रूप बनते हैं। द्वित्व वाले भेद ३ के अनुसार अन्तिम अंश लगेंगे। ५. १० लकारोंके प्र० १ के रूपः—कामयते। कामयांचक्रे, चकमे। कामयिता, कमिता। कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट, कमिषीष्ट। अचीकमत (३), अचकमत (३)। अकामयिष्यत, अकमिष्यत।

५२४. कमेर्णिङ् (३-१-३०)

कम् धातु से स्वार्थ में (उसी अर्थ में) णिङ् (इ) प्रत्यय होता है। णिङ् ङित् है, अतः आत्मनेपद होता है। कामयते कम् + णिङ् + लट् प्र० १। धातु के अ को वृद्धि आ, शप् (अ), गुण, अय्।

५२५. अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु (६-४-५५)

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु प्रत्यय बाद में हो तो णि को अय् आदेश होता है। सूचना-णेरनिटि (५२८) से प्राप्त णि के लोप का यह अपवाद सूत्र है। कामयांचक्रे-कम् + णिङ् + लिट् प्र० १। णिङ्, उपधा-वृद्धि, आम्, णि को अय्, कृ का अनुप्रयोग, द्वित्व, अभ्यासकार्य। आयादय० (४६८) नियम से विकल्प से णिङ्। अभावपक्ष में द्वित्व, अभ्यासकार्य। रूप होते हैं—चकमे, चकमाते, चकमिरे। चकमिषे, चकमाथे, चकमिध्वे। चकमे, चकमिवहे, चकमिमहे। आशीर्लिङ्-कामयिषीष्ट।

५२६. विभाषेटः (८-३-७९)

इण् (अ-भिन्न स्वर, ह, अन्तःस्थ) से परे इट् (इ) हो तो उसके बाद में षीध्वम् तथा लुङ् और लिट् के ध् को ढ् विकल्पसे होता है। कामयिषीढ्वम्, कामयिषीध्वम्-आशीर्लिङ् म० ३। विकल्प से ध् को ढ्। कमिषीष्ट। कमिषीध्वम्।

५२७. णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् (३-१-४८)

ण्यन्त और श्रि, द्रु तथा स्रु धातु के बाद च्लि को चङ् (अ) होता है, कर्तृवाच्य लुङ् बाद में हो तो।

५२८. णेरनिटि (६-४-५१)

इट्-रहित आर्धधातुक बाद में हो तो णि का लोप हो जाता है।

५२९. णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः (७-४-१)

चङ्-परक णि परे होने पर जो अंग, उसकी उपधा को ह्रस्व होता है।

५३०. चङि (६-१-११)

चङ् परे होने पर अभ्यास-रहित (द्वित्व-रहित) धातु के अवयव प्रथम एकाच् (एक स्वर-सहित अंश) को द्वित्व होता है। यदि धातु अजादि है तो उसके द्वितीय एकाच् को द्वित्व होगा।

५३१. सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे (७-४-९३)

चङ् परक णि बाद में होने पर जो अंग, उसके लघुपरक अभ्यास को सन् के तुल्य कार्य होते हैं, णि को निमित्त मानकर अक् (अ, इ, उ, ऋ) का लोप न हुआ हो तो।

५३२. सन्यतः (७-४-७९)

अभ्यास के अ को इ होता है, सन् (स) प्रत्यय बाद में हो तो।

५३३. दीर्घो लघोः (७-४-९४)

अभ्यास के ह्रस्व स्वर को दीर्घ होता है, सन्वद्भाव के विषय में (अर्थात् जहाँ सन्वद्भाव होता है)। अचीकमत–कम्+णिङ्+लुङ् प्र० १। च्लि को चङ् (अ), णि का लोप, काम् को कम्, द्वित्व, अभ्यास–कार्य, सन्वद्भाव के कारण च के अ को इ और इ को दीर्घ ई। (कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः, वा०) कम् धातु के बाद च्लि को चङ् (अ) होता है। णिङ् के अभाव पक्षमें चङ् (अ), द्वित्व, अभ्यासकार्य। णि न होने से सन्वद्भाव नहीं होगा। अचकमत-कम्+लुङ् प्र० १।

२३. अय (अय्) गतौ (जाना)। सूचना—१. एधू के तुल्य रूप चलेंगे। २. लिट् में आम् लगेगा। ३. लङ्, लुङ्, लृङ् में आ लगेगा। वृद्धि होकर आय् बनेगा। ४. आशीर्लिङ् म० ३ और लुङ् म० ३ में विकल्प से ध् को ढ् होगा। ५. १० लकारों के प्र० १ के रूप–अयते। अयांचक्रे। अयिता। अयिष्यते। अयताम्। आयत। अयेत। अयिषीष्ट, अयिषीढ्वम्–अयिषीध्वम्, म० ३। आयिष्ट (५), आयिढ्वम्–आयिध्वम्, म० ३। आयिष्यत।

५३४. उपसर्गस्यायतौ (८-२-१९)

उपसर्ग के र् को ल् हो जाता है, अय धातु बाद में हो तो। प्लायते—प्र+अयते। दीर्घ, र् को ल्। पलायते—परा+अयते। दीर्घ, र् को ल्।

५३५. दयायासश्च (३-१-३७)

दय्, अय् और आस् धातुओं से आम् होता है, लिट् बाद में हो तो। अयांचक्रे—अय्+लिट् प्र० १। आम्, कृ का अनुप्रयोग, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

२४. द्युत (द्युत्) दीप्तौ (चमकना)। सूचना—१. द्युत् को लिट् में अभ्यास को संप्रसारण होकर दिद्युते बनता है। २. लुङ् में सभी द्युत् आदि (द्युत् से स्रम्भ तक) धातुओं को विकल्प से परस्मैपद होता है और च्लि को अङ् (अ) होता है। अङ् ङित् है, अतः धातु को गुण नहीं होगा। अ वाले भेद (२) के तुल्य अन्तिम अंश लगेंगे। पक्ष में लुङ् में आत्मनेपद का रूप बनेगा। ३. १० लकारों के प्र० १ के रूप—द्योतते। दिद्युते। द्योतिता। द्योतिष्यते। द्योतताम्। अद्योतत। द्योतेत। द्योतिषीष्ट। अद्युतत् (२), अद्योतिष्ट (५)। अद्योतिष्यत।

५३६. द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् (७-४-६७)

द्युत् और स्वप् धातु के अभ्यास को संप्रसारण होता है। दिद्युते—द्युत्+लिट् प्र० १। अभ्यास के य् को इ और संप्रसारणाच्च से उ को पूर्वरूप होकर दि।

५३७. द्युद्भ्यो लुङि (१-३-९१)

द्युत् आदि (द्युत् से स्रम्भ् तक) धातुओं के बाद लुङ् को विकल्प से परस्मैपद होता है। पुषादि० (५०६) से च्लि को अङ् (अ)। अद्युतत् (२), अद्योतिष्ट (५)—द्युत्+लुङ् प्र० १। च्लि को अङ्, पक्ष में आ० सिच्, इट्।

सूचना—श्विता (श्वित्) आदि धातुओं के द्युत् के तुल्य रूप चलेंगे। यहाँ इनके लट्, लिट्, लुट्, लुङ् प्र० १ के ही रूप दिए गए हैं। २५. श्विता (श्वित्) वर्णे (सफेद रंग में रंगना)। श्वेतते। शिश्विते। श्वेतिता। अश्वितत्, अश्वेतिष्ट। २६. ञिमिदा (मिद्) स्नेहने (चिकना होना)। मेदते। मिमिदे। मेदिता। अमिदत्, अमेदिष्ट। २७. ञिष्विदा (स्विद्) स्नेहमोचनयोः (पसीना होना, छोड़ना)। स्वेदते। सिष्विदे। स्वेदिता। अस्विदत्, अस्वेदिष्ट। कुछ विद्वान् ञिष्विदा को ञिक्ष्विदा (क्ष्विद्) मानते हैं। २८. रुच (रुच्) दीप्तावभिप्रीतौ च (चमकना, पसन्द आना)। रोचते। रुरुचे। रोचिता। अरुचत्, अरोचिष्ट। २९. घुट (घुट्) परिवर्तने (घोटना)। घोटते। जुघुटे। घोटिता। अघुटत्, अघोटिष्ट। ३०. शुभ (शुभ्) दीप्तौ (चमकना, शोभित होना)। शोभते। शुशुभे। शोभिता। अशुभत्, अशोभिष्ट। ३१. क्षुभ (क्षुभ्) संचलने (क्षुब्ध होना, विचलित होना)। क्षोभते। चुक्षुभे। क्षोभिता। अक्षुभत्, अक्षोभिष्ट। ३२. णभ (नभ्) हिंसायाम् (हिंसा करना)। नभते। नेभे। नभिता। अनभत्, अनभिष्ट। ३३. तुभ (तुभ्) हिंसायाम् (हिंसा करना)। तोभते। तुतुभे। तोभिता। अतुभत्, अतोभिष्ट। ३४. स्रंसु (स्रंस्) अवस्रंसने (गिरना)। स्रंसते। सस्रंसे। स्रंसिता। अस्रसत्, अस्रंसिष्ट। ३५. भ्रंसु (भ्रंस्) अवस्रंसने (गिरना)। भ्रंसते। बभ्रंसे। भ्रंसिता। अभ्रसत्, अभ्रंसिष्ट। ३६. ध्वंसु (ध्वंस्) अवध्वंसने गतौ च (गिरना, जाना)। ध्वंसते। दध्वंसे। ध्वंसिता। अध्वसत्, अध्वंसिष्ट। ३७. स्रम्भु (स्रम्भ्) विश्वासे (विश्वास करना)। स्रम्भते। सस्रम्भे। स्रम्भिता। अस्रभत्, अस्रंभिष्ट।

३८. वृतु (वृत्) वर्तने (होना)। सूचना—१. वृत् धातु लट् और लृङ् में विकल्प से परस्मैपदी होती है और पर० में इट् (इ) नहीं होगा। आत्मनेपद लृट् और लृङ् में इट् होगा। २. एध् के तुल्य अन्तिम अंश लगावें। ३. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—वर्तते। ववृते। वर्तिता। वर्त्स्यति, वर्तिष्यते। वर्तताम्। अवर्तत। वर्तेत। वर्तिषीष्ट। अवर्तिष्ट (५)। अवर्त्स्यत्, अवर्तिष्यत।

५३८. वृद्भ्यः स्यसनोः (१-३-९२)

वृत् आदि पाँच (वृत्, वृध्, स्यन्द्, शृध्, कृप्) धातुओं से विकल्प से परस्मैपद होता है, स्य और सन् बाद में हों तो। सूचना—इससे लृट् और लृङ् में विकल्प से परस्मैपद होगा।

५३९. न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः (७-२-५९)

वृत् आदि चार (वृत्, वृध्, शृध् और स्यन्द्) धातुओंसे सकारादि आर्धधातुक को इट् (इ) नहीं होता है, परस्मैपद में। आत्मनेपद में इट् होगा। वर्त्स्यति, वर्तिष्यते—वृत् + लृट् प्र० १। विकल्पसे पर० और इट् का निषेध, आत्मने० में इट्। अवर्त्स्यत्, अवर्तिष्यत—वृत् + लृङ् प्र० १। विकल्प से पर० और इट् का निषेध, आत्मने० में इट्।

३९. दद (दद्) दाने (देना)। सूचना—१. एध् के तुल्य। २. लिट् में धातु के अ को ए और अभ्यासलोप नहीं होगा। ३. १० लकारों के प्र० १ के रूप—ददते। ददे। ददिता। ददिष्यते। ददताम्। अददत, ददेत। ददिषीष्ट। अददिष्ट (५)। अददिष्यत।

५४०. न शसददवादिगुणानाम् (६-४-१२६)

शस्, दद्, वकारादि धातुओं तथा गुण के द्वारा हुए अ को एत्व और अभ्यासलोप नहीं होते। ददे—दद् + लिट् प्र० १। धातु के अ को ए और अभ्यास का लोप नहीं हुआ। लिट् के रूप चलेंगे—ददे, ददाते, ददिरे आदि।

४०. त्रपूष् (त्रप्) लज्जायाम् (लज्जित होना)। सूचना—१. एध् के तुल्य। २. लिट् में धातु के अ को ए और अभ्यासलोप होकर त्रेप् रूप बनेगा। ३. ऊदित् होने से स्वरति० (४७५) से आर्धधातुक लकारों (लिट् उ०२, ३, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ्) में विकल्प से इट् (इ) होगा। ४. १० लकारों के प्र० १ के रूप—त्रपते। त्रेपे। त्रपिता, त्रप्ता। त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। त्रपताम्। अत्रपत। त्रपेत। त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट (५), अत्रप्त (४)। अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत।

५४१. तॄफलभजत्रपश्च (६-४-१२२)

तॄ, फल्, भज् और त्रप् धातुओं के ह्रस्व अ को ए होता है तथा अभ्यास का लोप होता है, बाद में कित् लिट् और सेट् थल् हो तो। सूचना—इससे पूरे लिट् में धातु के अ को ए और अभ्यासलोप होकर त्रेप् बनेगा। त्रेपे—त्रप् + लिट् प्र० १। धातु के अ को ए और अभ्यासलोप। त्रेपाते, त्रेपिरे आदि।

आत्मनेपदी धातुएँ समाप्त।

उभयपदी धातुएँ—सूचना—इनके रूप दोनों पदों में चलेंगे। भू और एध् दोनों के तुल्य रूप बनावें।

४१. श्रिञ् (श्रि) सेवायाम् (सेवा करना) सूचना—१. भू और एध् के तुल्य रूप बनेंगे। २. पर० आशीर्लिङ् में इ को दीर्घ होगा। ३. लुङ् में दोनों पदों में

णिश्रि० (५२७) से चङ् (अ), द्वित्व, अभ्यासकार्य और इ को इयङ् (इय्) होगा। ४. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—श्रयति, श्रयते। शिश्राय, शिश्रिये। प० श्रयिता, श्रयितासि म० १, आ० श्रयिता, श्रयितासे म० १। श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। श्रयतु, श्रयताम्। अश्रयत्, अश्रयत। श्रयेत्, श्रयेत। श्रीयात्, श्रयिषीष्ट। अशिश्रियत्, अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत।

४२. भृञ् (भृ) भरणे (पालन करना)। सूचना—१. भृ और एध् के तुल्य। २. लिट् में इट् (इ) नहीं होगा। प्र० २, ३, म० २, ३ में यण् होगा। ३. लृट् में इट् होगा। ४. आशीर्लिङ् पर० में ऋ को रि होगा। ५. आशीर्लिङ् आत्मने० में गुण नहीं होगा। ६. लुङ् पर० में ऋ को वृद्धि आर् होगी। लुङ् आ० में प्र० १ और म० १ में स् का लोप होगा। ७. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—भरति, भरते। लिट् पर०—बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः, बभर्थ, बभ्रथुः, बभ्र, बभार-बभर, बभृव, बभृम। लिट् आ०—बभ्रे, बभृषे म० १। भर्ता। भरिष्यति, भरिष्यते। भरतु, भरताम्। अभरत्, अभरत। भरेत्, भरेत। भ्रियात्, भृषीष्ट, भृषीयास्ताम्। प्र० २ अभार्षीत् (४); अभृत (४), अभृषाताम् प्र० २। अभरिष्यत्, अभरिष्यत।

५४२. रिङ् शयग्लिङ्क्षु (७-४-२८)

धातु के ऋ को रिङ् (रि) आदेश होता है, बाद में श प्रत्यय, यक् और यकारादि आर्धधातुक लिङ् (आशीर्लिङ्) हो तो। भ्रियात्—भृ + आशीर्लिङ् प्र० १। ऋ को रि।

५४३. उश्च (१-२-१२)

ऋ के बाद झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) से प्रारम्भ होने वाले लिङ् और सिच् कित् होते हैं, आत्मनेपद में। भृषीष्ट—भृ + आशीर्लिङ् आ० प्र० १। कित् होने से गुण नहीं हुआ।

५४४. ह्रस्वादङ्गात् (८-२-२७)

ह्रस्वान्त अंग के बाद सिच् (स्) का लोप होता है, बाद में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) हो तो। सूचना—इससे आत्मने० लुङ् में प्र० १ और म० १ में स् का लोप होगा। अभृत—भृ + लुङ् प्र० १। सिच् का इससे लोप। अभृषाताम्, अभृषत।

४३. हृञ् (हृ) हरणे (ले जाना, हरना, चुराना)। सूचना—१. भृ के तुल्य। २. लिट् पर० म० २, ३ में इट् होगा। आ० में म० १, उ० २, ३ में इट् होगा। ३. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—हरति, हरते। लिट् पर० जहार, जहर्थ, जह्रिव, जह्रिम। लिट् आ० जह्रे, जह्रिषे। हर्ता। हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु, हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट, हृषीयास्ताम् प्र० २। अहार्षीत् (४), अहृत (४)। अहरिष्यत्, अहरिष्यत।

४४. धृञ् (धृ) धारणे (धारण करना)। सूचना—दोनों पदों में पूरे रूप हृ के तुल्य चलेंगे। धरति, धरते। दधार, दध्रे। अधार्षीत्, अधृत।

४५. णीञ् (नी) प्रापणे (ले जाना)। सूचना—१. भू और एध् के तुल्य। २. धातु अनिट् है। ३. १० लकारों के प्र० १ के रूप—नयति, नयते। निनाय, निन्ये। नेता। नेष्यति, नेष्यते। नयतु, नयताम्। अनयत्, अनयत। नयेत्, नयेत। नीयात्, नेषीष्ट। अनैषीत्, अनेष्ट। अनेष्यत्, अनेष्यत।

४६. डुपचष् (पच्) पाके (पकाना)। सूचना—१. भू और एध् के तुल्य। २. लिट् पर० में प्र० १, म० १ विकल्प से, उ०१ को छोड़कर अन्यत्र तथा आत्मने० में सर्वत्र पेच् रूप रहेगा। ३. धातु अनिट् है। ४. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—पचति, पचते। लिट् पर०-पपाच, पेचतुः, पेचुः, पेचिथ-पपक्थ०। लिट् आ०-पेचे, पेचाते०। पक्ता। पक्ष्यति, पक्ष्यते। पचतु पचताम्। अपचत्, अपचत। पचेत्, पचेत। पच्यात्, पक्षीष्ट। पर० अपाक्षीत्, अपाक्ताम्, अपाक्षुः०; आ० अपक्त, अपक्षाताम्०। अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत।

४७. भज (भज्) सेवायाम् (सेवा करना)। सूचना—दोनों पदों में पच् के तुल्य रूप चलेंगे। भजति, भजते। बभाज, भेजे। भक्ता। भक्ष्यति, भक्ष्यते। अभाक्षीत्, अभक्त।

४८. यज (यज्) देवपूजासंगतिकरणदानेषु (देवपूजा, यज्ञ करना, संगति करना, दान देना)। सूचना—१. प्रायः पच् के तुल्य रूप चलेंगे। २. धातु अनिट् है। ३. लिट् पर० में एकवचन में संप्रसारण होकर इयज् बनेगा और अन्यत्र ईज्। आत्मने० में सर्वत्र ईज्। ४. लुट् आदि में ज् को ष् होगा। ५. लृट्, लृङ् में ज् को क् होगा। ६. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—यजति, यजते। लिट् पर०-इयाज, ईजतुः ईजुः, इयजिथ-इयष्ठ, ईजथुः०। लिट् आ०-ईजे, ईजाते०। यष्टा। यक्ष्यति, यक्ष्यते। यजतु, यजताम्। अयजत्, अयजत। यजेत्, यजेत। इज्यात्, यक्षीष्ट। अयाक्षीत्, अयष्ट। अयक्ष्यत्, अयक्ष्यत।

५४५. लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् (६-१-१७)

वच् आदि और ग्रह् आदि दोनों गणों की धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण (य्>इ, व्>उ, र्>ऋ) होता है, लिट् में। इससे यज् के य् को इ संप्रसारण होता है और संप्रसारणाच्च से पूर्वरूप होकर य को इ। इयाज—यज्+लिट् प्र० १, अभ्यास के य को इ।

५४६. वचिस्वपियजादीनां किति (६-१-१५)

वच्, स्वप् और यज् आदि धातुओं को संप्रसारण होता है, कित् प्रत्यय बाद में हो तो। ईजतुः—यज्+लिट् प्र० २। संप्रसारण, पूर्वरूप से इज्, इज् को द्वित्व, अभ्यासकार्य, सवर्णदीर्घ। ईजुः। यष्टा—लुट् प्र० १। व्रश्च० से ज् को ष्।

५४७. षढोः कः सि (८-२-४१)

ष् और ढ् को क् होता, बाद में स् हो तो। इससे लृट् आदि में ष् को क् होगा। यक्ष्यति, यक्ष्यते—यज्+लृट् प्र० १। ज् को व्रश्च० से ष्, ष् को इससे क्, स् को ष्, क्+ष्=क्ष्। इज्यात्—यज्+आशीर्लिङ् प्र० १। संप्रसारण से य को इ।

४९. वह (वह्) प्रापणे (वहना, ढोना, ले जाना)। सूचना—१. प्रायः यह् के तुल्य कार्य होते हैं। २. लिट् में संप्रसारण से पर० एक० में उवह् और अन्यत्र ऊह्। आ० में सर्वत्र ऊह्। ३. लिट् म० १ में ह् को ढ्, थ को ध, ष्टुत्व से ध को ढ, एक ढ् का लोप और व के अ को ओ होकर उवोढ बनता है। ४. लुट् और लुङ् में कुछ स्थानों पर इसी प्रकार वह् के वो वाले रूप बनते हैं। ५. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—वहति, वहते। उवाह, ऊहे। वोढा। वक्ष्यति, वक्ष्यते। वहतु, वहताम्। अवहत्, अवहत। वहेत्, वहेत। उह्यात्, वक्षीष्ट। अवाक्षीत्, अवोढ। अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत।

लिट् के रूप—पर० उवाह, ऊहतुः, ऊहुः। उवहिथ—उवोढ, ऊहथुः, ऊह। उवाह—उवह, ऊहिव, ऊहिम। आ०—ऊहे, ऊहाते, ऊहिरे। ऊहिषे, ऊहाथे, ऊहिध्वे। ऊहे, ऊहिवहे, ऊहिमहे।

लुङ् के रूप—पर० (४)—अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षुः। अवाक्षीः, अवोढम्, अवोढ। अवाक्षम्, अवाक्ष्व, अवाक्ष्म। आ० (४)—अवोढ, अवक्षाताम्, अवक्षत। अवोढाः, अवक्षाथाम्, अवोढ्वम्। अवक्षि, अवक्ष्वहि, अवक्ष्महि।

५४८. झषस्तथोर्धोऽधः (८-२-४०)

झष् (वर्ग के ४) के बाद त और थ को ध् होता है, धुञोत्यादि की धा धातु के बाद त थ को ध् नहीं होता।

५४९. ढो ढे लोपः (८-३-१३)

ढ् का लोप होता है, बाद में ढ हो तो।

५५०. सहिवहोरोदवर्णस्य (६-३-११२)

सह् और वह् धातु के अ को ओ होता है, ढ् का लोप होने पर। उवोढ—वह्+लिट् म० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, ह् को ढ्, थ को झष० (५४८) से ध, ष्टुत्व से ध को ढ, ढो ढे० (५४९) से पहले ढ का लोप, इससे व के अ को ओ।

इसी प्रकार वोढा आदि में अ का ओ होता है।

भ्वादिगण समाप्त

(२) अदादिगण प्रारम्भ

आवश्यक-निर्देश

१. इस गण की प्रथम धातु अद् (खाना) है, अतः गण का नाम अदादिगण पड़ा।

२. (अदिप्रभृतिभ्यः शपः) अदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में शप् का लुक् (लोप) होता है। अतः कोई विकरण नहीं लगता है। धातु के अन्त में तिङ् प्रत्यय लगते हैं। सन्धि-कार्य होते हैं। ति, सि, मि पित् हैं, अतः जहाँ पर ति सि मि साक्षात् धातु से मिलते हैं, वहाँ पर गुण होता है। अन्य तिङ् बाद में होंगे तो गुण नही होगा।

३. लट् आदि सार्वधातुक लकारों में निम्नलिखित अन्तिम अंश लगेंगे। लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् में गणभेद के कारण कोई अन्तर नहीं पड़ता है, अत पूर्ववत् ही अन्तिम अंश लगेंगे। लुट्, लृट् आदि में सेट् धातुओं में अन्तिम अंश से पहले इ लगेगा, अनिट् धातुओं में नहीं।

परस्मैपद			अन्तिम अंश	आत्मनेपद		
	लट्				लट्	
ति	तः	अन्ति	प्र०	ते	आते	अते
सि	थः	थ	म०	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अन्तु	प्र०	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म०	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
त्	ताम्	अन्	प्र०	त	आताम्	अत
:	तम्	त	म०	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

५०. अद (अद्) भक्षणे (खाना)। सूचना—१. सार्वधातुक लकारों अर्थात् लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में शप् (अ) का लोप होगा। २. लिट् में अद् को विकल्प से घस् आदेश होता है। लिट् द्विवचन और बहुवचन में गमहन० (५०४) से घस् के अ का लोप, स् को शासि० (५५३) से स् को ष्, ष् को चर्त्व से क् होकर क्ष् रूप बनता है। एकवचन में जघस्। पक्ष में द्वित्व, अभ्यासकार्य होकर आद् रूप रहता है। म० १ में इट् होगा। ३. लोट् म० १ में हि को धि। ४. लङ् में प्र० १ और म० १ में धातु के बाद अ लगेगा। ५. लुङ् में अद् को घस् हो जाता है और लृदित् (लृ—लोप वाली) होने से च्लि को अङ् (अ)। ६. धातु अनिट् है। ७. लङ् आदि में धातु से पहले आ लगकर आद् बनेगा। ८. १० लकारों के प्र० १ के रूप—अत्ति। जघास, आद। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु। आदत्। अद्यात्। अद्यात्। अघसत् (२)। आत्स्यत्।

५५१. अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२–४–७२)

अदादिगण की धातुओं के बाद शप् का लुक् (लोप) होता है। अत्ति-अद्+लट् प्र० १। शप् का लोप, द् को त्। लट् के शेष रूप हैं—अत्तः, अदन्ति। अत्सि, अत्थः, अत्थ। अद्मि, अद्वः, अद्मः।

५५२. लिट्यन्यतरस्याम् (२–४–४०)

अद् धातु को विकल्प से घस् आदेश होता है, लिट् बाद में हो तो। जघास-अद्+लिट् प्र० १। अद् को घस्, द्वित्व, अभ्यासकार्य, घ के अ को वृद्धि।

५५३. शासिवसिघसीनां च (८–३–६०)

इण् (अ-भिन्न स्वर, ह, अन्तःस्थ) और कवर्ग से परे शास्, वस् और घस् के स् को ष् होता है। जक्षतुः—अद्+लिट् प्र० २। अद् को घस्, द्वित्व, अभ्यासकार्य, उपधा अ का लोप, स् को ष्, ष् को चर्त्व से क्। शेष रूप हैं—जक्षुः। जघसिथ, जक्षथुः, जक्ष। जघास—जघस, जक्षिव, जक्षिम। पक्षमें—आद, आदतुः, आदुः।

५५४. इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् (७–२–६६)

अद्, ऋ और व्येञ् धातुओं के बाद थल् (थ) को नित्य इट् (इ) होता है। आदिथ-अद्+लिट् म० १। इससे नित्य इट्। लुट्—अत्ता। लृट्—अत्स्यति। लोट्—अत्तु, अत्ताम्, अदन्तु।

५५५. हुझल्भ्यो हेर्धिः (६–४–१०१)

हु और झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, ऊष्म) अन्त वाली धातुओं के बाद हि को धि होता है। अद्धि-अद्+लोट् म० १। सि को हि, हि को धि। अत्तम्, अत्त। अदानि, अदाव, अदाम।

५५६. अदः सर्वेषाम् (७-३-१००)

अद् धातु के बाद अपृक्त (अकेले) सार्वधातुक को अट् (अ) होता है। इससे प्र० १ और म० १ में धातु के बाद अ लगेगा। आदत्-अद्+लङ् प्र० १। धातु से पहले आ, वृद्धि, बीच में अ। लङ् के शेष रूप हैं—आत्ताम्, आदन्। आदः, आत्तम्, आत्त। आदम्, आद्व, आद्म। विधिलिङ्-अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः०। आशीर्लिङ्-अद्यात्, अद्यास्ताम्, अद्यासुः०।

५५७. लुङ्सनोर्घस्लृ (२-४-३७)

अद् धातु को घस्लृ (घस्) आदेश होता है, बाद में लुङ् और सन् हो तो। अघसत्-अद्+लुङ् प्र० १। अद् को घस्, लृदित् होने से पुषादि० (५०६) से च्लि को अङ् (अ)। लङ्-आत्स्यत्।

५१. हन (हन्) हिंसागत्योः (हिंसा करना, जाना)। सूचना-१. लट् में प्र० २, म० २, ३ में न् का लोप। प्र० ३ में हन्>घ्न्। २. लिट् में एक० में द्वित्व होकर जघन् रहेगा और द्विव० बहु० में जघ्न्। ३. लट् में इट् होगा। ४. लोट् म० १ में हन् को ज आदेश। ५. आशीर्लिङ् और लुङ् में हन् को वध। ६. १० लकारोंके प्र० १ के रूपः-हन्ति। जघान। हन्ता। हनिष्यति। हन्तु। अहन्। हन्यात्। वध्यात्। अवधीत् (५)। अहनिष्यत्।

५५८. अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति (६-४-३७)

निम्नलिखित धातुओं के अन्तिम अनुनासिक (न्, म, ण्) का लोप हो जाता है, बाद में झलादि कित् और ङित् प्रत्यय हो तो। १. अनुदात्तोपदेश (जो आरम्भ में ही अनुदात्त पढ़े गए हैं)। ये धातुएँ हैं—यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन् (दिवादि०)। २. वन् धातु। ३. तनादिगणी धातुएँ। ये हैं—तन्, क्षण्, क्षिण्, ऋण्, तृण्, घृण्, वन्, मन्। हन्ति। हतः-हन्+लट् प्र० २। न् का इससे लोप। लट् के शेष रूप हैं—घ्नन्ति। हंसि, हथः, हथ। हन्मि, हन्वः, हन्मः। लिट्-जघान, जघ्नतुः, जघ्नुः।

५५९. अभ्यासाच्च (७-३-५५)

अभ्यास से परे हन् के ह् को कुत्व (घ्) हो जाता है। जघनिथ, जघन्थ-हन्+लिट् म० १। हन् के ह को घ, विकल्प से इट्। शेष रूप हैं—जघ्नथुः, जघ्न। जघान-जघन, जघ्निव, जघ्निम। लुट्—हन्ता। लट्-हनिष्यति। लोट्-हन्तु, हताम्, घ्नन्तु।

५६०. हन्तेर्जः (६-४-३६)

हन् को ज आदेश होता है, बाद में हि हो तो।

५६१. असिद्धवदत्राभात् (६-४-२२)

समानाश्रय (एक ही स्थान पर) आभीय (सूत्र ६-४-२२ से ६-४-१७५ तक) कार्य करना हो तो पहले का किया हुआ कार्य असिद्ध होता है। जहि-हन् + लोट् म० १। हन् को ज, हि का लोप प्राप्त है, इससे ज असिद्ध है, अतः हि का लोप नहीं। शेष रूप हैं—हतम्, हत। हनानि, हनाव, हनाम। लङ्-अहन्, अहताम्, अघ्नन्। अहन्, अहतम्, अहत। अहनम्, अहन्व, अहन्म। विधिलिङ्-हन्यात्, हन्याताम्, हन्युः, आदि।

५६२. आर्धधातुके (२-४-३५)

आगे कहे हुए कार्य आर्धधातुक लकारों में होते हैं।

५६३. हनो वध लिङि (२-४-४२)

हन् को वध आदेश होता है, आर्धधातुक लिङ् (आशीर्लिङ्) में।

५६४. लुङि च (२-४-४३)

लुङ् में भी हन् को वध आदेश होता है। सूचना-वध आदेश अकारान्त है, अ का अतो लोपः (४६९) से लोप होता है। वध्यात्-हन् + आशीर्लिङ् प्र० १। हन् को वध, अ का लोप। वध्यास्ताम्, वध्यासुः।

५६५. अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (१-१-५७)

पर को निमित्त मानकर जो अच् को आदेश (लोप आदि) होता है, वह स्थानिवत् (मूलरूप के तुल्य) हो जाता है, यदि उस स्थानिभूत अच् से पूर्व को कोई कार्य करना हो तो। अवधीत्-हन् + लुङ् प्र० १। हन् को वध, सिच्, इट्, ईट्, स् का लोप, वध के अ का लोप, अ-लोप होने पर अतो हलादे० (४५६) से वृद्धि प्राप्त थी। अ-लोप के स्थानिवद् होने से व के अ को वृद्धि नहीं होगी।

५२. यु (यु) मिश्रणामिश्रणयोः (मिलाना, अलग करना)। सूचना—१. अद् के तुल्य अन्तिम अंश लगेंगे। २. इन स्थानों पर उ को वृद्धि होकर 'यौ' रूप रहता है—लट्-एकवचन, लोट्-प्र० १, लङ् प्र० १, म० १। विधिलिङ् में उ को वृद्धि नहीं होगी। ३. लट्, लोट् और लङ् के प्र० ३ में उ को उव् होगा। ४. आशीर्लिङ् में उ को दीर्घ होकर यू होगा। ५. [illegible] में सिच्, इट्, ईट्, सिचि वृद्धिः० से वृद्धि, स् लोप,

५६६. उतो वृद्धिर्लुकि हलि (७-३-८९)

लुक् के प्रकरण (अदादिगण) में धातु के उ को वृद्धि होती है, बाद में हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय हो तो, अभ्यस्त (द्वित्व वाली, जुहोत्यादि की) धातु के उ को वृद्धि नहीं होती है। सूचना—इससे लट् एक०, लोट् प्र० १, लङ् प्र० १, म० १ में वृद्धि होगी। यौति—यु + लट् प्र० १। उ को वृद्धि। लट् के शेष रूप हैं—युतः, युवन्ति। यौषि, युथः, युथ। यौमि, युवः, युमः। युयात्—यु + विधिलिङ प्र० १। उ को वृद्धि नहीं होगी। यासु ङित् है। भाष्यकार पतंजलि का कथन है—'पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्न'। पित् ङित् नहीं होता और ङित् पित् नहीं होता।

५३. या (या) प्रापणे (जाना, पहुँचना)। सूचना—१. अद् के तुल्य। २. लङ् में विकल्प से झि को जुस् (उः) होता है। ३. लुङ् में सक् (स्) होने से सिच् वाला भेद (६) लगेगा। ४. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—याति, यातः प्र० २, यान्ति प्र० ३। ययौ। याता। यास्यति। यातु। अयात्, अयाताम् प्र० २, अयुः-अयान् प्र० ३। यायात्, यायाताम्, यायुः। यायात्, यायास्ताम्, यायासुः। अयासीत् (६)। अयास्यत्।

५६७. लङः शाकटायनस्यैव (३-४-१११)

आकारान्त धातुओं से परे लङ् के झि को विकल्प से जुस् (उः) होता है। अयुः, अयान्—या + लङ् प्र० ३। झि को विकल्प से जुस् (उः), उस्यपदान्तात् (४९१) से आ को पररूप, पक्ष में इ और त् का लोप। अयासीत्—या + लुङ् प्र० १। सिच्, सक्, इट्, ईट्, स्-लोप, दीर्घ। अयासिष्टाम्, अयासिषुः।

सूचना—धातु ५४ से ६४ तक के रूप या (५३) के तुल्य चलते हैं। लट्, लिट् और लुङ् प्र० १ के ही रूप दिये हैं। शेष या के तुल्य। ५४. वा गतिगन्धनयोः (वायु का चलना, सूचित करना)। वाति। ववौ। अवासीत् (६)। ५५. भा दीप्तौ (चमकना)। भाति। बभौ। अभासीत् (६)। ५६. ष्णा (स्ना) शौचे (नहाना)। स्नाति। सस्नौ। अस्नासीत् (६)। ५७. श्रा पाके (पकाना)। श्राति। शश्रौ। अश्रासीत् (६)। ५८. द्रा कुत्सायां गतौ (बुरी चाल से चलना)। द्राति। दद्रौ। अद्रासीत् (६)। नि + द्रा (सोना)। ५९. प्सा भक्षणे (खाना)। प्साति। पप्सौ। अप्सासीत् (६)। ६०. रा दाने (देना)। राति। ररौ। अरासीत् (६)। ६१. ला आदाने (लेना)। लाति। ललौ। अलासीत् (६)। ६२. दाप् (दा) लवने (काटना)। दाति। ददौ। अदासीत् (६)। ६३. पा रक्षणे (रक्षा करना)। पाति। पपौ। अपासीत् (६)। ६४. ख्या प्रकथने (कहना)। सूचना—सार्वधातुक लकारों में ही प्रयोग होता है। लट्—ख्याति। लोट्—ख्यातु। लङ्—अख्यात्। विधिलिङ्—ख्यायात्।

६५. विद (विद्) ज्ञाने (जानना)। सूचना—१. लट् में विकल्प से लिट् वाले अन्तिम अंश णल् आदि भी होते हैं, पक्ष में अद् के तुल्य। २. लिट् में विकल्प से

आम् भी होता है। ३. लोट् में विकल्प से आम् होता है और बाद में कृ+लोट् के रूप लगेंगे। ४. लङ् प्र० ३ में सिजभ्यस्त० (४४६) से झि को उः। लङ् म० १ में विकल्प से द् को विसर्ग। ५. लुङ् में इप् वाला भेद (५)। ६. १० लकारों के प्र० १ के रूप—वेद, वेत्ति। विदांचकार, विवेद। वेदिता। वेदिष्यति। विदांकरोतु, वेत्तु। अवेत्। विद्यात्, विद्याताम्, विद्युः। विद्यात्, विद्यास्ताम्, विद्यासुः। अवेदीत् (५)। अवेदिष्यत्।

५६८. विदो लटो वा (३-४-८३)

विद्(अदादि) धातु के बाद परस्मैपद लट् तिङ् प्रत्ययों के स्थान पर णल् आदि विकल्प से होते हैं। धातु को द्वित्व नहीं होगा। लट् के रूप हैं—वेद, विदतुः विदुः। वेत्थ, विदथुः, विद। वेद, विद्व, विद्म। पक्ष में—वेत्ति, वित्तः, विदन्ति०।

५६९. उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् (३-१-३८)

उष्, विद् और जागृ धातुओं से विकल्प से आम् होता है, लिट् बाद में हो तो। विद धातु का अकारान्त पाठ है, अ का अतो लोपः से लोप होता है, अतः आम् होने पर धातु को गुण नहीं होता है। विदांचकार, विवेद—विद्+लिट् प्र० १। आम् होने पर कृ का अनुप्रयोग, पक्ष में द्वित्व, अभ्यासकार्य।

५७०. विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् (३-१-४१)

लोट् लकार में विदांकरोतु आदि रूप भी विकल्प से बनते हैं। ये चार काम होते हैं—१. विद् से लोट् में आम्, २. धातु को गुण का अभाव, ३. लोट् का लोप, ४. लोट्-लकारयुक्त कृ का अनुप्रयोग। पूरे लोट् में कृ वाले रूप बनेंगे।

५७१. तनादिकृञ्भ्य उः (३-१-७९)

तनादिगणी धातुओं और कृ धातु से उ प्रत्यय होता है। यह शप् का अपवाद है। विदांकरोतु—विद्+लोट् प्र० १। आम्, लोट्परक कृ, उ, कृ और उ को गुण।

५७२. अत उत्सार्वधातुके (६-४-११०)

उ-प्रत्ययान्त कृ धातु के अ को उ होता है, बाद में कित् और ङित् सार्व-धातुक हो तो। सूचना—इससे लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् के कित् और ङित् स्थानों पर उ होकर कुर् हो जाता है। विदांकुरुतात् प्र० १, विदांकुरुताम्, विदांकुर्वन्तु। विदांकुरु, विदांकुरुतम्, विदांकुरुत। विदांकरवाणि, विदांकरवाव, विदांकरवाम। पक्ष में वेत्तु आदि। लङ्—अवेत्, अवित्ताम्, अविदुः।

५७३. दश्च (८-२-७५)

धातु के पदान्त द् को विकल्प से रु (र्, :) होता है, बाद में सिप् हो तो। अवेः, अवेत्—विद्+लङ् म० १। द् को विकल्प से विसर्ग।

६६. अस् भुवि (होना)। सूचना—१. लट् तथा लङ् में द्विवचन और बहु० में अस् के अ का लोप होता है। लोट् में प्र० २, ३; म० १, २, ३ में अस् के अ का लोप होगा। पूरे विधिलिङ् में अ का लोप होगा। २. लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् में अस् को भू हो जाएगा, अतः इन लकारों में भू के तुल्य ही रूप बनेंगे। ३. लोट् म० १ में अ का लोप, स् को ए, हि को धि होकर एधि बनता है। ४. लङ् प्र० १ और म० १ में अस्तिसिचो० (४४४) से ईट् (ई) होकर आसीत् और आसीः बनेंगे। ५. लङ् में धातु से पहले आ लगेगा। ६. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—अस्ति। बभूव। भविता। भविष्यति। अस्तु। आसीत्। स्यात्, स्याताम्, स्युः। भूयात्। अभूत् (१)। अभविष्यत्।

५७४. श्नसोरल्लोपः (६–४–१११)

रुधादि के विकरण श्नम् (श्न, न) और अस् धातु के अ का लोप होता है, बाद में सार्वधातुक कित् और ङित् प्रत्यय हों तो। स्ति–अस्+लट् प्र० १। स्तः–अस्+लट् प्र० २। इससे अ का लोप। लट् के शेष रूप हैं—सन्ति। असि, स्थः, स्थ। अस्मि, स्वः, स्मः।

५७५. उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः (८–३–८७)

उपसर्ग के इण् (इ, उ) और प्रादुस् अव्यय के बाद अस् धातु के स् को ष् होता है, बाद में य और अच् हो तो। निष्यात्–नि+स्यात्। स् को ष्। प्रनिषन्ति–प्र+नि+सन्ति। इससे स् को ष्। प्रादुःषन्ति–प्रादुः+सन्ति। स् को ष्। य् और अच् बाद में न होने से यहाँ नहीं हुआ—अभिस्तः–अभि+स्तः।

५७६. अस्तेर्भूः (२–४–५२)

आर्धधातुक लकारों (लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ्) में अस् को भू आदेश होता है। बभूव–अस्+लिट् प्र० १। अस् को भू। लोट्–अस्तु–स्तात्, स्ताम्, सन्तु।

५७७. घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च (६–४–११९)

घुसंज्ञक (दा, धा) और अस् धातु को ए होता है और अभ्यास का लोप होता है, बाद में हि हो तो। एधि–अस्+लोट् म० १। श्नसो० (५०४) से अ का लोप, इससे स् को ए, ए को असिद्ध मानकर हुझल्भ्यो० (५५५) से हि को धि। स्तात्–ए को रोककर तात् होगा। लोट् के शेष रूप हैं–स्तम्, स्त। असानि, असाव, असाम। लङ्—आसीत्, आस्ताम्, आसन्। आसीः, आस्तम, आस्त। आसम्, आस्व, आस्म।

६७. इण् (इ) गतौ (जाना)। सूचना–१. इ को इन स्थानों पर गुण होकर ए हो जाता है:—लट् एक०; लोट् प्र० १ और उ० १, २, ३, लुट्, लृट्। २. लिट

५८८. घुमास्थागापाजहातिसां हलि (६-४-६६)

निम्नलिखित धातुओं के आ को ई होता है, हलादि कित् ङित् आर्धधातुक बाद में हों तोः—घु (दा और धा धातुएँ), मा (नापना), स्था (रुकना), गा (गाना तथा इङ् धातु के स्थान पर होने वाला गा आदेश), पा (पीना), हा (छोड़ना, जुहोत्यादि० पर०) और षो (सो या सा, नष्ट करना)। अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट—अधि + इ + लुङ् प्र० १। इ को गा, सिच्, इससे आ को ई। पक्ष में धातु से पहले आ, वृद्धि ऐ, सिच्, मूर्धन्य, ष्टुत्व। अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत—अधि + इ + लृङ् प्र० १। इ को गा, स्य, इससे आ को ई। पक्ष में आट्, वृद्धि, स्य।

७०. दुह (दुह्) प्रपूरणे (दुहना)। सूचना—१. धातु उभयपदी है। २. इस धातु में ये चार सूत्र विशेष रूप से लगते हैं—दादेर्धातोर्घः (२५२), झलां जश् झशि (१९), झषस्तथोर्धोऽधः (५४८), एकाचो बशो भष्० (२५३)। धातु के ह् को घ् होता है, उसे ग् और क् होता है। प्रत्यय के त और थ को ध होता है। स् और ध्व वाले स्थानों पर दुह् के द् को ध् होता है, ऐसे स्थानों पर ह् का ग् या क् रूप मिलेगा। ३. लुङ् में च्लि को क्स (स) होता है। आत्मने० में प्र० १, म० १, ३, उ० २ में क्स (स) का विकल्प से लोप होगा, अतः दो-दो रूप बनेंगे। ४. आ०-प्र० २, ३, म० २, उ० १ में क्स (स) के अ का लोप हो जाएगा। ५. १० लकारों के प्र० १ रूप हैं:—

परस्मैपद—लट्—दोग्धि, दुग्धः, दुहन्ति। धोक्षि, दुग्धः, दुग्ध। दोह्मि, दुह्वः, दुह्मः। लिट्—दुदोह। लुट्—दोग्धा। लृट्—धोक्ष्यति। लोट्—दोग्धु—दुग्धात्, दुग्धाम्, दुहन्तु। दुग्धि, दुग्धम्, दुग्ध। दोहानि, दोहाव, दोहाम। लङ्—अधोक्, अदुग्धाम्, अदुहन्। अधोक्, अदुग्धम्, अदुग्ध। अदोहम्, अदुह्व, अदुह्म। विधिलिङ्—दुह्यात्। आ० लिङ्—दुह्यात्। लुङ्—अधुक्षत् (७)। लृङ्—अधोक्ष्यत्।

आत्मनेपद—लट्—दुग्धे, दुहाते, दुहते। धुक्षे, दुहाथे, धुग्ध्वे। दुहे, दुह्वहे, दुह्महे। लिट्—दुदुहे। लुट्—दोग्धा। लृट्—धोक्ष्यते। लोट्- दुग्धाम्, दुहाताम्, दुहताम्। धुक्ष्व, दुहाथाम्, धुग्ध्वम्। दोहै, दोहावहै, दोहामहै। लङ्—अदुग्ध, अदुहाताम्, अदुहत। अदुग्धाः, अदुहाथाम्, अधुग्ध्वम्। अदुहि, अदुह्वहि, अदुह्महि। विधिलिङ्—दुहीत। आ० लिङ्—धुक्षीष्ट। लुङ्—अदुग्ध (७)—अधुक्षत (७), अधुक्षाताम्, अधुक्षन्त। अदुग्धाः—अधुक्षथाः, अधुक्षाथाम्, अधुग्ध्वम्—अधुक्षध्वम्। अधुक्षि, अदुह्वहि—अधुक्षावहि, अधुक्षामहि। लृङ्—अधोक्ष्यत।

५८९. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु (१-२-११)

इक् (इ, उ, ऋ) के समीपस्थ हल् से परे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं, आत्मनेपदी प्रत्यय बाद में हो तो। धुक्षीष्ट—दुह् + आ० लिङ् प्र० १ (आ०)। कित् होने से धातु को गुण नहीं।

५९०. शल इगुपधादनिटः क्सः (३-१-४५)

जिसकी उपधा में इक् (इ उ ऋ) है और जिसके अन्त में शल् (श् ष् स् ह्) है, ऐसी अनिट् धातु के बाद च्लि को क्स (स) आदेश होता है। अधुक्षत्-दुह् + लुङ् प्र० १, पर०। च्लि को क्स (स), द् को ध्, ह् को घ् और घ् को क्।

५९१. लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये (७-३-७३)

दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं के क्स का विकल्प से लोप हो जाता है, बाद में दन्त्य तङ् हो तो। दन्त्य तङ् हैं-त, थाः, ध्वम्, वहि। अदुग्ध, अधुक्षत— दुह् + लुङ् प्र० १ (आ०)। च्लि को क्स, क्स का विकल्प से लोप।

५९२. क्सस्याचि (७-३-७२)

अजादि तङ् बाद में हों तो क्स के अ का लोप होता है।
अधुक्षाताम्-दुह् + लुङ् प्र० २। च्लि को स, स के अ का लोप।

७१. दिह (दिह्) उपचये (बढ़ना)। सूचना-पूरे रूप दुह् के तुल्य चलते हैं।

७२. लिह (लिह्) आस्वादने (चाटना)। सूचना-धातु उभयपदी अनिट् है। २. ह् को ढ् होता है। त को और थाः के थ को ध, ध् को ढ्, ढ् का लोप, पूर्व इ को दीर्घ। ३. दुह् के तुल्य ही च्लि को क्स (स) होता है। आत्मनेपद में त, थाः, ध्वम् और वहि मे विकल्प से स का लोप। ४. शेष रूप प्रायः दुह् के तुल्य। ५. १० लकारों के रूप—

परस्मै०-लट्-लेढि, लीढः लिहन्ति। लेक्षि०। लिट्-लिलेह। लुट्—लेढा। लृट्-लेक्ष्यति। लोट्-लेढु, लीढाम्, लिहन्तु। लीढि, लीढम्, लीढ। लेहानि, लेहाव, लेहाम। लङ्-अलेट्-ड्। विधिलिङ्- लिह्यात्। आ० लिङ्-लिह्यात्। लुङ्-अलिक्षत् (७)। लृङ्-अलेक्ष्यत्।

आत्मने०-लट्-लीढे, लिहाते, लिहते। लिक्षे, लिहाथे, लीढ्वे०। लिट्—लिलिहे। लुट्-लेढा। लृट्-लेक्ष्यते। लोट्-लीढाम्। लङ्-अलीढ। विधि०-लिहीत। आ० लिङ्-लिक्षीष्ट। लुङ्-अलीढ-अलिक्षत (७), अलिक्षाताम्, अलिक्षन्त०। लृङ्-अलेक्ष्यत।

७३. ब्रूञ् (ब्रू) व्यक्तायां वाचि (बोलना)। सूचना-१. धातु उभयपदी है और अनिट् है। २. लट् के प्रथम पाँच स्थानों (प्र० १, २, ३, म० १, २) में विकल्प से ब्रू को आह् आदेश होता है और ति आदि को णल् आदि आदेश होते हैं। अतः आह, आहतुः, आहुः। आत्थ, आहथुः रूप बनते हैं। ३. ब्रू धातु में इन स्थानों पर ई लगता है- लट् एक०, लोट् प्र० १, लङ् प्र० १, म० १। ४. आर्धधातुक लकारों में ब्रू को वच् आदेश होता है। ५. लिट् और पर० आशीर्लिङ् में यज् के तुल्य संप्रसारण होगा। ६. लुङ् में च्लि को अङ् (अ) होगा और वच् के व के बाद उ होकर 'वोच' बनेगा, उसके रूप चलेंगे। ७. १० लकारों के रूपः—

६०२. गुणोऽपृक्ते (७-३-९१)

ऊर्णु धातु के उ को गुण होता है, बाद में अपृक्त (एक) हलादि पित् सार्वधातुक हो तो। सूचना—लङ् में विकल्प से वृद्धि नहीं होगी, प्र० १ और म० १ में केवल गुण होगा। और्णोत्—ऊर्णु + लङ् प्र० १। धातु से पहले आट् (आ), उ को गुण। और्णोः—लङ् म० १।

६०३. ऊर्णोतेर्विभाषा (७-२-६)

परस्मैपद सेट् सिच् बाद में हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प से वृद्धि होती है। पक्ष में उवङ् (उव्) और गुण होकर अव्। इस प्रकार लुङ् में तीन-तीन रूप बनेंगे। और्णावीत्, और्णुवीत्, और्णवीत्—ऊर्णु + लुङ् प्र० १। धातु से पूर्व आ, सिच्, इट्, ईट्, स्-लोप, दीर्घ, वृद्धि होने से औ और औ को आव् आदेश, गुण होने पर ओ और अव् आदेश, अन्यत्र उवङ् (उव्)।

अदादिगण समाप्त

---

(३) जुहोत्यादिगण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

(१) इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है। इसके रूप जुहोति आदि होते हैं, अतः गण का नाम जुहोत्यादिगण पड़ा। जुहोत्यादिगण में भी अदादिगण के तुल्य धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कोई विकरण नहीं लगता है।

(२) (जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, सूत्र ६०४)। जुहोत्यादिगण में शप् को श्लु (लोप) होता है, सार्वधातुक लकारोंमें। (श्लौ, सूत्र ६०५)। श्लु (शप् का लोप) होने पर धातु को द्वित्व होता है। अतः इस गण की सभी धातुओं को लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में द्वित्व होगा और लिट् के तुल्य अभ्यास-कार्य होगा।

(३) निम्नलिखित स्थानों पर धातु के अन्तिम इ ई को ए, उ ऊ को ओ, ऋ ॠ को अर् गुण होता है और उपधा के इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर् गुण होता है :—लट्-प्र० १, म० १, उ० १; लोट्-प्र० १, उ० १, २, ३; लङ् प्र० १, म० १, उ० १। लुट्-पूरा, लृट्-पूरा, लृङ्-पूरा। लिट्-म० १, उ० १ विकल्प से।

(४) लट् आदि में धातु के अन्त में अन्तिम अंश निम्नलिखित लगेंगे। लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् में पूर्वोक्त अन्तिम अंश ही लगेंगे। लुट्, लृट् आदि में सेट् धातुओं में अन्तिम अंश से पूर्व इ और लगेगा, अनिट् में नहीं।

परस्मैपद			अन्तिम अंश	आत्मनेपद		
ति	तः	अति	प्र०	ते	आते	अते

सि	थः	थ	म०	से	आथे	ध्वे
मि	वः	मः	उ०	ए	वहे	महे
	लोट्				लोट्	
तु	ताम्	अतु	प्र०	ताम्	आताम्	अताम्
हि	तम्	त	म०	स्व	आथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
त्	ताम्	उः	प्र०	त	आताम्	अत
:	तम्	त	म०	थाः	आथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	उ०	इ	वहि	महि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
यात्	याताम्	युः	प्र०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
याः	यातम्	यात	म०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
याम्	याव	याम	उ०	ईय	ईवहि	ईमहि

७५. हु दानादनयोः (१. हवन करना, २. खाना)। सूचना-१. धातु के बाद सार्वधातुक लकारों में शप् का लोप और द्वित्व, अभ्यासकार्य। २. लट्, लोट् और लङ् में झ् को अत् होता है। लट् और लोट् प्र० ३ में हुश्नुवोः० (५००) से हु के उ को यण् व्। ३. लिट् में विकल्प से आम् और धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य। ४. लङ् में सिजभ्यस्त० (४४६) से झि को जुस् (उः) और जुसि च (६०८) से हु के उ को गुण ओ और अव् आदेश। ५. धातु अनिट् है। ६. १० लकार के रूपः— लट्-जुहोति, जुहुतः, जुह्वति। जुहोषि०। लिट्-जुहवांचकार, जुहाव। लुट्-होता। लृट्-होष्यति। लोट्-जुहोतु, जुहुताम्, जुह्वतु। जुहुधि, जुहुतम्, जुहुत। जुहवानि, जुहवाव, जुहवाम। लङ्-अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवुः। अजुहोः०। विधि०- जुहुयात्। आ० लिङ्-हूयात्। लुङ्-अहौषीत् (४)। लृङ्-अहोष्यत्।

६०४. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः (२-४-७५)

जुहोत्यादिगण की धातुओं के बाद शप् का श्लु (लोप) होता है।

६०५. श्लौ (६-१-१०)

श्लु (शप् का लोप) होने पर धातु को द्वित्व होता है। जुहोति-हु + लट् प्र० १। शप् का लोप, द्वित्व, अभ्यासकार्य, उ को गुण ओ। जुहुतः।

६०६. अदभ्यस्तात् (७-१-४)

अभ्यस्त (द्वित्व) के बाद झ को अत् आदेश होता है। जुह्वति-हु + लट् प्र० ३। झ् को अत्, हुश्नुवोः० (५००) से यण् उ को व्।

प्र० २, म० २, ३, उ० २, ३; लोट्—प्र० १ तात्, २, म० १, २, ३; लङ्—प्र० २, म० २, ३, उ० २, ३। ४. लट् प्र० ३ और लोट् प्र० ३ में हा के आ का लोप होता है। ५. लोट् म० १ में आ, इ, ई होने से तीन रूप बनेंगे। ६. विधि० में हा के आ का लोप होता है। ७. लुङ् में सक् (स्) भी होगा। अतः सिप् वाला भेद (६) लगेगा। ८. १० लकारों के प्र० १ के रूप—जहाति, जहितः—जहीतः, जहति। जहौ। हाता। हास्यति। जहातु, जहाहि—जहिहि—जहीहि म० १। अजहात्,''' अजहुः। जह्यात्। हेयात्। अहासीत् (६)। अहास्यत्।

६१७. जहातेश्च (६–४–११६)

हा (छोड़ना) धातु के आ को विकल्प से इ होता है, हलादि कित् ङित् सार्वधातुक बाद में हो तो। जहाति—हा + लट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य। जहितः—हा + लट् प्र० २। पूर्ववत्, इससे आ को इ।

६१८. ई हल्यघोः (६–४–११३)

श्ना (ना) और अभ्यस्त (द्वित्व वाली) धातु के आ को ई होता है, बाद में हलादि कित् ङित् सार्वधातुक हों तो, घु-संज्ञक दा धा को नहीं। जहीतः—हा + लट् प्र० २। आ को ई।

६१९. श्नाभ्यस्तयोरातः (६–४–११२)

श्ना (ना) और अभ्यस्त (द्वित्व वाली) धातु के आ का लोप होता है, बाद में कित् ङित् सार्वधातुक हों तो। जहति—हा + लट् प्र० ३। द्वित्व, अभ्यासकार्य, इससे हा के आ का लोप।

६२०. आ च हौ (६–४–११७)

लोट् म० १ हि बाद में होने पर आ, इ, ई तीनों होते हैं। जहाहि, जहिहि, जहीहि—हा + लोट् म० १। द्वित्व आदि, इससे आ को आ, इ और ई।

६२१. लोपो यि (६–४–११८)

हा (छोड़ना) के आ का लोप होता है, बाद में यकारादि सार्वधातुक (विधिलिङ्) हो तो। जह्यात्—हा + विधिलिङ् प्र० १। द्वित्व आदि, इससे आ का लोप। हेयात्—हा + आ० लिङ् प्र० १। एर्लिङि से आ को ए। अहासीत्—हा + लुङ् प्र० १। सिच्, इट्, ईट्, सक् (स्), सिच् का लोप, दीर्घ।

८०. माङ् (मा) माने शब्दे च (नापना और शब्द करना)। सूचना-१. धातु आत्मनेपदी है। २. लट्, लोट्, लङ् और विधि० में अभ्यास के अ को इ होगा। ३. धातु अनिट् है। ४. १० लकारों के प्र० १ के रूप-मिमीते, *मिमाते प्र० २*, मिमते प्र० ३। ममे। माता। मास्यते। मिमीताम्। अमिमीत। मिमीत। मासीष्ट। अमास्त (४)। अमास्यत।

६२२. भृञामित् (७-४-७६)

भृञ् (भृ), माङ् (मा) और ओहाङ् (हा, जाना), इन तीनों धातुओं के अभ्यास के अ को इ होता है, सार्वधातुक लकारों में। मिमीते-मा + लट् आ० प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास के अ को इ, ई हल्यघोः (६१८) से आ को ई। मिमाते-लट् प्र० २। पूर्ववत्, श्नाभ्यस्त० (६१९) से मा के आ का लोप। मिमते-लट् प्र० ३।

८१. ओहाङ् (हा) गतौ (जाना)। सूचना-१. धातु आत्मनेपदी है और अनिट् है। २. मा के तुल्य कार्य होंगे। ३. सार्वधातुक लकारों में अभ्यास के अ को इ होगा। ४. १० लकारों के प्र० १ के रूपः-जिहीते, जिहाते प्र० २, जिहते प्र० ३। जहे। हाता। हास्यते। जिहीताम्। अजिहीत। जिहीत। हासीष्ट। अहास्त (४)। अहास्यत।

८२. डुभृञ् (भृ) धारणपोषणयोः (धारण करना और पालन करना)। सूचना-१. धातु उभयपदी है और अनिट् है। २. सार्वधातुक लकारों में अभ्यास के अ को इ होगा। ३. लिट् में आम् और द्वित्व आदि होंगे। ४. लट् और लङ् में इट् होगा। ५. आशीर्लिङ् पर० में ऋ को रिङ् शयग्० (५४२) से रि होगा। ६. लिट्, लुट्, लट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लङ् में दोनों पदों में भृञ् (धातु ४२) वाले ही रूप बनेंगे। ७. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—

पर०-बिभर्ति, बिभृतः प्र० २, बिभ्रति प्र० ३। बिभरांचकार, बभार। भर्ता। भरिष्यति। बिभर्तु, बिभराणि उ० १। अबिभः, अबिभृताम् प्र० २, अबिभरुः प्र० ३। बिभृयात्। भ्रियात्। अभार्षीत् (४)। अभरिष्यत्।

आत्मने०-बिभृते, बिभ्राते प्र० २, बिभ्रते प्र० ३। बिभरांचक्रे, बभ्रे। भर्ता। भरिष्यते। बिभृताम्। अबिभृत। बिभ्रीत। भृषीष्ट। अभृत (४)। अभरिष्यत।

८३. डुदाञ् (दा) दाने (देना)। सूचना-१. धातु उभयपदी और अनिट् है। २. कित् ङित् सार्वधातुक में धातु के आ का लोप होगा। ३. लोट् म० १ पर० में देहि बनेगा। ४. आ० लिङ् पर० में आ को, एर्लिङि (४८९) से ए होगा। ५. लुङ् पर० में सिच् का लोप। आत्मने० लुङ् में आ को इ। ह्रस्वा० (५४४) से प्र० १, म० १ में स् का लोप। ६. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—

पर०-ददाति, दत्तः प्र० २, ददति प्र० ३। ददौ। दाता। दास्यति। ददातु, देहि म० १। अददात्। दद्यात्। देयात्। अदात् (१), अदाताम्, अदुः। अदास्यत्।

आत्मने०-दत्ते, ददाते प्र० २, ददते प्र० ३। ददे। दाता। दास्यते। दत्ताम्। अदत्त। ददीत। दासीष्ट। अदित, अदिषाताम् प्र० २, अदिषत प्र० ३। अदास्यत।

६२३. दाधा घ्वदाप् (१-१-२०)

दा और धा रूपोंवाली धातुओं की 'घु' संज्ञा होती है, दाप् और दैप् को

छोड़कर। देहि—दा+लोट् म० १ पर०। घुसंज्ञा होने से घ्वसो० (५७७) से धातु के आ को ए और अभ्यास का लोप। अदात्—दा+लुङ् प्र० १ पर०। गातिस्था० (४३८) से सिच् (स्) का लोप।

६२४. स्थाघ्वोरिच्च (१-२-१७)

स्था और घुसंज्ञक धातुओं के आ को इ होता है और सिच् (स्) कित् होता है, आत्मनेपद प्रत्यय बाद में हो तो। अदित—दा+लुङ् प्र० १ आत्मने०। सिच्, इससे धातु के आ को इ, ह्रस्वादङ्गात् (५४४) से स् का लोप।

८४. डुधाञ् (धा) धारणपोषणयोः (धारण करना और पोषण करना)।

सूचना—१. धातु उभयपदी और अनिट् है। २. कित् ङित् सार्वधातुक में धातु के आ का लोप होगा। ३. लोट् म० १ पर० में धेहि बनेगा। ४. आ० लिङ् पर० में आ को ए होगा। ५. लुङ् में सिच् का लोप होगा। ६. आत्मने० लुङ् प्र० १, म० १ में धातु के आ को इ होगा और स्-लोप ह्रस्वा० (५४४) से होगा। ७. इन स्थानों पर सार्वधातुक लकारों में द्वित्व अभ्यासकार्य होने पर दधा के अन्तिम आ का श्नाभ्यस्तयो० (६१९) से आ-लोप होने पर दधस्तथोश्च (६२५) से दध् के द् को ध् होगा और ध् को खरि च से चर्त्व होने पर 'धत्' रूप शेष रहेगा :—लट् पर० प्र० २, म० २, ३; आ० प्र० १, म० १, ३; लोट्—पर० प्र० २, म० २, ३; आ० प्र० १, म० १, ३; लङ्—पर० प्र० २, म० २, ३; आ० प्र० १, म० १, ३। ८. धा के पूरे रूप प्रायः दा धातु के तुल्य चलते हैं। ९. १० गणों के प्र० १ के रूप—

पर०—लट्—दधाति, धत्तः, दधति। दधासि, धत्थः, धत्थ। दधामि, दध्वः, दध्मः। दधौ। धाता। धास्यति। दधातु, धेहि म० १। अदधात्। दध्यात्। धेयात्। अधात् (१)। अधास्यत्।

आत्मने०—लट्—धत्ते, दधाते, दधते। धत्से, दधाथे, धद्ध्वे। दधे, दध्वहे, दध्महे। दधे। धाता। धास्यते। धत्ताम्। अधत्त। दधीत। धासीष्ट। अधित (४)। अधास्यत।

६२५. दधस्तथोश्च (८-२-३८)

द्वित्व और आलोप होने पर शेष दध् के द् को ध् होता है, बाद में त, थ, स, ध्व हो तो। धत्तः—धा+लट् प्र० २। द्वित्व, अभ्यासकार्य, आ-लोप, द् को ध्, अगले ध् को खरि च से चर्त्व होकर त्। धेहि—धा+लोट् म० १ पर०। धा के आ को ए और अभ्यास का लोप। अधात्—धा+लुङ् प्र० १ पर०। सिच् का गातिस्था० (४३८) से लोप। अधित-धा+लुङ् प्र० १ आ०। सिच्, स्थाघ्वो० (६२४) से आ को इ, ह्रस्वा० (५४४) से स् का लोप।

८५. णिजिर् (निज्) शौचपोषणयोः (धोना और पोषण करना)।

सूचना—१. धातु उभयपदी और अनिट् है। २. सार्वधातुक लकारों में अभ्यास के इ को गुण ए होकर नेनिज रूप रहता है। पित् वाले स्थानों पर धातु के

इ को गुण होकर नेनेज् रहेगा, अन्यत्र नेनिज्। ३. अजादि पित् सार्वधातुकों में धातु को लघूपध-गुण नहीं होता। अतः दोनों पदों में लोट् उ० पु० में गुण नहीं होगा। लङ् उ० १ मे भी धातु को गुण नही होगा। ४. लुङ् पर० में विकल्प से च्लि को अङ् (अ) होगा, धातु को गुण नहीं होगा। पक्ष में सिच् होगा। ५. १० लकारों के प्र० १ के रूप :—

पर०—नेनेक्ति, नेनिक्तः प्र० २, नेनिजति प्र० ३। निनेज। नेक्ता। नेक्ष्यति। नेनेक्तु, नेनिग्धि म० १, नेनिजानि, नेनिजाव, नेनिजाम उ० पु०। अनेनेक्, अनेनिक्ताम्, अनेनिजुः प्र० पु०, अनेनिजम् उ० १। नेनिज्यात्। निज्यात्। अनिजत् (२), अनैक्षीत् (४)। अनेक्ष्यत्।

आत्मने०—नेनिक्ते, नेनिजाते प्र० २, नेनिजते प्र० ३। निनिजे। नेक्ता। नेक्ष्यते। नेनिक्ताम्। अनेनिक्त। नेनिजीत। निक्षीष्ट। अनिक्त (४), अनिक्षाताम्, अनिक्षत। अनेक्ष्यत।

(इर इत्संज्ञा वाच्या, वा०) धातु के इर् की इत्संज्ञा होती है। इत् होने से लोप होता है।

६२६. णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ (७-४-७५)

निज्, विज् और विष् धातुओं के अभ्यास के इ को गुण ए होता है, श्लु के विषय में अर्थात् सार्वधातुक लकारों में। नेनेक्ति-निज्+लट् प्र० १ पर०। द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास के इ को ए, चोः कुः (३०६) से ज् को ग् और ग् को खरि च से क्।

६२७. नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके (७-३-८७)

अजादि पित् सार्वधातुक बाद में हो तो अभ्यस्त (द्वित्व वाली) धातु को लघूपध गुण नहीं होता है। अर्थात् पुगन्त० (४५०) से उपधा के इ को प्राप्त गुण नहीं होगा। नेनिजानि—लोट् उ० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, नि से पूर्व आट् (आ), उपधा को गुण प्राप्त था, इससे निषेध।

६२८. इरितो वा (३-१-५७)

इरित् (जिसमें से इर् हटा है) धातु के बाद च्लि को विकल्प से अङ् (अ) होता है, परस्मैपद में। अङ् ङित् है, अतः धातु की उपधा के इ को गुण नहीं होगा। अनिजत्, अनैक्षीत्-निज्+लुङ् प्र० १ पर०। च्लि को अङ् (अ)। पक्ष में सिच् (स्), ईट् (ई), वदव्रज० (४६४) से वृद्धि, ज् को ग्-क्, स् को ष्। अनिक्त-निज् +लुङ् प्र० १ आ०। धातु से पूर्व अ, सिच् (स्), झलो झलि (४७७) से स्-लोप, ज् को ग्-क्।

जुहोत्यादिगण समाप्त।

(४) दिवादिगण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

(१) इस गण की प्रथम धातु दिव् है, अतः गण का नाम दिवादिगण पड़ा। (दिवादिभ्यः श्यन्, सूत्र ६२९) दिवादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् (सार्वधातुक लकारों) में श्यन् (य) विकरण लगता है। श्यन् अपित् होने से ङित् है और ङित् होने से धातु को गुण नहीं होता है। इस गण की धातुओं के रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में य लगाकर परस्मैपद में भू के तुल्य और आत्मनेपद में नी (नयते) के तुल्य रूप चलावें।

(२) लिट्, लुट् आदि आर्धधातुक लकारों में पूर्ववत् अन्तिम अंश लगेंगे। लुट् आदि में सेट् धातुओं में अन्तिम अंश से पहले इ लगेगा, अनिट् में नहीं।

(३) लट् आदि में धातु के अन्त में अन्तिम अंश निम्नलिखित लगेंगे :—

अन्तिम अंश

परस्मैपद				आत्मनेपद		
	लट्				लट्	
यति	यतः	यन्ति	प्र०	यते	येते	यन्ते
यसि	यथः	यथ	म०	यसे	येथे	यध्वे
यामि	यावः	यामः	उ०	ये	यावहे	यामहे
	लोट्				लोट्	
यतु	यताम्	यन्तु	प्र०	यताम्	येताम्	यन्ताम्
य	यतम्	यत	म०	यस्व	येथाम्	यध्वम्
यानि	याव	याम	उ०	यै	यावहै	यामहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
यत्	यताम्	यन्	प्र०	यत	येताम्	यन्त
यः	यतम्	यत	म०	यथाः	येथाम्	यध्वम्
यम्	याव	याम	उ०	ये	यावहि	यामहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
येत्	येताम्	येयुः	प्र०	येत	येयाताम्	येरन्
येः	येतम्	येत	म०	येथाः	येयाथाम्	येध्वम्
येयम्	येव	येम	उ०	येय	येवहि	येमहि

८६. दिवु (दिव्) क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (खेलना, जुआ खेलना, लेन-देन करना, चमकना, स्तुति करना, प्रसन्न होना, नशा करना, सोना, इच्छा करना, चलना)। सूचना—१. सार्वधातुक लकारों में श्यन् (य) लगेगा और हलि च (६१२) से इ को दीर्घ होकर दीव्य बनेगा। २. धातु सेट् है, अतः लुट् आदि में इ लगेगा। ३. १० लकारों के प्र० १ के रूप :—दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दिव्यात्। अदेवीत् (५)। अदेविष्यत्।

६२९. दिवादिभ्यः श्यन् (३-१-६९)

दिवादिगण की धातुओं से श्यन् (य) प्रत्यय होता है, कर्तृवाच्य सार्वधातुक लकारों में। दीव्यति—दिव्+लट् प्र० १। श्यन् (य), हलि च (६१२) से इ को दीर्घ ई।

८७. षिवु (सिव्) तन्तुसन्ताने (सीना)। सूचना—दिव् के तुल्य रूप चलेंगे। लट्—सीव्यति। लिट्—सिषेव। लुट्—सेविता। लुङ्—असेवीत् (५)।

८८. नृती (नृत्) गात्रविक्षेपे (नाचना)। सूचना—१. दिव् के तुल्य रूप चलेंगे। २. धातु सेट् है। लट् और लङ् में विकल्प से इट् होगा। ३. १० लकारों के प्र० १ रूपः—नृत्यति। ननर्त। नर्तिता। नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। नृत्यतु। अनृत्यत्। नृत्येत्। नृत्यात्। अनर्तीत् (५)। अनर्तिष्यत्, अनर्त्स्यत्।

६३०. सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः (७-२-५७)

कृत्, चृत्, छृद्, तृद् और नृत् धातुओं के बाद सिच् से भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय को विकल्प से इट् (इ) होता है। नर्तिष्यति, नर्त्स्यति—नृत्+लट् प्र० १। विकल्प से इट्, धातु को गुण।

८९. त्रसी (त्रस्) उद्वेगे (डरना, घबड़ाना)। सूचना-१. वा भ्राश० (४८४) से विकल्प से श्यन् (य) होगा, पक्ष में शप् (अ) होगा। अतः सार्वधातुक लकारों में भू और दिव् दोनों के तुल्य रूप चलेंगे। २. लिट् में प्र० १, उ० १ को छोड़कर अन्यत्र दो-दो रूप बनेंगे-त्रत्रस्, त्रेस्। इनमें प्रत्यय लगेंगे। विकल्प से एत्व और अभ्यासलोप होता है। ३. लट् आदि के रूप :—लट्—त्रस्यति, त्रसति। लिट्—तत्रास, त्रेसतुः-तत्रसतुः, त्रेसुः-तत्रसुः। त्रेसिथ-तत्रसिथ०। लुट्—त्रसिता। लुङ्—अत्रासीत् (५)-अत्रसीत् (५)।

६३१. वा जॄभ्रमुत्रसाम् (६-४-१२४)

जॄ, भ्रम् और त्रस् धातुओं को कित् लिट् और सेट् थल् में विकल्प से एत्व और अभ्यासलोप होता है। इससे तत्रस् को त्रेस् हो जाता है। त्रेसतुः, तत्रसतुः—त्रस्+लिट् प्र० २। विकल्प से ए और अभ्यासलोप।

९०. शो तनूकरणे (छीलना)। सूचना-१. दिव् के तुल्य अन्तिम अंश लगेंगे। २. लट् आदि ४ लकारों में धातु के ओ का लोप होगा। ३. आर्धधातुक लकारों में ओ-

को आ हो जाएगा। ४. लुङ् में सिच् का लोप विकल्प से होगा। ५. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—श्यति, श्यतः, श्यन्ति। शशौ, शशतुः, शशुः। शाता। शास्यति। श्यतु। अश्यत्। श्येत्। शायात्। अशात् (१), अशासीत् (६)। अशास्यत्।

६३२. ओतः श्यनि (७-३-७१)

धातु के ओ का लोप होता है, बाद में श्यन् (य) हो तो। श्यति—शो + लट् प्र० १। ओ का लोप।

६३३. विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः (२-४-७८)

घ्रा, धे, शो, छो और षो (सो) के बाद विकल्प से सिच् (स्) का लोप होता है, परस्मैपद में। अशात्—शो (शा) + लुङ् प्र० १। स् का लोप। अशाताम्। अशुः। अशासीत्—शो + लुङ् प्र० १। सिच्, इट्, ईट्, यमरम० (४९४) से सक् (स), स्-लोप, दीर्घ।

९१. छो छेदने (काटना)। सूचना—पूरे रूप शो के तुल्य चलेंगे। लट्—छ्यति। लिट्—चच्छौ। लुट्—छाता। लुङ्—अच्छात् (१), अच्छासीत् (६)।

९२. षो (सो) अन्तकर्मणि (नष्ट करना)। सूचना—शो के तुल्य। लट्—स्यति। लिट्—ससौ। लुट्—साता। लुङ्—असात् (१), असासीत् (६)।

९३. दो अवखण्डने (काटना)। सूचना—शो के तुल्य। लट्—द्यति। लिट्—ददौ। लुट्—दाता। आ० लिङ्—देयात्। लुङ्—अदात् (१)।

९४. व्यध (व्यध्) ताडने (बींधना)। सूचना—१. दिव् के तुल्य रूप चलेंगे। २. धातु अनिट् है। ३. कित् ङित् स्थानों पर व्यध् को संप्रसारण होकर विध् रहेगा। लट् आदि में, लिट् द्वि०-बहु० में और आ० लिङ् में संप्रसारण होगा। ४. लिट् एक० में व्यध् को द्वित्व होगा। लिट्य० (५४५) से संप्रसारण होगा। द्वि० बहु० में संप्रसारण होकर द्वित्व होगा। ५. १० लकारों के प्र० १ के रूपः—विध्यति। लिट्—विव्याध, विविधतुः, विविधुः। विव्यधिथ-विव्यद्ध म० १। व्यद्धा। व्यत्स्यति। विध्यतु। अविध्यत्। विध्येत्। विध्यात्। अव्यात्सीत् (४)। अव्यत्स्यत्।

६३४. ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च (६-१-१६)

इन धातुओं को संप्रसारण होता है, बाद में कित् और ङित् प्रत्यय हों तो:— ग्रह्, ज्या, वे, व्यध्, वश्, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ्, भ्रस्ज्। विध्यति—व्यध् + लट् प्र० १। इससे य् को इ संप्रसारण, संप्रसारणाच्च (२५८) से अ को पूर्वरूप।

९५. पुष (पुष्) पुष्टौ (पुष्ट होना)। सूचना—१. दिव् के तुल्य। २. लुङ् में च्लि को अङ् (अ)। ३. पुष्यति। पुपोष, पुपोषिथ म० १। पोष्टा। पोक्ष्यति। अपुष्यत्। पुष्येत्। पुष्यात्। अपुषत् (२)। अपोक्ष्यत्।

९६. शुष (शुष्) शोषणे (सूखना)। सूचना–पुष् के तुल्य। लट्–शुष्यति। लिट्–शुशोष। लुट्–शोष्टा। लुङ्–अशुषत् (२)।

९७. णश (नश्) अदर्शने (नष्ट होना) सूचना–१. दिव् के तुल्य। २. लिट् द्वि० बहु० और थल् में एत्व और अभ्यासलोप होकर नेश् बनेगा। ३. इट् विकल्प से होना। ४. लिट्, लुट्, लृट् और लङ् में झलादि प्रत्ययों में बीच में नुम् (न्) लगेगा। ५. नश्यति। लिट्–ननाश, नेशतुः, नेशुः। नेशिथ–ननंष्ठ, नेशिव–नेश्व, नेशिम–नेश्म। नशिता–नंष्टा। नशिष्यति–नङ्क्ष्यति। नश्यतु। अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। अनशत् (२, अङ्)। अनशिष्यत्–अनङ्क्ष्यत्।

६३५. रधादिभ्यश्च (७–२–४५)

निम्नलिखित ८ धातुओं से वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् (इ) होता है:–रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह्। नेशिथ–नश्+लिट् म० १। विकल्प से इट्, थलि च सेटि (४६०) से धातु के अ को ए और अभ्यासलोप।

६३६. मस्जिनशोर्झलि (७–१–६०)

मस्ज् और नश् धातु के अ के बाद नुम् (न्) होता है, बाद में झलादि प्रत्यय हो तो। इस न् को नश्चा० (७८) से अनुस्वार होने से नंश् रूप बनता है। ननंष्ठ–लिट् म० १। इट् के अभाव में द्वित्व, नुम्, व्रश्च० से श् को ष्, थ को ष्टुत्व से ठ। अनशत्–नश्+लुङ् प्र० १। पुषादि होने से च्लि को अङ् (अ)।

९८. षूङ् (सू) प्राणिप्रसवे (प्राणियों को जन्म देना)। सूचना–१. धातु आत्मने० है। २. स्वरति० (४७५) से लुट् आदि में विकल्प से इट्। क्रादिनियम से लिट् में इट्। ३. सूयते। सुषुवे, सुषुविषे म० १, सुषुविवहे उ० २, सुषुविमहे उ० ३। सविता-सोता। सविष्यते-सोष्यते। लुङ्–असविष्ट (५), असोष्ट (४)।

९९. दूङ् (दू) परितापे (दुःखित होना)। सूचना–१. सू के तुल्य रूप चलेंगे। २. आत्मने० है। नित्य इट् होगा। ३. दूयते। दुदुवे। दविता। लुङ्–अदविष्ट (५)।

१००. दीङ् (दी) क्षये (नष्ट होना)। सूचना–१. धातु आ० और अनिट् है। २. लिट् में धातु के बाद य् लगता है। ३. लुट् आदि में दी की ई को आ होता है। ४. लुङ् में ई को इ नहीं होगा, आ होगा। ५. दीयते। दिदीये। दाता। दास्यते। दीयताम्। अदीयत। दीयेत। दासीष्ट। अदास्त। अदास्यत।

६३७. दीङो युडचि क्ङिति (६–४–६३)

दीङ् धातु के बाद अजादि कित् ङित् आर्धधातुक को युट् (य्) आगम होता है। (वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ, वा०) उवङ् और यण् के बारे में वुक् और युट् सिद्ध मानने चाहिएं। अतः दिदीये में य् को असिद्ध मानकर एरनेकाचो० से प्राप्त यण् यहाँ नहीं होगा। दिदीये–दी+लिट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, युट् (य्), यण् का निषेध।

६३८. मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च (६-१-५०)

मी (क्र्यादि०), मि (स्वादि०) और दीङ्, इन तीन धातुओं के इ और ई को आ होता है, बाद में ल्यप् हो या शित्-भिन्न गुण और वृद्धि का निमित्त कोई प्रत्यय हो तो। दाता–दी + लुट् प्र० १। दी को दा। (स्थाघ्वोरिच्चे दीङः प्रतिषेधः, वा०) दीङ् धातु में स्थाघ्वो० (६२४) से प्राप्त इ नहीं होगा। अदास्त–दी + लुङ् प्र० १। सिच्, ई को आ।

१०१. डीङ् (डी) विहायसा गतौ (उड़ना)। सूचना–१. धातु आ० और सेट् है। २. इसका प्रयोग प्रायः उत् उपसर्ग के साथ होता है। उत् + डी = उड्डी। ३. डीयते। डिड्ये। डयिता। डयिष्यते। डीयताम्। अडीयत। डीयेत। डयिषीष्ट। अडयिष्ट (५)। अडयिष्यत।

१०२. पीङ् (पी) पाने (पीना)। सूचना–१. धातु आ० और अनिट् है। २. पीयते। पिप्ये। पेता। पेष्यते। लुङ्–अपेष्ट (४)।

१०३. माङ् (मा) माने (नापना, तोलना)। सूचना–१. धातु आ० और अनिट् है। २. मायते। ममे। माता। मास्यते। लुङ्–अमास्त (४)।

१०४. जनी (जन्) प्रादुर्भावे (पैदा होना)। सूचना–१. धातु आ० और सेट् है। २. सार्वधातुक लकारों (लट् आदि) में जन् को जा आदेश होता है। ३. लुङ् प्र० १ में विकल्प से च्लि को चिण् (इ) होता है। चिण् होने पर त का लोप होगा और उपधा-वृद्धि नहीं होगी। ४. जायते। जज्ञे। जनिता। जनिष्यते। जायताम्। अजायत। जायेत। जनिषीष्ट। अजनि (५), अजनिष्ट (५)। अजनिष्यत।

६३९. ज्ञाजनोर्जा (७-३-७९)

ज्ञा और जन् धातुओं को जा आदेश होता है, शित् प्रत्यय बाद में हो तो। जायते–जन् + लट् प्र० १। श्यन्, जन् को इससे जा।

६४०. दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् (३-१-६१)

इन धातुओं के बाद च्लि को विकल्प से चिण् (इ) होता है, बाद में एकवचन का त हो तो :—दीप्, जन्, बुध्, पूर्, ताय्, प्याय्।

६४१. चिणो लुक् (६-४-१०४)

चिण् के बाद त प्रत्यय का लुक् (लोप) होता है।

६४२. जनिवध्योश्च (७-३-३५)

जन् और वध् धातुओं की उपधा के अ को वृद्धि नहीं होती है, बाद में चिण् और ञित् णित् कृत् हो तो। अजनि, अजनिष्ट–जन् + लुङ् प्र० १। च्लि को विकल्प से चिण् (इ), त का लोप, उपधा-वृद्धि का निषेध–अजनि। पक्ष में सिच्, इट्, स् को ष्, ष्टुत्व से त को ट।

१०५. दीपी (दीप्) दीप्तौ (चमकना)। सूचना- १. धातु आ० और सेट् है। २. लुङ् प्र० १ में विकल्प से चिण्, पक्ष में इट्। जन् के तुल्य अन्य कार्य होंगे। ३. दीप्यते। दिदीपे। दीपिता। दीपिष्यते। लुङ्-अदीपि, अदीपिष्ट (५)।

१०६. पद (पद्) गतौ (जाना)। सूचना- १. धातु आ० और अनिट् है। २. लिट् में एत्व और अभ्यासलोप। ३. लुङ् प्र० १ में च्लि को चिण् (इ), उपधा-वृद्धि, त-लोप। ४. पद्यते। पेदे। पत्ता। पत्स्यते। पद्यताम्। अपद्यत। पद्येत। पत्सीष्ट। लुङ्-अपादि (४), अपत्साताम्, अपत्सत। अपत्स्यत।

६४३. चिण् ते पदः (३-१-६०)

पद् धातु के बाद च्लि को चिण् (इ) होता है, बाद में एक० त हो तो। अपादि-पद्+लुङ् प्र० १। च्लि को चिण् (इ), त-लोप, उपधा-वृद्धि।

१०७. विद (विद्) सत्तायाम् (होना)। सूचना- १. धातु आ० और अनिट् है। २. विद्यते। विविदे। वेत्ता। वेत्स्यते। विद्यताम्। अविद्यत। विद्येत। वित्सीष्ट। अवित्त (४)। अवेत्स्यत।

१०८. बुध (बुध्) अवगमने (जानना)। सूचना- १. धातु आ० और अनिट् है। २. स्य, सीय् और सिच् (स्) वाले स्थानों पर एकाचो० (२५३) से ब को भ होगा और चर्त्व से ध् को त्। ३. लुङ् प्र० १ में विकल्प से चिण् (इ) और त-लोप। ४. बुध्यते। बुबुधे। बोद्धा। भोत्स्यते। बुध्यताम्। अबुध्यत। बुध्येत। भुत्सीष्ट। अबोधि-अबुद्ध (४), अभुत्साताम्, अभुत्सत। अभोत्स्यत।

१०९. युध (युध्) संप्रहारे (युद्ध करना)। सूचना-१. धातु आ० और अनिट् है। २. युध्यते। युयुधे। योद्धा। योत्स्यते। युध्यताम्। अयुध्यत। युध्येत। युत्सीष्ट। अयुद्ध (४)। अयोत्स्यत।

११०. सृज (सृज्) विसर्गे (छोड़ना, बनाना)। सूचना- १. धातु आ० और अनिट् है। २. लुट्, लट् और लङ् में धातु के ऋ के बाद अम् (अ) लगेगा। यण् होकर स्रज् बनता है। ३. व्रश्चभ्रस्ज० (३०७) से लुट् आदि में ज् को ष्। लृट्, लृङ् में षढोः० (५४७) से ष् को क्। ४. सृज्यते। ससृजे, ससृजाते, ससृजिरे। स्रष्टा। स्रक्ष्यते। सृज्यताम्। असृज्यत। सृज्येत। सृक्षीष्ट। असृष्ट (४), असृक्षाताम्, असृक्षत। अस्रक्ष्यत।

६४४. सृजिदृशोर्झल्यमकिति (६-१-५८)

सृज् और दृश् धातुओं को अम् (अ) आगम होता है, बाद में झलादि कित्-भिन्न प्रत्यय हो तो। यह अ ऋ के बाद लगता है, यण् होकर स्रज् बनता है। स्रष्टा-सृज्+लुट् प्र० १। अम् (अ), यण्, व्रश्च० से ज् को ष्। स्रक्ष्यते-सृज्+लृट् प्र० १। स्य, अम् (अ), यण्, ज् को ष्, ष् को क्, स् को ष्।

१११. मृष (मृष्) तितिक्षायाम् (सहन करना)। सूचना–१. धातु उभयपदी और सेट् है। २. पर०—मृष्यति। ममर्ष। मर्षिता। मर्षिष्यति। लुङ्–अमर्षीत् (५)। अमर्षिष्यत्। आत्मने०–मृष्यते। ममृषे, ममृषाते,···ममृषिषे। मर्षिता। मर्षिष्यते। आ० लिङ्–मर्षिषीष्ट। लुङ्–अमर्षिष्ट (५)। अमर्षिष्यत।

११२. णह (नह्) बन्धने (बाँधना)। सूचना–१. धातु उभयपदी और अनिट् है। २. लिट् में कित् स्थानों पर एत्व और अभ्यासलोप होकर नेह् बनता है। ३. लुट्, लृट् आदि में नहो धः (३५९) से ह् को ध् होगा। लुट् आदि में झषस्तथो० (५४८) से त थ को ध् होगा और धातु के ध् को जश्त्व से द् होकर नद्ध् वाले रूप बनते हैं। ४. पर०–नह्यति। ननाह, नेहतुः, नेहुः, नेहिथ-ननद्ध। नद्धा। नत्स्यति। लुङ्–अनात्सीत् (४)। आत्मने०–नह्यते। नेहे। नद्धा। नत्स्यते। आ० लिङ्–नत्सीष्ट। लुङ्–अनद्ध (४)।

दिवादिगण समाप्त

---

(५) स्वादिगण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. इस गण की प्रथम धातु सु (रस निकालना) है, अतः इस गण का नाम स्वादिगण है। (स्वादिभ्यः श्नुः, सूत्र ६४५)। स्वादिगण की धातुओं में धातु और प्रत्यय के बीच में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्नु (नु) विकरण लगता है और ङित् होने से धातु को गुण नहीं होता है।

२. (क) 'नु' को परस्मैपद में लट्, लोट् (म० १ को छोड़कर) और लङ् में एकवचन में गुण होता है। लोट् उ० पु० में भी गुण होता है। (ख) (लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः, सूत्र ५०१)। यदि कोई व्यञ्जन पहले न हो तो नु के उ का विकल्प से लोप होता है, बाद में व् या म् हो तो। अतः लट् आदि में उ० २,३ में दो-दो रूप बनेंगे। (ग) (हुश्नुवोः सार्वधातुके, सूत्र ५००)। यदि धातु अजन्त है तो उ को व् हो जाता है, बाद में अजादि सार्वधातुक हो तो। इससे अजादि प्रत्ययों में उ को व् होकर न्व् होगा। (घ) (अचि श्नु०, सूत्र १९९)। यदि धातु हलन्त है तो नु को उवङ् (उव्) होकर नुव् होगा। (ङ) (उतश्च प्रत्ययात्०, सूत्र ५०२)। लोट् म० १ पर० में अजन्त धातु के बाद हि का लोप होगा, हलन्त धातु के बाद हि रहेगा।

३. लृट्, लट् आदि में पूर्वोक्त अन्तिम अंश लगेंगे। सेट् धातुओं में अन्तिम अंश से पहले इ लगेगा, अनिट् में नहीं। लट् आदि में निम्नलिखित अन्तिम अंश लगेंगे :—

अन्तिम-अंश

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्				लट्		
नोति	नुतः	न्वन्ति, नुवन्ति	प्र०	नुते	नुवाते, न्वाते	नुवते, न्वते
नोषि	नुथः	नुथ	म०	नुषे	नुवाथे, न्वाथे	नुध्वे
नोमि	नुवः, न्वः	नुमः, न्मः	उ०	न्वे, नुवे	नुवहे, न्वहे,	नुमहे, न्महे
लोट्				लोट्		
नोतु	नुताम्	न्वन्तु, नुवन्तु	प्र०	नुताम्	नुवाताम्, न्वाताम्	नुवताम्, न्वताम्
नु, नुहि	नुतम्	नुत	म०	नुष्व	नुवाथाम्, न्वाथाम्	नुध्वम्
नवानि	नवाव	नवाम	उ०	नवै	नवावहै	नवामहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
नोत्	नुताम्	न्वन्, नुवन्	प्र०	नुत	नुवाताम्, न्वाताम्	नुवत, न्वत
नोः	नुतम्	नुत	म०	नुथाः	नुवाथाम्, न्वाथाम्	नुध्वम्
नवम्	नुव, न्व	नुम, न्म	उ०	नुवि, न्वि	नुवहि, न्वहि	नुमहि, न्महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
नुयात्	नुयाताम्	नुयुः	प्र०	न्वीत (नुवीत)	न्वीयाताम्	न्वीरन्
नुयाः	नुयातम्	नुयात	म०	न्वीथाः	न्वीयाथाम्	न्वीध्वम्
नुयाम्	नुयाव	नुयाम	उ०	न्वीय	न्वीवहि	न्वीमहि

सूचना—न्व् और नुव् वाले जो दो रूप दिए हैं, उनके विषय में स्मरण रखें कि अजन्त धातुओं में न्व् वाले रूप लगेंगे और हलन्त धातुओं में नुव् वाले रूप।

११३. षुञ् (सु) अभिषवे (रस निकालना, स्नान करना और स्नान कराना, निचोड़ना) सूचना—१. धातु उभयपदी और अनिट् है। २. लट् आदि में श्नु (नु) लगेगा। ३. अजादि प्रत्ययों में नु को हुश्नुवोः ० (५००) से यण् होकर न्व् रहेगा। ४. परस्मैपद में श्रु धातु (धातु-संख्या १९) के तुल्य रूप चलेंगे। ५. पर०—सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति,........सुनुवः-सुन्वः, सुनुमः-सुन्मः। सुषाव। सोता। सोष्यति। सुनोतु, सुनु म० १, सुनवानि उ० १। असुनोत्। सुनुयात्। सूयात्। असावीत् (५)। असोष्यत्। आत्मने०—सुनुते, सुन्वाते, सुन्वते........सुनुवहे-सुन्वहे, सुनुमहे-सुन्महे। सुषुवे। सोता। सोष्यते। सुनुताम्। असुनुत। सुन्वीत। सोषीष्ट। असोष्ट (४)। असोष्यत।

६४५. स्वादिभ्यः श्नुः (३-१-७३)

स्वादिगण की धातुओं से सार्वधातुक लकारों में श्नु (नु) होता है। यह शप् का अपवाद है। सुनोति—सु + लट् प्र० १। श्नु (नु), नु को गुण।

६४६. स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु (७-२-७२)

स्तु, सु और धू धातुओं के बाद सिच् को इट् (इ) आगम होता है, बाद में परस्मैपदी प्रत्यय हो तो। असावीत्—सु + लुङ् प्र० १ पर०। सिच्, इट्, ईट्, स्-लोप, दोनों इ + ई को दीर्घ, सिचि वृद्धिः० से उ को वृद्धि औ, आव्।

११४. चिञ् (चि) चयने (चुनना)। सूचना—१. सु के तुल्य रूप चलेंगे। २. धातु उभयपदी और अनिट् है। ३. लिट् में धातु के च् को विकल्प से क् होता है। ४. पर०-चिनोति। चिकाय, चिचाय। चेता। चेष्यति। चिनोतु। अचिनोत्। चिनुयात्। चीयात्। अचैषीत् (४)। अचेष्यत्। आत्मने०-चिनुते। चिक्ये, चिच्ये। चेता। चेष्यते। चिनुताम्। अचिनुत। चिन्वीत। चेषीष्ट। अचेष्ट (४)। अचेष्यत।

६४७. विभाषा चेः (७-३-५८)

अभ्यास के बाद चि धातु के च् को विकल्प से क् होता है, बाद में सन् और लिट् हों तो। चिकाय, चिचाय-चि + लिट् प्र० १ पर०। द्वित्व, अभ्यासकार्य, वृद्धि, आय् आदेश, विकल्प से च् को क्। पक्ष में च् रहेगा। चिक्ये, चिच्ये-चि + लिट् प्र० १ आ०। द्वित्व, अभ्यासकार्य, विकल्प से च् को क्। पक्ष में च् रहेगा।

११५. स्तृञ् (स्तृ) आच्छादने (ढकना)। सूचना—१. सु के तुल्य दोनों पदों में रूप चलेंगे। २. धातु उभयपदी और अनिट् है। ३. लिट् में अभ्यास में त शेष रहेगा। ४. लिट् में ऋतश्च० (४९५) से सर्वत्र गुण। ५. आ० लिङ् पर० में गुणोऽर्ति० (४९७) से गुण। ६. आशीर्लिङ् आ० और लुङ् आ० में विकल्प से इट् होगा। ७. पर०—स्तृणोति। तस्तार, तस्तरतुः, तस्तरुः। स्तर्ता। स्तरिष्यति। स्तृणोतु। अस्तृणोत्। स्तृणुयात्। स्तर्यात्। अस्तार्षीत् (४)। अस्तरिष्यत्। आत्मने०—स्तृणुते। तस्तरे। स्तर्ता। स्तरिष्यते। स्तृणुताम्। अस्तृणुत। स्तृण्वीत। स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट। अस्तरिष्ट (५), अस्तृत (४)। अस्तरिष्यत।

६४८. शर्पूर्वाः खयः (७-४-६१)

अभ्यास में श ष स-पूर्वक (श ष स पहले हों) खय् (वर्ग के १, २) हों तो खय् (वर्ग के १, २) शेष रहते हैं, अन्य व्यंजनों का लोप होता है। तस्तार—स्तृ + लिट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास में त शेष रहेगा। तस्तरतुः—लिट् प्र० २। ऋतश्च० (४९५) से गुण। स्तर्यात्—स्तृ + आशीर्लिङ् प्र० १ पर०। गुणोऽर्ति० (४९७) से गुण होकर स्तर्।

६४९. ऋतश्च संयोगादेः (७-२-४३)

संयोगादि ऋकारान्त धातु के बाद लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् होता है, बाद में आत्मनेपद प्रत्यय हों तो। स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट—स्तृ + आशी० प्र० १ आ०। विकल्प से इट्, इट् होने पर गुण। इट् के अभाव में उश्च (५४१) से कित् होने से गुण नहीं। अस्तरिष्ट, अस्तृत—स्तृ + लुङ् प्र० १। सिच्, विकल्प से इट्,

गुण। इट् के अभाव में उश्च (५४३) से कित् और गुण का अभाव।

११६. धूञ् (धू) कम्पने (कँपाना, हिलाना)। सूचना— १. धातु उभयपदी और सेट् है। २. स्वरति० (४७५) से लिट्, लुट् आदि में विकल्प से इट् होगा। ३. पर०—धूनोति। दुधाव, दुधविथ-दुधोथ म० १, दुधुविव, दुधुविम। धविता-धोता। धविष्यति-धोष्यति। धूनोतु। अधूनोत्। धुनुयात्। धूयात्। अधावीत् (५)। अधविष्यत्-अधोष्यत्। आत्मने०—धूनुते। दुधुवे। धविता-धोता। धविष्यते-धोष्यते। धूनुताम्। अधूनुत। धुन्वीत। धविषीष्ट-धोषीष्ट। अधविष्ट (५), अधोष्ट (४)। अधविष्यत, अधोष्यत।

६५०. श्र्युकः किति (७-२-११)

श्रि और एकाच् उक् (उ, ऋ) अन्त वाली धातु के बाद गित्, कित् वलादि आर्धधातुक हो तो इट् नहीं होता है। दुधुविव—धू + लिट् उ० २। इससे इट् का निषेध प्राप्त था, क्रादि-नियम से नित्य इट् हुआ।

स्वादिगण समाप्त

---

(६) तुदादिगण प्रारम्भ

आवश्यक-निर्देश

१. इस गण की प्रथम धातु तुद् (दुःख देना) है, अतः गण का नाम तुदादिगण पड़ा। (तुदादिभ्यः शः, सूत्र ६५१)। तुदादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श (अ) विकरण लगता है। भ्वादिगण में शप् (अ) लगता है। दोनों का अ शेष रहता है। अन्तर यह है कि शप् पित् है, अतः ङित् नहीं है। ङित् न होने से धातु को गुण होता है। श अपित् होने से ङित् है, अतः तुदादि० में धातु को गुण नहीं होता है।

२. (क) (अचि श्नु०, १९९)। इससे धातु के अन्तिम इ और ई को इयङ् (इय्) होता है तथा उ और ऊ को उवङ् (उव्) होता है। जैसे—रि> रियति, सु> सुवति। (ख) (रिङ् शयग्०, ५४२)। इससे धातु के अन्तिम ऋ को रि होता है और रि के इ को इयङ् होकर ऋ को रिय् होता है। मृ> म्रियते। (ग) (ऋत इद् धातोः, ६६०)। इससे धातु के अन्तिम ॠ को इर् होता है। कॄ> किरति, गॄ> गिरति। (घ) (शे मुचादीनाम्, ६५४)। मुच् आदि ८ धातुओं में लट् आदि में बीच में न् लगता है। मुच्> मुञ्चति, विद्—विन्दति, लिप्> लिम्पति, सिच्> सिञ्चति, कृत्> कृन्तति, लुप्> लुम्पति।

३. लिट्, लुट्, लृट्, आ० लिङ्, लुङ् और लृङ् में पूर्ववत् रूप चलेंगे। सेट् में इ लगेगा, अनिट् में नहीं। लट् आदि में निम्नलिखित अन्तिम अंश लगेंगे। पर० में भू के तुल्य और आ० में एध् के तुल्य रूप चलावें।

अन्तिम अंश

परस्मैपद				आत्मनेपद		
	लट्				लट्	
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
	लोट्				लोट्	
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
	लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)	
अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि
	विधिलिङ्				विधिलिङ्	
एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

११७. तुद (तुद्) व्यथने (दुःख देना)। सूचना—१. धातु उभय० और अनिट् है। २. भू और एध् के तुल्य रूप चलेंगे। ३. लट् आदि में श (अ) विकरण लगेगा। ४. पर०—तुदति। तुतोद, तुतोदिथ म० १। तोत्ता। तोत्स्यति। लुङ्—अतौत्सीत् (४)। आ०—तुदते। तुतुदे। तोत्ता। तोत्स्यते। लुङ्—अतुत्त (४)।

६५१. तुदादिभ्यः शः (३-१-७७)

तुदादिगण की धातुओं से श (अ) प्रत्यय होता है, कर्तृवाच्य सार्वधातुक लकारों में। यह शप् का अपवाद है। तुदति-तुद् + लट् प्र० १।

११८. णुद (नुद्) प्रेरणे (प्रेरणा देना)। सूचना-१. धातु उभय० और अनिट् है। २. तुद् के तुल्य रूप चलेंगे। ३. पर०—नुदति। नुनोद। नोत्ता। नोत्स्यति। लुङ्—अनौत्सीत् (४)। आ०—नुदते। नुनुदे। नोत्ता। नोत्स्यते। लुङ्—अनुत्त (४)।

११९. भ्रस्ज (भ्रस्ज्) पाके (भूनना)। सूचना—१. धातु उभय० और अनिट् है। २. कित् और ङित् वाले स्थानों पर ग्रहिज्या० (६३४) से सम्प्रसारण र् को ऋ, स्तोः श्चुना० से स् को श्, झलां जश्० से श् को ज् होकर भृज्ज् रूप बनता है। ३. लुट् आदि में स्कोः० (२०९) से भ्रस्ज् के स् का लोप और व्रश्चभ्रस्ज० (३०७) से ज् को ष् होकर भ्रष् रूप बनता है। ४. लिट् आदि आर्धधातुक लकारों में भ्रस्जो०

(६५२) से स् और र हटेगा तथा भ के बाद र् लगाकर भर्ज् बनता है। अतः आर्धधातुक लकारों में दो-दो रूप बनते हैं। भर्ज् या भर्ष् और भ्रज्ज् या भ्रष्। ५. पर०—भृज्जति। लिट्–बभर्ज, बभर्जतुः, बभर्जिथ–बभर्ष्ठ म० १, पक्ष में बभ्रज्ज, बभ्रज्जतुः, बभ्रज्जिथ–बभ्रष्ठ म० १। लुट्–भर्ष्टा, भ्रष्टा। लृट्–भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति। आ० लिङ्–भृज्ज्यात्, भृज्ज्यास्ताम्, भृज्ज्यासुः। लुङ्–अभार्क्षीत् (४), अभ्राक्षीत् (४)। आ०–भृज्जते। बभर्जे, बभ्रज्जे। भर्ष्टा, भ्रष्टा। भर्क्ष्यते, भ्रक्ष्यते। आ० लिङ्–भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट। लुङ्–अभर्ष्ट, अभ्रष्ट (४)।

६५२. भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम् (६–४–४७)

भ्रस्ज् धातु के र् और उपधा स् को हटाकर रम् (र्) का आगम विकल्प से होता है, आर्धधातुक प्रत्यय बाद में हों तो। इससे भ्रस्ज् का भर्ज् रूप हो जाता है। बभर्ज–भ्रस्ज्+लिट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, र् स् को हटाकर रम् (र्)। (क्ङिति रमागमं बाधित्वा संप्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन, वा०)। कित् ङित् प्रत्यय बाद में होने पर रम् आगम को रोककर सम्प्रसारण होता है, पूर्व-प्रतिषेध से अर्थात् पूर्व सूत्र को बलवान् मानकर। भृज्ज्यात्–आशी० प्र० १। रम् आगम को रोक कर संप्रसारण।

१२०. कृष (कृष्) विलेखने (हल चल ना)। सूचना—१. धातु उभय० और अनिट् है। २. लुट्, लृट्, लुङ् आदि में कृष् को विकल्प से अम् (अ) होने से क्रष् बन जाता है। पक्ष में कृष्। ३. लुङ् में अम्, सिच् और क्स विकल्प से होने से पर० में तीन रूप बनते हैं, अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्, अकृक्षत्। आ० में अकृष्ट, अकृक्षत।

४. पर०—कृषति। चकर्ष। क्रष्टा, कर्ष्टा। क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यति। लुङ्–अक्राक्षीत् (४), अकार्क्षीत् (४), अकृक्षत् (७)। आ०–कृषते। चकृषे। क्रष्टा, कर्ष्टा। क्रक्ष्यते, कर्क्ष्यते। आ० लिङ्–कृक्षीष्ट। लुङ्–(क) सिच–अकृष्ट (४), अकृक्षाताम्, अकृक्षत। (ख) क्स-अकृक्षत (७), अकृक्षाताम्, अकृक्षन्त।

६५३. अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् (६–१–५९)

उपदेश (मूल रूप) में अनुदात्त जो ऋदुपध धातु (जिसकी उपधा में ह्रस्व ऋ हो), उसको विकल्प से अम् (अ) आगम होता है, बाद में कित् से भिन्न झलादि प्रत्यय हो तो।

सूचना—यह अ कृ के बाद होता है, यण् होकर क्रष् बनता है, पक्ष में गुण होकर कर्ष् होता है। क्रष्टा, कर्ष्टा–कृष्+लुट् प्र० १। अम् होकर क्रष्टा, पक्ष में लघूपध गुण होकर कर्ष्टा।(स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः, वा०) स्पृश्, मृश्, कृष्, तृप् और दृप् धातुओं के बाद च्लि को विकल्प से सिच् होता है। सूचना–लुङ् पर० में ३ रूप बनते हैं—१. सिच् पक्ष में अम् और उपधा के अ को वृद्धि, २. सिच् पक्ष में अम् का अभाव, वदव्रज० से ऋ को आर्, ३. क्स (स), शल० (५९०) से। आत्मने० में २ रूप होते हैं—१. सिच्, २. क्स (स)। अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्, अकृक्षत्–कृष्+लुङ् प्र० १ पर०। अकृष्ट, अकृक्षत–कृष्+लुङ् प्र० १ आ०।

गुण अर्, द्वित्व, अभ्यासकार्य, अ को आ, द्विहल् को अनेक हल् का ग्राहक मानकर तस्मान्नुड्० (४६३) से नुट् (न्) होकर आनर्च्छ बनेगा। २. ऋच्छति। आनर्च्छ, आनर्च्छतुः प्र० २। ऋच्छिता। लुङ्–आर्च्छीत् (५)।

१३४. उज्झ (उज्झ्) उत्सर्गे (छोड़ना)। सूचना—१. तुद् के तुल्य। २. लिट् में आम्। ३. सेट् है। ४. उज्झति। उज्झांचकार। उज्झिता। लुङ्—औज्झीत् (५)।

१३५. लुभ (लुभ्) विमोहने (मोहित होना)। सूचना—१. तुद् के तुल्य। २. लुट् में विकल्प से इट् (इ) होगा। ३. सेट् है। ४. लुभति। लुलोभ। लोभिता–लोब्धा। लोभिष्यति। लुङ्–अलोभीत् (५)।

६५७. तीषसहलुभरुषरिषः (७–२–४८)

इष्, सह्, लुभ्, रुष् और रिष् धातुओं के बाद त से आरम्भ होने वाले आर्धधातुक को विकल्प से इट् (इ) होता है। लोभिता, लोब्धा–लुभ्+लुट् प्र० १। विकल्प से इट् (इ), पक्ष में झष० (५४८) से त् को ध्, जश्त्व से भ् को ब्, उपधा–गुण।

१३६. तृप (तृप्) तृप्तौ (तृप्त करना)। १३७. तृम्फ (तृम्फ्) तृप्तौ (तृप्त करना)। सूचना–१. तुद् के तुल्य। २. तृपति। ततर्प। तर्पिता। लुङ्–अतर्पीत् (५)। ३. तृम्फति। ततृम्फ। तृम्फिता। आशी०–तृम्फ्यात्। लुङ्–अतृम्फीत् (५)।

(शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः, वा०) तृम्फ् आदि को नुम् (न्) होता है, बाद में श हो तो। तृम्फ् के तुल्य ही जिन धातुओं में न् (या म्) मिलता है, उन्हें तृम्फ् आदि गण में समझना चाहिए।

१३८. मृड (मृड्) सुखने (सुख देना)। १३९. पृड (पृड्) सुखने (सुख देना)। सूचना–१. तुद् के तुल्य। २. मृडति। ममर्ड। मर्डिता। लुङ्–अमर्डीत् (५)। ३. पृडति। पपर्ड। पर्डिता। लुङ्–अपर्डीत् (५)।

१४०. शुन (शुन्) गतौ (जाना)। सूचना–१. तुद् के तुल्य। २. शुनति। शुशोन। शोनिता। लुङ्–अशोनीत् (५)।

१४१. इषु (इष्) इच्छायाम् (चाहना)। सूचना–१. लट् आदि में इषुगमि० (५०३) से ष् को छ्, तुक्, त् को च् होकर इच्छ् होगा। २. लुट् में तीष० (६५७) से विकल्प से इट्। ३. लङ् आदि में धातु से पूर्व आ; वृद्धि होकर ऐष्। ४. इच्छति। इयेष, ईषतुः, ईषुः। एषिता–एष्टा। एषिष्यति। इच्छतु। ऐच्छत्। इच्छेत्। इष्यात्। ऐषीत् (५)। ऐषिष्यत्।

१४२. कुट (कुट्) कौटिल्ये (कुटिलता करना)। सूचना–१. तुद् के तुल्य। २. गाङ्कुटादि० (५८७) से ङित् होने से लुट् आदि में गुण नहीं होगा। ३. लिट् में प्र० १ और उ० १ में गुण होगा, अन्यत्र नहीं। ४. कुटति। चुकोट, चुकुटिथ म० १, चुकोट–चुकुट उ० १। कुटिता। कुटिष्यति। लुङ्–अकुटीत् (५)।

१४३. पुट (पुट्) संश्लेषणे (जोड़ना, चिपकाना)। सूचना-१. कुट् के तुल्य। २. पुटति। पुपोट। पुटिता। लुङ्-अपुटीत् (५)।

१४४. स्फुट (स्फुट्) विकसने (खिलना)। सूचना-१. कुट् के तुल्य। २. स्फुटति। पुस्फोट। स्फुटिता। स्फुटिष्यति। लुङ्-अस्फुटीत् (५)।

१४५. स्फुर (स्फुर्) संचलने (चलना, हिलना, चेष्टा करना)। १४६. स्फुल (स्फुल्) संचलने (चलना, हिलना, चेष्टा करना)। सूचना-१. कुट् के तुल्य। २. स्फुरति। पुस्फोर। स्फुरिता। लुङ्-अस्फुरीत् (५)। ३. स्फुलति। पुस्फोल। स्फुलिता। लुङ्-अस्फुलीत् (५)।

६५८. स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः (८-३-७६)

निर्, नि और वि उपसर्गों के बाद स्फुर् और स्फुल् धातुओं के स् को विकल्प से ष् होता है। निःष्फुरति, निःस्फुरति-निर् + स्फुरति। विकल्प से स् को ष् हुआ।

१४७. णू (नू) स्तवने (स्तुति करना)। सूचना-१. कुटादि होने से लट् आदि में गुण नहीं होगा। २. सेट् है। ३. ऊ को अचि श्नु० से उव् होगा। ४. नुवति। नुनाव। नुविता। नुविष्यति। लुङ्-अनावीत् (५)। ५. नू का क्त प्रत्यय होने पर नूत रूप बनता है। यथा-परिणूतगुणोदयः (प्रशंसनीय गुण वाला)।

१४८. टुमस्जो (मस्ज्) शुद्धौ (स्नान करना)। सूचना-१. मस्ज् के स् को श्चुत्व से श् और जश्त्वसंधि से श् को ज् होकर मज्ज् बनता है। २. मस्जि० (६३६) से तृच्, लट् आदि में नुम् (न्), स्कोः० से स् का लोप, ज् को चोःकुः से ग्, चर्त्व से ग् को क् होकर मङ्क् होता है, इसमें प्रत्यय जुड़ेंगे। ३. लुङ् में वदव्रज० से वृद्धि। ४. मज्जति। ममज्ज, ममज्जिथ-ममङ्क्थ म० १। मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति। लुङ्-अमाङ्क्षीत् (४), अमाङ्क्ताम्, अमाङ्क्षुः।

१४९. रुजो (रुज्) भङ्गे (तोड़ना)। सूचना-१. तुद् के तुल्य। २. रुजति। रुरोज। रोक्ता। रोक्ष्यति। लुङ्-अरौक्षीत् (४)।

१५०. भुजो (भुज्) कौटिल्ये (टेढ़ा होना)। सूचना- १. रुज् के तुल्य। २. भुजति। बुभोज। भोक्ता। लुङ्-अभौक्षीत् (४)।

१५१. विश (विश्) प्रवेशने (घुसना)। सूचना-१. तुद् के तुल्य। २. लुङ् में क्स। ३. विशति। विवेश। वेष्टा। वेक्ष्यति। लुङ्-अविक्षत् (७)।

१५२. मृश (मृश्) आमर्शने (मलना, हाथ फेरना, छूना)। सूचना-१. कृष् के तुल्य। २. लुङ् में तीन रूप बनेंगे:-(क) सिच् और अनुदात्तस्य० (६५३) से अम् (अ), (ख) सिच् और वदव्रज० से वृद्धि, (ग) क्स (स)। ३. मृशति। ममर्श। मर्ष्टा। मर्क्ष्यति। लुङ्-अम्राक्षीत् (४), अमार्क्षीत् (४) अमृक्षत् (७)।

१५३. षद्लृ (सद्) विशरणगत्यवसादनेषु (फटना, जाना, दुःखित होना)। सूचना-१. पाघ्रा० (४८६) से लट् आदि ४ लकारों में सद् को सीद् होता है। २. लृदित् होने

७. रुधादिगण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना) है, अतः गण का नाम रुधादिगण पड़ा। (रुधादिभ्यः श्नम्, सूत्र ६६६) रुधादिगण की धातुओं में लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु के प्रथम स्वर के बाद श्नम् (न) विकरण लगता है। (श्नसोरल्लोपः, ५७४) कित् और ङित् सार्वधातुक बाद में होंगे तो न के अ का लोप होने से न् शेष रहता है। लट् आदि में धातु को गुण नहीं होता है।

२. (क) सन्धि-नियमों के अनुसार यथास्थान धातु के ध् को द् या त्, द् को त्, ज् को ग् या क् होते हैं। (ख) न विकरण का परस्मैपद लट्, लोट् (म० १ को छोड़कर) और लङ् के एक० में प्रायः न ही रहता है, अन्यत्र प्रायः न् रहेगा। (ग) विकरण के न् को सन्धि-नियमानुसार ङ् और ञ् भी होता है। न के विस्तृत विवरण के लिए नीचे अन्तिम अंश देखें।

३. लट् आदि में अन्तिम अंश निम्नलिखित लगेंगे। न या न् धातु के प्रथम स्वर के बाद लगावें। लिट्, लुट्, लृट्, आशी०, लुङ् और लृङ् में अन्तिम अंश पूर्ववत् लगेंगे। सेट् धातुओं में लुट् आदि में इ लगेगा, अनिट् धातुओं में नहीं।

परस्मैपद			अन्तिम अंश	आत्मनेपद		
लट्				लोट्		
(न) ति	(न्) तः	(न्) अन्ति	प्र०	(न्) ते	(न्) आते	(न्) अते
(न) सि	(न्) थः	(न्) थ	म०	(न्) से	(न्) आथे	(न्) ध्वे
(न) मि	(न्) वः	(न्) मः	उ०	(न्) ए	(न्) वहे	(न्) महे
लोट्				लोट्		
(न) तु	(न्) ताम्	(न्) अन्तु	प्र०	(न्) ताम्	(न्) आताम्	(न्) अताम्
(न्) हि	(न्) तम्	(न्) त	म०	(न्) स्व	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्
(न) आनि	(न) आव	(न) आम	उ०	(न) ऐ	(न) आवहै	(न) आमहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
(न) त्	(न्) ताम्	(न्) अन्	प्र०	(न्) त	(न्) आताम्	(न्) अत
(न):	(न्) तम्	(न्) त	म०	(न्) थाः	(न्) आथाम्	(न्) ध्वम्
(न) अम्	(न्) व	(न्) म	उ०	(न्) इ	(न्) वहि	(न्) महि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
(न्) यात्	(न्) याताम्	(न्) युः	प्र०	(न्) ईत	(न्) ईयाताम्	(न्) ईरन्

(न्) याः (न्) यातम् (न्) यात म० (न्) ईथाः (न्) ईयाथाम् (न्) ईध्वम्
(न्) याम् (न्) याव (न्) याम उ० (न्) ईय (न्) ईवहि (न्) ईमहि

१६२. रुधिर् (रुध्) आवरणे (रोकना)। सूचना—१. धातु उभयपदी और अनिट् है। २. रुधादिभ्यः श्नम् (६६६) से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु के प्रथम स्वर के बाद श्नम् (न) लगेगा। ३. श्नसोरल्लोपः (५७४)। सार्वधातुक लकारों में कित् और ङित् प्रत्ययों के बाद में होने पर न के अ का लोप होने से न् शेष रहेगा। ४. रुध् धातु में न् ध् के बाद त, थ या ध होगा तो झषस्तथोर्धोऽधः (५४८) से त् और थ् को ध् होगा। झरो झरि० (७३) से पहले ध् का विकल्प से लोप होगा। अतः रुन्धः आदि में दो रूप बनेंगे, रुन्धः और रुन्द्धः। न्ध् के बाद त, थ और ध वाले स्थानों पर इसी प्रकार दो रूप समझें। ५. लङ् म० १ पर० में दश्च (५७३) से द् को विकल्प से रु (र्, विसर्ग), पक्ष में चर्त्व से त्। अतः ३ रूप बनेंगे। ६. लुङ् पर० में इर् इत् होने से इरितो वा (६२८) से विकल्प से च्लि को अङ् (अ), पक्ष में सिच्।

पर०—लट्—रुणद्धि, रुन्धः—रुन्द्धः, रुन्धन्ति। रुणत्सि, रुन्धः, रुन्ध। रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः। लिट्—रुरोध, रुरुधतुः, रुरुधुः। लुट्—रोद्धा। लृट्—रोत्स्यति। लोट्—रुणद्धु, रुन्धाम्, रुन्धन्तु। रुन्धि, रुन्धम्, रुन्ध। रुणधानि, रुणधाव, रुणधाम। लङ्—अरुणत्—द्, अरुन्धाम्, अरुन्धन्। अरुणः, अरुणत्—द्, अरुन्धम्, अरुन्ध। अरुणधम्, अरुन्ध्व, अरुन्ध्म। विधिलिङ्—रुन्ध्यात्। आशी०—रुध्यात्। लुङ्—अरुधत् (२), अरौत्सीत् (४)। लृङ्—अरोत्स्यत्।

आत्मने०—लट्—रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धते। रुन्त्से, रुन्धाथे, रुन्ध्वे। रुन्धे, रुन्ध्वहे, रुन्ध्महे। लिट्—रुरुधे, रुरुधाते, रुरुधिरे। लुट्—रोद्धा। लृट्—रोत्स्यते। लोट्—रुन्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम्। रुन्त्स्व, रुन्धाथाम्, रुन्ध्वम्। रुणधै, रुणधावहै, रुणधामहै। लङ्—अरुन्ध, अरुन्धाताम्, अरुन्धत। अरुन्धाः, अरुन्धाथाम्, अरुन्ध्वम्। अरुन्धि, अरुन्ध्वहि, अरुन्ध्महि। विधि०—रुन्धीत। आशी०—रुत्सीष्ट। लुङ्—अरुद्ध (४); अरुत्साताम्, अरुत्सत। अरुद्धाः, अरुत्साथाम्, अरुद्ध्वम्। अरुत्सि, अरुत्स्वहि, अरुत्स्महि। लृङ्—अरोत्स्यत।

६६६. रुधादिभ्यः श्नम् (३-१-७८)

रुध् आदि धातुओं से सार्वधातुक लकारों में श्नम् (न) होता है। रुणद्धि—रुध्+लट् प्र० १ पर०। श्नम् (न), न को ण, त को ध, ध् को जश्त्व से द्।

१६३. भिदिर् (भिद्) विदारणे (तोड़ना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. भिनत्ति, भिन्ते। बिभेद-बिभिदे। भेत्ता। भेत्स्यति, भेत्स्यते। भिनत्तु, भिन्ताम्। अभिनत्, अभिन्त। भिन्द्यात्, भिन्दीत। भिद्यात्, भित्सीष्ट। अभिदत् (२)—अभैत्सीत् (४), अभित्त (४)। अभेत्स्यत्, अभेत्स्यत।

१६४. छिदिर् (छिद्) द्वैधीकरणे (काटना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. छिनत्ति, छिन्ते। चिच्छेद, चिच्छिदे। छेत्ता। छेत्स्यति, छेत्स्यते। छिनत्तु, छिन्ताम्। अच्छिनत्, अच्छिन्त। छिन्द्यात्, छिन्दीत। छिद्यात्, छित्सीष्ट। अच्छिदत् (२)—अच्छैत्सीत् (४), अच्छित्त (४)। अच्छेत्स्यत्, अच्छेत्स्यत।

१६५. युजिर् (युज्) योगे (मिलाना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २ युनक्ति, युङ्क्ते। युयोज, युयुजे। योक्ता। योक्ष्यति, योक्ष्यते। युनक्तु, युङ्क्ताम्। अयुनक्, अयुङ्क्त। युञ्ज्यात्, युञ्जीत। युज्यात्, युक्षीष्ट। अयुजत् (२)—अयौक्षीत् (४), अयुक्त (४)। अयोक्ष्यत्, अयोक्ष्यत।

१६६. रिचिर् (रिच्) विरेचने (खाली करना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. रिणक्ति, रिङ्क्ते। रिरेच, रिरिचे। रेक्ता। रेक्ष्यति, रेक्ष्यते। रिणक्तु, रिङ्क्ताम्। अरिणक्, अरिङ्क्त। रिञ्च्यात्, रिञ्चीत। रिच्यात्, रिक्षीष्ट। अरिचत् (२)- अरैक्षीत् (४), अरिक्त (४)। अरेक्ष्यत्, अरेक्ष्यत।

१६७. विचिर् (विच्) पृथग्भावे (अलग होना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. विनक्ति-विङ्क्ते। विवेच, विविचे। वेक्ता। वेक्ष्यति, वेक्ष्यते। लुङ्—अविचत् (२)-अवैक्षीत् (४), अविक्त (४)।

१६८. क्षुदिर् (क्षुद्) संपेषणे (पीसना, मसलना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. क्षुणत्ति, क्षुन्ते। चुक्षोद, चुक्षुदे। क्षोत्ता। क्षोत्स्यति, क्षोत्स्यते। लुङ्—अक्षुदत् (२)-अक्षौत्सीत् (४), अक्षुत्त (४)।

१६९. उछृदिर् (छृद्) दीप्तिदेवनयोः (चमकना, जुआ खेलना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. लिट्, लट्, लङ् में स बाद में होने पर सेऽसिचि० (६३०) से विकल्प से इट्। ३. छृणत्ति, छृन्ते। चच्छर्द, चच्छृदे, चच्छृदिषे—चच्छृत्से म० १। छर्दिता। छर्दिष्यति-छर्त्स्यति, छर्दिष्यते—छर्त्स्यते। लुङ्—अच्छृदत् (२)—अच्छर्दीत् (५), अच्छर्दिष्ट (४)।

१७०. उतृदिर् (तृद्) हिंसानादरयोः (हिंसा और अनादर करना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. तृणत्ति, तृन्ते। ततर्द, ततृदे। तर्दिता। तर्दिष्यति, तर्दिष्यते। लुङ्—अतृदत् (२)-अतर्दीत् (५), अतर्दिष्ट (५)।

१७१. कृती (कृत्) वेष्टने (घेरना)। सूचना—१. पर० है, रुध् के तुल्य। २. कृणत्ति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति, कर्त्स्यति। लुङ्-अकर्तीत् (५)।

१७२. तृह (तृह्), १७३. हिसि (हिंस्) हिंसायाम् (हिंसा करना)। सूचना—१. तृह् धातु को श्नम् होने पर हलादि पित् सार्वधातुक में न के बाद इ होने से णत्व होकर तृणेह् बनता है। इसमें प्रत्यय लगेंगे। अन्यत्र तृण्ह् रहेगा। २. हिंस् धातु में श्नम् (न) के बाद धातु के न् का लोप होता है। अतः हिनस् या हिंस् रहता है। ३. हिंस् धातु को लङ् प्र० १ और म० १ में स् को द् होता है, चर्त्व से द् को त्। म० १ में विसर्ग भी रहेगा।

तृह्—तृणेढि, तृण्ढः तृंहन्ति । ततर्ह । तर्हिता । तर्हिष्यति । तृणेढु । अतृणेट्, तृंह्यात् । तृह्यात् । अतर्हीत् (५) । अतर्हिष्यत् ।

हिंस्—हिनस्ति, हिंस्तः, हिंसन्ति । जिहिंस । हिंसिता । हिंसिष्यति । हिनस्तु । अहिनत्-द्, अहिंस्ताम्, अहिंसन्, अहिनः-अहिनत्-द् ० । हिंस्यात् । हिंस्यात् । अहिंसीत् (५) । अहिंसिष्यत् ।

६६७. तृणह इम् (७-३-९२)

तृह् धातु से श्नम् (न) होने पर इम् (इ) का आगम होता है, बाद में हलादि पित् सार्वधातुक हो तो । यह इ न के बाद लगकर तृणेह् बनेगा । तृणेढि—तृह् + लट् प्र० १ । श्नम् (न), इ आगम, गुणसंधि, न को ण, हो ढः से ह् को ढ्, झष० (५४८) से त् को ध्, ष्टुत्व से ढ्, ढो ढे लोपः (५४९) से पहले ढ् का लोप ।

६६८. श्नान्नलोपः (६-४-२३)

श्नम् के बाद न् का लोप होता है । इससे धातु के न् का लोप होने से हिनस् बनेगा । हिनस्ति—हिंस् + लट् प्र० १ । श्नम् , धातु के न् का लोप ।

६६९. तिप्यनस्तेः (८-२-७३)

पद के अन्तिम स् को द् होता है, बाद में तिप् हो तो, अस् धातु के स् को द् नहीं होता है । अहिनत्-द्—हिंस् + लङ् प्र० १ । श्नम्, न्-लोप, इससे स् को द्, चर्त्व से त् ।

६७०. सिपि धातो रुर्वा (८-२-७४)

धातु के पदान्त स् को विकल्प से रु (र्) होता है, बाद में सिप् हो तो । पक्ष में द् और त् । अहिनः, अहिनत्-अहिनद्—हिंस् + लङ् म० १ । स् को रु और विसर्ग, पक्ष में द्, त् ।

१७४. उन्दी (उन्द्) क्लेदने (गीला करना) । सूचना—१. रुध् के तुल्य । २. श्नान्नलोपः (६६८) से श्नम् के बाद धातु के न् का लोप । ३. लिट् में आम् होगा । ४. लङ् म० १ में दश्च (५७३) से विकल्प से द् को रु और विसर्ग । ५. उनत्ति, उन्तः, उन्दन्ति० । उन्दांचकार । उन्दिता । उन्दिष्यति । उनत्तु । औनत्-द्, औन्ताम्, औन्दन्, औनः-औनत्-द्, औन्तम्, औन्त, औनदम्, औन्द्व, औन्द्म । उन्द्यात् । उद्यात् । औन्दीत् (५) । औन्दिष्यत् ।

१७५. अञ्ज् (अन्ज्) व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु (स्पष्ट होना, अंग-लेप करना, इच्छा करना, जाना) । सूचना—१. रुध् के तुल्य । २. श्नान्नलोपः (६६८) से श्नम् करने पर धातु के न् (ञ्) का लोप । ३. लिट् में अभ्यास के अ को दीर्घ होने पर तस्मान्नुड्० (४६३) से न् । ४. ऊ इत् होने से स्वरति० (४७५) से लुट् आदि में विकल्प से इट् । ५. लुङ् में इट् नित्य होगा । ६. अनक्ति, अङ्क्तः, अञ्जन्ति ।

आनञ्ज, आनञ्जिथ–आनङ्क्थ म० १। अञ्जिता–अङ्क्ता। अञ्जिष्यति–अङ्क्ष्यति। अनक्तु, अङ्ग्धि म० १, अनजानि उ० १। आनक्। लुङ्–आञ्जीत् (५)।

६७१. अञ्जेः सिचि (७–२–७१)

अञ्ज् धातु के बाद सिच् को नित्य इट् (इ) होता है। आञ्जीत्—अञ्ज्+लुङ् प्र० १। इट् नित्य होगा।

१७६. तञ्चू (तञ्च्) संकोचने (संकुचित करना)। सूचना—१. अञ्ज् के तुल्य। २. तनक्ति। ततञ्च। तञ्चिता, तङ्क्ता। लुङ्—अतञ्चीत् (५), अताङ्क्षीत् (४)।

१७७. ओविजी (विज्) भयचलनयोः (डरना और चलना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. विज इट् (६६५) से इट् (इ) ङित् होने से इट् वाले स्थानों में गुण या वृद्धि नहीं होगी। ३. विनक्ति, विङ्क्तः०। विवेज, विविजिथ म० १। विजिता। विजिष्यति। विनक्तु। अविनक्। लुङ्—अविजीत् (५)।

१७८. शिष्लृ (शिष्) विशेषणे (विशेषता बताना)। सूचना—१. रुध् के तुल्य। २. लृ इत् होने से लुङ् में पुषादि० (५०६) से च्लि को अङ् (अ)। ३. शिनष्टि, शिष्टः, शिंषन्ति, शिनक्षि०। शिशेष, शिशेषिथ म० १। शेष्टा। शेक्ष्यति। लोट्–शिनष्टु, शिंष्टाम्, शिंषन्तु। शिण्ढि, शिंष्टम्, शिंष्ट। शिनषाणि, शिनषाव, शिनषाम। लङ्–अशिनट्। शिंष्यात्। शिष्यात्। लुङ्-अशिषत् (२)। लृङ्—अशेक्ष्यत्।

१७९. पिष्लृ (पिष्) संचूर्णने (पीसना)। सूचना—१ शिष् के तुल्य। २. पिनष्टि। पिपेष। पेष्टा। लुङ्—अपिषत् (२)।

१८०. भञ्जो (भञ्ज्) आमर्दने (तोड़ना)। सूचना—१. अञ्ज् के तुल्य। २. भनक्ति। बभञ्ज, बभञ्जिथ—बभङ्क्थ म० १। भङ्क्ता। भङ्क्ष्यति। भनक्तु, भङ्ग्धि म० १। लुङ्—अभाङ्क्षीत् (४)।

१८१. भुज (भुज्) *पालनाभ्यवहारयोः* (*१. पालन करना, २. खाना*)। *सूचना–१. यह पालन करना अर्थ में परस्मै० है और खाना अर्थ में आत्मनेपदी।* २. युज् के तुल्य रूप चलेंगे। ३. पर०—भुनक्ति। बुभोज। भोक्ता। भोक्ष्यति। भुनक्तु। अभुनक्। भुञ्ज्यात्। भुज्यात्। अभौक्षीत् (४)। अभोक्ष्यत्। आत्मने०—भुङ्क्ते। बुभुजे। भोक्ता। भोक्ष्यते। भुङ्क्ताम्। अभुङ्क्त। भुञ्जीत। भुक्षीष्ट। अभुक्त (४)। अभोक्ष्यत।

६७२. भुजोऽनवने (१–३–६६)

भुज् धातु से खाना अर्थ में आत्मनेपद वाले प्रत्यय (तङ्, शानच्, कानच्) होते हैं। ओदनं भुङ्क्ते (भात खाता है)। भुज्+लट् प्र० १, आत्मने०।

१८२. ञिइन्धी (इन्ध्) दीप्तौ (चमकना)। सूचना—१. धातु आत्मने० सेट् है। रुध् आ० के तुल्य रूप चलेंगे। २. श्नान्नलोपः (६६८) से श्नम् होने पर धातु के न् का

लोप होगा । ३. लट्—इन्धे, इन्धाते, इन्धते । इन्त्से, इन्धाथे, इन्ध्वे । इन्धे, इन्ध्वहे, इन्ध्महे । लिट्-इन्धाचक्रे । इन्धिता । इन्धिष्यते । लोट्—इन्धाम्, इन्धाताम्, इन्धताम् । ...इनधै, इनधावहै, इनधामहै । लङ्—ऐन्ध, ऐन्धाताम्, ऐन्धत । ऐन्धाः० । इन्धीत । इन्धिषीष्ट । ऐन्धिष्ट (५) । ऐन्धिष्यत ।

१८३. विद (विद्) विचारणे (विचार करना) । सूचना—१. धातु आत्मने० अनिट् है । २. भिद् आ० के तुल्य रूप चलेंगे । ३. विन्ते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते । लुङ्—अवित्त (४) ।

रुधादिगण समाप्त ।

---

८. तनादिगण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, अतः गण का नाम तनादिगण पड़ा । (तनादिकृञ्भ्य उः, ६७३) । तनादिगण की धातुओं में सार्वधातुक लकारों अर्थात् लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु के बाद उ विकरण लगेगा ।

२. (क) धातुओं की उपधा के उ और ऋ को लट् आदि में विकल्प से गुण होता है । अतः लट् आदि में दो रूप बनेंगे । क्षिणु—क्षेणोति-क्षिणोति । (ख) (अत उत्सार्वधातुके, ६७७) । कृ को गुण होने पर कर् बनता है । कित् और ङित् सार्वधातुकों के परे होने पर क के अ को उ होने से कुर् बनता है । अतः लट्, लोट्, लङ् और विधि० में कित् ङित् वाले स्थानों पर कुर् वाले रूप बनते हैं । आत्मने० में लट् आदि में कुर् ही रहता है । लोट् में दोनों पदों में उ० पु० में गुण होगा । (ग) उ से पूर्व धातु को गुण होता है । उ विकरण को पर० लट् आदि के एक० में गुण होता है । परस्मै० विधिलिङ् और पूरे आत्मनेपद में उ ही रहता है । लोट् उ० पु० में गुण होता है । (घ) (तनादिभ्य०, ६७४) आत्मने० लुङ् प्र० १ और म० १ में सिच् का विकल्प से लोप होता है । अतः दो रूप बनते हैं ।

३. लट् आदि में अन्तिम अंश निम्नलिखित लगेंगे । लिट्, लुट्, लृट्, आशी०, लुङ् और लृङ् में पूर्व निर्दिष्ट ही अन्तिम अंश लगेंगे । सेट् धातुओं में इ लगेगा, अनिट् में नहीं ।

परस्मैपद			अन्तिम अंश			
					आत्मनेपद	
लट्					लट्	
ओति	उतः	वन्ति	प्र०	उते	वाते	वते

६७८. न भकुर्छुराम् (८-२-७९)

भसंज्ञक तथा कुर् और छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है। कुर्वन्ति—कृ + लट् प्र० ३। उ, ऋ को अर् गुण, अ को उ, उ को यण् होकर व्, हलि च (६१२) से उ को दीर्घ प्राप्त था, इस सूत्र से निषेध।

६७९. नित्यं करोतेः (६-४-१०८)

कृ धातु के बाद उ प्रत्यय का नित्य लोप होता है, बाद में म् और व् हों तो। कुर्वः, कुर्मः—कृ + लट् उ० २, ३। उ, गुण, अ को उ, उ प्रत्यय का नित्य लोप।

६८०. ये च (६-४-१०९)

कृ धातु के बाद उ प्रत्यय का लोप होता है, बाद में य से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय हो तो। कुर्यात्—कृ + विधि० प्र० १। उ, ऋ को गुण, अ को उ, इससे उ प्रत्यय का लोप।

६८१. सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे (६-१-१३७)

६८२. समवाये च (६-१-१३८)

सम् और परि उपसर्ग के बाद कृ धातु को सुट् (स्) हो जाता है, सजाना और समूह अर्थ में। सूचना—यह स् कृ धातु से पहले लगेगा। संस्करोति (सजाता है)।—सम् + करोति। सुट्। संस्कुर्वन्ति—(इकट्ठे होते हैं)—सम् + कुर्वन्ति। सुट् (स्)। सम् उपसर्ग के बाद कृ धातु को सजाने से अन्य अर्थ में भी सुट् होता है, क्योंकि पाणिनि ने 'संस्कृतं भक्षाः' (१०२५) यह प्रयोग किया है। यहाँ पर संस्कृत का अर्थ 'भुना हुआ' है।

६८३. उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च (६-१-१३९)

उप उपसर्ग के बाद कृ धातु को सुट् (स्) होता है, प्रतियत्न, वैकृत, वाक्याध्याहार, सजाना और एकत्र होना अर्थों में। *प्रतियत्न का अर्थ है—गुणाधान अर्थात्* दूसरे के गुण को ग्रहण करना। वैकृत—विकार। वाक्याध्याहार—वाक्य में जिसकी आकांक्षा हो, उस अंश को पूरा करना। उपस्कृता कन्या (सजाई हुई कन्या)—उप + कृता। सुट्। उपस्कृता ब्राह्मणाः (एकत्र हुए ब्राह्मण)—उप + कृताः। सुट्। एधो दकस्योपस्कुरुते (लकड़ी पानी के गुण को ग्रहण करती है)—उप + कुरुते। सुट्। उपस्कृतं भुङ्क्ते (विकृत पदार्थ को खाता है)—उप + कृतम्। सुट्। उपस्कृतं ब्रूते (वाक्य को पूरा करते हुए बोलता है)—उप + कृतम्। सुट्।

१९०. वनु (वन्) याचने (माँगना)। सूचना—१. आत्मने० सेट् है। २. तन् आत्मने० के तुल्य। ३. लिट् में *अत एकहल्० (४५९) से प्राप्त ए और अभ्यासलोप* का न शसदद० (५४०) से निषेध। ४. वनुते। ववने। वनिता। वनिष्यते। लुङ्—अवत, अवनिष्ट (५)।

१९१—मनु (मन्) अवबोधने (जानना, मानना)। सूचना—१. आत्मने० सेट् है। २. लिट् में एत्व और अभ्यास का लोप होगा। ३. तन् आत्मने० के तुल्य। ४. मनुते। मेने। मनिता। मनिष्यते। मनुताम्। अमनुत। मन्वीत। मनिषीष्ट। अमत, अमनिष्ट (५)। अमनिष्यत।

तनादिगण समाप्त

---

९ क्र्यादिगण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, अतः गण का नाम क्र्यादिगण पड़ा। (क्र्यादिभ्यः श्ना, ६८४)। क्र्यादिगण की धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु से श्ना (ना) विकरण लगता है।

२. (क) श्ना (ना) अपित् होने से ङित् है, अतः धातु को गुण नहीं होता है। (ख) 'ना' विकरण परस्मै० के लट्, लोट् (म० १ को छोड़ कर), लङ् के एक० में ना रहता है। दोनों पदों में लोट् उ० पु० में ना रहता है। अन्यत्र ना को नी होता है। (ई हल्यघोः, ६१८)। (श्नाभ्यस्तयोरातः)। लट्, लोट्, लङ् में कित् या ङित् स्वर बाद में होगा तो ना के आ का लोप होकर न् रहेगा। (ग) (अनिदितां०,३३४)। धातु की उपधा में न् होगा तो लट् आदि में न् का लोप हो जाएगा। (घ) (हलः श्नः शानज्झौ, ६८७)। हलन्त धातुओं के बाद परस्मै० लोट् म० १ में ना को आन हो जाएगा और हि का लोप होगा। अतः 'आन' शेष रहेगा। ग्रह् > गृहाण, स्तम्भ् > स्तभान। (ङ) (प्वादीनां ह्रस्वः, ६९०)। पू आदि २४ धातुओं को लट् आदि में ह्रस्व होता है। पू > पुनाति, लू > लुनाति। (च) (ग्रहोऽलिटि दीर्घः, ६९३)। लिट् को छोड़कर अन्यत्र ग्रह् धातु के बाद इ को ई हो जाता है। ग्रहीता, ग्रहीष्यति।

३. लट् आदि में निम्नलिखित अन्तिम अंश लगेंगे। लिट्, लुट्, लृट् आदि में पूर्वोक्त अन्तिम अंश लगेंगे।

अन्तिम अंश

परस्मैपद				आत्मनेपद		
लट्				लट्		
नाति	नीतः	नन्ति	प्र०	नीते	नाते	नते
नासि	नीथः	नीथ	म०	नीषे	नाथे	नीध्वे
नामि	नीवः	नीमः	उ०	ने	नीवहे	नीमहे

लोट्				लोट्		
नातु	नीताम्	नन्तु	प्र०	नीताम्	नाताम्	नताम्
नीहि (आन)	नीतम्	नीत	म०	नीष्व	नाथाम्	नीध्वम्
नानि	नाव	नाम	उ०	नै	नावहै	नामहै
लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)				लङ् (धातु से पूर्व अ या आ)		
नात्	नीताम्	नन्	प्र०	नीत	नाताम्	नत
नाः	नीतम्	नीत	म०	नीथाः	नाथाम्	नीध्वम्
नाम्	नीव	नीम	उ०	नि	नीवहि	नीमहि
विधिलिङ्				विधिलिङ्		
नीयात्	नीयाताम्	नीयुः	प्र०	नीत	नीयाताम्	नीरन्
नीयाः	नीयातम्	नीयात	म०	नीथाः	नीयाथाम्	नीध्वम्
नीयाम्	नीयाव	नीयाम	उ०	नीय	नीवहि	नीमहि

१९२. डुक्रीञ् (क्री) द्रव्यविनिमये (खरीदना)। सूचना—१. उभयपदी और अनिट् है। २. पर०—लट्—क्रीणाति, क्रीणीतः, क्रीणन्ति। क्रीणासि, क्रीणीथः, क्रीणीथ। क्रीणामि, क्रीणीवः, क्रीणीमः। लिट्—चिक्राय, चिक्रियतुः, चिक्रियुः। चिक्रयिथ-चिक्रेथ, चिक्रियथुः, चिक्रिय। चिक्राय-चिक्रय, चिक्रियिव, चिक्रियिम। लुट्—क्रेता। लृट्—क्रेष्यति। लोट्—क्रीणातु, क्रीणीताम्, क्रीणन्तु। क्रीणीहि०। लङ्—अक्रीणात्। विधि०—क्रीणीयात्। आशी०—क्रीयात्। लुङ्—अक्रैषीत् (४)। लृङ्—अक्रेष्यत्। आत्मने०—लट्—क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते। क्रीणीषे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे। क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे। लिट्—चिक्रिये। क्रेता। क्रेष्यते। क्रीणीताम्। अक्रीणीत। क्रीणीत। क्रेषीष्ट। अक्रेष्ट (४)। अक्रेष्यत।

६८४. क्र्यादिभ्यः श्ना (३-१-८१)

क्री आदि धातुओं से सार्वधातुक लकारों (लट् आदि) में श्ना (ना) प्रत्यय होता है। श्ना का श् इत् है। क्रीणाति—क्री + लट् प्र० १। श्ना (ना), अट्कु० (१३८) से न् को ण्।

१९३. प्रीञ् (प्री) तर्पणे कान्तौ च (प्रसन्न करना, २. चाहना)। सूचना—१. उभय० और अनिट् है। २. क्री के तुल्य। ३. प्रीणाति, प्रीणीते। पिप्राय, पिप्रिये। प्रेता। लुङ्—अप्रैषीत् (४), अप्रेष्ट (४)।

१९४. श्रीञ् (श्री) पाके (पकाना)। सूचना—१. उभय०, अनिट्। २. क्री के तुल्य। ३. श्रीणाति-श्रीणीते। शिश्राय, शिश्रिये। श्रेता। लुङ्—अश्रैषीत् (४), अश्रेष्ट (४)।

१९५. मीञ् (मी) हिंसायाम् (हिंसा करना)। सूचना—१. उभय०, अनिट्। २. क्री के तुल्य। ३. मीनाति० (६३८) से वृद्धि या गुण वाले स्थानों पर आ होकर मी का मा रहेगा। कित् और ङित् प्रत्ययों से पूर्व मी ही रहेगा। लुट्, लृट् आदि में

मा रहेगा। ४. लुङ् पर० में यमरम० (४९४) से सक् (स्) होकर सिच् वाला भेद (६) रहेगा। ५. मीनाति, मीनीते। लिट्–पर० ममौ, मिम्यतुः, मिम्युः। ममिथ-ममाथ, मिम्यथुः, मिम्य०। आ० मिम्ये। लुट्–माता। मास्यति, मास्यते। मीनातु, मीनीताम्। अमीनात्, अमीनीत। मीनीयात्, मीनीत। मीयात्, मासीष्ट। लुङ्-पर० अमासीत् (६), अमासिष्टाम्, अमासिषुः०। आ०–अमास्त (४)। अमास्यत्, अमास्यत।

६८५. हिनुमीना (८–४–१५)

उपसर्ग में विद्यमान निमित्त (र्) के बाद हि (स्वादि०) और मी (क्र्यादि०) धातु के न् को ण् होता है। प्रमीणाति, प्रमीणीते–प्र + मीनाति, प्र + मीनीते। इससे न् को ण्।

१९६. षिञ् (सि) बन्धने (बाँधना)। सूचना–१. उभय०, अनिट्। २. क्री के तुल्य। ३. सिनाति, सिनीते। सिषाय, सिष्ये। सेता। सेष्यति, सेष्यते। लुङ्–असैषीत् (४), असेष्ट (४)।

१९७. स्कुञ् (स्कु) आप्लवने (चारों ओर कूदना)। सूचना–१. उभय०, अनिट्। २. इसको लट् आदि में श्नु भी होता है, अतः लट् आदि में दो-दो रूप बनेंगे। ३. लट्–स्कुनोति–स्कुनाति, स्कुनुते–स्कुनीते। लिट्–चुस्काव, चुस्कुवे। लुट्–स्कोता। लुङ्–अस्कौषीत् (४), अस्कोष्ट (४)।

६८६. स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च (३–१–८२)

स्तन्भ्, स्तुन्भ्, स्कन्भ्, स्कुन्भ् और स्कु धातुओं से श्नु और श्ना दोनों होते हैं। स्कुनोति–स्कुनाति, स्कुनुते–स्कुनीते।

स्तन्भ् आदि चार धातुओं का धातुपाठ में उल्लेख नहीं है। ये सौत्र (सूत्रपठित) ही हैं। इन चारों का 'रोकना' अर्थ है और परस्मैपदी हैं। सूचना–स्तन्भ् का लोट् म० १ में स्तभान बनता है। २. स्तन्भ् के लुङ् में दो रूप बनते हैं—च्लि को विकल्प से अङ् अस्तभत्, पक्ष में सिच् आदि होकर अस्तम्भीत्।

६८७. हलः श्नः शानज्झौ (३–१–८३)

हल् (व्यञ्जन) से परे श्ना को शानच् (आन) आदेश होता है, बाद में हि हो तो। स्तभान—स्तन्भ् + लोट् म० १। सि को हि, श्ना को आन, अनिदितां० (३३४) से स्तन्भ् के न् का लोप, अतो हेः (४१५) से हि का लोप।

६८८. जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च (३–१–५८)

जॄ, स्तन्भ्, म्रुच्, म्लुच्, ग्रुच्, ग्लुच्, ग्लुञ्च् और श्वि धातुओं के बाद च्लि को विकल्प से अङ् (अ) होता है।

६८९. स्तन्भेः (८-३-६७)

उपसर्गस्थ निमित्त के बाद सूत्रपठित स्तम्भ् धातु के स् को ष् होता है। व्यष्टभत्-वि+स्तम्भ्+लुङ् प्र० १। च्लि को अङ् (अ), इस सूत्र से धातु के स् को ष्, त को ष्टुत्व से ट। अस्तम्भीत्-स्तम्भ्+लुङ् प्र० १। अङ् के अभाव में च्लि को सिच्, इट्, ईट्, स्-लोप, दीर्घ।

१९८. युञ् (यु) बन्धने (बाँधना)। सूचना-१. उभय० अनिट् है। २. क्री के तुल्य। ३. युनाति-युनीते। लुट्-योता। लुङ्-अयौषीत् (४), अयोष्ट (४)।

१९९. क्नूञ् (क्नू) शब्दे (शब्द करना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। २. क्नूनाति, क्नूनीते। लिट्-चुक्नाव, चुक्नुवे। लुट्-क्नविता। लुङ्-अक्नावीत् (५), अक्नविष्ट (५)।

२००. द्रूञ् (द्रू) हिंसायाम् (हिंसा करना)। सूचना-१. धातु उभय० सेट् है। २. द्रूणाति, द्रूणीते। दुद्राव, दुद्रुवे। द्रविता। लुङ्-अद्रावीत् (५), अद्रविष्ट (५)।

२०१. पूञ् (पू) पवने (पवित्र करना)। सूचना-१. धातु उभय० सेट् है। २. लट् आदि में ऊ को ह्रस्व होकर पु रहेगा। ३. पुनाति, पुनीते। पुपाव, पुपुवे। पविता। लुङ्-अपावीत् (५), अपविष्ट (५)।

६९०. प्वादीनां ह्रस्वः (७-३-८०)

निम्नलिखित २४ धातुओं को ह्रस्व होता है, बाद में शित्-प्रत्यय हो तो:—पूञ्, लूञ्, स्तॄञ्, कॄञ्, वृञ्, धूञ्, शॄ, पॄ, वॄ, भॄ, मॄ, दॄ, जॄ, झॄ, धॄ, नॄ, कॄ, ऋ, गॄ, ज्या, री, ली, व्ली और प्ली। पुनाति, पुनीते-पू+लट् प्र० १। इस सूत्र से ऊ को ह्रस्व उ।

२०२. दॄ विदारणे (फाड़ना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। २. ॠ को लट् आदि में प्वादीनां० (६९०) से ह्रस्व। ३. दृणाति, दृणीते। दरिता। लुङ्-अदारीत् (५), अदरिष्ट (५)।

२०३. लूञ् (लू) छेदने (काटना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। २. पू के तुल्य। ३. लुनाति, लुनीते। लुङ्-अलावीत् (५), अलविष्ट (५)।

२०४. स्तॄञ् (स्तॄ) आच्छादने (ढकना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। लट् आदि में ॠ को ह्रस्व ऋ होगा। २. लुट् आदि में वॄतो वा (६१५) से विकल्प से इट् (इ) को दीर्घ होगा। ३. ॠत इद्धातोः (६६०) से आशी० आदि में ॠ को इर् और हलि च (६१२) से दीर्घ होकर स्तीर् बनेगा। ४. लिट् में शर्पूर्वाः खयः (६४८) से अभ्यास में त शेष रहेगा। ५. स्तृणाति, स्तृणीते। तस्तार, तस्तरुः, तस्तरः, आ० तस्तरे। स्तरीता, स्तरिता। विधि०-स्तृणीयात्, स्तृणीत। आशी० पर० स्तीर्यात्, आ० स्तरिषीष्ट, स्तीर्षीष्ट। लुङ्-पर० अस्तारीत् (५), अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषुः। लुङ् आ०- अस्तरीष्ट (५), अस्तरिष्ट (५), अस्तीर्ष्ट (४)।

६९१. लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु (७-२-४२)

वृङ्, वृञ् और दीर्घ ॠ अन्तवाली धातुओं के बाद लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् (इ) होता है, आत्मनेपद में।

६९२. न लिङि (७-२-३९)

वृङ्, वृञ् और दीर्घ ॠकारान्त के बाद लिङ् में इट् (इ) को दीर्घ नहीं होता है। स्तरि-षीष्ट-स्तॄ + आशी० प्र० १। इससे इ को दीर्घ नहीं हुआ। स्तीर्षीष्ट-आशी० प्र० १ आ०। उश्च से कित् होने के कारण ॠ को इर् और दीर्घ।

२०५. कॄ (कॄ) हिंसायाम् (हिंसा करना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। २. स्तॄ के तुल्य। ३. कृणाति, कृणीते। चकार, चकरे।

२०६. वॄञ् (वॄ) वरणे (चुनना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। २. स्तॄ के तुल्य। ३. उदोष्ठ्यपूर्वस्य (६११) से ॠ को उर् और हलि च से उ को दीर्घ होकर आशी० आदि में वूर् रहता है। ४. वृणाति, वृणीते। ववार, ववरे। वरिता, वरीता। आशी०-पर० वूर्यात्, आ० वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट। लुङ्-पर० अवारीत् (५), अवारिष्टाम्, अवारिषुः०। आ०-अवरिष्ट (५) अवरीष्ट (५), अवूर्ष्ट (४)।

२०७. धूञ् (धू) कम्पने (कँपाना, हिलाना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। २. पू के तुल्य। ३. स्वरतिसूति० (४७५) से विकल्प से इट्। ४. धुनाति, धुनीते। दुधाव, दुधुवे। धविता, धोता। लुङ्-अधावीत् (५), अधविष्ट (५)-अधोष्ट (४)।

२०८. ग्रह (ग्रह्) उपादाने (लेना, पकड़ना)। सूचना-१. उभय० सेट् है। २. लट् आदि में ग्रहिज्या० (६३४) से संप्रसारण होकर गृह् होगा। लिट् आत्मने० और आशी० परस्मै० में भी ग्रहिज्या० (६३४) से संप्रसारण होगा। ३. लुट् आदि में इट् के इ को दीर्घ होगा, लिट् में नहीं। ४. गृह्णाति, गृह्णीते। जग्राह, जगृहतुः प्र० २ जगृहे। ग्रहीता। ग्रहीष्यति, ग्रहीष्यते। गृह्णातु, गृहाण म० १, गृह्णीताम्। अगृह्णात्, अगृह्णीत। गृह्णीयात्, गृह्णीत। गृह्यात्, ग्रहीषीष्ट। अग्रहीत् (५), अग्रहीष्टाम् प्र० २, अग्रहीष्ट (५), अग्रहीषाताम् प्र० २। अग्रहीष्यत्, अग्रहीष्यत।

६९३. ग्रहोऽलिटि दीर्घः (७-२-३७)

एकाच् ग्रह् के बाद इट् के इ को दीर्घ हो जाता है, लिट् में नहीं। ग्रहीता-ग्रह् + लुट् प्र० १। इट्, इ को इस सूत्र से दीर्घ।

२०९. कुष (कुष्) निष्कर्षे (निकालना)। सूचना-१. परस्मै० सेट्। २. कुष्णाति। चुकोष। कोषिता। लुङ्-अकोषीत् (५)।

२१०. अश (अश्) भोजने (खाना)। सूचना-१. परस्मै० सेट्। २. अश्नाति। आश। अशिता। अशिष्यति। अश्नातु, अशान म० १। आश्नात्। अश्नीयात्। अश्यात्। आशीत् (५)। आशिष्यत्।

२११. मुष (मुष्) स्तेये (चुराना)। सूचना–१. परस्मै० सेट्। २. मुष्णाति। मुमोष। मोषिता। मोषिष्यति। मुष्णातु, मुषाण म० १। लुङ्–अमोषीत् (५)।

२१२. ज्ञा अवबोधने (जानना)। सूचना–१. परस्मै० अनिट् है। २. अकर्मकाच्च (७३८) से आत्मने० है, अतः उभय० है। ३. लट् आदि में ज्ञाजनोर्जा (६३९) से जा होता है। ४. लुङ् में यमरम० (४९४) से सक् होने से सिप्–वाला भेद (६) लगेगा। ५. जानाति, जानीते। जज्ञौ, जज्ञे। ज्ञाता। ज्ञास्यति, ज्ञास्यते। जानातु, जानीताम्। अजानात्, अजानीत। जानीयात्, जानीत। ज्ञेयात्–ज्ञायात्, ज्ञासीष्ट। अज्ञासीत् (६), अज्ञास्त (४)। अज्ञास्यत्, अज्ञास्यत।

२१३. वृङ् (वृ) संभक्तौ (सेवा करना)। सूचना–१. आत्मने० सेट् है। २. वृतो वा (६१५) से लुट् आदि में इट् के इ को विकल्प से दीर्घ होगा। ३. कृसृभृ० (४७८) से निषेध के कारण लिट् में इ नहीं होगा। ४. वृणीते। वव्रे, ववृषे म० १, ववृढ्वे म० ३। वरिता, वरीता। लुङ्–अवरीष्ट (५), अवरिष्ट (५), अवृत (४)।

क्र्यादिगण समाप्त

---

१०. चुरादिगण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, अतः गण का नाम चुरादिगण पड़ा। सत्याप'''चुरादिभ्यो णिच् (१२४) से चुरादिगण में सभी लकारों में धातु से णिच् (इ) प्रत्यय होता है। लट् आदि में शप् (अ) भी होता है। इ को गुण और अय् आदेश होने से अय्+अ=अय विकरण लट् आदि में लगेगा। २. अचो ञ्णिति (१८२)। णिच् प्रत्यय करने पर धातु के अन्तिम इ ई को ऐ, उ ऊ को औ और ऋ ॠ को आर् वृद्धि होती है। ३. (पुगन्त० ४५०, अत उपधायाः, ४५४)। णिच् होने पर धातु की उपधा के अ को आ होगा, इ को ए, उ का ओ और ऋ को अर्। कथ, गण, रच आदि धातुएँ अकारान्त हैं, अतः उनमें अ को आ वृद्धि नहीं होती है। ४. लिट् में णिच्-प्रत्ययान्त के बाद आम् प्रत्यय जुड़ेगा और उसके बाद कृ, भू, अस् लगते हैं। आम् होने पर णिच् (इ) को अय् हो जाता है। अतः धातु के बाद अयांचकार या अयांचक्रे आदि लगते हैं। जैसे—चुर् > चोरयांचकार, चोरयांचक्रे। ५. चुरादिगण में रूप चलाने का सरल उपाय यह है कि धातु के अन्त में अय् लगाकर परस्मै० में भू के तुल्य और आत्मने० में सेव् के तुल्य रूप चलावें। ६. लट् आदि में निम्नलिखित अन्तिम अंश लगेंगे। लिट्, लुट् आदि में पूर्ववत् अन्तिम अंश लगेंगे। ७. लुङ् में च्लि को चङ् (अ) होगा। धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य, णि का लोप होगा।

परस्मैपद			अन्तिम अंश	आत्मनेपद		
लट् (धातु + अय्)				लट् (धातु + अय्)		
अति	अतः	अन्ति	प्र०	अते	एते	अन्ते
असि	अथः	अथ	म०	असे	एथे	अध्वे
आमि	आवः	आमः	उ०	ए	आवहे	आमहे
लोट् (धातु + अय्)				लोट् (धातु + अय्)		
अतु	अताम्	अन्तु	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
अ	अतम्	अत	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
आनि	आव	आम	उ०	ऐ	आवहै	आमहै
लङ् (धातु + अय्)		(धातु से पहले अ या आ)			लङ् (धातु + अय्)	
अत्	अताम्	अन्	प्र०	अत	एताम्	अन्त
अः	अतम्	अत	म०	अथाः	एथाम्	अध्वम्
अम्	आव	आम	उ०	ए	आवहि	आमहि
विधिलिङ् (धातु + अय्)				विधिलिङ् (धातु + अय्)		
एत्	एताम्	एयुः	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
एः	एतम्	एत	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
एयम्	एव	एम	उ०	एय	एवहि	एमहि

२१४. चुर (चुर्) स्तेये (चुराना)। सूचना–१. धातु उभयपदी और सेट् है। २. लट् आदि सार्वधातुक लकारों में पुगन्त० (४५०) से उ को गुण ओ होगा। शप् (अ) होगा। इ को सार्वधातुका० (३८७) से गुण ए और एचोऽयवा० (२२) से ए को अय् होगा। दोनों पदों में रूप चलेंगे। ३. लिट् में णिच्, कास्यनेकाच आम्० (वा०) से आम्, अयामन्ताल्वा० (५२५) से णि को अय्, कृञ चा० (४०१) से आम् के बाद कृ, भू, अस् धातु का अनुप्रयोग। ४. लुङ् में दोनों पदों में णिच्, उ को गुण, च्लि, णिश्रि० (५२७) से च्लि को चङ् (अ), णेरनिटि (५२८) से णि का लोप, णौ चङ्यु० (५२९) से उपधा के ओ को उ, चङि (५३०) से चुर् को द्वित्व, अभ्यासकार्य, दीर्घो लघोः (५३३) से अभ्यास के उ को दीर्घ ऊ। पर०–अचूचुरत्, आ०–अचूचुरत। ५. चोरयति, चोरयते। चोरयांचकार, चोरयांचक्रे। चोरयिता। चोरयिष्यति, चोरयिष्यते। चोरयतु, चोरयताम्। अचोरयत्, अचोरयत। चोरयेत्, चोरयेत। चोर्यात्, चोरयिषीष्ट। अचूचुरत् (३), अचूचुरत (३)। अचोरयिष्यत्, अचोरयिष्यत।

६९४. सत्यपपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् (३-१-२५)

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोमन्, त्वच्, वर्मन्, वर्ण और चूर्ण शब्दों से तथा चुर् आदि धातुओं से णिच् (इ) प्रत्यय होता है। 'प्रातिपदिकाद्

धात्वर्थे' वार्तिक से चूर्ण शब्द तक सभी शब्दों से णिच् हो सकता है, फिर भी इस सूत्र में सत्याप आदि का उल्लेख केवल विस्तार के लिए है। चुर् आदि धातुओं से स्वार्थ में णिच् होता है। चोरयति–चुर्+णिच्+लट् प्र० १। उपधा को गुण, सनाद्यन्ता० (४६७) से धातुसंज्ञा तिप्, शप् आदि, इ को गुण और ए को अय् आदेश।

६९५. णिचश्च (१–३–७४)

णिच्-प्रत्ययान्त से आत्मनेपद होता है, क्रियाफल कर्तृगामी हो तो। चोरयते–चुर्+णिच्+लट् प्र० १ आ०।

२१५. कथ (कथ्) वाक्यप्रबन्धे (कहना)। सूचना– १. उभय० सेट्। २. चुर् के तुल्य दोनों पदों में रूप होंगे। ३. कथ् धातु अकारान्त है, अतः उपधा के अ को वृद्धि आ नहीं होगी और लुङ् में अभ्यास के अ को इ और ई नहीं होगा। ४. कथयति, कथयते। कथयांचकार, कथयांचक्रे। कथयिता। लुङ्–अचकथत् (३), अचकथत (३)।

६९६. अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (१–१–५७)

पर को निमित्त मानकर अच् को हुआ आदेश स्थानिवत् होता है, स्थानिभूत अच् से पूर्व अच् को कोई कार्य प्राप्त हो तो। कथयति–कथ+णिच्+लट् प्र० १। अतो लोपः से थ के अ का लोप। इस सूत्र से स्थानिवद्भाव होने से अर्थात् थ का अ आने से उपधा में अ नहीं मिलेगा, अतः वृद्धि नहीं होगी। अचकथत्–लुङ् प्र० १। अ का लोप होने से क के अ को वृद्धि नहीं होगी और सन्वद्भाव नहीं होगा, अतः अभ्यास में अ को इ और ई नहीं होंगे।

२१६. गण (गण्) संख्याने (गिनना)। सूचना– १. उभय० सेट् है। २. कथ के तुल्य रूप चलेंगे। ३. लुङ् में अभ्यास में ई और अ दोनों रहेंगे। ४. गणयति–गणयते। लुङ्–अजीगणत्–अजगणत् (३), अजीगणत–अजगणत (३)।

६९७. ई च गणः (७–४–९७)

गण् धातु के अभ्यास को ई और अ दोनों होते हैं, चङ् परक णि बाद में हो तो। अजीगणत्–अजगणत्–गण्+णिच्+लुङ् प्र० १। कथ् के तुल्य कार्य। अभ्यास को ई और अ दोनों होंगे।

चुरादिगण समाप्त

---

१. ण्यन्तप्रक्रिया प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. ण्यन्तप्रक्रिया में वे सभी नियम लगते हैं, जो चुरादिगण के लिए दिए गए हैं। २. णिच्-प्रत्ययान्त के रूप दोनों पदों में चलते हैं, अतः सभी धातुएँ उभयपदी हो जाती हैं। पर० में णिच् प्रत्यय लगाकर इनके रूप भू के तुल्य चलावें और आत्मने० में सेव् के तुल्य। ३. लिट् में कास्यनेकाच० (वा०) से आम् लगेगा। ४. णिच् होने पर सभी धातुएँ अनेकाच् (अनेक स्वरवाली) हो जाती हैं, अतः सेट् होती हैं। इनमें लुट्, लट् आदि में इ लगेगा। ५. लुङ् के दोनों पदों में ये नियम लगेंगे:— च्लि लुङि (४३६) से च्लि, णिश्रिद्रु० (५२७) से च्लि को चङ् (अ), णिच् के कारण धातु को गुण या वृद्धि, णेरनिटि (५२८) से णि (इ) का लोप, णौ चङ्युपधाया० (५२९) से उपधा के दीर्घ स्वर को ह्रस्व, चङि (५३०) से धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य, सन्वल्लघुनि० (५३१) से सन्वद्भाव, सन्यतः (५३२) से अभ्यास के अ को इ, दीर्घो लघोः (५३३) से अभ्यास के ह्रस्व स्वर को दीर्घ। ६. अन्तिम अंश चुरादिगण के तुल्य लगेंगे। ७. णिच् प्रत्यय प्रेरणा अर्थ में होता है। किसी दूसरे से काम करवाना। जो प्रेरणा देता है या काम करवाता है, उसे हेतु और प्रयोजक कर्ता कहते हैं। जो काम करता है, उसे प्रयोज्य कर्ता कहते हैं। इस प्रकार दो कर्ता होते हैं—१. प्रयोजक, २. प्रयोज्य। राम नौकर से काम करवाता है—रामः भृत्येन कार्यं कारयति, इसमें राम प्रयोजक कर्ता है और नौकर प्रयोज्य कर्ता।

भावि (भू + णिच्) (होते हुए को प्रेरणा देना) भावयति। भावयांचकार। भावयिता। भावयिष्यति। भावयतु। अभावयत्। भावयेत्। भाव्यात्। अबीभवत् (३)। अभावयिष्यत्।

६९८. स्वतन्त्रः कर्ता (१-४-५४)

क्रिया में जिसको स्वतन्त्र रूप से कहना इष्ट हो, वह अर्थ (व्यक्ति या वस्तु) कर्ता कहा जाता है।

६९९. तत्प्रयोजको हेतुश्च (१-४-५५)

कर्ता के प्रयोजक (प्रेरक) को हेतु और कर्ता दोनों कहते हैं।

७००. हेतुमति च (३-१-२६)

प्रयोजक का कार्य भेजना आदि (प्रेरणा) कहना हो तो धातु से णिच् प्रत्यय होता है। णिच् का इ शेष रहता है। ण् इत् होने से धातु को यथाप्राप्त गुण या

वृद्धि होती है। भावयति–भवन्तं प्रेरयति (होते हुए को प्रेरणा देता है)। भू + णिच् + लट् प्र० १। ऊ को वृद्धि औ, एचो० से औ को आव, शप् (अ), इ को गुण और अय् आदेश।

७०१. ओः पुयण्ज्यपरे (७–४–८०)

सन् प्रत्यय परे होने पर जो अंग, उसके अवयव अभ्यास के उ को इ होता है, यदि अ–परक (अ जिनके बाद में है) पवर्ग, यण् (य व र ल) और ज हों तो। अबीभवत्—भू + णिच् (भावि) + लुङ् प्र० १। अट्, च्लि, चङ् (अ), 'णिच्यच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये' द्वित्व करना हो तो गुण या वृद्धि नहीं होती, अतः वृद्धि को रोककर भू को द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास के ऊ को ह्रस्व उ, धातु के ऊ को वृद्धि, आव् आदेश, उपधा के आ को ह्रस्व, णिच् (इ) का लोप, अ बु भव् अ त्, सन्वद्भाव होने इस सूत्र से अभ्यास के उ को इ और दीर्घो लघोः से इ को ई।

स्थापि (स्था + णिच्) (स्थापना करना)। सूचना–१. स्था से णिच् होने पर बीच में पुक् (प्) होता है। २. लुङ् में स्थाप् के आ को इ होता है। ३. स्थापयति। स्थापयाचकार। स्थापयिता। लुङ्–अतिष्ठिपत् (३)।

७०२. अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौ (७–३–३६)

ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त धातुओं को पुक् (प्) आगम होता है, बाद में णि हो तो। स्थापयति–स्था + णिच् (इ) + लट् प्र० १। स्था के बाद प्, गुण, अय् आदेश।

७०३. तिष्ठतेरित् (७–४–५)

स्था धातु की उपधा को इ आदेश होता है, बाद में चङ्-परक णि हो तो। अतिष्ठिपत्–स्थापि + लुङ् प्र० १। अट्, च्लि, चङ् (अ), स्थाप् को द्वित्व, अभ्यास-कार्य, थ शेष, थ को चर्त्व से त, धातु के आ को इससे इ स्थिप्, णि-लोप, सन्वद्भाव से अभ्यास के अ को इ, स् को ष्, ष्टुत्व से थ को ठ।

घट (घट्) चेष्टायाम् (चेष्टा करना)। घट् + णिच् = घटयति। लुङ्–अजीघटत् (३)।

७०४. मितां ह्रस्वः (६–४–९२)

घट् आदि और ज्ञप् आदि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है, बाद में णि हो तो। सूचना–घट् आदि और ज्ञप् आदि धातुओं की मित् संज्ञा होती है। वृद्धि के द्वारा हुए आ को इस सूत्र से अ हो जाएगा। घटयति–घट् + णिच् + लट् प्र० १। अत उपधायाः (४५४) से उपधा के अ को आ। इससे उस आ को अ।

ज्ञप (ज्ञप्) ज्ञाने ज्ञापने च (जानना और ज्ञान कराना)। सूचना–घट् + णिच् के तुल्य रूप चलेंगे। ज्ञपयति–ज्ञप् + णिच् + लट् प्र० १। उपधा के अ को वृद्धि

आ और उसे ह्रस्व। अजिज्ञपत्–ज्ञप्+णिच्+लुङ् प्र० १। ज्ञप् को द्वित्व, अभ्यास-कार्य आदि, अभ्यास के अ को इ।

ण्यन्तप्रक्रिया समाप्त।

---

२. सन्नन्तप्रक्रिया प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. (*धातोः कर्मणः०, ७०५*) *सन्नन्त प्रकरण में इच्छा अर्थ में सन्* (स) प्रत्यय होता है। सन् का स शेष रहता है। इच्छा करने वाला और धातु का कर्ता एक ही व्यक्ति होना चाहिए। सन् विकल्प से होता है। इष् धातु के कर्म से ही सन् होगा, यदि वह इष् का कर्म नहीं होगा तो सन् प्रत्यय नहीं होगा। २. (सन्यङोः, ७०६) सन् प्रत्यय होने पर धातु को द्वित्व होता है। लिट् के तुल्य अभ्यास-कार्य होंगे। सन्यतः (५३२) से अभ्यास के अ को इ हो जाएगा। ३. धातु परस्मैपदी है तो सन् प्रत्यय होने पर भी परस्मै० में रूप चलेंगे। धातु आत्मने० है तो सन्नन्त के रूप भी आत्मने० में चलेंगे। ४. सेट् धातुओं में स से पहले इ लगेगा और स को मूर्धन्य ष होगा। ५. लिट् में अनेकाच् होने से कास्यनेकाच आम्० (वा०) से आम् होगा और कृ आदि का अनुप्रयोग। ६. सन् प्रत्ययान्त धातुएँ अनेकाच् होने से सेट् हैं। अतः लुट्, लट् आदि में इट् (इ) लगेगा। लुङ् में इष् वाला भेद (५) लगेगा।

पिपठिष (पढ़ना चाहता है) पठ्+सन् (स) = पिपठिष। पिपठिषति। पिपठिषांचकार। पिपठिषिता। पिपठिषिष्यति। पिपठिषतु। अपिपठिषत्। पिपठिषेत्। पिपठिष्यात्। अपिपठिषीत् (५)। अपिपठिषिष्यत्।

७०५. धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा (३–१–७)

इच्छा के कर्म तथा इच्छा क्रिया के समानकर्तृक (एक ही व्यक्ति कर्ता हो) धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प से सन् (स) होता है। सन् का स शेष रहता है।

७०६. सन्यङोः (६–१–९)

सन्-प्रत्ययान्त और यङ्-प्रत्ययान्त धातु के अनभ्यास (अभ्यासरहित) प्रथम एकाच् (एक स्वर-सहित अंश) को द्वित्व होता है। यदि धातु अजादि है तो द्वितीय एकाच् को द्वित्व होगा। पिपठिषति—पठितुमिच्छति (पढ़ना चाहता है)—पठ्+सन् (स) + लट् प्र० १। इस सूत्र से पठ् को द्वित्व, अभ्यासकार्य, सन्यतः (५३२) से अभ्यास के अ को इ, स से पूर्व इट् (इ); स् को ष्, शप् (अ), अतो गुणे (२७४)

से पररूप होकर प + अ = प। प्रत्युदाहरण—गमनेनेच्छति (गमन के द्वारा चाहता है)—यहाँ पर गमन इच्छा का कर्म नहीं है, अपितु करण है, अतः सन् नहीं होगा। शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः (शिष्य पढ़ें, यह गुरु चाहता है)—यहाँ पर इच्छा का कर्ता और पठ् धातु का कर्ता दोनों पृथक् हैं, अतः सन् नहीं हुआ। सन् प्रत्यय विकल्प से होता है, इसलिए पक्ष में वाक्य भी प्रयुक्त होगा। जैसे—पठितुम् इच्छति।

७०७. सः स्यार्धधातुके (७-४-४९)

स् को त् होता है, बाद में स से प्रारम्भ होने वाला आर्धधातुक हो तो। जिघत्सति (अत्तुमिच्छति, खाना चाहता है)—अद् + सन् (स) + लट् प्र० १। लुङ्सनोर्घस्लृ (५५७) से अद् को घस् आदेश, इस सूत्र से घस् के स् को त्, घत् को द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास के अ को इ, जिघत्स, शप् (अ), पररूप।

७०८. अज्झनगमां सनि (६-४-१६)

अजन्त धातु, हन् धातु और इण् (इ) आदि धातु के स्थान पर होने वाले गम् धातु को दीर्घ होता है, बाद में झलादि सन् हो तो। अर्थात् अनिट् सन् बाद में होने पर दीर्घ होगा।

७०९. इको झल् (१-२-९)

इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) अन्त वाली धातु के बाद झलादि सन् कित् होता है। कित् होने से धातु को गुण नहीं होगा। चिकीर्षति (कर्तुम् इच्छति, करना चाहता है)। कृ + सन् (स) + लट् प्र० १। कृ के ऋ को अज्झन० (७०८) से दीर्घ, इस सूत्र से सन् कित् होने से गुण का अभाव, ॠत इद् धातोः (६६०) से दीर्घ ॠ को इर्, किर् + स, किर् को द्वित्व, अभ्यासकार्य, चिकिर् + स, हलि च (६१२) से किर् के इ को दीर्घ, स् को ष्।

७१०. सनि ग्रहगुहोश्च (७-२-१२)

ग्रह्, गुह् और उक् (उ, ऋ, ऌ) अन्त वाली धातुओं के बाद सन् को इट् (इ) नहीं होता है। बुभूषति (भवितुम् इच्छति, होना चाहता है)—भू + सन् (स) + लट् प्र० १। इस सूत्र से इट् का निषेध, भू को द्वित्व, अभ्यासकार्य, स् को ष्। इको झल् (७०९) से कित् होने से भू को गुण नहीं होता है।

सन्नन्तप्रक्रिया समाप्त।

---

३. यङन्त-प्रक्रिया प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. (धातोरेकाचो०, ७११) क्रिया का बार-बार या बहुत अधिक होना अर्थ में धातु से यङ् (य) प्रत्यय होता है। यङ-प्रत्ययान्त धातु आत्मनेपद में ही आती है। २. (सन्यङोः, ७०६) यङ् होने पर धातु को द्वित्व और अभ्यासकार्य होगा। ३. (गुणो यङ्लुकोः, ७१२) अभ्यास के ह्रस्व स्वर को गुण हो जाता है, अर्थात् इ को ए, उ को ओ। ४. (दीर्घोऽकितः, ७१५) अकित् अभ्यास के ह्रस्व स्वर को दीर्घ होता है। इससे अभ्यास के अ को आ होता है। ५. (रीगृदुपधस्य च, ७१६) धातु की उपधा में ऋ होगा तो उसके अभ्यास के बाद रीक् (री) आगम होता है। ६. यङ्-प्रत्ययान्त के रूप आत्मनेपद में ही चलते हैं। लिट् में आम् + कृ होगा। धातु अनेकाच् होती है, अतः लुट्, लृट् आदि में इट् (इ) होगा।

बोभूय (भू + यङ्, बार बार या बहुत अधिक होना)। सूचना--१. आत्मनेपद में रूप चलेंगे। सेट् है। २. बोभूयते। बोभूयांचक्रे। बोभूयिता। बोभूयिष्यते। बोभूयताम्। अबोभूयत। बोभूयेत। बोभूयिषीष्ट। अबोभूयिष्ट (५)। अबोभूयिष्यत।

७११. धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् (३-१-२२)

क्रिया का बार-बार होना या अधिक होना अर्थ में एकाच् (एक स्वर वाली) और हलादि (व्यंजन से प्रारम्भ होने वाली) धातु से यङ् (य) प्रत्यय होता है। यङ् का य शेष रहता है। सूचना—यङ् ङित् है, अतः धातु को गुण नहीं होगा।

७१२. गुणो यङ्लुकोः (७-४-८२)

अभ्यास के स्वर को गुण होता है, बाद में यङ् हो या यङ् का लुक् (लोप) हुआ हो तो। यङ् के ङित् होने से धातु से आत्मनेपद होगा। बोभूयते (पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति, बार बार या अधिक होता है) —भू + यङ् + लट् आ० प्र० १। भू को सन्यङोः (७०६) से द्वित्व, अभ्यासकार्य, बु भू य। इस सूत्र से अभ्यास के उ को ओ, बोभूय से लट् प्र० १, शप् (अ), अ को य के अ के साथ अतो गुणे से पररूप। बोभूयांचक्रे—भू + यङ् + लिट् प्र० १। बोभूय से आम् + कृ। अबोभूयिष्ट—भू + यङ् + लुङ् प्र० १। बोभूय से अट् (अ), सिच् (स्), इट् (इ), अतो लोपः (४६९) से य के अ का लोप, स् को ष्, ष्टुत्व से त को ट।

७१३. नित्यं कौटिल्ये गतौ (३-१-२३)

गति (जाना) अर्थ वाली धातुओं से कौटिल्य (टेढ़ा चलना) अर्थ में ही यङ् होता है, बार-बार और अधिक अर्थ में नहीं।

७१४. दीर्घोऽकितः (७-४-८३)

अकित् अभ्यास के ह्रस्व स्वर को दीर्घ होता है, बाद में यङ् हो या यङ्-लुक् हो। सूचना—वरीवृत्यते आदि में अभ्यास में रीक् (री) होता है, वह कित् है, अतः अकित् कहने से वहाँ अभ्यास को दीर्घ नहीं होगा। वाव्रज्यते (कुटिलं व्रजति, टेढ़ा चलता है)—व्रज् + यङ् + लट् प्र० १। व्रज् को द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास के अ को आ।

७१५. यस्य हलः (६-४-४९)

हल् (व्यंजन) के बाद य का लोप होता है, बाद में आर्धधातुक हो तो। सूत्र में य से पूरे य का ग्रहण है। वाव्रजांचक्रे—वाव्रज्य + आम् + कृ + लिट् प्र० १ आ०। आदेः परस्य (७२) नियम के कारण इस सूत्र से य के य् का लोप होगा और अ का अतो लोपः (४६९) से लोप होगा। वाव्रजिता—वाव्रज्य + लुट् प्र० १। इट्, इस सूत्र से पूर्ववत् य का लोप।

७१६. रीगृदुपधस्य च (७-४-९०)

ऋदुपध (जिसकी उपधा में ऋ है) धातु के अभ्यास को रीक् (री) आगम होता है, बाद में यङ् हो या यङ्लुक् हो। वरीवृत्यते (पुनः पुनः अतिशयेन वा वर्तते, बार-बार या अधिक होता है)—वृत् + यङ् + लट् प्र० १। वृत् को द्वित्व, अभ्यास-कार्य, इस सूत्र से अभ्यास के व के बाद री आगम। वरीवृतांचक्रे—वरीवृत्य + आम् + कृ प्र० १। यस्य हलः (७१५) से य का लोप। वरीवर्तिता—वरीवृत्य + लुट् प्र० १। इट्, यस्य हलः (७१५) से य का लोप।

७१७. क्षुम्नादिषु च (८-४-३९)

क्षुम्न आदि शब्दों में न को ण नहीं होता है। सूचना—इस गण में ऐसे शब्दों और धातु-रूपों का पाठ है, जिनमें न को ण प्राप्त है और उसका इस सूत्र से निषेध होता है। नरीनृत्य का भी इसमें पाठ है, अतः इसमें नृत्य के न को ण नहीं होता है। नरीनृत्यते (पुनः पुनः अतिशयेन वा नृत्यति, बार बार या अधिक नाचता है)—नृत् + यङ् लट् प्र० १। रीगृ० (७१६) से अभ्यास के न के बाद री आगम। क्षुम्नादि में होने से न को ण नहीं हुआ। जरीगृह्यते (पुनः पुनः अतिशयेन वा गृह्णाति, बारम्बार या अधिक लेता है)—ग्रह् + यङ् + लट् प्र० १। ग्रह् को द्वित्व, अभ्यासकार्य, रीगृ० (७१६) से ज के बाद री आगम, ग्रहिज्या० (६३४) से ग्र के र् को ऋ।

यङन्तप्रक्रिया समाप्त।

---

४. यङ्लुक्-प्रक्रिया प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. यङोऽचि च (७१८) से यङ् प्रत्यय का लोप होता है। यङ् का लुक् (लोप) होने से इस प्रक्रिया का नाम यङ्लुक्-प्रक्रिया है। सबसे पहले यङ् का लोप होगा। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् (१९०) से यङ्लुक् में भी सन्यङोः (७०६) से द्वित्व होगा और अभ्यासकार्य होने पर सनाद्यन्ता० (४२७) से धातुसंज्ञा होने से लट् आदि लकार होंगे। यङ्लुक् परस्मैपद में ही होता है। शप् का लोप होगा। २. यङो वा (७१९) से सार्वधातुक लकारों में हलादि पित् प्रत्यय (ति, सि, मि) से पूर्व विकल्प से ई होगा। ३. लट् आदि के प्र० ३ में अदभ्यस्तात् (६०६) से झ् को अत् आदेश। ४. अदादिगण में 'चर्करीत च' पाठ किया गया है, अतः यङ्लुक् में सर्वत्र शप् का लोप होगा। ५. लुङ् में गातिस्था० (४३८) से सिच् का लोप। यङो वा से ई होने पर गुण को रोक कर भुवो वुग्० (३९२) से वुक् (व्)।

७१८. यङोऽचि च (२-४-७४)

यङ् प्रत्यय का लुक् (लोप) होता है, बाद में अच् प्रत्यय हो तो। सूत्र में च शब्द है, उसका अभिप्राय है कि अच् प्रत्यय के बिना भी कहीं-कहीं यङ् का लोप होता है। सूचना—यह नियम बिना किसी निमित्त के होता है, अतः अनैमित्तिक होने से अन्तरंग है। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा से यङ् का लोप सबसे पहले होगा। प्रत्ययलोपे० (१९०) से यङ् का मानकर होनेवाला सन्यङोः (७०६) से द्वित्व होगा और अभ्यासकार्य होगा। शेषात् कर्तरि० (३७९) से परस्मैपद होगा। 'चर्करीतं च' (गणसूत्र) का पाठ अदादिगण में है, अतः यङ्लुक् में शप् का लोप होगा।

७१९. यङो वा (७-३-९४)

यङ्लुगन्त के बाद हलादि पित् सार्वधातुक को विकल्प से ईट् (ई) आगम होता है। भूसुवोस्तिङि (४३९) से होने वाला गुण का निषेध यङ्लुक् में लौकिक संस्कृत में नहीं होता है, क्योंकि पाणिनि ने दाधर्ति-दर्धर्ति-दर्धर्षि-बोभूतु-तेतिक्ते० (७-४-६५) सूत्र में बोभूतु निपातन किया है। अतः यहाँ गुण होगा। यङ्लुक् के रूप इस प्रकार चलेंगे:—लट्—बोभवीति-बोभोति, बोभूतः, बोभुवति। बोभवीषि-बोभोषि, बोभूथः, बोभूथ। बोभवीमि-बोभोमि, बोभूवः, बोभूमः। लिट्—बोभवांचकार, बोभवामास। लुट्—बोभविता। लृट्—बोभविष्यति। लोट्—बोभवीतु-बोभोतु-बोभूतात्, बोभूताम्, बोभुवतु। बोभूहि म० १, बोभवानि उ० १। लङ्—अबोभवीत्-अबोभोत्, अबोभूताम्,

अबोभवुः। विधि०—बोभूयात्, बोभूयाताम्, बोभूयुः०। आशी०—बोभूयात्, बोभूयास्ताम्, बोभूयासुः०। लुङ्—अबोभूवीत्–अबोभोत् (१), अबोभूताम्, अबोभूवुः। अबोभूवीः–अबोभोः०। लृङ्—अबोभविष्यत्।

यङ् लुक्-प्रक्रिया समाप्त।

५. नामधातु-प्रकरण प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. इस प्रकरण में शब्दों से धातु बनाए जाते हैं। नामधातु-प्रत्यय लगने पर शब्द सनाद्यन्ता० (४६७) से धातु हो जाता है और उससे सभी लकार होते हैं। २. क्यच् (य), काम्यच् (काम्य) और क्विप् (०) प्रत्यय होने पर धातु के रूप परस्मैपद में चलते हैं। क्यङ् (य) प्रत्यय होने पर धातु के रूप आत्मनेपद में चलेंगे। क्यच् और काम्यच् होने पर रूप दिवादि० परस्मै० के तुल्य चलावें। क्यङ् होने पर दिवादि० आत्मने० के तुल्य। क्विप् होने पर अदादि० परस्मै० के तुल्य। णिच् होने पर चुरादिगण के तुल्य।

७२०. सुप आत्मनः क्यच् (३–१–८)

इच्छा के कर्म और इच्छा करने वाले से संबद्ध सुबन्त से इच्छा अर्थ में विकल्प से क्यच् (य) प्रत्यय होता है। क्यच् का य शेष रहता है।

७२१. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२–४–७१)

धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् (लोप) होता है।

७२२. क्यचि च (७–४–३३)

अ को ई होता है, बाद में क्यच् हो तो। पुत्रीयति (आत्मनः पुत्रम् इच्छति, अपना पुत्र चाहता है)—पुत्रम् + क्यच् (य)। सुप० (७२०) से क्यच्, सुपो० (७२१) से अम् विभक्ति का लोप, क्यचि च (७२२) से पुत्र के अ को ई, पुत्रीय, धातुसंज्ञा होने से लट्, तिप्, शप् (अ), अतो गुणे से पररूप, य + अ = य।

७२३. नः क्ये (१–४–१५)

क्यच् और क्यङ् प्रत्यय बाद में होने पर न् अन्त वाले की ही पद संज्ञा होती है, अन्य की नहीं। राजीयति (राजानम् आत्मन इच्छति, अपना राजा चाहता है)–राजन् + क्यच् (य) + लट् प्र० १। नलोपः० (१८०) से न् का लोप, क्यचि० (७२२) से अ को ई। वाच्यति (अपनी वाणी चाहता है)—वाच् + क्यच् + लट् प्र० १। वाच्

नान्त नहीं है, अतः इसकी पद संज्ञा न होने से च् को क् नहीं हुआ। गीर्यति (गिरम् आत्मन इच्छति, अपनी वाणी चाहता है) गिर् + क्यच् (य) + लट् प्र० १। हलि च (६१२) से इ को दीर्घ ई। पूर्यति (पुरम् आत्मन इच्छति, अपना नगर चाहता है)—पुर् + क्यच् (य) + लट् प्र० १। हलि च (६१२) से उ को दीर्घ ऊ। हलि च सूत्र र् और व् अन्त वाली धातु की उपधा को दीर्घ करता है, शब्द की उपधा को नहीं। अतः दिवम् इच्छति दिव्यति में इ को दीर्घ नहीं हुआ। यहाँ पर दिव् शब्द है। गिर् गॄ धातु का रूप है और पुर् पॄ धातु का। ये धातु हैं, अतः दीर्घ हुआ है।

७२४. क्यस्य विभाषा (६-४-५०)

हल् के बाद क्यच् (य) और क्यङ् (य) के य का लोप विकल्प से होता है, आर्धधातुक प्रत्यय बाद में हो तो। आदेः परस्य से य् का और अतो लोपः से अ का लोप होने से पूरे य का लोप होता है। अ-लोप को अचः परस्मिन्० (६९६) से स्थानिवद्भाव होने से उपधा को गुण नहीं होगा। समिध्यति (समिधम् आत्मन इच्छति, अपनी समिधा चाहता है)—समिध् + क्यच् (य) + लट् प्र० १। समिधिता, समिध्यिता—समिध्य + लुट् प्र० १। इस सूत्र से य का विकल्प से लोप।

७२५. काम्यच्च (३-१-९)

क्यच् के अर्थ में ही काम्यच् (काम्य) प्रत्यय होता है। सूचना—लुट् आदि में काम्य के य का क्यस्य० (७२४) से लोप नहीं होगा। पुत्रकाम्यति—(पुत्रमात्मन इच्छति, अपना पुत्र चाहता है)—पुत्र + काम्य + लट् प्र० १। पुत्रकाम्यिता—पुत्रकाम्य + लुट् प्र० १। य का लोप नहीं होगा।

७२६. उपमानादाचारे (३-१-१०)

उपमान-वाचक कर्म सुबन्त से आचरण करना अर्थ में क्यच् (य) होता है। पुत्रीयति छात्रम् (छात्रं पुत्रमिवाचरति, छात्र से पुत्रवत् व्यवहार करता है)—पुत्र + क्यच् (य) + लट् प्र० १। क्यचि च (७२२) से अ को ई। विष्णूयति द्विजम् (द्विजं विष्णुम् इव आचरति, ब्राह्मण से विष्णु के तुल्य आचरण करता है)—विष्णु + क्यच् (य) + लट् प्र० १। अकृत्० (४८२) से उ को दीर्घ ऊ। (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः, वा०) सभी प्रातिपदिकों से विकल्प से क्विप् (०) प्रत्यय होता है, आचरण करना अर्थ में। क्विप् का कुछ भी शेष नहीं रहता है। क्, प् और इ का लोप, वेरपृक्तस्य (३०३) से व् का लोप। कृष्णति (कृष्ण इवाचरति, कृष्ण के तुल्य आचरण करता है)—कृष्ण + क्विप् (०) + लट् प्र० १। अतो गुणे से शप् के अ के साथ पररूप। स्वति (स्व इवाचरति, अपने समान आचरण करता है)—स्व + क्विप् + लट्। अतो गुणे से शप् के अ के साथ पररूप। सस्वौ—स्व + लिट् प्र० १। द्वित्व, अभ्यासकार्य, णित् होने से स्व को अचो ञ्णिति से वृद्धि होकर स्वा, अकारान्त होने से आत औ० से णल् को औ।

७३९. उदश्चरः सकर्मकात् (१–३–५३)

सकर्मक उद् + चर् से आत्मनेपद होता है। धर्मम् उच्चरते (धर्म का उल्लंघन करके चलता है)। इससे आत्मने०।

७४०. समस्तृतीयायुक्तात् (१–३–५४)

तृतीयान्त से युक्त सम् + चर् से आत्मनेपद होता है। रथेन संचरते (रथ से घूमता है)। इससे आत्मने०।

७४१. दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे (१–३–५५)

तृतीयान्त से युक्त सम् + दा (यच्छ्) से आत्मनेपद होता है, यदि तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो तो। दास्या संयच्छते कामी (कामी पुरुष दासी को दुर्भावना से कुछ देता है)–सम + दा + लट् प्र० १। पाघ्रा० (४८६) से दा को यच्छ्। इससे आत्मने०।

७४२. पूर्ववत्सनः (१–३–६२)

यदि मूल धातु आत्मनेपदी है तो सन्-प्रत्यय होने पर भी इससे आत्मनेपद होगा। *एदिधिषते–एध् + सन् + लट् प्र० १। एध् के सन्नन्त का रूप है। इससे आत्मने०।*

७४३. हलन्ताच्च (१–२–१०)

इक् (इ, उ, ऋ) के समीप विद्यमान हल् के बाद झलादि (इट्-रहित) सन् कित् होता है। अतः धातु को गुण नहीं होगा। निविविक्षते–नि + विश् + सन् + लट् प्र० १। नि + विश् नेर्विशः (७३३) से आत्मने० है, अतः सन् होने पर भी उससे आत्मने-पद हुआ है। सन् कित् होने से धातु को गुण नहीं हुआ।

७४४. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः (१–३–३२)

गन्धन (शिकायत करना, चुगली करना), अवक्षेपण (डराना, डाँटना), सेवन (सेवा करना), साहसिक्य (साहस का कार्य, बलात्कार करना), प्रतियत्न (दूसरे का गुण ग्रहण करना), प्रकथन (कथा करना आदि) और उपयोग (धर्मादि में लगाना) अर्थों में कृ धातु से आत्मनेपद होता है। १. उत्कुरुते (शिकायत करता है या चुगली करता है।) २. श्येनो वर्तिकाम् उत्कुरुते (बाज बटेर को डराता है)। ३. हरिम् उपकुरुते (हरि की सेवा करता है)। ४. परदारान् प्रकुरुते (परस्त्रियों में साहसपूर्वक प्रवृत्त होता है अर्थात् उनसे बलात्कार करता है)। ५. एधो दकस्य उपस्कुरुते (लकड़ी जल के गुण को ग्रहण करती है)—उप + कुरुते। उपात्० (६८३) से सुट्। ६. कथाः प्रकुरुते (कथा करता है)। ७. शतं प्रकुरुते (सौ रु० धर्मार्थ लगाता है)। कटं करोति (चटाई बनाता है) में ये अर्थ नहीं हैं, अतः आत्मनेपद नहीं हुआ।

७४५. भुजोऽनवने (१–३–६६)

भोजन अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद होता है। ओदनं भुङ्क्ते (भात खाता है)। भोजन अर्थ होने से आत्मने०। महीं भुनक्ति (पृथ्वी का पालन करता है)—पालन अर्थ होने से परस्मैपद।

आत्मनेपद-प्रक्रिया समाप्त।

---

८. परस्मैपद-प्रक्रिया प्रारम्भ

७४६. अनुपराभ्यां कृञः (१–३–७९)

अनु + कृ, परा + कृ में सदा परस्मैपद होता है। कर्तृगामी फल होने पर और गन्धन आदि अर्थों (सूत्र ७४४) में भी परस्मै०। अनुकरोति। पराकरोति। इससे परस्मैपद।

७४७. अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः (१–३–८०)

अभि + क्षिप्, प्रति + क्षिप् और अति + क्षिप् से परस्मैपद होता है। अभिक्षिपति।

७४८. प्राद्वहः (१–३–८१)

प्र + वह् से परस्मैपद होता है। प्रवहति।

७४९. परेर्मृषः (१–३–८२)

परि + मृष् से परस्मैपद होता है। परिमृष्यति। मृष् दिवादि० है।

७५०. व्याङ्परिभ्यो रमः (१–३–८३)

वि + रम्, आ + रम् और परि + रम् से परस्मैपद होता है। विरमति।

७५१. उपाच्च (१–३–८४)

उप + रम् से परस्मैपद होता है। यज्ञदत्तम् उपरमति—उप + रमति। यहाँ पर णिच् का अर्थ गुप्त है, अतः अर्थ है—यज्ञदत्त को समाप्त करता है।

परस्मैपद-प्रक्रिया समाप्त।

---

९. भावकर्मप्रक्रिया प्रारम्भ

आवश्यक निर्देश

१. इस प्रकरण में भाववाच्य और कर्मवाच्य में होने वाले प्रत्ययों का विवरण है। अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव में लकार होते हैं। अतः अकर्मक धातुओं से यहाँ पर भाववाच्य में लकार होंगे। सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म में लकार होते हैं। अतः यहाँ पर सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य में लकार होंगे। कर्तृवाच्य में होने वाले लकारों का १० गणों में वर्णन है। २. (भावकर्मणोः, ७५२)। भाववाच्य और कर्मवाच्य में सदा आत्मनेपद ही होता है। (सार्वधातुके यक्, ७५३)। भाववाच्य और कर्मवाच्य में सार्वधातुक लकारों में यक् (य) प्रत्यय लगता है। ३. स्यसिच्०, ७५४)। लुट्, लृट्, आशीर्लिङ् (आत्मनेपद), लुङ् और लृङ् में इट् (इ) विकल्प से होता है और चिण्वद्भाव होता है। अतः णित् होने से धातु को यथाप्राप्त वृद्धि या गुण होगा। (चिण्०, ७५५)। लुङ् प्र०१ में च्लि को चिण् (इ) होगा, धातु को गुण या वृद्धि। चिण् के बाद त का चिणो लुक् (६४१) से लोप। लुट् आदि में जहाँ चिण्वद्भाव नहीं होगा, वहाँ पर सामान्य रूप से सेट् होने पर इट् होगा, अनिट् होने पर इट् नहीं होगा। ४. भाववाच्य में भाव अर्थात् क्रिया-मात्र का वर्णन होता है, अतः उसमें प्रथम पुरुष एक० ही होता है। भाववाच्य में क्रिया में प्र० १ और कर्ता में तृतीया होती है। इसके म० और उ० पुरुष नहीं होते हैं और द्विवचन, बहुवचन भी नहीं होता है। ५. कर्मवाच्य में कर्म के अनुसार क्रिया के रूप चलते हैं। इसमें सभी पुरुष और सभी वचन होते हैं। कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा, कर्ता में तृतीया और क्रिया कर्म के अनुसार। ६. लट्, लोट्, लङ् और विधि० में दिवादिगण आत्मनेपद के तुल्य। लिट्, लुट् आदि आर्धधातुक लकारों में प्रायः भ्वादिगण आत्मनेपद के तुल्य।

७५२. भावकर्मणोः (१–३–१३)

भाववाच्य और कर्मवाच्य में लकार के स्थान में आत्मनेपद के प्रत्यय होते हैं।

७५३. सार्वधातुके यक् (३–१–६७)

भाववाच्य और कर्मवाच्य में सार्वधातुक लकारों (लट् आदि) में धातु से यक् (य) प्रत्यय होता है। यक् कित् है, अतः धातु को गुण नहीं होगा।

भाव का अर्थ क्रिया है। उस क्रिया का भावार्थक लकार से अनुवाद किया जाता है। युष्मद् और अस्मद् शब्दों से समानाधिकरणता (एक में होना) नहीं होने से शेषे प्रथमः (३८४) से प्रथम पुरुष होता है। तिङ् के द्वारा क्रिया का अर्थ बताया

जाता है, वह द्रव्यस्वरूप नहीं है, अतः द्वित्व और बहुत्व की प्रतीति न होने से द्विवचन और बहुवचन नहीं होगा। सामान्य रूप से एकवचन होता है।

त्वया मया अन्यैश्च भूयते (तेरे द्वारा, मेरे द्वारा और अन्यों के द्वारा हुआ जाता है)—भू + लट् प्र० १ भाववाच्य। आत्मनेपद, यक्, केवल प्रथमपुरुष एक० होगा। बभूवे—भू + लिट् प्र० १ भाव०। द्वित्व, अभ्यासकार्य, वुक् (व्) आगम।

भू (होना) भाववाच्य—भूयते। बभूवे। भाविता, भविता। भाविष्यते, भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट। अभावि। अभाविष्यत, अभविष्यत।

७५४. स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च (६–४–६२)

उपदेश (मूलरूप) में अजन्त धातुओं तथा हन्, ग्रह् और दृश् धातुओं को भाववाच्य और कर्मवाच्य में विकल्प से चिण् के तुल्य अंग को कार्य होता है, बाद में स्य, सिच्, सीयुट् और तास् हों तो, तथा स्य सिच् आदि को इट् (इ) भी होता है। सूचना—भाववाच्य और कर्मवाच्य में लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् में इट् (इ) होगा और चिण्वद्भाव होने से प्रत्यय को णित् मानकर यथाप्राप्त गुण या वृद्धि होंगे। भू धातु में ऊ को वृद्धि औ होगी। जहाँ पर चिण्वद्भाव और इट् नहीं होगा, वहाँ पर सेट् धातुओं में इट् होगा, अनिट् में नहीं। भाविता, भविता—भू + लुट् प्र० १। चिण्वद्भाव और इट् होने पर वृद्धि और औ को आव्। अभावपक्ष में आर्धधातुकस्ये० (४००) से इट्।

७५५. चिण् भावकर्मणोः (३–१–६६)

च्लि को चिण् (इ) होता है, भाववाच्य और कर्मवाच्य का त शब्द बाद में हो तो। अभावि—भू + लुङ् प्र० १ भाव०। च्लि को इस सूत्र से चिण् (इ), उ को वृद्धि और आव् आदेश। चिणो लुक् (६४१) से त का लोप।

अनु + भू (अनुभव करना)। सूचना—१. यह अनु उपसर्ग के कारण सकर्मक है, अतः कर्मवाच्य में प्रत्यय होंगे। इसके रूप सभी पुरुषों और वचनों में चलेंगे। जैसे—अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च (चैत्र के द्वारा, तेरे और मेरे द्वारा आनन्द अनुभव किया जाता है)। २. लट्—अनुभूयते, अनुभूयेते, अनुभूयन्ते। (त्वम्) अनुभूयसे, (अहम्) अनुभूये। लिट्—अनुबभूवे। लुट्—अनुभाविता, अनुभविता। लुङ्—अन्वभावि (५), अन्वभाविषाताम्-अन्वभविषाताम, अन्वभाविषत-अन्वभविषत।

भावि (भू + णिच्, होने के लिए प्रेरित करना)। सूचना—१. णिजन्त से भावकर्म प्रयोग। २. लट् आदि चार लकारों में णेरनिटि (५२८) से णि का लोप। ३. लिट् में आम्, णि को अया० (५२५) से अय्, कृ भू अस् का अनुप्रयोग,

आत्मनेपद लिट्। ४. लुट् आदि में चिण्वद् इट्, इट् को असिद्ध मानकर णि का लोप। लुङ् में णि का लोप। ५. भाव्यते। भावयांचक्रे, भावयांबभूवे, भावयामासे। भाविता, भावयिता। भाविष्यते, भावयिष्यते। अभाव्यत। भाव्येत। भाविषीष्ट, भावयिषीष्ट। अभावि (५), अभाविषाताम्-अभावयिषाताम् प्र० २। अभाविष्यत, अभावयिष्यत।

बुभूष (भू+सन्, होने की इच्छा करना)। सूचना—१.—लट् आदि में अतो लोपः (४६९) से ष के अ का लोप। २. बुभूष्यते। बुभूषांचक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। लुङ्—अबुभूषिष्ट (५)।

बोभूय (भू+यङ्, बार बार होना)। सूचना—१. लट् आदि में अतो लोपः (४६९) से य के अ का लोप। २. बोभूय्यते। बोभूयांचक्रे। बोभूयिता। बोभूयिष्यते। लुङ्—अबोभूयिष्ट (५)।

बोभू (भू+यङ्लुक्, बार बार होना)। बोभूयते। बोभवांचक्रे। बोभविता। बोभविष्यते। लुङ्—अबोभूविष्ट (५)।

स्तु (स्तुति करना)। सूचना—१. लट् आदि में अकृत्० (४८२) से उ को दीर्घ ऊ। २. स्तूयते (विष्णुः)। तुष्टुवे। स्ताविता, स्तोता। स्ताविष्यते, स्तोष्यते। लुङ्-अस्तावि, अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम् प्र० २।

ऋ गतौ (जाना)। सूचना—१. लट् आदि में गुणोऽर्ति० (४९७) से गुण होकर ऋ को अर्। २. अर्यते। आरे। आरिता, अर्ता। लुङ्—आरि (४, ५)।

स्मृ (स्मरण करना)। सूचना—१. लट् आदि में गुणोऽर्ति० (४९७) से गुण। २. स्मर्यते। सस्मरे। स्मारिता, स्मर्ता। लुङ्—अस्मारि (४, ५)।

स्रंस् (गिरना)। सूचना—१. लट् आदि में अनिदितां० (३३४) से न् का लोप। २. स्रस्यते। सस्रंसे। स्रंसिता। लुङ्—अस्रंसिष्ट (५)।

नन्द् (टुनदि, समृद्ध होना)। १. यह इदित् है, अतः इसमें अनिदितां० (३३४) से न् का लोप नहीं होगा। २. नन्द्यते। ननन्दे। नन्दिता। लुङ्—अनन्दि (५)।

यज् (यज्ञ करना)। सूचना—१. लट् आदि में वचिस्वपि० (५४६) से संप्रसारण। य को इ। २. इज्यते। ईजे। यष्टा। लुङ्-अयाजि (४), अयक्षाताम् प्र० २।

७५६. तनोतेर्यकि (६-४-४४)

तन् धातु के न् को विकल्प से आ आदेश होता है, बाद में यक् (य) हो तो। तन् (विस्तार करना)। सूचना—१. लट् आदि में विकल्प से न् को आ। २. तायते, तन्यते। तेने। तनिता। लुङ्—अतानि (५)।

७५७. तपोऽनुतापे च (३-१-६५)

तप् धातु के बाद च्लि को चिण् (इ) नहीं होता है, कर्मकर्ता में और अनुताप (पश्चात्ताप) अर्थ में। अनु+तप् (पश्चात्ताप करना)। अनुतप्यते। लुङ्—अन्वतप्त

पापेन (पापी के द्वारा पश्चात्ताप किया गया)—अनु + तप् + लुङ् प्र० १। च्लि को चिण् न होने से सिच् होगा। झलो झलि (४७७) से स् का लोप।

दा (देना)। सूचना—१. लट् आदि में घुमास्था० (५८८) से आ को ई। २. लुट् आदि में चिण्वद् इट् होने पर बीच में य् और लगेगा। ३. दीयते। ददे। दायिता, दाता। दायिष्यते, दास्यते। आशी०—दायिषीष्ट, दासीष्ट। लुङ्—अदायि (४, ५), अदायिषाताम्-अदिषाताम् प्र० २।

धा (धारण करना, पोषण करना)। सूचना—१. दा के तुल्य रूप बनेंगे। २. धीयते। दधे। धायिता, धाता। लुङ्—अधायि।

७५८. आतो युक् चिण्कृतोः (७-३-३३)

आकारान्त धातु को युक् (य्) आगम होता है, बाद में चिण् और ञित् णित् प्रत्यय हो तो। दायिता, दाता—दा + लुट् प्र० १। विकल्प से युक् (य्)।

७५९. भञ्जेश्च चिणि (६-४-३३)

भञ्ज् धातु के न् का लोप विकल्प से होता है, बाद में चिण् हो तो। भञ्ज् (तोड़ना)। सूचना—१. लट् आदि में अनिदितां० (३३४) से न् का लोप। २. भज्यते। लुङ्—अभाजि, अभञ्जि। न् का लोप होने पर अत उपधायाः (४५४) से अ को आ वृद्धि।

७६०. विभाषा चिण्णमुलोः (७-१-६९)

लभ् धातु को विकल्प से नुम् (न्) का आगम होता है, बाद में चिण् और णमुल् हो तो। लभ् (पाना)। लभ्यते। लुङ्-अलम्भि, अलाभि। चिण् होने पर नुम् (न्), न् को अनुस्वार और परसवर्ण से म्। पक्ष में अ को उपधा वृद्धि।

भावकर्म-प्रक्रिया समाप्त।

---

१०. कर्मकर्तृ-प्रक्रिया प्रारम्भ

सूचना—१. इसमें कार्य की अत्यन्त सुकरता बताने के लिए कर्म को ही कर्ता के तुल्य प्रयोग करते हैं। इसलिए इस प्रक्रिया का नाम कर्मकर्तृ-प्रक्रिया है। २. जब कर्म ही कर्ता के रूप में कहना अभीष्ट होता है तब सकर्मक धातुएँ भी अकर्मक हो जाती हैं। अतः उनसे कर्तृवाच्य और भाववाच्य में प्रत्यय होते हैं। ३. इस प्रक्रिया में भी भावकर्मप्रक्रिया के तुल्य यक्, आत्मनेपद, चिण् और चिण्वद् इट्, ये कार्य होते हैं। ४. जैसे—पच्यते फलम् (फल स्वयं पक रहा है), भिद्यते काष्ठम् (लकड़ी स्वयं फट रही है)।

७६१. कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः (३-१-८७)

कर्मस्थ क्रिया के तुल्य क्रिया वाला कर्ता कर्मवत् होता है। अर्थात् कर्मकर्ता में भी कर्मवाच्य के तुल्य कार्य होते हैं। अतः कर्मकर्ता में भी यक्, आत्मनेपद, चिण् और चिण्वद् इट् होते हैं। पच्यते फलम् (फल स्वयं पक रहा है)—इसमें यक् (य) हुआ है। अपाचि-पच् + लुङ् प्र० १। चिण् और उपधा के अ को वृद्धि। भिद्यते काष्ठम् (लकड़ी स्वयं फट रही है)—इसमें यक्। अभेदि-भिद् + लुङ् प्र० १। चिण्, उपधा को गुण। भाववाच्य में—भिद्यते काष्ठेन। अनुक्त कर्ता में तृतीया।

कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्त

---

११. लकारार्थ-प्रक्रिया प्रारम्भ

७६२. अभिज्ञावचने लृट् (३-२-११२)

स्मरण-वाचक कोई पद पहले हो तो अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है। यह सूत्र लङ् का अपवाद है। वस (वस्) निवासे (रहना)—स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः (हे कृष्ण, तुम्हें स्मरण है कि हम लोग गोकुल में रहते थे)—स्मरणार्थक स्मृ धातु पहले होने से वत्स्यामः में लृट्। वस् + लृट् उ० ३। इसी प्रकार बुध्यसे, चेतयसे आदि पद पहले होंगे तो भी लृट् होगा।

७६३. न यदि (३-२-११३)

यदि 'यत्' का प्रयोग होगा तो लृट् नहीं होगा। अभिजानासि कृष्ण यद् वने अभुञ्ज्महि (कृष्ण, तुम्हें स्मरण है कि हमने वन में खाना खाया था)—यत् का प्रयोग होने से लृट् लकार नहीं हुआ। भुज् + लङ् + उ० ३।

७६४. लट् स्मे (३-२-११८)

'स्म' के योग में परोक्ष अनद्यतन भूत में लट् लकार होता है। यह लिट् का अपवाद सूत्र है। यजति स्म युधिष्ठिरः (युधिष्ठिर यज्ञ करता था)—स्म के कारण यजति में लट् लकार हुआ है।

७६५. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा (३-३-१३१)

वर्तमान काल में जो प्रत्यय कहे गए हैं, वे वर्तमान के समीपवर्ती भूत और भविष्यत् में भी विकल्प से होते हैं। जैसे—कदाऽऽगतोऽसि ? (कब आए थे ?)—अयम् आगच्छामि, अयम् आगमं वा (यह आ ही रहा हूँ, यह आया हूँ)—यहाँ पर भूतकाल के अर्थ में लट् और लुङ्। कदा गमिष्यसि ? (कब जाओगे ?)—

एष गच्छामि, एष गमिष्यामि वा (अभी जाता हूँ, अभी जाऊँगा)। भविष्यत् के अर्थ में लट् और लृट्।

७६६. हेतुहेतुमतोर्लिङ् (३-३-१५६)

हेतु (कारण) और हेतुमान् (कार्य या फल) अर्थ में विद्यमान धातुओं से भविष्यत् अर्थ में विकल्प से विधिलिङ् होता है, पक्ष में लृट् लकार होता है। कृष्णं नमेत् चेत् सुखं यायात्, कृष्णं नंस्यसि चेत् सुखं यास्यसि (कृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख पाएगा)—कारण और कार्य होने से विधिलिङ् और लृट् लकार हैं। भविष्यत्येवेष्यते—यह नियम भविष्यत् में ही लगता है। अतः यहाँ पर नहीं होगा—हन्तीति पलायते (वह मारता है, इसलिए भागता है) । विधिनिमन्त्रणा० (४२४) इन अर्थों में विधिलिङ् होता है—(१) विधि-प्रेरणा देना, अपने से छोटे (निकृष्ट) नौकर आदि को किसी काम में लगाना। यजेत-यज्ञ करे। (२) निमन्त्रण-नियुक्त करना, आवश्यक श्राद्ध-भोजन आदि में दौहित्र (धेवता) आदि को लगाना। इह भुञ्जीत—आप यहाँ भोजन कीजिए। (३) आमन्त्रण-इच्छानुसार काम करने की अनुमति देना। इहासीत—आप यहाँ बैठिए। इसमें इच्छानुसार काम करने की अनुमति है। (४) अधीष्ट—सत्कारपूर्वक व्यापार, सत्कारपूर्वक किसी को किसी काम में लगाना। पुत्रम् अध्यापयेद् भवान् (आप पुत्र को पढ़ाइए)। (५) संप्रश्न—संप्रधारण, किसी बात के निर्णयार्थ प्रश्न करना। किं भो वेदम् अधीयीय उत तर्कम् (श्रीमन्, मैं वेद पढ़ूँ या तर्कशास्त्र ?)। (६) प्रार्थना—याचना करना, माँगना। भो भोजनं लभेय (श्रीमन्, मुझे भोजन मिल जाय)। इन अर्थों में ही लोट् लकार भी होता है।

लकारार्थ प्रक्रिया समाप्त

तिङन्त-प्रकरण समाप्त

कृदन्त-प्रकरण प्रारम्भ

१. कृत्य-प्रक्रिया

आवश्यक-निर्देश

सूचना—इन निर्देशों को विशेष सावधानी से स्मरण कर लें। पूरे कृदन्त-प्रकरण में इन निर्देशों की आवश्यकता होगी। जो सामान्य नियम यहाँ पर दिए गए हैं, उनका आगे बार-बार उल्लेख नहीं किया गया है।

कृत् और कृदन्त—(कृदतिङ् , ३०२) धातु के बाद में होने वाले, तिङ् (ति, तः, अन्ति आदि) से भिन्न, प्रत्ययों को कृत् कहते हैं। इन प्रत्ययों के द्वारा संज्ञा, विशेषण या अव्यय शब्द बनते हैं। ये कृत् प्रत्यय जिन शब्दों के अन्त में होते हैं,

७६१. कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः (३-१-८७)

कर्मस्थ क्रिया के तुल्य क्रिया वाला कर्ता कर्मवत् होता है। अर्थात् कर्मकर्ता में भी कर्मवाच्य के तुल्य कार्य होते हैं। अतः कर्मकर्ता में भी यक्, आत्मनेपद, चिण् और चिण्वद् इट् होते हैं। पच्यते फलम् (फल स्वयं पक रहा है)—इसमें यक् (य) हुआ है। अपाचि-पच् + लुङ् प्र० १। चिण् और उपधा के अ को वृद्धि। भिद्यते काष्ठम् (लकड़ी स्वयं फट रही है)—इसमें यक्। अभेदि-भिद् + लुङ् प्र० १। चिण्, उपधा को गुण। भाववाच्य में—*भिद्यते काष्ठेन*। *अनुक्त कर्ता में तृतीया*।

कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्त

---

११. लकारार्थ-प्रक्रिया प्रारम्भ

७६२. अभिज्ञावचने लृट् (३-२-११२)

स्मरण-वाचक कोई पद पहले हो तो अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है। यह सूत्र लङ् का अपवाद है। वस (वस्) निवासे (रहना)—स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः (हे कृष्ण, तुम्हें स्मरण है कि हम लोग गोकुल में रहते थे)—*स्मरणार्थक स्मृ धातु पहले होने से वत्स्यामः में लृट्। वस् + लृट् उ० ३। इसी प्रकार* बुध्यसे, चेतयसे आदि पद पहले होंगे तो भी लृट् होगा।

७६३. न यदि (३-२-११३)

यदि 'यत्' का प्रयोग होगा तो लृट् नहीं होगा। अभिजानासि कृष्ण यद् वने अभुञ्ज्महि (कृष्ण, तुम्हें स्मरण है कि हमने वन में खाना खाया था)—यत् का प्रयोग होने से लृट् लकार नहीं हुआ। भुज् + लङ् + उ० ३।

७६४. लट् स्मे (३-२-११८)

'स्म' के योग में परोक्ष अनद्यतन भूत में लट् लकार होता है। यह लिट् का अपवाद सूत्र है। यजति स्म युधिष्ठिरः (युधिष्ठिर यज्ञ करता था)—स्म के कारण यजति में लट् लकार हुआ है।

७६५. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा (३-३-१३१)

वर्तमान काल में जो प्रत्यय कहे गए हैं, वे वर्तमान के समीपवर्ती भूत और भविष्यत् में भी विकल्प से होते हैं। *जैसे—कदाऽऽगतोऽसि ?* (कब आए थे ?)—अयम् आगच्छामि, अयम् आगमं वा (यह आ ही रहा हूँ, यह आया हूँ)—यहाँ पर भूतकाल के अर्थ में लट् और लुङ्। कदा गमिष्यसि ? (कब जाओगे ?)—

एष गच्छामि, एष गमिष्यामि वा (अभी जाता हूँ, अभी जाऊँगा)। भविष्यत् के अर्थ में लट् और लृट्।

७६६. हेतुहेतुमतोर्लिङ् (३-३-१५६)

हेतु (कारण) और हेतुमान् (कार्य या फल) अर्थ में विद्यमान धातुओं से भविष्यत् अर्थ में विकल्प से विधिलिङ् होता है, पक्ष में लृट् लकार होता है। कृष्णं नमेत् चेत् सुखं यायात्, कृष्णं नंस्यसि चेत् सुखं यास्यसि (कृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख पाएगा)—कारण और कार्य होने से विधिलिङ् और लृट् लकार हैं। भविष्यत्येवेष्यते—यह नियम भविष्यत् में ही लगता है। अतः यहाँ पर नहीं होगा—हन्तीति पलायते (वह मारता है, इसलिए भागता है)। विधिनिमन्त्रणा० (४२४) इन अर्थों में विधिलिङ् होता है—(१) विधि-प्रेरणा देना, अपने से छोटे (निकृष्ट) नौकर आदि को किसी काम में लगाना। यजेत–यज्ञ करे। (२) निमन्त्रण–नियुक्त करना, आवश्यक श्राद्ध-भोजन आदि में दौहित्र (धेवता) आदि को लगाना। इह भुञ्जीत—आप यहाँ भोजन कीजिए। (३) आमन्त्रण–इच्छानुसार काम करने की अनुमति देना। इहासीत—आप यहाँ बैठिए। इसमें इच्छानुसार काम करने की अनुमति है। (४) अधीष्ट—सत्कारपूर्वक व्यापार, सत्कारपूर्वक किसी को किसी काम में लगाना। पुत्रम् अध्यापयेद् भवान् (आप पुत्र को पढ़ाइए)। (५) संप्रश्न—संप्रधारण, किसी बात के निर्णयार्थ प्रश्न करना। किं भो वेदम् अधीयीय उत तर्कम् (श्रीमन्, मैं वेद पढ़ूँ या तर्कशास्त्र ?)। (६) प्रार्थना—याचना करना, माँगना। भो भोजनं लभेय (श्रीमन्, मुझे भोजन मिल जाय)। इन अर्थों में ही लोट् लकार भी होता है।

लकारार्थ प्रक्रिया समाप्त

तिङन्त-प्रकरण समाप्त

कृदन्त-प्रकरण प्रारम्भ

१. कृत्य-प्रक्रिया

आवश्यक-निर्देश

सूचना—इन निर्देशों को विशेष सावधानी से स्मरण कर लें। पूरे कृदन्त-प्रकरण में इन निर्देशों की आवश्यकता होगी। जो सामान्य नियम यहाँ पर दिए गए हैं, उनका आगे बार-बार उल्लेख नहीं किया गया है।

कृत् और कृदन्त—(कृदतिङ्, ३०२) धातु के बाद में होने वाले, तिङ् (ति, तः, अन्ति आदि) से भिन्न, प्रत्ययों को कृत् कहते हैं। इन प्रत्ययों के द्वारा संज्ञा, विशेषण या अव्यय शब्द बनते हैं। ये कृत् प्रत्यय जिन शब्दों के अन्त में होते हैं,

उन्हें कृदन्त कहते हैं। जैसे—तृच् (तृ) कृत् प्रत्यय है और कृ+तृ=कर्तृ, यह कृदन्त शब्द है।

२. कृत्य और कृत्—कृत् प्रत्ययों के दो भेद हैं:—(१) कृत्य, (२) कृत्। (१) कृत्य प्रत्यय—(तयोरेव कृत्य०, ७७१) तव्यत् (तव्य), अनीयर् (अनीय), यत् (य), क्यप् (य) आदि को कृत्य प्रत्यय कहते हैं। ये प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होते हैं। अतः इन प्रत्ययों के होने पर कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा और क्रिया के लिंग, विभक्ति और वचन कर्म के तुल्य। भाववाच्य में कर्ता में तृतीया और क्रिया में नपुं० एक०। (२) कृत् प्रत्यय—(कर्तरि कृत्, ७७०) कृत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होते हैं। कृत् प्रत्ययों में भी क्त (त) और खल् (अ) अर्थ वाले प्रत्यय कर्मवाच्य या भाववाच्य में होते हैं। कृत् प्रत्ययों के होने पर कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया और क्रिया कर्ता के तुल्य।

३. प्रातिपदिक संज्ञा और प्रत्यय—(क) (कृत्तद्धितसमासाश्च, ११७) सभी कृत्य और कृत् प्रत्ययों को लगाकर बने हुए कृदन्त शब्दों को प्रातिपदिक (स्वतःप्रयोगोपयोगी और सार्थक शब्द) कहते हैं। इन शब्दों से पुं०, स्त्री० या नपुं० में सुप् (स औ आदि) प्रत्यय होते हैं। (ख) (अपदं न प्रयुञ्जीत) व्याकरण के नियमानुसार पद बने हुए ही शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। अतः शब्दों से सुप् प्रत्यय और धातुओं से तिङ् *(ति तः आदि) प्रत्यय लगाकर ही प्रयोग कर सकते हैं।* जैसे—सुबन्त पद—रामः, पुस्तकम्, कर्तारः, दाशरथिः, राजपुरुषः। तिङन्त पद—पठति, सेवते, कारयति, चिकीर्षति, क्रियते, पुत्रीयति। (ग) अव्यय कृत्—कुछ कृत्प्रत्ययान्त शब्द अव्यय हो जाते हैं, अतः उनके बाद सुप् का लोप हो जाता है। जैसे—कर्तुम्, कृत्वा, उपकृत्य।

४. कुछ पारिभाषिक शब्द—*(१) इत्—प्रत्ययों के प्रारम्भ या अन्त में विशेष* उद्देश्य से कुछ वर्ण जुड़े हुए होते हैं, इनका लोप हो जाता है। ऐसे वर्णों या अक्षरों को इत् या अनुबन्ध कहते हैं। जिस प्रत्यय में से जिस वर्ण का लोप होगा, उसे वैसा ही इत् कहेंगे। जैसे—क्त प्रत्यय में से क् इत् है, अतः त को कित् कहेंगे। इसी प्रकार अण् (अ) को णित्, क (अ) को कित्, क्यप् (य) को कित् और पित्। आगे प्रत्येक स्थान पर निर्देश है कि किस प्रत्यय में से क्या शेष रहता है। उसका अभिप्राय यह है कि शेष अक्षर इत् हैं और उनका लोप हुआ है। इन णित्, कित्, कित् आदि के आधार पर ही धातु को गुण, वृद्धि या संप्रसारण होते हैं। (२) उपधा—*(अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा, १७६) अन्तिम अक्षर से पूर्ववर्ती अक्षर को उपधा कहते हैं।* जैसे—पठ् में प का अ, चुर् में चु का उ। (३) टि—(अचोऽन्त्यादि टि, ३९) शब्द या धातु में अन्त की ओर से जहाँ स्वर (अच्) मिलता है, उतना अंश टि होता है, यदि उसके बाद कोई व्यंजन है तो वह स्वर और व्यंजन दोनों टि होंगे। जैसे—जि में इ टि है, पठ् में अठ्, पत् में अत्।

५. गुण, वृद्धि, संप्रसारण—कृत् प्रत्ययों के होने पर इत् (अनुबन्ध) के आधार पर धातुओं में गुण, वृद्धि या संप्रसारण होता है। (१) गुण—गुण कहने पर यह अर्थ होता है:—धातु के अन्तिम इ ई को ए, उ ऊ को ओ और ऋ ॠ को अर्। धातु की उपधा के इ को ए, उ को ओ और ऋ को अर्। इन प्रत्ययों के होने पर गुण होता है:—तुमुन् (तुम्), तव्यत् (तव्य), तव्य, तृच् (तृ), तृन् (तृ), ल्युट (अन), ल्यु (अन), अच् (अ), यत् (य), आदि। जैसे—कृ>कर्तुम्, कर्तव्य, कर्ता। (२) वृद्धि—वृद्धि कहने पर यह अर्थ होता है:—धातु के अन्तिम या उपधा के अ को आ, इ ई को ऐ, उ ऊ को औ, ऋ ॠ को आर्, ए को ऐ, ओ को औ। णित् और ञित् प्रत्ययों के होने पर वृद्धि होती है। जैसे—घञ् (अ), ण्वुल् (अक), णमुल् (अम्) आदि प्रत्यय। जैसे—कृ>कारः, कारकः, कारम् आदि। (३) संप्रसारण—संप्रसारण कहने पर यह अर्थ होता है:—धातु के य् को इ, व् को उ, र् को ऋ। कित् या ङित् प्रत्ययों के होने पर वच्, स्वप्, ग्रह्, प्रच्छ् आदि धातुओं को संप्रसारण होता है। इन प्रत्ययों के होने पर संप्रसारण होता है:—क्त (त), क्तवतु (तवत्), क्त्वा (त्वा), ल्यप् (य), क्तिन् (ति) आदि। जैसे—ब्रू (वच्)>उक्तम्, उक्तवान्, उक्त्वा, प्रोच्य, उक्तिः।

सूचना—ऊपर मूल स्वर दिए गए हैं। दीर्घ, गुण, वृद्धि आदि कहने पर मूल स्वर के नीचे गुण आदि के सामने जो स्वर दिए हैं, वे होंगे।

स्वर—	अ, आ	इ, ई	उ, ऊ	ऋ, ॠ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ
१. दीर्घ	आ	ई	ऊ	ॠ	—	—	—	—	—
२. गुण	अ	ए	ओ	अर्	अल्	ए	—	ओ	—
३. वृद्धि	आ	ऐ	औ	आर्	आल्	ऐ	ऐ	औ	औ

४. संप्रसारण—य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ।

६. गुण—गुण करनेवाले मुख्य सूत्र ये हैं:—१. सार्वधातुकार्धधातुकयोः (३८७) धातु के अन्तिम इ ई को ए, उ ऊ को ओ और ऋ ॠ को अर् होता है, बाद में कोई सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय हो तो। २. पुगन्तलघूपधस्य च (४५०) पुग् (प्) अन्त वाली धातु और उपधा के ह्रस्व इ उ ऋ को गुण होता है, बाद में कोई सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय हो तो।

७. वृद्धि—वृद्धि करने वाले मुख्य सूत्र ये हैं— १. अचो ञ्णिति (१८२) धातु के अन्तिम अच् को वृद्धि होती है, बाद में ञित् और णित् प्रत्यय हो तो। २. अत उपधायाः (४५४) उपधा के अ को वृद्धि (आ) होती है, बाद में ञित् और णित् प्रत्यय हो तो।

८. संप्रसारण—संप्रसारण करने वाले मुख्य सूत्र ये हैं— १. वचिस्वपियजादीनां किति (५४६) वच्, स्वप् और यज् आदि धातुओं को संप्रसारण होता है, बाद में कित् प्रत्यय हो तो। २. ग्रहिज्या० (६३४) इन धातुओं को कित् और ङित् प्रत्यय बाद

में होने पर संप्रसारण होता है–ग्रह्, ज्या, वे, व्यध्, वश, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् और भ्रस्ज्।

९. इत्संज्ञा—इत्संज्ञा करने वाले मुख्य सूत्र ये हैं– १. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (२८) उपदेश (मूलरूप) में अनुनासिक अच् की इत् संज्ञा होती है। सूचना–धातु और प्रत्ययों के अन्तिम स्वर का लोप यह सूत्र करता है। २. हलन्त्यम् (१) अन्तिम हल् की इत्संज्ञा होती है। सूचना–धातु और प्रत्ययों के अन्तिम हल् का लोप इस सूत्र से होता है। ३. आदिर्ञिटुडवः (४६१) धातु के आदि में प्राप्त ञि टु और डु की इत्संज्ञा होती है। ४. षः प्रत्ययस्य (८४०) प्रत्यय के आदि में प्राप्त ष् की इत्संज्ञा होती है। ५. चुटू (१२९) प्रत्यय के आदि में प्राप्त चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है। ६. लशक्वतद्धिते (१३६) तद्धित-भिन्न प्रत्यय के आदि में प्राप्त ल, श, और कवर्ग की इत्संज्ञा होती है। ७. तस्य लोपः (३) जिसकी इत्संज्ञा होती है, उसका लोप हो जाता है।

१०. अव्यय कृत्-प्रत्यय—निम्नलिखित कृत् प्रत्यय अव्यय हैं, इनके रूप नहीं चलते:–१. कृन्मेजन्तः (३६८) म् अन्त वाले और एच् (ए, ओ, ऐ, औ) अन्त वाले कृत् प्रत्यय अव्यय होते हैं। जैसे–तुमुन् (तुम्), णमुल् (अम्), असे, अध्यै आदि। २. क्त्वातोसुन्कसुनः (३६९) ये कृत् प्रत्यय अव्यय हैं–क्त्वा (त्वा), ल्यप् (य), तोसुन् (तोः), कसुन् (अः)।

११. कृत् और तद्धित में अन्तर—१. धातोः (७६७) सभी कृत् और कृत्य प्रत्यय धातु से होते हैं। प्रातिपदिकों (शब्दों) से नहीं। २. तद्धित प्रत्यय धातुओं से नहीं होते हैं, अपि तु प्रातिपदिकों से होते हैं।

१२. रूप-साधना—उदाहरणार्थ एक रूप की सिद्धि दी जाती है। पाठकः (पढ़ने वाला)–पठ् धातु से कर्ता अर्थ में ण्वुल्तृचौ (७८५) से ण्वुल्, पठ्+ण्वुल्, हलन्त्यम् (१) से ण्वुल् के ल् की इत्संज्ञा और चुटू (१२९) से ण् की इत्संज्ञा, तस्य लोपः (३) से ल् और ण् का लोप, पठ्+वु, युवोरनाकौ (७८६) से वु को अक, पठ्+अक, अत उपधायाः (४५४) से पठ् के अ को वृद्धि होकर आ, पाठ्+अक=पाठक, कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा होने से पाठक से स्वौजस्० (११८) से सु, उपदेशे० (२८) से उ की इत्संज्ञा, तस्य लोपः (३) से लोप, ससजुषो रुः (१०५) से स् को रु, रु के उ की भी उपदेशे० (२८) से इत्संज्ञा और तस्य लोपः (३) से लोप, पाठक+र्, खरवसानयोर्विसर्जनीयः (९३) से र् को विसर्ग होकर पाठकः रूप बना। इसी प्रकार अन्य रूपों की सिद्धि करें।

७६७. धातोः (३-१-९१)

(कृदतिङ्, ३०२) कृत् प्रत्यय धातु से ही होते हैं। धातु से होनेवाले तिङ्-भिन्न प्रत्ययों को कृत् प्रत्यय कहते हैं।

७६८. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् (३-१-९४)

इस प्रसंग में असमान अपवाद प्रत्यय सामान्य नियम के विकल्प से बाधक होते हैं। 'स्त्रियां क्तिन्' के अधिकार में यह नियम नहीं लगता।

७६९. कृत्याः (३-१-९५)

ण्वुल्तृचौ (७८५) सूत्र से पहले जो प्रत्यय कहे गये हैं, उन्हें कृत्य प्रत्यय कहते हैं।

७७०. कर्तरि कृत् (३-४-६७)

कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में होते हैं।

७७१. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (३-४-७०)

कृत्य प्रत्यय, क्त प्रत्यय और खल् अर्थ वाले प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होते हैं।

७७२. तव्यत्तव्यानीयरः (३-१-९६)

धातु से तव्यत् (तव्य), तव्य और अनीयर् (अनीय) प्रत्यय होते हैं। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया (तुझे बढ़ना चाहिए)—एध् + तव्य, तव्य से पहले इट् (इ) का आगम। एध् + अनीयर् (अनीय)। एध् धातु अकर्मक है, अतः भाववाच्य में प्रत्यय हैं। भाववाच्य में सामान्यतया नपुंसक लिंग एकवचन होता है। कर्ता अनुक्त होने से 'त्वया' में कर्तृकरणयोस्तृतीया (१२९१) से तृतीया। चेतव्यः चयनीयो वा धर्मस्त्वया (तुझे धर्म-संचय करना चाहिये)। चेतव्यः—चि + तव्य, धातु को गुण। चयनीयः—चि + अनीयर् (अनीय), इ को गुण और ए को अय्। (केलिमर उपसंख्यानम्, वार्तिक) धातु से भाव और कर्म अर्थ में केलिमर् (एलिम) प्रत्यय भी होता है। इसका एलिम शेष रहता है। पचेलिमा माषाः (पकाने योग्य उड़द)—पच् + केलिमर् (एलिम) + प्रथमा बहु०। भिदेलिमाः सरलाः (काटने योग्य सरल या चीड़ के वृक्ष)—भिद् + केलिमर् (एलिम) + प्र० बहु०। पच् और भिद् धातु सकर्मक हैं, अतः कर्म-वाच्य में एलिम प्रत्यय है।

७७३. कृत्यल्युटो बहुलम् (३-३-११३)

कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल (अनेक प्रकार से) होते हैं। "क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव। विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥" बहुल के चार अर्थ या अभिप्राय होते हैं—१. कहीं पर नियम का लगना, २. कहीं नियम का न लगना, ३. कहीं नियम का विकल्प से लगना, ४. कहीं विपरीत ढंग से लगना अर्थात् प्राप्त स्थान पर नियम का न लगना और अप्राप्त स्थान पर लगना। स्नाति अनेन इति स्नानीयं चूर्णम् (जिससे स्नान किया जाता है, ऐसा चूर्ण)। स्नानीयम्—स्ना + अनीय। करण अर्थ में अनीय है। दीयते-

में होने पर संप्रसारण होता है—ग्रह्, ज्या, वे, व्यध्, वश, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् और भ्रस्ज्।

९. इत्संज्ञा—इत्संज्ञा करने वाले मुख्य सूत्र ये हैं— १. उपदेशेऽजनुनासिक इत् (२८) उपदेश (मूलरूप) में अनुनासिक अच् की इत् संज्ञा होती है। सूचना—धातु और प्रत्ययों के अन्तिम स्वर का लोप यह सूत्र करता है। २. हलन्त्यम् (१) अन्तिम हल् की इत्संज्ञा होती है। सूचना—धातु और प्रत्ययों के अन्तिम हल् का लोप इस सूत्र से होता है। ३. आदिर्ञिटुडवः (४६१) धातु के आदि में प्राप्त ञि टु और डु की इत्संज्ञा होती है। ४. षः प्रत्ययस्य (८४०) प्रत्यय के आदि में प्राप्त ष् की इत्संज्ञा होती है। ५. चुटू (१२९) प्रत्यय के आदि में प्राप्त चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है। ६. लशक्वतद्धिते (१३६) तद्धित-भिन्न प्रत्यय के आदि में प्राप्त ल, श, और कवर्ग की इत्संज्ञा होती है। ७. तस्य लोपः (३) जिसकी इत्संज्ञा होती है, उसका लोप हो जाता है।

१०. अव्यय कृत्-प्रत्यय—निम्नलिखित कृत् प्रत्यय अव्यय हैं, इनके रूप नहीं चलते:—१. कृन्मेजन्तः (३६८) म् अन्त वाले और एच् (ए, ओ, ऐ, औ) अन्त वाले कृत् प्रत्यय अव्यय होते हैं। जैसे—तुमुन् (तुम्), णमुल् (अम्), वसे, अध्यै आदि। २. क्त्वातोसुन्कसुनः (३६९) ये कृत् प्रत्यय अव्यय हैं—क्त्वा (त्वा), ल्यप् (य), तोसुन् (तोः), कसुन् (अः)।

११. कृत् और तद्धित में अन्तर—१. धातोः (७६७) सभी कृत् और कृत्य प्रत्यय धातु से होते हैं। प्रातिपदिकों (शब्दों) से नहीं। २. तद्धित प्रत्यय धातुओं से नहीं होते हैं, अपि तु प्रातिपदिकों से होते हैं।

१२. रूप-साधना—उदाहरणार्थ एक रूप की सिद्धि दी जाती है। पाठकः (पढ़ने वाला)—पठ् धातु से कर्ता अर्थ में ण्वुल्तृचौ (७८५) से ण्वुल्, पठ्+ण्वुल्, हलन्त्यम् (१) से ण्वुल् के ल् की इत्संज्ञा और चुटू (१२९) से ण् की इत्संज्ञा, तस्य लोपः (३) से ल् और ण् का लोप, पठ्+वु, युवोरनाकौ (७८६) से वु को अक, पठ्+अक, अत उपधायाः (४५४) से पठ् के अ को वृद्धि होकर आ, पाठ्+अक=पाठक, कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा, प्रातिपदिक संज्ञा होने से पाठक से स्वौजस्० (११८) से सु, उपदेशे० (२८) से उ की इत्संज्ञा, तस्य लोपः (३) से लोप, ससजुषो रुः (१०५) से स् को रु, रु के उ की भी उपदेशे० (२८) से इत्संज्ञा और तस्य लोपः (३) से लोप, पाठक+र्, खरवसानयोर्विसर्जनीयः (९३) से र् को विसर्ग होकर पाठकः रूप बना। इसी प्रकार अन्य रूपों की सिद्धि करें।

७६७. धातोः (३-१-९१)

(कृदतिङ्, ३०२) कृत् प्रत्यय धातु से ही होते हैं। धातु से होनेवाले तिङ्-भिन्न प्रत्ययों को कृत् प्रत्यय कहते हैं।

७६८. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् (३-१-९४)

इस प्रसंग में असमान अपवाद प्रत्यय सामान्य नियम के विकल्प से बाधक होते हैं। 'स्त्रियां क्तिन्' के अधिकार में यह नियम नहीं लगता।

७६९. कृत्याः (३-१-९५)

ण्वुल्तृचौ (७८५) सूत्र से पहले जो प्रत्यय कहे गये हैं, उन्हें कृत्य प्रत्यय कहते हैं।

७७०. कर्तरि कृत् (३-४-६७)

कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में होते हैं।

७७१. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (३-४-७०)

कृत्य प्रत्यय, क्त प्रत्यय और खल् अर्थ वाले प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होते हैं।

७७२. तव्यत्तव्यानीयरः (३-१-९६)

धातु से तव्यत् (तव्य), तव्य और अनीयर् (अनीय) प्रत्यय होते हैं। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया (तुझे बढ़ना चाहिए)—एध्+तव्य, तव्य से पहले इट् (इ) का आगम। एध्+अनीयर् (अनीय)। एध् धातु अकर्मक है, अतः भाववाच्य में प्रत्यय है। भाववाच्य में सामान्यतया नपुंसक लिंग एकवचन होता है। कर्ता अनुक्त होने से 'त्वया' में कर्तृकरणयोस्तृतीया (१२९१) से तृतीया। चेतव्यः चयनीयो वा धर्मस्त्वया (तुझे धर्म-संचय करना चाहिये)। चेतव्यः—चि+तव्य, धातु को गुण। चयनीयः—चि+अनीयर् (अनीय), इ को गुण और ए को अय्। (केलिमर उपसंख्यानम्, वार्तिक) धातु से भाव और कर्म अर्थ में केलिमर् (एलिम) प्रत्यय भी होता है। इसका एलिम शेष रहता है। पचेलिमा माषाः (पकाने योग्य उड़द)—पच्+केलिमर् (एलिम)+प्रथमा बहु०। भिदेलिमाः सरलाः (काटने योग्य सरल या चीड़ के वृक्ष)—भिद्+ केलिमर् (एलिम)+प्र० बहु०। पच् और भिद् धातु सकर्मक हैं, अतः कर्मवाच्य में एलिम प्रत्यय है।

७७३. कृत्यल्युटो बहुलम् (३-३-११३)

कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल (अनेक प्रकार से) होते हैं। "क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव। विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥" बहुल के चार अर्थ या अभिप्राय होते हैं—१. कहीं पर नियम का लगना, २. कहीं नियम का न लगना, ३. कहीं नियम का विकल्प से लगना, ४. कहीं विपरीत ढंग से लगना अर्थात् प्राप्त स्थान पर नियम का न लगना और अप्राप्त स्थान पर लगना। स्नाति अनेन इति स्नानीयं चूर्णम् (जिससे स्नान किया जाता है, ऐसा चूर्ण)। स्नानीयम्—स्ना+अनीय। करण अर्थ में अनीय है। दीयते-

उसमें दानीयो विप्रः (जिसे दान दिया जाता है, ऐसा ब्राह्मण)। दानीयः—दा + अनीय। संप्रदान अर्थ में अनीय है।

७७४. अचो यत् (३–१–९७)

अजन्त धातु से यत् (य) प्रत्यय होता है। चेयम् (चुनने योग्य) चि + य, इ को गुण।

७७५. ईद्यति (६–४–६५)

यत् (य) प्रत्यय बाद में होने पर धातु के आ को ई हो जाता है। देयम् (देने योग्य या देना चाहिए)—दा + यत् (य), आ को इस सूत्र से ई, उसको गुण होकर ए। ग्लेयम् (ग्लानि करनी चाहिए)—ग्लै> ग्ला + य। आ को ई और ई को गुण ए।

७७६. पोरदुपधात् (३–१–९८)

धातु के अन्त में पवर्ग हो और उपधा में अ हो तो यत् (य) प्रत्यय होता है, ण्यत् (य) नहीं। शप्यम् (शाप के योग्य)—शप् + यत् (य)। लभ्यम् (पाना चाहिए)—लभ् + यत् (य)।

७७७. एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् (३–१–१०९)

इन धातुओं से क्यप् (य) प्रत्यय होता है-इण् (इ), स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष्।

७७८. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६–१–७१)

धातु के ह्रस्व स्वर के बाद तुक् (त्) हो जाता है, यदि बाद में कोई पित् कृत् प्रत्यय (जैसे क्यप्, ल्यप्) हो तो। इत्यः (जाने योग्य)—इ + क्यप् (य)। एतिस्तु॰ से क्यप् और इससे बीच में त्। स्तुत्यः (स्तुति के योग्य)—स्तु + क्यप् (य)। एतिस्तु॰ से क्यप् और इससे बीच में त्।

७७९. शास इदङ्हलोः (६–४–३४)

शास् धातु के आ को इ हो जाता है, बाद में अङ् (अ) या हलादि कित् ङित् प्रत्यय हो तो। शिष्यः (छात्र, अनुशासन के योग्य)—शास् + क्यप् (य)। एतिस्तु॰ से क्यप् और इससे आ को इ, शासिवसि॰ से स् को ष्। वृत्यः (वरण के योग्य)—वृ + क्यप् (य)। एतिस्तु॰ से क्यप्, ह्रस्वस्य॰ से बीच में त्। आदृत्यः (आदरणीय)—आ + दृ + क्यप्। एतिस्तु॰ से क्यप्, ह्रस्वस्य॰ से बीच में त्। जुष्यः (सेवन के योग्य)—जुष् + क्यप् (य)। एतिस्तु॰ से क्यप्।

७८०. मृजेर्विभाषा (३-१-११३)

मृज् धातु से विकल्प से क्यप् (य) होता है। मृज्यः (साफ करने योग्य)-मृज्+क्यप् (य)। कित् होने से गुण नहीं।

७८१. ऋहलोर्ण्यत् (३-१-१२४)

ऋ अन्तवाली और हलन्त धातुओं से ण्यत् (य) होता है। णित् होने से धातु को वृद्धि या गुण। कार्यम् (करना चाहिए)-कृ+ण्यत् (य)। ऋ को वृद्धि होकर आर्। हार्यम् (हरने योग्य)-हृ+ण्यत्। ऋ को आर्। धार्यम् (धारण करने योग्य)-धृ+ण्यत्। ऋ को आर्।

७८२. चजोः कु घिण्ण्यतोः (७-३-५२)

च् को क् और ज् को ग् होता है, बाद में घित् (जैसे घञ्) या ण्यत् प्रत्यय हो तो।

७८३. मृजेर्वृद्धिः (७-२-११४)

मृज् धातु के ऋ को आर् हो जाता है, बाद में कोई सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय हो तो। मार्ग्यः (शुद्ध करने योग्य)-मृज्+ण्यत् (य)। ऋहलो० से ण्यत्, चजोः० से ज् को ग्, मृजे० से ऋ को आर्।

७८४. भोज्यं भक्ष्ये (७-३-६९)

भक्ष्य अर्थ में भुज् धातु का भोज्य रूप बनता है। अन्यत्र भोग्यम्। भोज्यम् (खाने योग्य)—भुज्+ण्यत्। उ को गुण ओ। चजोः० से ज् को ग् नहीं हुआ। भोग्यम् (उपभोग के योग्य)—भुज्+ण्यत् (य)। गुण और ज् को ग्।

कृत्य-प्रक्रिया समाप्त

---

२. पूर्व-कृदन्त प्रारम्भ

७८५. ण्वुल्तृचौ (३-१-१३३)

धातु से कर्ता अर्थ में ण्वुल् और तृच् (तृ) प्रत्यय होते हैं। ण्वुल् का अक शेष रहता है।

७८६. युवोरनाकौ (७-१-१)

यु को अन होता है और वु को अक। जैसे-ल्युट् के यु को अन और ण्वुल् के वु को अक। कारकः (करने वाला)-कृ+ण्वुल् (अक)। ऋ को वृद्धि आर्। कर्ता (करने वाला)-कृ+तृच् (तृ)। ऋ को गुण अर्।

ऽस्मै दानीयो विप्रः (जिसे दान दिया जाता है, ऐसा ब्राह्मण)। दानीयः—दा + अनीय। संप्रदान अर्थ में अनीय है।

७७४. अचो यत् (३-१-९७)

अजन्त धातु से यत् (य) प्रत्यय होता है। चेयम् (चुनने योग्य) चि + य, इ को गुण।

७७५. ईद्यति (६-४-६५)

यत् (य) प्रत्यय बाद में होने पर धातु के आ को ई हो जाता है। देयम् (देने योग्य या देना चाहिए)—दा + यत् (य), आ को इस सूत्र से ई, उसको गुण होकर ए। ग्लेयम् (ग्लानि करनी चाहिए)—ग्लै> ग्ला + य। आ को ई और ई को गुण ए।

७७६. पोरदुपधात् (३-१-९८)

धातु के अन्त में पवर्ग हो और उपधा में अ हो तो यत् (य) प्रत्यय होता है, ण्यत् (य) नहीं। शप्यम् (शाप के योग्य)—शप् + यत् (य)। लभ्यम् (पाना चाहिए)—लभ् + यत् (य)।

७७७. एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् (३-१-१०९)

इन धातुओं से क्यप् (य) प्रत्यय होता है-इण् (इ), स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष्।

७७८. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६-१-७१)

धातु के ह्रस्व स्वर के बाद तुक् (त्) हो जाता है, यदि बाद में कोई पित् कृत् प्रत्यय (जैसे क्यप्, ल्यप्) हो तो। इत्यः (जाने योग्य)-इ + क्यप् (य)। एतिस्तु० से क्यप् और इससे बीच में त्। स्तुत्यः (स्तुति के योग्य)-स्तु + क्यप् (य)। एतिस्तु० से क्यप् और इससे बीच में त्।

७७९. शास इदङ्हलोः (६-४-३४)

शास् धातु के आ को इ हो जाता है, बाद में अङ् (अ) या हलादि कित् ङित् प्रत्यय हो तो। शिष्यः (छात्र, अनुशासन के योग्य)—शास् + क्यप् (य)। एतिस्तु० से क्यप् और इससे आ को इ, शासिवसि० से स् को ष्। वृत्यः (वरण के योग्य)-वृ + क्यप् (य)। एतिस्तु० से क्यप्, ह्रस्वस्य० से बीच में त्। आदृत्यः (आदरणीय)-आ + दृ + क्यप्। एतिस्तु० से क्यप्, ह्रस्वस्य० से बीच में त्। जुष्यः (सेवन के योग्य)-जुष् + क्यप् (य)। एतिस्तु० से क्यप्।

७८०. मृजेर्विभाषा (३-१-११३)

मृज् धातु से विकल्प से क्यप् (य) होता है। मृज्यः (साफ करने योग्य)-मृज्+क्यप् (य)। कित् होने से गुण नहीं।

७८१. ऋहलोर्ण्यत् (३-१-१२४)

ऋ अन्तवाली और हलन्त धातुओं से ण्यत् (य) होता है। णित् होने से धातु को वृद्धि या गुण। कार्यम् (करना चाहिए)-कृ+ण्यत् (य)। ऋ को वृद्धि होकर आर्। हार्यम् (हरने योग्य)-हृ+ण्यत्। ऋ को आर्। धार्यम् (धारण करने योग्य)-धृ+ण्यत्। ऋ को आर्।

७८२. चजोः कु घिण्ण्यतोः (७-३-५२)

च् को क् और ज् को ग् होता है, बाद में घित् (जैसे घञ्) या ण्यत् प्रत्यय हो तो।

७८३. मृजेर्वृद्धिः (७-२-११४)

मृज् धातु के ऋ को आर् हो जाता है, बाद में कोई सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय हो तो। मार्ग्यः (शुद्ध करने योग्य)-मृज्+ण्यत् (य)। ऋहलो० से ण्यत्, चजोः० से ज् को ग्, मृजे० से ऋ को आर्।

७८४. भोज्यं भक्ष्ये (७-३-६९)

भक्ष्य अर्थ में भुज् धातु का भोज्य रूप बनता है। अन्यत्र भोग्यम्। भोज्यम् (खाने योग्य)—भुज्+ण्यत्। उ को गुण ओ। चजोः० से ज् को ग् नहीं हुआ। भोग्यम् (उपभोग के योग्य)—भुज्+ण्यत् (य)। गुण और ज् को ग्।

कृत्य-प्रक्रिया समाप्त

---

२. पूर्व-कृदन्त प्रारम्भ

७८५. ण्वुल्तृचौ (३-१-१३३)

धातु से कर्ता अर्थ में ण्वुल् और तृच् (तृ) प्रत्यय होते हैं। ण्वुल् का अक शेष रहता है।

७८६. युवोरनाकौ (७-१-१)

यु को अन होता है और वु को अक। जैसे-ल्युट् के यु को अन और ण्वुल् के वु को अक। कारकः (करने वाला)-कृ+ण्वुल् (अक)। ऋ को वृद्धि आर्। कर्ता (करने वाला)-कृ+तृच् (तृ)। ऋ को गुण अर्।

जाता है, बाद में खिदन्त (ख् इत् वाला) शब्द हो तो। अव्ययों के बाद म् नहीं लगता है। जनम् एजयतीति जनमेजयः (लोगों को कँपाने वाला, परीक्षित् के पुत्र का नाम)—जन + एजि + शप् (अ) + खश् (अ)। एजेः० (७९७) से खश् (अ), शित् होने से बीच में शप् (अ), इसको अगले अ के साथ पूर्वरूप होकर अ, गुण, अय् होकर एजय। जन के बाद इस सूत्र से म् लगकर जनमेजयः।

७९९. प्रियवशे वदः खच् (३-२-३८)

प्रिय और वश पहले हों तो वद् धातु से खच् (अ) प्रत्यय होता है। प्रियंवदः (प्रिय बोलने वाला)-प्रिय + वद् + खच् (अ)। अरु० (७९८) से प्रिय के बाद म्। वशंवदः (अधीनस्थ)-वश + वद् + खच् (अ)। अरु० (७९८) से म्।

८००. अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (३-२-७५)

अन्य धातुओं से भी ये प्रत्यय होते हैं—मनिन् (मन्), क्वनिप् (वन्), वनिप् (वन्) और विच् (०)।

८०१. नेड्वशि कृति (७-२-८)

वश् (व, र, ल, वर्ग के ३, ४, ५ वर्ण) आदि वाले कृत् प्रत्यय से पहले इट् (इ) नहीं लगता है। सुशर्मा (अच्छे प्रकार से हिंसा करने वाला)-सु + शृ + मनिन् (मन्)—सुशर्मन्। अन्येभ्यो० (८००) से मनिन्, इ का निषेध, गुण। प्रातरित्वा (सवेरे जाने वाला)—प्रातर् + इ + क्वनिप् (वन्)-प्रातरित्वन्। अन्येभ्यो० (८००) से क्वनिप्, ह्रस्वस्य० (७७८) से इ के बाद त्।

८०२. विड्वनोरनुनासिकस्यात् (६-४-४१)

विट् और वन् प्रत्यय बाद में हों तो अनुनासिक (ण्, न्, म्) को आ हो जाता है। विजायते इति विजावा (अनेक प्रकार से होने वाला)-वि + जन् + वनिप् (वन्)—विजावन्। अन्येभ्यो० (८००) से वनिप्, विड्वनो० से न् को आ। अवावा (हटाने वाला)—ओण् + वनिप् (वन्)-अवावन्। अन्येभ्यो० (८००) से वनिप्, विड्वनो० से ण् को आ, ओ को अव्। रोट् (हिंसा करने वाला)-रुष् + विच् (०)। उ को गुण, रोष् का प्र० एक० का रूप। रेट् (हिंसा करने वाला)-रिष् + विच् (०)-रेष्, प्र० एक०। इ को गुण। सुगण् (ठीक गिनने वाला)-सु + गण + णिच् (इ) + विच् (०)। णिच् का लोप।

८०३. क्विप् च (३-२-७६)

धातुओं से क्विप् (०) प्रत्यय भी होता है, कर्ता अर्थ में। सूचना-क्विप् का कुछ भी शेष नहीं रहता है। क् और प् का लोप, बाद में इ का लोप, व् का वेरपृक्तस्य (३०३) से लोप। इस प्रकार कुछ शेष नहीं रहेगा। कित् होने से गुण-वृद्धि नहीं

होगी, संप्रसारण होगा और अनिदितां० (३३४) से उपधा के न् का लोप होगा। उखास्रत् (उखायाः स्रंसते, पतीली से गिरने वाला)–उखा + स्रंस् + क्विप् (०)। अनिदितां (३३४) से उपधा के न् का लोप, प्र० एक० में वसुस्रंसु० (२६२) से स् को द्, चर्त्व। पर्णध्वत् (पर्णात् ध्वंसते, पत्ते से गिरने वाला)–पर्ण + ध्वंस + क्विप् (०)। उखास्रत् के तुल्य न्-लोप, स् को द्। वाहभ्रट् (वाहात् भ्रश्यति, घोड़े से गिरने वाला)–वाह + भ्रंश् + क्विप् (०)। अनिदितां० (३३४) से न्-लोप, प्र० १ मे व्रश्चभ्रस्ज० (३०७) से श् को ष्, ष् को जश्त्व से ड्, चर्त्व ट्।

८०४. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये (३–२–७८)

जाति-भिन्न सुबन्त उपपद (पहले) हो तो धातु से णिनि (इन्) होता है, ताच्छील्य (स्वभाव) अर्थ में। उष्णभोजी (उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलः, गर्म भोजन करने की आदत वाला)–उष्ण + भुज् + णिनि (इन्)। णित् होने से उपधा को गुण, प्र० १ का रूप।

८०५. मनः (३–२–८२)

सुबन्त उपपद होने पर मन् धातु से णिनि (इन्) प्रत्यय होता है। दर्शनीयमानी (दर्शनीयं मन्यते, दर्शनीय समझने वाला)–दर्शनीय + मन् + णिनि (इन्)। अत उपधायाः (४५४) से उपधा के अ को वृद्धि आ, प्र० १।

८०६. आत्ममाने खश्च (३–२–८३)

अपने आपको मानने अर्थ में मन् धातु से खश् (अ) और णिनि (इन्) होते हैं, सुबन्त उपपद होने पर। पण्डितंमन्यः, पण्डितमानी (पण्डितम् आत्मानं मन्यते, अपने को पण्डित मानने वाला)–पण्डित + मन् + खश् (अ), णिनि (इन्)। णिनि होने पर दर्शनीयमानी के तुल्य। खश् (अ) होने पर शित् होने से बीच मे श्यन् (य), खित् होने से अरु० (७९८) से पण्डित के बाद मुम् (म्), य + अ = य, अतो गुणे (२७४) से पररूप।

८०७. खित्यनव्ययस्य (६–३–६६)

खित् (जिसमें से ख् हटा हो) अन्त वाला उत्तरपद परे होने पर पूर्वपद को ह्रस्व हो जाता है, अव्यय को ह्रस्व नहीं होता। कालिंमन्या (आत्मानं कालीं मन्यते, अपने को काली मानने वाली)–काली + मन् + खश् (अ)। आत्ममाने० (८०६) से खश्, इससे ली के ई को ह्रस्व, पण्डितंमन्यः के तुल्य श्यन्, मुम्, पररूप, टाप् (आ), दीर्घ।

८०८. करणे यजः (३–२–८५)

करण कारक उपपद (पहले) होने पर भूत अर्थ में यज धातु से णिनि (इन्)

प्रत्यय होता है, कर्ता अर्थ में। सोमयाजी (सोमेन इष्टवान्, जिसने सोमयाग किया है)—सोम + यज् + णिनि (इन्)। उपधा के अ को वृद्धि, प्र० १। अग्निष्टोमयाजी (अग्निष्टोमेन इष्टवान्, जिसने अग्निष्टोम याग किया है)—अग्निष्टोम + यज् + णिनि। सोमयाजी के तुल्य।

८०९. दृशेः क्वनिप् (३-२-९४)

कर्म उपपद होने पर भूतकाल में दृश् धातु से क्वनिप् (वन्) प्रत्यय होता है। पारदृश्वा (पारं दृष्टवान्, जिसने पार देखा है अर्थात् पूर्णवेत्ता)—पार + दृश् + क्वनिप् (वन्) + प्र० १।

८१०. राजनि युधिकृञः (३-२-९५)

राजन् कर्म उपपद होने पर युध् और कृञ् (कृ) धातुओं से क्वनिप् (वन्) प्रत्यय होता है। राजयुध्वा (राजानं याधितवान्, जिसने राजा को लड़वाया हो)—राजन् + युध् + वनिप् + प्र० १। नलोपः० (१८०) से राजन् के न् का लोप। राजकृत्वा (राजानं कृतवान्, जिसने राजा बनाया हो)—राजन् + कृ + क्वनिप् (वन्) + प्र० १। ह्रस्वस्य० (७७८) से कृ के बाद तुक् (त्), न्-लोप।

८११. सहे च (३-२-९६)

सह उपपद होने पर युध् और कृ धातु से क्वनिप् (वन्) प्रत्यय होता है। सहयुध्वा (सह योधितवान्, जिसने साथ लड़ाया हो)—सह + युध् + क्वनिप् (वन्)। सहकृत्वा (सह कृतवान्, जिसने साथ काम किया है)—सह + कृ + क्वनिप् (वन्)।

८१२. सप्तम्यां जनेर्डः (३-२-९७)

सप्तम्यन्त उपपद होने पर जन् धातु से ड (अ) प्रत्यय होता है।

८१३. तत्पुरुषे कृति बहुलम् (६-३-१४)

तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तरपद होने पर विकल्प से ङि (सप्तमी एक०) का अलुक् होता है। पक्ष में ङि का लोप होगा। सरसिजम्, सरोजम् (सरसि जायते, तालाब में पैदा होने वाला, कमल)—सरसि + जन् + ड (अ)। ड् इत् होने से टेः (२४२) से जन् के अन् का लोप, इससे ङि का अलुक्। पक्ष में ङि का सुपो० (७२१) से लोप होने पर स् को रु, उ और गुण-संधि।

८१४. उपसर्गे च संज्ञायाम् (३-२-९९)

उपसर्ग उपपद होने पर जन् धातु से ड (अ) प्रत्यय होता है, संज्ञा में। प्रजा (प्रजा स्यात् सन्ततौ जने, सन्तान, प्रजा)—प्र + जन् + ड (अ)। अन् का लोप, स्त्रीलिंग में टाप् (आ)।

८१५. क्तक्तवतू निष्ठा (१-१-२६)

क्त और क्तवतु प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

८१६. निष्ठा (३-२-१०२)

भूतकाल अर्थ में धातु से निष्ठा प्रत्यय होते हैं। सूचना—१. क्त का क् इत् होकर त शेष रहता है और क्तवतु का क् और उ इत् होकर तवत् शेष रहता है। २. तयोरेव० (७७१) से क्त प्रत्यय भाववाच्य और कर्मवाच्य में होता है। कर्तरि कृत् (७७०) से क्तवतु कर्तृवाच्य में होता है। ३. क्त भाववाच्य में होगा तो कर्ता में तृतीया। क्त कर्मवाच्य मे होगा तो कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा, कर्म के तुल्य क्त-प्रत्ययान्त के लिंग, विभक्ति और वचन। क्तवतु होने पर कर्ता मे प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया के लिंग, विभक्ति और वचन कर्ता के तुल्य। स्नातं मया (मैंने स्नान किया)—स्ना + क्त (त)। भाववाच्य होने से कर्ता में तृतीया। स्तुतस्त्वया विष्णुः (तूने विष्णु की स्तुति की)—स्तु + क्त (त)। कर्मवाच्य होने से कर्ता त्वया में तृतीया, कर्म विष्णु में प्रथमा, विष्णुः के कारण स्तुतः में पुं० प्रथमा एक०। विश्वं कृतवान् विष्णुः (विष्णु ने विश्व को बनाया)—कृ + क्तवतु (तवत्) + प्र० १। कर्तृवाच्य होने से कर्ता विष्णु में प्रथमा, कर्म विश्व में द्वितीया, विष्णुः के कारण कृतवान् में पुं० प्र० १।

८१७. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः (८-२-४२)

र् और द् के बाद निष्ठा के त को न होता है और निष्ठा से पूर्ववर्ती धातु के द् को भी न् होता है। अर्थात्—र् + त = र्ण, न को ण। द् + त = न्न। शीर्णः (नष्ट हुआ)—शॄ (हिंसा करना) + क्त (त)। ॠत इद्० (६६०) से ॠ को इर्, हलि च (६१२) से इ को दीर्घ ई, इससे त को न, रषाभ्यां० (२६७) से न को ण। भिन्नः (फाड़ा)—भिद् + क्त (त)। इस सूत्र से त को न और द् को न्। छिन्नः (काटा)—छिद् + क्त। इससे त को न, द् को न्।

८१८. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः (८-२-४३)

संयोगादि (प्रारम्भ में संयुक्त वर्ण हो) और यण् वाली (य, र, ल, व से युक्त) आकारान्त धातु के बाद निष्ठा के त को न आदेश होता है। द्राणः (कुत्सित गति वाला)—द्रा + त। इससे त को न, अट्कु० से न को ण। ग्लानः (खिन्न)—ग्लै (ग्ला) + त। आदेच० (४९२) से धातु के ऐ को आ, इससे त को न।

८१९. ल्वादिभ्यः (८-२-४४)

लूञ् (क्र्यादिगण) आदि २१ धातुओं के बाद निष्ठा के त को न होता है। लूनः (काटा)—लू + त। त को न।

८२०. हलः (६-४-२)

अंग के अवयव हल् (व्यंजन) के बाद संप्रसारण को दीर्घ होता है, अर्थात् इ > ई,

उ>ऊ। जीनः (वृद्ध)—ज्या+त। ग्रहिज्या० (६३४) से संप्रसारण य् को इ, संप्रसारणाच्च (२५८) से आ को पूर्वरूप इ, इससे इ को दीर्घ ई।

८२१. ओदितश्च (८–२–४५)

ओदित् (जिसमें से ओ हटा हो) धातुओं के बाद निष्ठा के त को न होता है। भुग्नः (टेढ़ा)—भुज्+त। त को इससे न, चोः कुः से ज् को ग्। भुजो धातु ओदित् है। उच्छूनः (सूजा हुआ)—उत्+श्वि+त। इससे त को न, वचिस्वपि० (५४६) से संप्रसारण, इ को जीनः के तुल्य पूर्वरूप, हलः (८२०) से उ को दीर्घ ऊ, त्+श्=च्छ् संधिकार्य।

८२२. शुषः कः (८–२–५१)

शुष् के बाद निष्ठा के त को क। शुष्कः (सूखा हुआ)—शुष्+त। त को क।

८२३. पचो वः (८–२–५२)

पच् धातु के बाद निष्ठा के त को व होता है। पक्वः (पका हुआ)—पच्+त। इससे त को व, चोः कुः से च् को क्।

८२४. क्षायो मः (८–२–५३)

क्षै धातु के बाद निष्ठा के त को म होता है। क्षामः (कृश)–क्षै (क्षा)+त। आदेच० (४९२) से ऐ को आ, इससे त को म।

८२५. निष्ठायां सेटि (६–४–५२)

सेट् निष्ठा बाद में हो तो णि का लोप होता है। भावितः, भावितवान्—भावि+त, भावि+तवत्। इट् (इ), णि का इससे लोप।

८२६. दृढः स्थूलबलयोः (७–२–२०)

स्थूल और बलवान् अर्थ में दृढ शब्द निपातन होता है–अर्थात् ऐसा रूप इष्ट है। दृढः—दृह्+त। ह् को ढ्, त को ध और ष्टुत्व से ढ, ढो ढे लोपः से पहले ढ् का लोप।

८२७. दधातेर्हिः (७–४–४२)

धा (जुहोत्यादि०) को हि आदेश होता है, बाद में त से प्रारम्भ होनेवाला कित् प्रत्यय हो तो। हितम् (रखा, धारण किया)–धा+त। इससे धा को हि।

८२८. दो दद् घोः (७–४–४६)

घु–संज्ञा वाले दा को दद् (दथ्) होता है, बाद में तादि कित् हो तो। दत्तः (दिया)–दा+त। इससे दा को दथ्, खरि च से थ् को त्। महाभाष्यकार पतंजलि ने दथ् आदेश का समर्थन किया है।

८२९. लिटः कानज्वा (३-२-१०६)

८३०. क्वसुश्च (३-२-१०७)

लिट् को विकल्प से कानच् (आन) और क्वसु (वस्) आदेश होते हैं। सूचना—तङानाo (३७६) से कानच् (आन) की आत्मनेपद संज्ञा है, अतः यह आत्मनेपदी धातुओं से ही होगा। चक्राणः-कृ+लिट्। लिट् को कानच् (आन), द्वित्व, अभ्यासकार्य, यण्, न को ण, प्र० एक०।

८३१. म्वोश्च (८-२-५)

मकारान्त धातु के म् को न् होता है, बाद में म और व हो तो। जगन्वान्-गम्+लिट्। लिट् को क्वसु (वस्), द्वित्व, अभ्यासकार्य, म् को इस सूत्र से न्, जगन्वस्+प्र० एक०। विद्वस् के तुल्य।

८३२. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे (३-२-१२४)

प्रथमान्त पद से भिन्न समानाधिकरण (एक आधार) होने पर लट् के स्थान में शतृ (अत्) और शानच् (आन) होते हैं। सूचना—१. लट् परस्मै० के स्थान में शतृ (अत्) होता है और लट् आत्मनेपद के स्थान में शानच् (आन)। २. दोनों शित् हैं, अतः शप् आदि विकरण भी होंगे। पचन्तं चैत्रं पश्य (पकाते हुए चैत्र को देखो)-पच्+लट् (शतृ)+द्वि० एक०। लट् को शतृ (अत्), शप् (अ), अतो गुणे से पररूप।

८३३. आने मुक् (७-२-८२)

ह्रस्व अ अन्त वाले अंग के बाद मुक् (म्) आगम होता है, बाद में आन हो तो। पचमानं चैत्रं पश्य (पकाते हुए चैत्र को देखो)—पच्+लट्-शानच् (आन) +द्वि० एक०। लट् को शानच् (आन), शप् (अ), इससे बीच में मुक् (म्)।

सूचना—लटः शतृ० (८३२) में वर्तमाने लट् (३७३) से लट् की अनुवृत्ति होने पर भी पुनः लट् का जो ग्रहण किया गया है, उससे सूचित होता है कि प्रथमा-समानाधिकरण में भी कहीं-कहीं शतृ-शानच् होते हैं। सन् द्विजः (विद्यमान ब्राह्मण)-अस्+शतृ+प्र० १। शप् का लोप, श्नसो० (५७४) से धातु के अ का लोप।

८३४. विदेः शतुर्वसुः (७-१-३६)

विद् (अदादि० पर०) धातु के बाद शतृ को विकल्प से वसु (वस्) आदेश होता है। विदन् (जानता हुआ)-विद्+शतृ (अत्)+प्र० १। विद्वान् (ज्ञाता)-विद्+शतृ> वस्, प्र० १। शतृ को वस्, प्र० एक०।

८३५. तौ सत् (३-२-१२७)

शतृ और शानच् को सत् कहते हैं।

८३६. लृटः सद् वा (३-३-१४)

लृट् के स्थान में सत् (शतृ, शानच्) प्रत्यय विकल्प से होते हैं। सूचना—यह विकल्प व्यवस्थित है, अतः अप्रथमा-समानाधिकरण में, प्रत्यय और उत्तरपद बाद में होने पर, संबोधन में और लक्षण तथा हेतु अर्थ में शतृ-शानच् नित्य होते हैं। करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य (जो भविष्य में काम करेगा, ऐसे व्यक्ति को देखो)—कृ + लृट् > शतृ (अत्), शानच् (आन) + द्वि० १। लृट् को शतृ और शानच्, लृट् के कारण स्य और इट्, गुण। आन में मुक् (म्) भी होगा।

८३७. आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु (३-२-१३४)

क्विप् प्रत्यय पर्यन्त सारे प्रत्यय तच्छील (स्वभाव), तद्धर्म (उसका गुण या धर्म हो) और तत्साधुकारी (उसको अच्छे ढंग से करना) अर्थों में होते हैं।

८३८. तृन् (३-२-१३५)

धातु से तृन् (तृ) प्रत्यय होता है, कर्ता अर्थ में। कर्ता कटान् (चटाई बनाने के स्वभाव वाला आदि)—कृ + तृन् (तृ) + प्र० १। गुण।

८३९. जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् (३-२-१५५)

जल्प्, भिक्ष्, कुट्ट्, लुण्ट् और वृङ् (वृ), इन धातुओं से षाकन् (आक) प्रत्यय तच्छील आदि अर्थों में होता है।

८४०. षः प्रत्ययस्य (१-३-६)

प्रत्यय के आदि ष् की इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा होने से ष् का लोप। जल्पाकः (अधिक बोलने वाला)—जल्प् + षाकन् (आक)। इसी प्रकार भिक्षाकः (माँगने वाला)। कुट्टाकः (कूटने वाला)। लुण्टाकः (लुटेरा)। वराकः (बेचारा)—वृ + आक, गुण। वराकी (बेचारी)—वराक + ङीप् (ई)। स्त्रीलिंग में षिद्गौरादि-भ्यश्च (१२४०) से ङीप्, क के अ का लोप।

८४१. सनाशंसभिक्ष उः (३-२-१६८)

सन्-प्रत्ययान्त धातुओं, आ + शंस् और भिक्ष् धातु से उ प्रत्यय होता है, तच्छील आदि अर्थ होने पर, कर्ता में। चिकीर्षुः (करने की इच्छा वाला)—कृ + सन् = चिकीर्ष + उ। अतो लोपः (४६९) से स के अ का लोप। आशंसुः (आशा करने वाला)—आशंस् + उ। भिक्षुः (भिक्षा माँगने वाला)—भिक्ष् + उ + प्र० १।

८४२. भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् (३-२-१७७)

इन धातुओं से तच्छील आदि अर्थ होने पर कर्ता में क्विप् (०) प्रत्यय होता है—भ्राज्, भास्, धुर्व्, द्युत्, ऊर्ज्, पॄ, जु और ग्रावन् + स्तु। विभ्राज् (विशेष चमकने

श्री जैन ... भीनासर

वाला)—वि + भ्राज् + क्विप् (०)। क्विप् का कुछ शेष नहीं रहता है। व्रश्चभ्रस्ज० (३०७) से ज् को ष्, जश्त्व से ष् को ड्, चर्त्व ट्। भाः (कान्ति, प्रकाश)—भास् + क्विप् (०)। स् को रु, विसर्ग।

८४३. राल्लोपः (६-४-२१)

र् के बाद च्छ् और व् का लोप होता है, बाद में क्वि और झलादि कित् ङित् प्रत्यय हो तो। धूः (धुरा)—धुर्व् + क्विप् (०) + प्र० १। भ्राज० (८४२) से क्विप्, इससे व् का लोप, र्वोरुपधाया० (३५१) से उपधा के उ को दीर्घ ऊ, र् को विसर्ग। विद्युत् (बिजली)—वि + द्युत् + क्विप् (०) + प्र० १। ऊर्क् (बलवान्)—ऊर्ज + क्विप् (०) + प्र० १। चोः कुः से ज् को ग्, चर्त्व क्। पूः (नगर, पुर)—पॄ + क्विप् (०) + प्र० १। उदोष्ठ्य० (६११) से ऋ को उर्, र्वो० (३५१) से उ को दीर्घ, र् को विसर्ग। जूः (वेग वाला)—जु + क्विप् (०)। अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (३-२-१७८) से दृश्यन्ते का अपकर्ष (ऊपर खींचना) होने से जु धातु को क्विप् होने पर दीर्घ होता है। ग्रावस्तुत् (पत्थर की स्तुति करने वाला)—ग्रावन् + स्तु + क्विप् (०) + प्र० १। न् का लोप, ह्रस्वस्य० (७७८) से तुक् (त्)। (क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकट-प्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च, वार्तिक) वच्, प्रच्छ्, आयत + स्तु, कट + प्रु, जु और श्रि धातु से क्विप् (०) होता है, धातु को दीर्घ होता है और संप्रसारण नहीं होता। वाक् (वक्ति इति, बोलने वाली, वाणी)—वच् + क्विप् (०) + प्र० १। इससे क्विप्, अ को दीर्घ आ, च् को चोःकुः से क्।

८४४. च्छ्वोः शूडनुनासिके च (६-४-१९)

च्छ् को श् और व् को ऊठ् (ऊ) आदेश होते हैं, बाद में अनुनासिक, क्वि और झलादि कित् ङित् प्रत्यय हों तो। प्राट् (पृच्छति इति, पूछने वाला) प्रच्छ् + क्विप् (०) + प्र० १। क्विब्० (वा०) से क्विप्, दीर्घ, संप्रसारण का निषेध, इससे च्छ् को श्, व्रश्च० से श् को ष्, ष् को ड्, ट्। आयतस्तूः (आयतं स्तौति इति, विस्तृत गुणगान करने वाला)—आयत + स्तु + क्विप् (०) + प्र० १। क्विब्० (वा०) से क्विप् और उ को दीर्घ। कटप्रूः (कटं प्रवते, चटाई बुनने वाला)—कट + प्रु + क्विप् (०)। उ को दीर्घ। जूः (वेगवाला)—जु + क्विप् (०)। पूर्ववत्। श्रीः (श्रयति हरिम्, विष्णु का आश्रय लेनेवाली, लक्ष्मी)—श्रि + क्विप् (०) + प्र० १। क्विप्, इ को दीर्घ।

८४५. दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे (३-२-१८२)

इन धातुओं से करण अर्थ में ष्ट्रन् (त्र) प्रत्यय होता है—दाप् (दा), नी, शस्,

यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, दश् और नह्। ष्ट्रन् का त्र शेष रहता है। षः प्रत्ययस्य (८४०) से ष् की इत्संज्ञा। दात्रम् (दाति अनेन, दाँती)—दा+ष्ट्रन् (त्र)+प्र० १। नेत्रम् (आँख)—नी+त्र+प्र० १। ई को गुण ए।

८४६. तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च (७-२-९)

ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क, स, इन दस कृत् प्रत्ययों को इट् (इ) नहीं होता है। शस्त्रम् (शस्त्र)—शस्+त्र। इससे इट् का अभाव। योत्रम् (बैल के गले में बाँधने की रस्सी, जोत)—यु+त्र। गुण। योक्त्रम् (जोत, योत्र का पर्याय है)—युज्+त्र। उपधागुण, ज् को ग्, ग् को क्। स्तोत्रम् (स्तोत्र, स्तुति श्लोक)—स्तु+त्र। उ को गुण। तोत्त्रम् (चाबुक)—तुद्+त्र। उपधा-गुण, द् को चर्त्व से त्। सेत्रम् (बाँधने की रस्सी)—सि+त्र। इ को गुण। सेक्त्रम् (सींचने का बर्तन, हजारा)—सिच्+त्र। उपधागुण, च् को क्। मेढ्रम् (मूत्रेन्द्रिय)—मिह्+त्र। उपधागुण, ह् को ढ्, त को ध, ष्टुत्व से ढ, पहले ढ् का लोप। पत्त्रम् (पत्ता, पत्र आदि)—पत्+त्र। दंष्ट्रा (दाढ़)—दंश्+त्र+टाप् (आ)। व्रश्च० (३०७) से श् को ष्, ष्टुत्व से त को ट, स्त्रीलिंग में टाप्। नद्ध्री (हल आदि में बाँधने की चमड़े की रस्सी)—नह्+त्र+ङीप् (ई)। नहो धः (३५९) से ह् को ध्, त को ध, ध को जश्त्व से द्, स्त्रीलिंग में षित् होने से ङीप् (ई)।

८४७. अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः (३-२-१८४)

ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह् और चर् धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है। सूचना—ऋ, लू, सू में गुण होगा। धू में ऊ को उव्। अरित्रम् (नाव चलाने का डंडा, डाँड़)—ऋ+इत्र। गुण। लवित्रम् (चाकू)—लू+इत्र। धुवित्रम् (पंखा)—धू+इत्र। ऊ को उव्। धू कुटादिगण में है, अतः गाङ्० (५८७) से ङित् होने से गुण न होकर अचि श्नु० से उवङ् (उव्)। सवित्रम् (प्रेरणा देने वाला)—सू+इत्र। गुण, अव्। खनित्रम् (फावड़ा, कुदाल)—खन्+इत्र। सहित्रम् (छाता आदि)—सह्+इत्र। चरित्रम् (चरित्र)—चर्+इत्र।

८४८. पुवः संज्ञायाम् (३-२-१८५)

पू धातु से संज्ञा में इत्र होता है। पवित्रम् (पवित्रा, कुश का बना हुआ)—पू+इत्र। गुण, ओ को अव्।

पूर्वकृदन्त समाप्त।

---

३. उणादि-प्रकरण प्रारम्भ

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् (उणादिसूत्र १)। कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साध् और अश् धातुओं से उण् (उ) प्रत्यय होता है। सूचना—उ णित् है, अतः धातु को गुण या वृद्धि होगी। कारुः (करोति इति, शिल्पी)—कृ + उ। वृद्धि आर्। वायुः (वाति इति, हवा)—वा + उ। आतो युक्० (७५८) से युक् (य्)। पायुः (गुदा)—पा + उ। वायु के तुल्य। जायुः (ओषधि)—जि + उ। वृद्धि, आय्। मायुः (पित्त)—मि + उ। वृद्धि, आय्। स्वादुः (स्वादिष्ट)—स्वद् + उ। अत उपधायाः (४५४) से अ को आ। साधुः (साध्नोति परकार्यम्, दूसरे का काम सिद्ध करने वाला, सज्जन)—साध् + उ। आशुः (शीघ्र)—अश् + उ। अत० (४५४) से अ को वृद्धि आ।

८४९. उणादयो बहुलम् (३-३-१)

उण् (उ) आदि प्रत्यय वर्तमान काल में और संज्ञा में विकल्प से होते हैं। कुछ न कहे गये भी प्रत्ययों की कल्पना शब्द के रूप को देखकर कर लेनी चाहिये। संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे। कार्याद् विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ संज्ञा-शब्दों को बनाने के लिए जिस धातु से रूप बनने की संभावना हो, उसकी कल्पना करनी चाहिए। बाद में उपयुक्त प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिए। प्रत्ययों में आवश्यकता के अनुसार अनुबन्ध (इत्) जोड़ने चाहिएँ। यही उणादि में सामान्य नियम है।

उणादि प्रकरण समाप्त।

---

४. उत्तरकृदन्त प्रारम्भ

८५०. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् (३-३-१०)

क्रियार्थक क्रिया पहले होने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् (तुम्) और ण्वुल् (अक) प्रत्यय होते हैं। सूचना—१. तुमुन् का तुम् शेष रहता है। म् अन्त में होने से कृन्मेजन्तः (३६८) से अव्यय होता है, अतः तुम्-प्रत्ययान्त के रूप नहीं चलते हैं। तुम् के साथ धातु को गुण होता है। २. ण्वुल् का वु बचता है, उसे युवोरनाकौ (७८६) से अक हो जाता है। णित् होने से धातु को गुण या वृद्धि होगी। कृष्णं

८६३. उपसर्गे घोः किः (३–३–९२)

उपसर्ग पहले होने पर दा और धा धातुओं से कि (इ) प्रत्यय होता है। प्रधिः (पहिए का घेरा)–प्र + धा + कि। आतो लोप० (४८८) से आ का लोप। उपधिः (दम्भ)–उप + धा + कि (इ)। पूर्ववत् आ का लोप।

८६४. स्त्रियां क्तिन् (३–३–९४)

स्त्रीलिंग में भाव में क्तिन् (ति) प्रत्यय होता है। यह घञ् का अपवाद है। सूचना—क्तिन् कित् है, अतः क्तिन् होने पर गुण या वृद्धि नहीं होगी, संप्रसारण होगा। कृतिः (कार्य)–कृ + क्तिन् (ति)। स्तुतिः (स्तुति)–स्तु + ति। (ॠल्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावद् वाच्यः, वा०) दीर्घ ॠकारान्त और लू आदि धातुओं के बाद क्तिन् को भी क्त क्तवतु के तुल्य कार्य होते हैं, अर्थात् त को न आदि कार्य होंगे। कीर्णिः (बिखेरना, फैलाना)–कॄ + ति। ॠ को ॠत इद्० (६६०) से इर्, हलि च (६१२) से इ को ई, इस वार्तिक के अनुसार रदाभ्यां० से त् को न्। लूनिः (काटना)–लू + ति। त् को न्। धूनिः (काँपना)–धू + ति। त् को न्। पूनिः (पवित्रता)–पू + ति। ल्वादिभ्यः (८१९) से इन तीनों में त् को न् हुआ है। (संपदादिभ्यः क्विप्, वा०) सम् आदि उपसर्ग पहले होने पर पद् धातु से क्विप् (०) प्रत्यय होता है। सूचना–क्विप् का कुछ शेष नहीं रहता है। संपद् (संपत्ति)–सम् + पद् + क्विप् (०)। वावसाने (१४६) से विकल्प से द् को त्। इसी प्रकार *विपत् (विपत्ति), आपत् (आपत्ति)। (क्तिन्नपीष्यते, वा०)* सम् आदि पहले हों तो क्तिन् (ति) भी होता है। संपत्तिः (संपत्ति)–सम् + पद् + ति। खरि च (७४) से द् को त्। इसी प्रकार विपत्तिः (विपत्ति), आपत्तिः (आपत्ति)।

८६५. ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च (३–३–९७)

ये शब्द निपातन से बनते हैं, अर्थात् जो कार्य सूत्रों से संभव नहीं है, वह कार्य करके इन रूपों को बना लेना चाहिए—ऊतिः (रक्षा)–अव् + क्तिन् (ति), ज्वर० (८६६) से अव् को ऊ। यूतिः (मिलाना)–यु + क्तिन् (ति)। निपातन से दीर्घ। जूतिः (वेग)–जु + ति। निपातन से दीर्घ। सातिः (विनाश)–सो (सा) + ति। द्यतिo (७–४–४०) से आ को इ नहीं हुआ। हेतिः (शस्त्र)–हि + ति या हन् + ति। इ को गुण ए या न्-लोप, अ को ए। कीर्तिः (यश)–कृत् + क्तिन् (ति)। ॠ को इर् और इ को दीर्घ।

८६६. ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च (६–४–२०)

ज्वर्, त्वर्, स्रिव्, अव् और मव् धातुओं की उपधा (उपान्त्य वर्ण) और व् को ऊठ् (ऊ) होता है, बादमें अनुनासिक, क्वि और झलादि कित् ङित् हो तो। इसी सूत्र से क्विप् भी होता है। जूः (रोग)–ज्वर् + क्विप् (०)। व को ऊ। तूः (शीघ्रकारी)–

त्वर् + क्विप्। पूर्ववत्। स्रूः (सुलाने वाला या जाने वाला)-स्रिव् + क्विप्। इव् को ऊ। ऊः (रक्षक)-अव् + क्विप्। अव् को ऊ। मूः (बाँधने वाला)- मव् + क्विप्। अव् को ऊ।

८६७. इच्छा (३-३-१०१)

इष् धातु से श (अ) प्रत्यय का निपातन होकर इच्छा बनता है। इच्छा (इच्छा)-इष् + श (अ) + टाप्। इषुगमि० (५०३) से ष् को च्छ्।

८६८. अ प्रत्ययात् (३-३-१०२)

प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिंग में अ प्रत्यय होता है। चिकीर्षा (करने की इच्छा)-चिकीर्ष + अ + टाप् (आ)। अतो लोपः (४६९) से अ का लोप, टाप्। पुत्रकाम्या (पुत्र की इच्छा)-पुत्रकाम्य + अ + आ। अतो लोपः (४६९) से अ का लोप, टाप्, दीर्घ।

८६९. गुरोश्च हलः (३-३-१०३)

गुरु वर्ण से युक्त हलन्त धातु से स्त्रीलिंग में अ प्रत्यय होता है। ईहा (इच्छा, चेष्टा)-ईह् + अ + टाप् (आ)।

८७०. ण्यासश्रन्थो युच् (३-३-१०७)

णि-प्रत्ययान्त, आस् और श्रन्थ् धातुओं से युच् (यु, अन) प्रत्यय होता है। कारणा (कराना, यातना)-कारि + युच्। च् का लोप, युवोरनाकौ (७८६) से यु को अन, णेरनिटि (५२८) से णि (इ) का लोप, न को ण, टाप्। हारणा (हटाना)-हारि + युच्। पूर्ववत्।

८७१. नपुंसके भावे क्तः (३-३-११४)

नपुंसक लिंग में, भाव अर्थ में क्त (त) प्रत्यय होता है।

८७२. ल्युट् च (३-३-११५)

नपुंसकलिंग भाव अर्थ में ल्युट् (अन) प्रत्यय भी होता है। हसितम्, हसनम् (हँसना)-हस् + क्त (त), हस् + ल्युट्। यु को अन।

८७३. पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण (३-३-११८)

पुलिंग में प्रायः घ (अ) प्रत्यय होता है, संज्ञावाचक शब्द बनाने के लिए।

८७४. छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य (६-४-९६)

एक से अधिक उपसर्ग पहले न हो तो छद् आदि वाली धातु को ह्रस्व हो जाता है, बाद में घ प्रत्यय हो तो। दन्तच्छदः (ओष्ठ, दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन इति, जिससे दाँत ढँके जाते हैं)- दन्त + छादि + घ (अ)। णेरनिटि से इ का लोप, इससे छा के आ को ह्रस्व, तुक् (त्) और श्चुत्व से त् को च्। आकरः (आकुर्वन्ति अस्मिन् इति,

स्थान, जहाँ पर चारों ओर से आकर लोग काम करते हैं)—आ + कृ + घ (अ)। ऋ को गुण अर्।

८७५. अवे तृस्त्रोर्घञ् (३-३-१२०)

अव उपसर्ग पहले होने पर तृ और स्तृ धातुओं से घञ् (अ) प्रत्यय होता है। ऋदोरप् (८५७) से प्राप्त अप् का यह बाधक है। अवतारः (घाट, कुएँ आदि की सीढ़ी)—अव + तृ + घञ् (अ)। ऋ को वृद्धि आर्। अवस्तारः (जवनिका, पर्दा)—अव + स्तृ + घञ् (अ)। ऋ को वृद्धि आर्।

८७६. हलश्च (३-३-१२१)

हलन्त धातु से घञ् (अ) प्रत्यय होता है। यह घ का अपवाद-सूत्र है। रामः (राम, रमन्ते योगिनः अस्मिन् इति, जिसमें योगी रमते हैं)—रम् + घञ् (अ)। अत उपधायाः (४५४) से अ को आ। अपामार्गः—(चिरचिटा, अपमृज्यते अनेन व्याध्यादिः, जिससे व्याधि दूर की जाती है)—अप + मृज् + घञ् (अ)। मृजेर्वृद्धिः (७८३) से ऋ को आर, चजोः कु० (७८२) से ज् को ग्, उपसर्गस्य० (६-३-१२२) से प के अ को आ।

८७७. ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् (३-३-१२६)

कृच्छ्र (कठिनता, दुःख) और अकृच्छ्र (सरलता, सुख) अर्थों के बोधक ईषत्, दुस् और सु पहले हों तो धातु से खल् (अ) प्रत्यय होता है। खल् का अ शेष रहता है। तयोरेव० (७७१) नियम से खल् प्रत्यय भाव और कर्म में होता है। दुस् कृच्छ्र अर्थ का बोध कराता है, ईषद् और सु अकृच्छ्र अर्थ का। दुष्करः कटो भवता (चटाई बनाना आपके लिए कठिन है)—दुस् + कृ + खल् (अ)। ऋ को गुण अर्। कर्मवाच्य के कारण कटः कर्म में प्रथमा और कर्ता भवता में तृतीया। अकृच्छ्र अर्थ में ईषत्करः (सरल), सुकरः (सरल)—ईषत् + कृ + खल् (अ)। सु + कृ + खल् (अ)। ऋ को गुण अर्।

८७८. आतो युच् (३-३-१२८)

कठिनता और सरलता-बोधक ईषत्, दुस् और सु पहले हों तो आकारान्त धातु से युच् (अन) प्रत्यय होता है। सूचना—युच् का यु शेष रहता है। युवो० (७८६) से यु को अन। यह खल् का अपवाद-सूत्र है। ईषत्पानः सोमो भवता (सोमपान आपके लिए सरल है)—ईषत् + पा + युच् (अन)। दुष्पानः (कठिनता से पीने योग्य)—दुस् + पा + युच् (अन)। सुपानः (सरलता से पीने योग्य)—सु + पा + युच् (अन)।

८७९. अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा (३-४-१८)

निषेधार्थक अलम् और खलु पहले हों तो धातु से क्त्वा (त्वा) प्रत्यय होता है, प्राचीन आचार्यों के मत से। सूचना—१. प्राचां का उल्लेख केवल आदर प्रकट

करने के लिए है। वाऽसरूपो० (७६८) से सभी प्रत्यय विकल्प से होते ही हैं। 'अमैवाव्ययेन' (२-२-२०) अम्-प्रत्ययान्त अव्यय के साथ ही उपपद-समास होता है, अन्य के साथ नहीं, अतः त्वा-प्रत्ययान्त के साथ उपपद-समास नहीं होगा। क्त्वा कित् है, अतः गुण और वृद्धि नहीं होंगे। संप्रसारण होगा। अलं दत्त्वा (मत दो)—दा + क्त्वा (त्वा)। दो दद्घोः (८२८) से दा को दथ्। खरि च से थ् को त्। पीत्वा खलु (मत पियो)—पा + त्वा। घुमास्था० (५८८) से आ को ई। प्रत्युदाहरण—मा कार्षीत् (मत करो)—इसमें निषेधार्थक मा है, अतः क्त्वा नहीं हुआ। अलंकारः (आभूषण)—इसमें अलम् भूषण अर्थ में है, निषेधार्थ में नहीं, अतः क्त्वा नहीं हुआ।

८८०. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले (३-४-२१)

समानकर्तृक (एक कर्ता वाले) धात्वर्थों में पूर्वकाल में विद्यमान धातु से क्त्वा (त्वा) प्रत्यय होता है। क्त्वा प्रत्यय पूर्वकालिक (पहले हुई) क्रिया का बोध कराता है। भुक्त्वा व्रजति (खाकर जाता है)—भुज् + क्त्वा (त्वा)। चोः कुः से ज् को ग्, चर्त्व से क्। सूत्र में द्विवचन से दो क्रियाओं में ही यह नियम लगेगा, ऐसी व्यवस्था नहीं है। अनेक क्रियाएँ होने पर सभी पूर्वकाल की क्रियाओं से क्त्वा प्रत्यय होता है। भुक्त्वा पीत्वा व्रजति (खा पी कर जाता है)—भुज् + त्वा, पा + त्वा।

८८१. न क्त्वा सेट् (१-२-१८)

सेट् क्त्वा कित् नहीं होता है। शयित्वा—(सोकर)—शी + त्वा। इट्। कित् न होने से ई को गुण ए और ए को अय् आदेश। कृत्वा (करके)—कृ + त्वा। यह सेट नहीं है, अतः गुण नहीं होगा।

८८२. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च (१-२-२६)

जिस धातु की उपधा में इ और उ हो, ऐसी हलादि (व्यंजन से प्रारम्भ होने वाली) और रल् (य् और व् से भिन्न व्यंजन) अन्त वाली धातुओं के बाद सेट् क्त्वा और सन् प्रत्यय विकल्प से कित् होते हैं। कित् पक्ष में गुण आदि नहीं होगा और अभाव पक्ष में गुण आदि होते हैं। द्युतित्वा, द्योतित्वा (चमक कर)—द्युत् + त्वा। इट्। कित् होने पर उपधा-गुण का अभाव और अकित् पक्ष में उपधा-गुण। लिखित्वा, लेखित्वा (लिख कर)—लिख् + त्वा। इट्। अकित् पक्षमें उपधा-गुण। प्रत्युदाहरण—वर्तित्वा—वृत् + क्त्वा। इट्। उपधा में इ या उ नहीं है, अतः विकल्प से कित् नहीं हुआ। सेवित्वा—सिव् + क्त्वा। इट्। अन्त में रल् नहीं है, अतः कित् नहीं हुआ। एषित्वा—इष् + त्वा। इट्। उपधा-गुण। हलादि नहीं है, अतः कित् नहीं हुआ। भुक्त्वा—भुज् + त्वा। सेट् नहीं है, अतः यह सूत्र नहीं लगेगा।

८८३. उदितो वा (७-२-५६)

उदित् (जिन धातुओं के मूल रूप में से उ हटा है) धातुओं के बाद क्त्वा को

जैसे—राज्ञः पुरुषः। (२) अलौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता है। जैसे—राज्ञः पुरुषः का राजन्+ङस् पुरुष+सु यह अलौकिक विग्रह है।

५. उपसर्जन—(प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्, ८९४)। समास के प्रकरण में सूत्रों में जो पद प्रथमान्त हैं, उन्हें उपसर्जन कहते हैं। जैसे–अव्ययं विभक्ति० (८९३) में अव्ययम् प्रथमान्त पद है। (उपसर्जनं पूर्वम्, ८९५) समास में उपसर्जन का पहले प्रयोग होता है, अर्थात् वह प्रथम पद होता है। (एकविभक्ति चापूर्वनिपाते, ९३६) विग्रह में जिस पद में एक ही (वही) विभक्ति रहती है, उसे उपसर्जन कहते हैं, परन्तु उसका पूर्वनिपात (पूर्व-प्रयोग) नहीं होता है। यह नियम तत्पुरुष आदि में लगता है। इस उपसर्जन के होने से पद के अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व हो जाता है। जैसे—*अतिक्रान्तः मालाम् अतिमालः।*

१. केवल समास

तत्रादौ केवलसमासः। समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः। स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः। १। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः। २। प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः। तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः। कर्मधारयभेदो द्विगुः। ३। प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः। ४। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः। ५।

पहला केवल समास है। समास पाँच प्रकार का है। समसन (संक्षेप) को समास कहते हैं, अर्थात् बहुत से पदों का मिलकर एक पद हो जाना समास है। (१) केवल समास—*यह समास का पहला भेद है। इस समास को कोई विशेष नाम नहीं दिया गया है। इसमें सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है।* (२) *अव्ययीभाव समास*—यह दूसरा भेद है। अव्ययीभाव समास में पूर्वपद का अर्थ प्रायः प्रधान होता है, अर्थात् प्रथम पद मुख्य होता है। (३) तत्पुरुष समास—यह तीसरा भेद है। तत्पुरुष समास में उत्तरपद (अन्तिम) पद का अर्थ प्रायः मुख्य होता है। तत्पुरुष का ही एक भेद कर्मधारय समास है। कर्मधारय का एक भेद द्विगु समास है। (४) बहुव्रीहि समास—यह चतुर्थ भेद है। बहुव्रीहि समास में अन्य (समस्त होने वाले पदों से भिन्न) पद का अर्थ प्रायः मुख्य होता है। (५) द्वन्द्व समास—यह पंचम भेद है। इसमें प्रायः दोनों पदों का *अर्थ मुख्य होता है।*

८८९. समर्थः पदविधिः (२–१–१)

पद-सम्बन्धी जो कार्य होते हैं, वे समर्थ (सामर्थ्य वाले) पदों में ही होते हैं। समर्थ का अभिप्राय यह है कि उन पदों में उस कार्य की शक्ति होनी चाहिए। अतः निरर्थक और असंबद्ध शब्दों में समास नहीं होगा।

८९०. प्राक्कडारात् समासः (२-१-३)

कडाराः कर्मधारये (२-२-३८) इस सूत्र से पहले समास का अधिकार है, अर्थात् उस सूत्र तक समास का प्रकरण है।

८९१. सह सुपा (२-१-४)

सुबन्त का सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। सूचना—समास होने से कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होती है और प्रातिपदिक संज्ञा होने से सुपो धातु० (७२१) से सुप् (विभक्तियों) का लोप हो जाता है।

परार्थाभिधानं वृत्तिः। कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा। तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः। 'पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात् पूर्वनिपातः।

परार्थ (अन्य अर्थ) का बोध कराने को वृत्ति कहते हैं, अर्थात् किसी प्रत्यय के लगाने से या अन्य पद के संबद्ध हो जाने से जो विशेष अर्थ की प्रतीति होती है, उसे परार्थ कहते हैं। वृत्ति के द्वारा उसी परार्थ का बोध होता है। वृत्तियाँ पाँच हैं—(१) कृत्, (२) तद्धित, (३) समास, (४) एकशेष, (५) सन् आदि प्रत्ययान्त धातुरूप। अभिप्राय यह है कि कृत्-प्रत्यय, तद्धित-प्रत्यय और सन् आदि प्रत्यय लगाकर जो रूप बनते हैं, उनसे विशेष अर्थ का बोध होता है। इसी प्रकार समास और एकशेष में अन्यपद के अर्थ से युक्त विशेष अर्थ का बोध होता है। वृत्ति (समास) के अर्थ का बोध कराने वाले वाक्य को विग्रह कहते हैं। विग्रह दो प्रकार का होता है—१. लौकिक, २. अलौकिक। भूतपूर्वः का पूर्वं भूतः, यह लौकिक विग्रह है, अर्थात् ऐसे वाक्यों का लोक (जन-साधारण) में प्रयोग होता है। 'पूर्व + अम् भूत + सु', यह अलौकिक विग्रह है, अर्थात् ऐसे प्रयोग लोक में नहीं होते हैं। भूतपूर्वः (भूतपूर्व, जो पहले हुआ हो)—पूर्वं भूतः। सह सुपा (८९१) से समास, विभक्ति-लोप, भूत का पूर्व निपात अर्थात् पहले प्रयोग, प्रातिपदिक होने से विभक्ति। पाणिनि ने 'भूतपूर्वे चरट्' (५-३-५३) सूत्र में भूतपूर्व शब्द का प्रयोग किया है, इससे ज्ञात होता है कि भूत का पहले प्रयोग होता है। अतः यहाँ भूत का पहले प्रयोग होगा। (इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च, वा०) 'इव' इस अव्यय के साथ सुबन्त का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता है। वागर्थाविव (वाणी और अर्थ के तुल्य)—वागर्थौ + इव। समास और विभक्ति का अलोप। समास होने से एक पद हो जाता है और पूरे पद में एक स्वर होता है।

केवलसमास समाप्त।

---

२. अव्ययीभाव समास

८९२. अव्ययीभावः (२–१–५)

तत्पुरुषः (९०७) सूत्र से पहले अव्ययीभाव समास का अधिकार है।

८९३. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रति-शब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवच - नेषु (२–१–६)

निम्नलिखित १६ अर्थों में विद्यमान अव्यय का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह अव्ययीभाव समास होता है:–१. विभक्ति (प्रथमा आदि), २. समीप, ३. समृद्धि, ४. व्यृद्धि (समृद्धि का अभाव), ५. अर्थ (वस्तु) का अभाव, ६. अत्यय (नाश), ७. असंप्रति (अनुचित), ८. शब्द की अभिव्यक्ति, ९. पश्चात् (पीछे), १०. यथा, ११. आनुपूर्व्य (क्रमशः), १२. यौगपद्य (एक साथ होना), १३. सादृश्य (समानता), १४. संपत्ति, १५. साकल्य (संपूर्णता) और १६. अन्त (अन्त तक)। प्रायेणाविग्रहो नित्य-समासः प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। नित्यसमास का लक्षण है–१. प्रायः जिस समास का विग्रह न हो, २. अथवा प्रायः अपने पदों से विग्रह नहीं होता है, अर्थात् विग्रह वाक्य के पदों और समास होने वाले पदों में अन्तर रहता है।

८९४. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् (१–२–४३)

समासशास्त्र (समास करने वाले सूत्रों) में प्रथमान्त से निर्दिष्ट पद उपसर्जन कहा जाता है।

८९५. उपसर्जनं पूर्वम् (२–२–३०)

समास में उपसर्जन का पहले प्रयोग होता है। सूचना–१. अव्ययीभाव समास में आगे जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमें किसी विशेष अर्थ में विशेष अव्यय का प्रयोग हुआ है। २. विग्रह-वाक्य और समास होने वाले पदों में अन्तर होगा। विग्रह में अन्य शब्द होंगे, परन्तु समास अव्यय के साथ ही होगा। ३. समास होने पर उपसर्जनं० (८९५) से अव्यय का पहले प्रयोग होगा। ४. समास होने से सुपो धातु० (७२१) से सुप् *(विभक्तियों)* का लोप होगा। ५. ह्रस्व अकारान्त शब्दों के बाद पंचमी को छोड़कर अन्यत्र सुप् (विभक्तियों) को अम् हो जाएगा। तृतीया और सप्तमी में अम् विकल्प से होगा, अतः इनमें दो-दो रूप बनेंगे। ६. ह्रस्व अकारान्त को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर अव्ययीभावश्च (३७०) से अव्ययसंज्ञा होने से अव्ययादा-प्सुपः (३७१) से सुप् (विभक्तियों) का लोप होगा। ऐसे शब्द अव्यय के तुल्य प्रयुक्त होंगे।

१. विभक्ति, सप्तमी—विभक्ति के अर्थ में अधि। अधिहरि (हरि में)—हरौ इति। हरि ङि अधि। अधि का पूर्वप्रयोग, ङि का लोप। एकदेशविकृतमनन्यवद् (परि०) से एक अंश में विकार होने से वस्तु अन्य नहीं हो जाती है, अतः ङि का लोप होने पर भी अधिहरि की कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होने से सु आदि विभक्तियाँ होंगी। अव्ययसंज्ञा होने से सुप् का लोप।

८९६. अव्ययीभावश्च (२-४-१८)

अव्ययीभावसमास नपुंसकलिंग होता है।

८९७. नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः (२-४-८३)

ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव के बाद सुप् का लोप नहीं होता है और उसको अम् आदेश होता है, पंचमी विभक्ति को छोड़कर। अधिगोपम् (ग्वाले में)—गोपि इति। सप्तमी विभक्ति के अर्थ में अधि है। गाः पाति इति गोपाः, तस्मिन्, गोपाशब्द का सप्तमी एक०। अधि का पूर्व-प्रयोग, ङि का लोप, नपुंसकलिंग, ह्रस्वो नपुंसके० (२४३) से अधिगोपा के आ को ह्रस्व अ, इस सूत्र में सु को अम्।

८९८. तृतीयसप्तम्योर्बहुलम् (२-४-८४)

ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव के बाद तृतीया और सप्तमी को विकल्प से अम् होता है। अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा—तृतीया और सप्तमी में विकल्प से अम् हुआ है। सूचना—अकारान्त शब्दों में पंचमी में अन्त में आत् लगेगा, तृतीया में अम् और एन, सप्तमी में अम् और ए तथा अन्य सभी स्थानों पर अम् ही लगेगा। २. समीप, समीप अर्थ में उप, उपकृष्णम् (कृष्ण के पास)—कृष्णस्य समीपम्। उप का पूर्व प्रयोग, विभक्ति-लोप, सु को अम्। ३. समृद्धि, समृद्धि अर्थ में सु, सुमद्रम् (मद्रदेश के लोगों की समृद्धि)—मद्राणां समृद्धिः। पूर्ववत्। ४. व्यृद्धि (समृद्धि का अभाव), व्यृद्धि अर्थ में दुर्, दुर्यवनम् (यवनों की दुर्गति)—यवनानां व्यृद्धिः। पूर्ववत्। ५. अर्थाभाव (वस्तु का अभाव), अभाव अर्थ में निर्, निर्मक्षिकम् (मक्खियों का अभाव, सर्वथा एकान्त)—मक्षिकाणाम् अभावः। पूर्ववत्, नपुंसक होने से आ को ह्रस्व। ६. अत्यय (नाश), अत्यय अर्थ में अति, अतिहिमम् (बर्फ का नाश या समाप्ति)—हिमस्य अत्ययः। पूर्ववत्। ७. असंप्रति (अनुचित), अनुचित अर्थ में अति, अतिनिद्रम् (इस समय सोना उचित नहीं है)—निद्रा संप्रति न युज्यते। पूर्ववत्, अतिनिद्रा, ह्रस्वो० (२४३) से ह्रस्व। ८. शब्द-प्रादुर्भाव (शब्द की व्यक्ति), इस अर्थ में इति, इतिहरि (हरि शब्द का प्रादुर्भाव या व्यक्त होना)—हरिशब्दस्य प्रकाशः। पूर्ववत्, अव्यय होने से सुप् का लोप। ९. पश्चात् (पीछे, बाद में), पश्चात् अर्थ में अनु, अनुविष्णु (विष्णु के पीछे)—विष्णोः पश्चात्। पूर्ववत्, सुप्-लोप। १०. योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। यथा

के चार अर्थ हैं : योग्यता, वीप्सा (द्विरुक्ति या बार-बार होना), पदार्थानतिवृत्ति (पदार्थ की सीमा का अतिक्रमण न करना, शक्ति भर) और सादृश्य । (क) योग्यता अर्थ में अनु, अनुरूपम् (रूप के योग्य)—रूपस्य योग्यम् । पूर्ववत् । (ख) वीप्सा अर्थ में प्रति, प्रत्यर्थम् (प्रत्येक अर्थ में)—अर्थम् अर्थं प्रति । पूर्ववत् । (ग) पदार्थानतिवृत्ति अर्थ में यथा, यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)—शक्तिम् अनतिक्रम्य । पूर्ववत्, सुप्-लोप ।

८९९. अव्ययीभावे चाकाले (६-३-८१)

सह को स आदेश होता है, अव्ययीभाव समास में । परन्तु काल अर्थ में सह को स नहीं होगा । (घ) सादृश्य अर्थ में सह, सहरि (हरि की समानता)—हरेः सादृश्यम् । पूर्ववत्, इससे सह को स, सुप्-लोप । ११. आनुपूर्व्य (क्रम से), आनुपूर्व्य अर्थ में अनु, अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ के क्रम से)—ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण । पूर्ववत् । १२. यौगपद्य (एक साथ), यौगपद्य अर्थ में सह, सचक्रम् (चक्र के साथ)—चक्रेण युगपत् । पूर्ववत्, सह को स । १३. सादृश्य (समानता), सादृश्य अर्थ में सह, ससखि (मित्र के समान)—सदृशः सख्या । पूर्ववत्, सुप्-लोप । १४. संपत्ति (ऐश्वर्य), संपत्ति अर्थ में सह, सक्षत्रम् (क्षत्रियों की संपत्ति)—क्षत्राणां संपत्तिः । पूर्ववत् । १५. साकल्य (संपूर्णता), साकल्य अर्थ में सह, सतृणम् अत्ति (तिनके को भी न छोड़कर अर्थात् सब कुछ खा जाता है)—तृणम् अपि अपरित्यज्य । पूर्ववत्, सह को स । १६. अन्त (अन्त तक), अन्त अर्थ में सह, साग्नि (अग्निकृत ग्रन्थ तक पढ़ता है)—अग्निग्रन्थ-पर्यन्तम् अधीते । पूर्ववत्, सुप्-लोप ।

९००. नदीभिश्च (२-१-२०)

नदी-विशेष के वाचक शब्दों के साथ संख्यावाचक का समास होता है । (समाहारे चायमिष्यते, वा०) यह समास समाहार (समूह) अर्थ में होता है । पञ्चगङ्गम् (पाँच गंगाओं का समूह)—पञ्चानां गङ्गानां समाहारः । इससे समास, नलोपः० (१८०) से पञ्चन् के न् का लोप, नपुंसक होने से ह्रस्वो० (२४३) से ह्रस्व । द्वियमुनम् (दो यमुनाओं का समूह)—द्वयोः यमुनयोः समाहारः । पूर्ववत् । नपुं० और ह्रस्व ।

९०१. तद्धिताः (४-१-७६)

पञ्चम अध्याय की समाप्ति तक तद्धित का अधिकार है, अर्थात् इस सूत्र के बाद पाँचवें अध्याय के अन्त तक जो प्रत्यय कहे गए हैं, वे तद्धित-प्रत्यय कहलाते हैं ।

९०२. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः (५-४-१०७)

शरद् आदि शब्दों से अव्ययीभाव समास के अन्त में टच् (अ) प्रत्यय होता है । टच् का अ शेष रहता है । उपशरदम् (शरद् के समीप)—शरदः समीपम् । समीप

अर्थ में उप, समासान्त टच् (अ)। प्रतिविपाशम् (विपाशा अर्थात् व्यास नदी की ओर)–विपाशायाः अभिमुखम्। आभिमुख्य अर्थ में प्रति, लक्षणेना० (२-१-१४) से समास, समासान्त टच् (अ)। (जराया जरश्च, वा०) जरा को जरस् आदेश होता है और अव्ययीभाव में समासान्त टच् होता है। उपजरसम् (बुढ़ापे के समीप)–जरायाः समीपम्। समीप अर्थ में उप, जरा को जरस् और टच् (अ)।

९०३. अनश्च (५–४–१०८)

अन्-अन्त वाले अव्ययीभाव समास के बाद समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होता है।

९०४. नस्तद्धिते (६–४–१४४)

न्-अन्त वाले भसंज्ञक की टि (स्वर-सहित अन्तिम अंश) का लोप हो जाता है, बाद में तद्धित प्रत्यय हो तो। सूचना—(यचि भम्, १६५) य और अच् (स्वर) से प्रारम्भ होने वाले प्रत्यय बाद में हों तो पूर्ववर्ती की भ संज्ञा होती है। उपराजम् (राजा के समीप) – राज्ञः समीपम्। समीप अर्थ मे उप, समासान्त टच् (अ), भ संज्ञा होने से राजन् के अन् का लोप। अध्यात्मम् (आत्मा के विषय में)—आत्मनि इति। सप्तमी के अर्थ में अधि, टच्, आत्मन् के अन् का लोप।

९०५. नपुंसकादन्यतरस्याम् (५–४–१०९)

अन्–अन्त वाले नपुंसकलिंग शब्द से अव्ययीभाव में समासान्त टच् (अ) विकल्प से होता है। उपचर्मम्, उपचर्म (चर्म के समीप)—चर्मणः समीपम्। समीप अर्थ में उप, विकल्प से समासान्त टच् (अ), अन् का लोप। टच् के अभाव में नकारान्त शब्द रहेगा।

९०६. झयः (५–४–१११)

झय् (वर्ग के १ से ४) अन्त वाले अव्ययीभाव से समासान्त टच् (अ) विकल्प से होता है। उपसमिधम्, उपसमित् (समिधा के समीप)—समिधः समीपम्। समीप अर्थ में उप, समासान्त टच् (अ)। पक्ष में उपसमिध् का प्र० एक० का रूप है।

अन्ययीभाव समास समाप्त

---

३. तत्पुरुष-समास

सूचना—इस समास में सर्वत्र समास होने पर कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होगी और सुपो धातु० (७२१) से सभी समस्त पदों के बाद की विभक्तियों का लोप हो जाएगा। तत्पश्चात् सु आदि विभक्तियाँ आएँगी।

या एक वस्तु, अतः अर्थ होता है एकत्व-संख्या-विशिष्ट अवयवी अर्थात् अवयवी एकवचन में हो। (३) यह षष्ठी-समास का अपवाद है। षष्ठी-समास होने पर षष्ठ्यन्त का पूर्व प्रयोग होता है। (४) इस सूत्र में पूर्वा० आदि प्रथमान्त है, अतः प्रथमा० (८९४) से पूर्व आदि का ही पूर्व-प्रयोग होगा। पूर्वकायः (शरीर का अगला भाग)- पूर्वं कायस्य। समास, पूर्व का पहले प्रयोग। अपरकायः। (शरीर का पिछला भाग)- अपरं कायस्य। पूर्ववत्। प्रत्युदाहरण-पूर्वश्छात्राणाम् (छात्रों में पहला) इसमें अवयवी बहुवचन है, अतः समास नहीं।

९१८. अर्धं नपुंसकस्य (२-२-२)

समान भाग (बराबर आधा हिस्सा) के वाचक नित्य नपुंसकलिंग अर्ध शब्द का एकवचनान्त अवयवी के साथ समास होता है। अर्धपिप्पली (आधी पीपर)-अर्धं पिप्पल्याः। इससे समास, अर्ध का पूर्व-प्रयोग।

९१९. सप्तमी शौण्डैः (२-१-४०)

सप्तम्यन्त का शौण्ड आदि शब्दों के साथ समास होता है। अक्षशौण्डः (पासे खेलने में चतुर)- अक्षेषु शौण्डः। समास। सूचना-द्वितीया, तृतीया आदि समास करने वाले सूत्रों में से द्वितीया, तृतीया आदि का योग-विभाग (सूत्र के विभाजन) करने से अन्यत्र भी द्वितीया तृतीया आदि विभक्तियों का प्रयोग के आधार पर समास होगा।

९२०. दिक्संख्ये संज्ञायाम् (२-१-५०)

दिशावाचक और संख्यावाचक शब्दों का समानाधिकरण (एक आधार वाला) सुबन्त के साथ संज्ञा में ही समास होता है। पूर्वेषुकामशमी (एक प्राचीन गाँव का नाम है)—पूर्वः इषुकामशमी। समास। सप्तर्षयः (सप्तर्षि)-सप्त च ते ऋषयः। समास। प्रत्युदाहरण-उत्तरा वृक्षाः (उत्तर के पेड़), पञ्च ब्राह्मणाः (पाँच ब्राह्मण)-संज्ञावाचक न होने से समास नहीं हुआ।

९२१. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (२-१-५१)

तद्धित के अर्थ के विषय में, उत्तरपद बाद में होने पर और समाहार (समूह, एकत्व) वाच्य हो तो दिशावाचक और संख्यावाचक शब्दों का समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास होता है। (सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः, वा०) सर्वनाम शब्दों को वृत्तिमात्र में पुंवद्भाव होता है।

९२२. दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः (४-२-१०७)

दिशावाचक शब्द पहले होने पर भव (होना) आदि अर्थों में ञ (अ) प्रत्यय होता है, संज्ञा में नहीं।

९२३. तद्धितेष्वचामादेः (७-२-११७)

ञित् (जिसमें से ञ् हटा हो) और णित् (जिसमें से ण् हटा हो) तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है। पौर्वशालः (पूर्व वाले घर में उत्पन्न व्यक्ति)—पूर्वस्यां शालायां भवः। तद्धिता० (९२१) से भवः इस तद्धित के अर्थ में समास, विभक्ति-लोप, सर्वनाम्नो० (वा०) से पूर्वा को पुलिंग पूर्व, भव अर्थ में दिक्० (९२२) से ञ (अ) प्रत्यय, पूर्वशाला+अ, इससे पू के ऊ को वृद्धि औ, यस्येति च (२३६) से आ का लोप, प्रथमा एक०। (द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्, वा०) द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में उत्तरपद बाद में होने पर नित्यसमास होता है।

९२४. गोरतद्धितलुकि (५-४-९२)

गो शब्द अन्त वाले तत्पुरुष से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होता है, तद्धित-प्रत्यय का लोप होने पर नहीं होगा। पञ्चगवधनः (पाँच गायरूपी धन वाला)—पञ्च गावः धनं यस्य सः। इस बहुव्रीहि समास में धन को उत्तरपद मानकर तद्धिता० (९२१) से पञ्च गावः का तत्पुरुष समास, न्-लोप, पञ्चगो, इससे टच् (अ), ओ को अव्, सुप्।

९२५. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः (१-२-४२)

समानाधिकरण (एक आधार वाला) तत्पुरुष को कर्मधारय कहते हैं।

९२६. संख्यापूर्वो द्विगुः (२-१-५२)

तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार में यदि संख्या पूर्व में होगी तो उसे द्विगु समास कहेंगे।

९२७. द्विगुरेकवचनम् (२-४-१)

द्विगु समास का अर्थ समाहार (समूह) होने पर एकवचन होता है।

९२८. स नपुंसकम् (२-४-१७)

समाहार में द्विगु और द्वन्द्व समास नपुंसक होते हैं। पञ्चगवम् (पाँच गायों का समूह)—पञ्चानां गवां समाहारः। तद्धिता० (९२१) से समास, पञ्चन् के न् का लोप, गोरतद्धित० (९२४) से टच् (अ), ओ को अव्, संख्या पहले होने से द्विगु संज्ञा, सूत्र ९२७, ९२८ से नपुंसक० एकवचन।

९२९. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (२-१-५७)

विशेषण का विशेष्य के साथ बहुल से समास होता है और वह कर्मधारय समास होता है। सूचना—१. विशेषण को भेदक और विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं। २. विशेषणम् प्रथमान्त है, अतः विशेषण का पहले प्रयोग होगा। नीलोत्पलम् (नीला

९३९. उपपदमतिङ् (२-२-१९)

उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ नित्य समास होता है। यह समास तिङन्त के साथ नहीं होगा। कुम्भकारः (घडा बनाने वाला, कुम्हार)—कुम्भं करोति इति। कुम्भं + कृ, कर्मण्यण् (७९१) से अण् (अ), अचो ञ्णिति (१८२) से ऋ को आर्, कुम्भ + अम् + कार, इससे समास होकर अम् का लोप, सु। प्रत्युदाहरण—मा भवान् भूत् (आप न हों)—में भूत् तिङन्त रूप है, अतः इसका मा के साथ समास नहीं हुआ। माङि लुङ् (४३४) सूत्र में माङि में सप्तमी है, अतः मा यह उपपद है। (गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः, परि०) गति, कारक और उपपद का कृदन्त के साथ सुप् आने से पूर्व ही समास होता है। व्याघ्री (बाघिन)- व्याजिघ्रति (विशेष रूप से चारों ओर सूँघती है) इस अर्थ में वि + आ + घ्रा + क (अ)। आतश्चोपसर्गे (७८९) से क (अ) प्रत्यय और आतो लोप० (४८८) से घ्रा के आ का लोप। व्या का घ्र के साथ सुप् आने से पहले कुगतिप्रादयः (९३४) से गतिसमास, जातिवाचक होने से जातेरस्त्री० (१२५४) से ङीप् (ई), बाद में सु (स्) और उसका हल्० (१७९) से लोप। अश्वक्रीती (घोड़े के द्वारा खरीदी गई)— अश्वेन क्रीता, कर्तृकरणे० (९११) से तृतीया-समास और क्रीतात्० (१२४९) से ङीप् (ई), सु और उसका लोप। कच्छपी (कछुवी)—कच्छेन पिबति, कच्छ + पा + क (अ)। क प्रत्यय होकर पा के आ का लोप। उपपद० (९३९) से उपपद पहले होने से समास और जाते० (१२५४) से ङीप् (ई), सु और उसका लोप।

९४०. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः (५-४-८६)

तत्पुरुष समास के आदि में संख्या-वाचक और अव्यय हो तथा अन्त में अङ्गुलि शब्द हो तो समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। द्व्यङ्गुलम् (दो अंगुल लम्बा)—द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य, इस विग्रह में तद्धितार्थो० (९२१) से समास, प्रमाण अर्थ में मात्रच् (मात्र) प्रत्यय और द्विगोर्लुक्० (४-१-८८) से उसका लोप, इससे समासान्त अच् (अ) प्रत्यय, यस्येति च (२३६) से इ का लोप, नपुं० प्र० एक०। निरङ्गुलम् (अंगुलियों से निकला हुआ)—निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः, निरादयः० (वा०) से समास, निरङ्गुलि + अच् (अ), समासान्त अच्, इ का लोप, नपुं० प्र० एक०।

९४१. अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः (५-४-८७)

अहः, सर्व, एकदेश (अवयव), संख्यात, पुण्य तथा संख्या और अव्यय के बाद रात्रि शब्द से समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—सूत्र में अहः का ग्रहण द्वन्द्व समास के लिए है, अर्थात् अहन् का रात्रि के साथ द्वन्द्व समास होने पर समासान्त अच् होगा।

९४२. रात्राह्नाहाः पुंसि (२-४-२९)

रात्र, अह्न और अह, ये जिस द्वन्द्व या तत्पुरुष के अन्त में होते हैं, वे पुंलिंग में ही आते हैं। अहोरात्रः (दिन और रात)--अहश्च रात्रिश्च। द्वन्द्व समास, दोनों सु का लोप, अहन् (३६३) से न् को रु और हशि च से रु को उ, गुण-सन्धि, अहो-रात्रि + अच् (अ), समासान्त अच्, इ का लोप, पुंलिंग प्र० एक०। सर्वरात्रः (सारी रात)—सर्वा रात्रिः, कर्मधारय समास, सर्वा को पुंवद्भाव, समासान्त अच्, इ का लोप, पुंलिंग। संख्यातरात्रः (गिनी हुई रातें)—संख्याता रात्रयः। सर्वरात्रः के तुल्य। (संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्, वा०) संख्या पूर्व में होने पर रात्र शब्द नपुंसकलिंग होता है। द्विरात्रम् (दो रात्रियों का समूह)—द्वयोः रात्र्योः समाहारः। तद्धितार्थो० से समाहार में समास, समासान्त अच्, इ-लोप, इस वार्तिक से नपुं०। त्रिरात्रम् (तीन रात्रियों का समूह)—तिसृणां रात्रीणां समाहारः। द्विरात्रम् के तुल्य।

९४३. राजाहःसखिभ्यष्टच् (५-४-९१)

राजन्, अहन् और सखि शब्द तत्पुरुष के अन्त में हों तो समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—टित् होने से स्त्रीलिंग मे ङीप् (ई) होगा। परमराजः (श्रेष्ठ राजा)–परमः चासौ राजा। परम और राजन् का विशेषणं० (९२९) से समास, इससे समासान्त टच् (अ), नस्तद्धिते (९०४) से राजन् के अन् का लोप।

९४४. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः (६--३-४६)

महत् के त् को आ आदेश हो जाता है, समानाधिकरण उत्तरपद और जातीय बाद में हो तो। महाराजः (बड़ा राजा) —महान् चासौ राजा। विशेषण-विशेष्य समास, समासान्त टच्, अन् का लोप, इससे महत् के त् को आ। परमराजः के तुल्य। महाजातीयः (बड़े ढंग का)—महाप्रकारः, प्रकारवचने जातीयर् (५-३-६९) से प्रकार अर्थ में महत् से जातीयर् (जातीय) प्रत्यय, इससे महत् के त् को आ।

९४५. द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः (६–३–४७)

द्वि शब्द के इ को और अष्टन् के न् को आ अन्तादेश होता है, संख्या अर्थ में, किन्तु बहुव्रीहि समास में और अशीति बाद में हो तो नहीं। द्वादश (बारह)—द्वौ च दश च। द्वन्द्वसमास। द्विदशन् मे इ को आ, प्र० एक०। अष्टाविंशतिः (२८)- अष्टौ च विंशतिः च। द्वन्द्व समास, इससे न् को आ।

९४६. त्रेस्त्रयः (६–३–४८)

त्रि शब्द को त्रयस् आदेश होता है, संख्या अर्थ में, किन्तु बहुव्रीहि समास में और अशीति बाद में हो तो नहीं। त्रयोदश (१३)–त्रयश्च दश च। द्वन्द्व, त्रि को त्रयस्, स् को रु, रु को उ और गुण-संधि। त्रयोविंशतिः (२३)–त्रयश्च विंशतिश्च। त्रयोदश के तुल्य। त्रयस्त्रिंशत् (३३)-त्रयश्च त्रिंशत् च। द्वन्द्व, त्रि को त्रयस्।

९४७. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (२-३-२६)

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर (बाद वाले) पद के तुल्य लिंग होता है। कुक्कुटमयूर्यौ इमे (मुर्गा और मोरनी)—कुक्कुटश्च मयूरी च। द्वन्द्व, इससे मयूरी के तुल्य स्त्रीलिंग, अतः इमे स्त्रीलिंग प्र० द्विवचन विशेषण है। मयूरीकुक्कुटौ इमौ (मोरनी और मुर्गा)—मयूरी च कुक्कुटश्च। द्वन्द्व, कुक्कुट के तुल्य पुंलिंग, अतः इमौ पुंलिंग प्र० द्विव० है। अर्धपिप्पली (पीपर का आधा हिस्सा)—अर्धं पिप्पल्याः। अर्धं० (९१८) से समास, पिप्पली स्त्रीलिंग है, अतः स्त्रीलिंग हुआ। (द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः, वा०) द्विगु समास, प्राप्त, आपन्न और अलं पूर्व वाले समास में तथा गति समास में परवत् लिंग नहीं होता है, अर्थात् इन स्थानों पर पूर्व शब्द के तुल्य लिंग होगा। पञ्चकपालः पुरोडाशः (पाँच सकोरों में पकाया गया पुरोडाश)—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः। तद्धितार्थो० (९२१) से तद्धितार्थ में द्विगु-समास, कपाल नपुं० है, तदनुसार नपुं० नहीं हुआ।

९४८. प्राप्तापन्ने च द्वितीयया (२-२-४)

प्राप्त और आपन्न शब्दों का द्वितीयान्त के साथ समास होता है और इनको अ अन्तादेश होता है। प्राप्तजीविकः (जिसे जीविका मिल गई है)—प्राप्तः जीविकाम्। इससे समास, एकविभक्ति० (९३६) से उपसर्जन संज्ञा; गोस्त्रियो० (९३७) से जीविका के आ को ह्रस्व, द्विगुप्राप्ता० (वा०) से जीविका के तुल्य स्त्रीलिंग न होकर विशेष्य के तुल्य पुंलिंग हुआ। आपन्नजीविकः (जीविका को प्राप्त)—आपन्नः जीविकाम्। प्राप्तजीविकः के तुल्य। अलंकुमारिः (कुमारी के योग्य)—अलं कुमार्यै। द्विगु० (वा०) में अलं-पूर्वक समास में परवत्-लिंग का निषेध सूचित करता है कि अलं के साथ समास होता है, अतः समास, गोस्त्रियो० (९३७) से ई को ह्रस्व, कुमारी के तुल्य स्त्रीलिंग नहीं हुआ और विशेष्यवत् पुंलिंग हुआ। निष्कौशाम्बिः (कौशाम्बी से निर्गत)—निर्गतः कौशाम्ब्याः। प्रादिसमास, ई को ह्रस्व, विशेष्यवत् पुंलिंग।

९४९. अर्धर्चाः पुंसि च (२-४-३१)

अर्धर्च आदि शब्द पुंलिंग और नपुंसकलिंग दोनों में होते हैं। अर्धर्चः, अर्धर्चम् (ऋचा का आधा)—अर्धम् ऋचः। अर्धं० (९१८) से समास, ऋक्पू० (९७८) से समासान्त अ। पुं० और नपुं०। ये शब्द भी अर्धर्चगण में हैं :—ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्डप, यूप, देह, अङ्कुश, पात्र, सूत्र आदि। (सामान्ये नपुंसकम्) जहाँ पर विशेष लिंग का भान नहीं होता है, वहाँ पर सामान्य अर्थ में नपुंसक लिंग होता है। मृदु पचति (हलके ढङ्ग से पकाता है)—मृदु में सामान्य में नपुं०। प्रातः कमनीयम् (प्रातःकाल सुन्दर है)—कमनीयम् में सामान्य में नपुं०।

तत्पुरुष समास समाप्त।

---

४. बहुव्रीहि समास

सूचना-(१) बहुव्रीहि समास में प्रथमान्त पदों का अन्य पद के अर्थ में समास होता है। कुछ स्थानों पर व्यधिकरण (प्रथमान्त से भिन्न सप्तम्यन्त आदि का) समास भी होता है। (२) (प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि में प्रायः अन्य पद का अर्थ प्रधान होता है। (३) इस समास में सर्वत्र समास होने पर कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होगी और सुपो धातु० (७२१) से समस्त पदों के बाद की विभक्तियों का लोप हो जाएगा। तत्पश्चात् सु आदि विभक्तियाँ होंगी। (४) बहुव्रीहि समास की साधारणतया पहचान यह है कि जहाँ अर्थ करने पर जिसको, जिसने, जिसका आदि अर्थ निकलता है तथा समस्त पद किसी विशेष्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है।

९५०. शेषो बहुव्रीहिः (२–२–२३)

चार्थे द्वन्द्वः (९७०) से पहले बहुव्रीहि समास का अधिकार है। पूर्व प्रकरणों से शेष स्थानों पर बहुव्रीहि समास होता है।

९५१. अनेकमन्यपदार्थे (२–२–२४)

अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्त पदों का विकल्प से समास होता है और उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं।

९५२. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ (२–२–३५)

सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि में पूर्व प्रयोग होता है। सूचना-इस सूत्र में सप्तम्यन्त का पूर्वप्रयोग कहा गया है, अतः ज्ञात होता है कि व्यधिकरण (भिन्न विभक्तिवाले) पदों का भी बहुव्रीहि समास होता है।

९५३. हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् (६–३–९)

हलन्त और ह्रस्व अकारान्त शब्दों के बाद सप्तमी का लोप नहीं होता है। कण्ठेकालः (नीलकण्ठ, शिव)–कण्ठे कालः यस्य सः। समास और सप्तमी का अलुक्। प्राप्तोदकः ग्रामः (जहाँ जल पहुँच गया है, ऐसा ग्राम)–प्राप्तम् उदकं यं सः। द्वितीया विभक्ति के अर्थ में बहुव्रीहि समास। ऊढरथः अनड्वान् (जिसने रथ चलाया है, ऐसा बैल)–ऊढः रथः येन सः। तृतीया विभक्ति के अर्थ में समास। उपहृतपशुः रुद्रः (जिसको पशु उपहार दिया गया है, ऐसा शिव)–उपहृतः पशुः यस्मै सः। चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में समास। उद्धृतौदना स्थाली (जिसमें से भात निकाल लिया गया है, ऐसी पतीली)–उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा। पंचमी के अर्थ में समास। पीताम्बरः

हरिः (पीले वस्त्र वाले, विष्णु)–पीतम् अम्बरं यस्य सः। षष्ठी के अर्थ में समास। वीरपुरुषकः ग्रामः (जिसमें वीर पुरुष हैं, ऐसा ग्राम)–वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः। सप्तमी के अर्थ में समास। शेषाद् विभाषा (९६९) से समासान्त कप् (क) प्रत्यय।

(प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः, वा०) प्र आदि के बाद धातुज (धातु से बने हुए रूप) के साथ समास होता है और उसके उत्तरपद का विकल्प से लोप होता है। प्रपतितपर्णः, प्रपर्णः (जिससे पत्ते गिर चुके हैं)–प्रपतितानि पर्णानि यस्मात्। समास, पतित का विकल्प से लोप। (नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः, वा०) नञ् के बाद जो अस्ति (विद्यमान) अर्थ वाला पद, तदन्त का अन्य पद के साथ बहुव्रीहि समास होता है और विद्यमान अर्थ वाले पद का विकल्प से लोप होता है। अविद्यमानपुत्रः, अपुत्रः (पुत्र-रहित)–अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः। समास, विद्यमान का विकल्प से लोप।

९५४. स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (६-३-३४)

प्रवृत्ति-निमित्त समान होने पर जो शब्द उक्तपुंस्क (पुंलिंग में प्रयुक्त) है, ऐसे स्त्रीलिंगवाचक शब्द को पुंलिंग शब्द हो जाता है, समानाधिकरण स्त्रीलिंग शब्द बाद में होने पर, किन्तु पूरणी-संख्या (प्रथमा आदि) और प्रिय आदि शब्द बाद में न हों तथा स्त्रीलिंग शब्द के बाद ऊङ् (ऊ) प्रत्यय न लगा हो तो। चित्रगुः (चितकबरी गायों वाला)-चित्राः गावः यस्य सः। समास, इससे चित्रा को पुं० चित्र, गोस्त्रियो० (९३७) से गो को ह्रस्व होकर गु। रूपवद्भार्यः (जिसकी स्त्री रूपवती है)–रूपवती भार्या यस्य सः। समास, पुंवत् होने से रूपवती को रूपवत्, गोस्त्रियो० (९३७) से भार्या को ह्रस्व होकर भार्य। प्रत्युदाहरण—वामोरूभार्यः (जिसकी भार्या सुन्दर जंघा वाली है)–वामोरूः भार्या यस्य सः। इसमें वामोरू में ऊङ् प्रत्यय है, अतः उसे पुंवत् नहीं हुआ। गोस्त्रियो० से भार्या में ह्रस्व होगा।

९५५. अप्पूरणीप्रमाण्योः (५-४-११६)

पूरणार्थक-प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्द अन्त में होने पर तथा प्रमाणी अन्तवाले बहुव्रीहि से अप् (अ) प्रत्यय होता है। कल्याणीपञ्चमा रात्रयः (जिन रात्रियों में पाँचवीं रात्रि शुभ है)–कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः। समास, पञ्चमी शब्द में पूरणार्थक प्रत्यय डट् और मट् हैं, अतः पूरणी का निषेध होने से कल्याणी को पुंलिंग नहीं हुआ, इससे समासान्त अप् (अ) प्रत्यय होने पर यस्येति च (२३६) से ई का लोप, टाप्, प्र० बहु०। स्त्रीप्रमाणः (स्त्री के कहने में चलने वाला)–स्त्री प्रमाणी यस्य सः। समास, इस सूत्र से समासान्त अप् (अ), यस्येति च (२३६) से ई का लोप। कल्याणीप्रियः (जिसकी स्त्री कल्याणकारी है)–कल्याणी प्रिया यस्य सः। समास, प्रिया शब्द बाद में होने से पुंवत् नहीं हुआ, गोस्त्रियो० (९३७) से प्रिया के आ को ह्रस्व।

९५६. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् (५-४-११३)

शरीर के अवयव-वाचक सक्थि और अक्षि शब्द अन्त में हों तो ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त षच् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—षित् होने से स्त्रीलिंग में षिद्गौरादिभ्यश्च (१२४०) से ङीष् (ई) होगा। दीर्घसक्थः (जिसकी जाँघ बड़ी है)—दीर्घे सक्थिनी यस्य सः। समास, इससे समासान्त षच् (अ), दीर्घसक्थि+अ, यस्येति च (२३६) से इ का लोप। जलजाक्षी (कमल के तुल्य आँख वाली)—जलजे इव अक्षिणी यस्याः सा। समास, समासान्त षच् (अ), जलजाक्षि+अ, यस्येति च (२३६) से इ का लोप, स्त्रीलिंग में षिद्० (१२४०) से ङीष् (ई)। प्रत्युदाहरण—दीर्घसक्थि शकटम् (लम्बी लकड़ी वाली गाड़ी)—दीर्घे सक्थिनी यस्य तत्। सक्थि शरीरावयव-वाचक नहीं है, अतः समासान्त षच् नहीं हुआ। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः (बड़ी आँखों वाली बाँस की लाठी)—स्थूले अक्षिणी यस्याः सा। समास, अक्षि स्वांगवाचक नहीं है, अतः षच् नहीं हुआ। अक्ष्णोऽदर्शनात् (९७९) से समासान्त अच्, इ का लोप, टाप्।

९५७. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः (५-४-११५)

द्वि और त्रि के बाद मूर्धन् से समासान्त ष (अ) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में। द्विमूर्धः (दो सिर वाला)—द्वौ मूर्धानौ यस्य सः। समास, इससे समासान्त ष (अ), नस्तद्धिते (९०४) से मूर्धन् के अन् का लोप। त्रिमूर्धः (तीन सिर वाला)—त्रयः मूर्धानः यस्य सः। द्विमूर्धः के तुल्य।

९५८. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः (५-४-११७)

अन्तर् और बहिस् शब्द के बाद लोमन् से समासान्त अप् (अ) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में। अन्तर्लोमः (जिसके बाल अन्दर हैं)—अन्तः लोमानि यस्य सः। समास, इससे समासान्त अप् (अ), नस्तद्धिते (९०४) से लोमन् के अन् का लोप। बहिर्लोमः (जिसके बाल बाहर हैं)—बहिः लोमानि यस्य सः। अन्तर्लोमः के तुल्य।

९५९. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः (५-४-१३८)

हस्तिन् आदि से भिन्न उपमान के बाद पाद के अन्तिम अ का लोप होता है, बहुव्रीहि में। व्याघ्रपात् (व्याघ्र के तुल्य पैर वाला)—व्याघ्रस्य इव पादौ अस्य सः। समास, इससे द के अ का लोप। प्रत्युदाहरण—हस्तिपादः (हाथी के तुल्य पैर वाला)—हस्तिन इव पादौ यस्य सः। कुसूलपादः (कुसूल या बड़ा घड़ा के सदृश पैर वाला)—कुसूलस्य इव पादौ यस्य सः। हस्तिन् आदि पहले होने से पाद के अ का लोप नहीं हुआ।

९६०. संख्यासुपूर्वस्य (५-४-१४०)

संख्यावाचक और सु पहले हो तो पाद के अ का लोप होगा, बहुव्रीहि में। द्विपात् (दो पैर वाला, मनुष्य)—द्वौ पादौ यस्य सः। समास, इससे पाद के अ का लोप।

सुपाद् (सुन्दर पैरों वाला)—शोभनौ पादौ यस्य सः। द्विपात् के तुल्य समास, अ का लोप।

९६१. उद्विभ्यां काकुदस्य (५-४-१४८)

उद् और वि के बाद काकुद के अन्तिम अ का लोप होता है, बहुव्रीहि में। उत्काकुत् (जिसका तालु उठा हुआ है)—उद्गतं काकुदं यस्य सः। समास, इससे अन्तिम अ का लोप। विकाकुत् (जिसका तालु विकृत है)—विगतं काकुदं यस्य सः। समास, अन्तिम अ का लोप।

९६२. पूर्णाद् विभाषा (५-४-१४९)

पूर्ण शब्द के बाद काकुद के अन्तिम अ का लोप विकल्प से होता है, बहुव्रीहि में। पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः (पूर्ण तालु वाला)—पूर्णं काकुदं यस्य सः। समास, अन्तिम अ का विकल्प से लोप।

९६३. सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः (५-४-१५०)

बहुव्रीहि में सु और दुर् के बाद हृदय को निपातन से हृद् हो जाता है, क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में। सुहृद् (मित्र)—शोभनं हृदयं यस्य सः। समास, हृदय को हृद्। दुर्हृद् (शत्रु)—दुष्टं हृदयं यस्य सः। समास, हृदय को हृद्।

९६४. उरःप्रभृतिभ्यः कप् (५-४-१५१)

उरस् आदि शब्दों से समासान्त कप् (क) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में।

९६५. सोऽपदादौ (८-३-३८)

पाश, कल्प, क और काम्य बाद में हों तो विसर्ग को स् होता है।

९६६. कस्कादिषु च (८-३-४८)

कस्क आदि गण में पठित शब्दों में इण् (अ को छोड़कर शेष स्वर, ह, अन्तःस्थ) के बाद विसर्ग को ष् होगा, अन्यत्र विसर्ग को स्। व्यूढोरस्कः (विशाल छाती वाला)—व्यूढम् उरः यस्य सः। समास, उरः० (९६४) से समासान्त कप् (क), स् को रुत्व० (९३) से विसर्ग, इससे विसर्ग को स्।

९६७. इणः षः (८-३-३९)

इण् (अ को छोड़कर शेष स्वर, ह, अन्तःस्थ) के बाद विसर्ग को ष् होता है, बाद में पाश, कल्प, क और काम्य हों तो। प्रियसर्पिष्कः (जिसको घी प्रिय है)—प्रियं सर्पिः यस्य सः। समास, उरः० (९६४) से समासान्त कप् (क), सर्पिस् के स् को विसर्ग, इससे विसर्ग को ष्।

९६८. निष्ठा (२-२-३६)

बहुव्रीहि में क्त और क्तवतु-प्रत्ययान्त का पूर्व प्रयोग होता है। युक्तयोगः (जिसने योग लगाया है, योगी)—युक्तः योगः येन सः। समास, इससे युक्त का क्त-प्रत्ययान्त होने से पूर्व प्रयोग।

९६९. शेषाद् विभाषा (५-४-१५४)

शेष (जहाँ पर कोई समासान्त नहीं कहा है, ऐसे) स्थानों पर विकल्प से समासान्त कप् (क) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में। महायशस्कः, महायशाः (महायशस्वी)—महत् यशः यस्य सः। समास, विकल्प से कप् (क), आन्महतः ० (९४४) से त् को आ।

बहुव्रीहि समास समाप्त।

---

५. द्वन्द्व समास

सूचना—(१) (चार्थे द्वन्द्वः) च (और) अर्थ मे प्रथमान्त पदों का द्वन्द्व समास होता है। द्वन्द्व समास की पहचान है कि जहाँ अर्थ करने पर बीच में 'और' अर्थ निकले। (प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः) द्वन्द्व में प्रायः दोनों पदों का अर्थ मुख्य होता है। (२) इस समास में सर्वत्र समास होने पर कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिकसंज्ञा होगी और सुपो धातु० (७२१) से समस्त पदों के बाद की विभक्तियों का लोप होगा। तत्पश्चात् सु आदि विभक्तियाँ होंगी। (३) समास होने पर पूर्व पद में यदि कोई नकारान्त शब्द होगा तो उसके न् का नलोपः० (१८०) से लोप हो जाएगा। (४) इतरेतरयोग अर्थ में द्वन्द्व समास होने पर वस्तु या व्यक्तियों की संख्या के अनुसार द्विवचन या बहुवचन होगा। समाहार (समूह) अर्थ में नपुंसकलिंग एकवचन होगा।

९७०. चार्थे द्वन्द्वः (२-२-२९)

'च' (और) अर्थ में विद्यमान अनेक सुबन्तों का विकल्प से समास होता है और उसे द्वन्द्व कहते हैं।

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहारास्चार्थाः। तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व, इति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः। 'भिक्षामट गां चानय' इत्यन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। 'धवखदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः। 'संज्ञापरिभाषम्' इति समूहः समाहारः।

च के चार अर्थ हैं-(१) समुच्चय, (२) अन्वाचय, (३) इतरेतरयोग, (४) समाहार। (१) समुच्चय-परस्पर निरपेक्ष (असंबद्ध) अनेक पदार्थों के एक में अन्वय होने को समुचय कहते हैं। जैसे-ईश्वरं गुरुं च भजस्व (ईश्वर और गुरु की सेवा करो)। यहाँ पर ईश्वर और गुरु असंबद्ध हैं, दोनों का भजस्व में अन्वय है। असंबद्ध होने से समास नहीं हुआ। (२) अन्वाचय-इसमें एक पदार्थ मुख्य और एक गौण होता है। दोनों का एक क्रिया में अन्वय होता है। भिक्षामट गां चानय (भिक्षा के लिए जाओ और गाय लेते आना)। गाय लाना गौण कार्य है। समुचय और अन्वाचय में सामर्थ्य न होने से समास नहीं होगा। (३) इतरेतरयोग—संबद्ध पदार्थों के क्रिया में अन्वय को इतरेतरयोग कहते हैं। धवखदिरौ छिन्धि (धव और खैर को काटो)—धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ। संबद्ध होने से समास हुआ और दो वस्तु होने से द्विवचन हुआ (४) समाहार-समूह को समाहार कहते हैं। संज्ञापरिभाषम (संज्ञा और परिभाषा का समूह)-संज्ञा च परिभाषा च, तयोः समाहारः। इसमें समूह का क्रिया में अन्वय होगा, अतः नपुंसकलिंग एक० होता है।

९७१. राजदन्तादिषु परम् (२-२-३१)

राजदन्त आदि शब्दों में पूर्व प्रयोग के योग्य पद का बाद में प्रयोग होता है। राजदन्तः (दाँतों का राजा)—दन्तानां राजा। षष्ठी तत्पुरुष समास। इससे दन्त का परप्रयोग, राजन् के न् का लोप। (धर्मादिष्वनियमः, वा०) धर्म, अर्थ आदि शब्दों में किसको पहले रखा जाए, इसका कोई नियम नहीं है, अर्थात् इच्छानुसार किसी को भी पहले रख सकते हैं। अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ (धर्म और अर्थ)—अर्थश्च धर्मश्च। द्वन्द्व, क्रमशः अर्थ और धर्म का पूर्व प्रयोग।

९७२. द्वन्द्वे घि (२-२-३२)

द्वन्द्व समास में घि-संज्ञक का पूर्व-प्रयोग होता है। सूचना-शेषो घ्यसखि (१७०) सखि शब्द को छोड़कर शेष ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त को घि कहते हैं। हरिहरौ (विष्णु और शिव)-हरिश्च हरश्च। समास, हरि घिसंज्ञक है, अतः उसका पूर्व-प्रयोग।

९७३. अजाद्यदन्तम् (२-२-३३)

जिस शब्द के प्रारम्भ में अच् (स्वर) है और अन्त में ह्रस्व अ, उसका द्वन्द्व में पूर्व-प्रयोग होगा। ईशकृष्णौ (ईश्वर और कृष्ण)—ईशश्च कृष्णश्च। ईश अजादि और अदन्त है, अतः उसका पूर्वप्रयोग है।

९७४. अल्पाच्तरम् (२-२-३४)

अपेक्षा-कृत थोड़े अच् (स्वर) वाले पद का पूर्व-प्रयोग होता है। शिवकेशवौ (शिव और कृष्ण)-शिवश्च केशवश्च। शिव में केशव से कम स्वर हैं, अतः उसका पूर्व-प्रयोग।

९७५. पिता मात्रा (१-२-७०)

पिता का माता के साथ समास होने पर पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है। **पितरौ, मातापितरौ** (माता-पिता)-माता च पिता च। द्वन्द्व, पितृ शब्द शेष रहने पर उसमें द्विवचन होगा। पक्ष में मातृपितरौ होने पर आनङ् ऋतो० (६-३-२५) से मातृ के ऋ को आ।

९७६. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (२-४-२)

प्राणि, तूर्य (बाजे) और सेना के अंगों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचन होता है। पाणिपादम् (हाथ-पैर)-पाणी च पादौ च। समाहार अर्थ में द्वन्द्व, एकवचन। मार्दङ्गिकवैणविकम् (मृदङ्ग बजाने वाला और वंशी बजाने वाला)-मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च। समाहार-द्वन्द्व, एक०। रथिकाश्वारोहम् (रथिक और घुड़सवार)—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च। समाहार-द्वन्द्व, एक०।

९७७. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे (५-४-१०६)

चवर्ग अन्त वाले तथा द् ष् ह् अन्त वाले द्वन्द्व से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होता है, समाहार में। टच् का अ शेष रहता है। वाक्त्वचम् (वाणी और त्वचा)-वाक् च त्वक् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, समासान्त टच् (अ)। त्वक्स्रजम् (त्वचा और माला)-त्वक् च स्रक् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। शमीदृषदम् (शमी और पत्थर)-शमी च दृषद् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। वाक्त्विषम् (वाणी और कान्ति)-वाक् च त्विट् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। छत्रोपानहम् (छाता और जूता)-छत्रं च उपानहौ च, तेषां समाहारः। द्वन्द्व, टच् (अ)। प्रत्युदाहरण—प्रावृट्शरदौ (वर्षा और शरद्)-प्रावृट् च शरत् च। इतरेतर द्वन्द्व, समाहार न होने से टच् नहीं हुआ।

द्वन्द्व-समास समाप्त।

---

६. समासान्त-प्रकरण

९७८. ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (५-४-७४)

ऋच्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् शब्द समास के अन्त में हों तो समासान्त अ प्रत्यय होता है, अक्ष (रथचक्र का मध्यभाग) की धुरा अर्थ में धुर् शब्द होगा तो अ प्रत्यय नहीं होगा। अर्धर्चः (ऋचा का आधा भाग) — ऋचः अर्धम्। अर्धं० (९१८) से समास, इससे समासान्त अ प्रत्यय। विष्णुपुरम् (विष्णु की नगरी) —विष्णोः पूः। षष्ठी तत्पुरुष, इससे समासान्त अ प्रत्यय। विमलापं सरः (निर्मल जल

च के चार अर्थ हैं-(१) समुच्चय, (२) अन्वाचय, (३) इतरेतरयोग, (४) समाहार। (१) समुच्चय-परस्पर निरपेक्ष (असंबद्ध) अनेक पदार्थों के एक में अन्वय होने को समुच्चय कहते हैं। जैसे-ईश्वरं गुरुं च भजस्व (ईश्वर और गुरु की सेवा करो)। यहाँ पर ईश्वर और गुरु असंबद्ध हैं, दोनों का भजस्व में अन्वय है। असंबद्ध होने से समास नहीं हुआ। (२) अन्वाचय-इसमें एक पदार्थ मुख्य और एक गौण होता है। दोनों का एक क्रिया में अन्वय होता है। भिक्षामट गां चानय (भिक्षा के लिए जाओ और गाय लेते आना)। गाय लाना गौण कार्य है। समुच्चय और अन्वाचय में सामर्थ्य न होने से समास नहीं होगा। (३) इतरेतरयोग—संबद्ध पदार्थों के क्रिया में अन्वय को इतरेतरयोग कहते हैं। धवखदिरौ छिन्धि (धव और खैर को काटो)—धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ। संबद्ध होने से समास हुआ और दो वस्तु होने से द्विवचन हुआ (४) समाहार-समूह को समाहार कहते हैं। संज्ञापरिभाषम (संज्ञा और परिभाषा का समूह)-संज्ञा च परिभाषा च, तयोः समाहारः। इसमें समूह का क्रिया में अन्वय होगा, अतः नपुंसकलिंग एक० होता है।

९७१. राजदन्तादिषु परम् (२-२-३१)

राजदन्त आदि शब्दों में पूर्व प्रयोग के योग्य पद का बाद में प्रयोग होता है। राजदन्तः (दाँतों का राजा)—दन्तानां राजा। षष्ठी तत्पुरुष समास। इससे दन्त का परप्रयोग, राजन् के न् का लोप। (धर्मादिष्वनियमः, वा०) धर्म, अर्थ आदि शब्दों में किसको पहले रखा जाए, इसका कोई नियम नहीं है, अर्थात् इच्छानुसार किसी को भी पहले रख सकते हैं। अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ (धर्म और अर्थ)—अर्थश्च धर्मश्च। द्वन्द्व, क्रमशः अर्थ और धर्म का पूर्व प्रयोग।

९७२. द्वन्द्वे घि (२-२-३२)

द्वन्द्व समास में घि-संज्ञक का पूर्व-प्रयोग होता है। सूचना-शेषो घ्यसखि (१७०) सखि शब्द को छोड़कर शेष ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त को घि कहते हैं। हरिहरौ (विष्णु और शिव)-हरिश्च हरश्च। समास, हरि घिसंज्ञक है, अतः उसका पूर्व-प्रयोग।

९७३. अजाद्यदन्तम् (२-२-३३)

जिस शब्द के प्रारम्भ में अच् (स्वर) है और अन्त में ह्रस्व अ, उसका द्वन्द्व में पूर्व-प्रयोग होगा। ईशकृष्णौ (ईश्वर और कृष्ण)—ईशश्च कृष्णश्च। ईश अजादि और अदन्त है, अतः उसका पूर्वप्रयोग है।

९७४. अल्पाच्तरम् (२-२-३४)

अपेक्षा-कृत थोड़े अच् (स्वर) वाले पद का पूर्व-प्रयोग होता है। शिवकेशवौ (शिव और कृष्ण)-शिवश्च केशवश्च। शिव में केशव से कम स्वर हैं, अतः उसका पूर्व-प्रयोग।

९७५. पिता मात्रा (१–२–७०)

पिता का माता के साथ समास होने पर पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है। पितरौ, मातापितरौ (माता-पिता)—माता च पिता च। द्वन्द्व, पितृ शब्द शेष रहने पर उसमें द्विवचन होगा। पक्ष में मातृपितरौ होने पर आनङ् ऋतो० (६-३-२५) से मातृ के ऋ को आ।

९७६. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (२–४–२)

प्राणि, तूर्य (बाजे) और सेना के अंगों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचन होता है। पाणिपादम् (हाथ-पैर)—पाणी च पादौ च। समाहार अर्थ में द्वन्द्व, एकवचन। मार्दङ्गिकवैणविकम् (मृदङ्ग बजाने वाला और वंशी बजाने वाला)—मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च। समाहार-द्वन्द्व, एक०। रथिकाश्वारोहम् (रथिक और घुड़सवार)—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च। समाहार-द्वन्द्व, एक०।

९७७. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे (५–४–१०६)

चवर्ग अन्त वाले तथा द् ष् ह् अन्त वाले द्वन्द्व से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होता है, समाहार में। टच् का अ शेष रहता है। वाक्त्वचम् (वाणी और त्वचा)—वाक् च त्वक् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, समासान्त टच् (अ)। त्वक्स्रजम् (त्वचा और माला)—त्वक् च स्रक् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। शमीदृषदम् (शमी और पत्थर)—शमी च दृषद् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। वाक्त्विषम् (वाणी और कान्ति)—वाक् च त्विट् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। छत्रोपानहम् (छाता और जूता)—छत्रं च उपानहौ च, तेषां समाहारः। द्वन्द्व, टच् (अ)। प्रत्युदाहरण—प्रावृट्शरदौ (वर्षा और शरद्)—प्रावृट् च शरत् च। इतरेतर द्वन्द्व, समाहार न होने से टच् नहीं हुआ।

द्वन्द्व-समास समाप्त।

---

६. समासान्त-प्रकरण

९७८. ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे (५–४–७४)

ऋच्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् शब्द समास के अन्त में हों तो समासान्त अ प्रत्यय होता है, अक्ष (रथचक्र का मध्यभाग) की धुरा अर्थ में धुर् शब्द होगा तो अ प्रत्यय नहीं होगा। अर्धर्चः (ऋचा का आधा भाग) — ऋचः अर्धम्। अर्धं० (९१८) से समास, इससे समासान्त अ प्रत्यय। विष्णुपुरम् (विष्णु की नगरी) —विष्णोः पूः। षष्ठी तत्पुरुष, इससे समासान्त अ प्रत्यय। विमलापं सरः (निर्मल जल

वाला तालाब)—विमला आपः यत्र तत्। बहुव्रीहि, समासान्त अ प्रत्यय। राज्यधुरा (राज्य का भार)—राज्ञः धूः। षष्ठी तत्पुरुष, समासान्त अ, टाप्, राजन् के न् का लोप। अक्षधूः (अक्ष की धुरा)—अक्षस्य धूः। अक्ष अर्थ होने से समासान्त अ नहीं हुआ। दृढधूः अक्षः (दृढ धुरी वाला अक्ष)—दृढा धूः यस्य सः। अक्षधूः के तुल्य अ नहीं हुआ। सखिपथः (मित्र का मार्ग)—सख्युः पन्थाः। षष्ठी तत्पुरुष, समासान्त अ, नस्तद्धिते (९०४) से पथिन् के इन् का लोप। रम्यपथः देशः (सुन्दर मार्गों वाला देश)—रम्याः पन्थानः यस्मिन् सः। बहुव्रीहि, समासान्त अ, इन् का लोप।

९७९. अक्ष्णोऽदर्शनात् (५-४-७६)

चक्षु-भिन्न अर्थ में अक्षि शब्द हो तो समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। गवाक्षः (खिड़की)—गवाम् अक्षि इव (गाय की आँख के तुल्य)। षष्ठी तत्पुरुष, समासान्त अ, यस्येति च से इ का लोप, अवङ्० (४७) से गो के ओ को अव, दीर्घसंधि।

९८०. उपसर्गादध्वनः (५-४-८५)

उपसर्ग के बाद अध्वन् शब्द हो तो समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। प्राध्वः रथः (मार्ग पर चला हुआ रथ)—प्रगतः अध्वानम्। अत्यादयः० (वा०) से समास, समासान्त अच् (अ), नस्तद्धिते (९०४) से अध्वन् के अन् का लोप।

९८१. न पूजनात् (५-४-६९)

प्रशंसावाचक शब्दों के बाद वाले पदों से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं। सुराजा (अच्छा राजा)—शोभनः राजा, सुराजा। अतिराजा (राजा को अतिक्रमण करने वाला)—अतिक्रान्तः राजानम्। अत्यादयः० (वा०) से समास। दोनों स्थानों पर राजाहः० (९४३) से समासान्त टच् (अ) नहीं हुआ।

समासान्त-प्रकरण समाप्त।

तद्धित-प्रकरण

आवश्यक-निर्देश

पूरे तद्धित प्रकरण के लिए निम्नलिखित निर्देशों को सावधानी से स्मरण कर लें :—

(१) प्रातिपदिक-संज्ञा और विभक्ति-लोप—(कृत्तद्धितसमासाश्च, ११७) सभी तद्धित-प्रत्ययान्तों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञा होने से स्वौजस०

(११८) से सुप् प्रत्यय होंगे। सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (७२१) प्रातिपदिक होने से शब्दों के बाद की विभक्तियों का लोप हो जाता है। जैसे—अश्वपतेः अपत्यम्, अश्वपत्यादिभ्यश्च (९८३) से अपत्य (सन्तान) अर्थ में अण्, अश्वपति+ङस्+अण्। इस ङस् (षष्ठी एक०) का इस सूत्र से लोप होगा। इसी प्रकार अन्य सभी स्थानों पर तद्धित-प्रत्यय करने पर विभक्तियों का लोप इस सूत्र से होगा। बाद में सुप् प्रत्यय अन्त में होंगे।

(२) ञित्, णित्, कित् प्रत्यय—जिन प्रत्ययों में से ञ् का लोप होता है, उन्हें ञित् कहते हैं। जैसे—अञ्, इञ्, खञ्, ढञ्, यञ्। जिन प्रत्ययों में से ण् का लोप होता है, उन्हें णित् कहते हैं। जैसे—अण्, ण्य, ण, ष्यण्, छण्। जिन प्रत्ययों में से क् का लोप होता है, उन्हें कित् कहते हैं। जैसे—ठक्, ढक्, फक्।

(३) गुण और वृद्धि—(क) गुण—(ओर्गुणः, ९९०) यकारादि और अजादि तद्धित बाद में होने पर शब्द के अन्तिम उ को गुण होकर ओ हो जाता है। जैसे—उपगु>औपगवः। (ख) वृद्धि—(तद्धितेष्वचामादेः, ९२३) ञित् और णित् तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। (किति च, ९८६) कित् तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर भी शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। स्मरण रखें कि तद्धित में ञित्, णित् प्रत्यय होने पर अन्तिम स्वर को वृद्धि न होकर प्रथम स्वर को वृद्धि होती है।

(४) अन्तिम स्वर का लोप—(यस्येति च, २३६) यकारादि और अजादि तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर शब्द के अन्तिम अ, आ, इ और ई का इस सूत्र से लोप हो जाता है।

(५) मूल प्रत्ययों को आदेश—(१) (आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्, ९९८) प्रत्यय के प्रारम्भ में विद्यमान इन वर्णों को ये आदेश होते हैं:—फ्>आयन्, ढ्>एय्, ख्>ईन्, छ्>ईय्, घ्>इय्। (२) (ठस्येकः, १०१२) ठ को इक। (३) (इसुसुक्तान्तात् कः, १०३७) शब्द के अन्त में इस्, उस्, उक् (उ, ऋ, ऌ) और त् होगा तो ठ को इक न होकर क होगा।

सूचना—तद्धित-प्रकरण में प्रत्येक स्थानों पर इन सूत्रों का उल्लेख न करके केवल इनके कार्यों का निर्देश किया जाएगा। यथास्थान इन सूत्रों को लगावें।

---

१. साधारण-प्रत्यय

९८२. समर्थानां प्रथमाद् वा (४-१-८२)

प्राग्दिशो विभक्तिः (११८२) सूत्र तक समर्थानाम्, प्रथमात् और वा, इन तीन पदों का अधिकार है। इन तीन पदों का अभिप्राय यह है—१. समर्थानाम्—जो

प्रथम स्वर को वृद्धि, इससे उ को गुण ओ, एचो० से ओ को अव्। आश्वपतः, दैत्यः, औत्सः, स्त्रैणः, पौंस्नः–इनकी सिद्धि पहले दी जा चुकी है।

९९१. अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् (४–१–१६२)

जब पौत्र (पुत्र का पुत्र, तीसरी पीढ़ी) और उससे आगे की पीढ़ी का अपत्य कहना अभीष्ट हो तो उनकी गोत्र संज्ञा होती है।

९९२. एको गोत्रे (४–१–९३)

गोत्र अर्थ में एक ही अपत्य-वाचक प्रत्यय होता है। औपगवः (उपगु का गोत्रापत्य)–उपगोः गोत्रापत्यम्। पूर्ववत्, अण् आदि।

९९३. गर्गादिभ्यो यञ् (४–१–१०५)

गर्ग आदि शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् (य) प्रत्यय होता है। गार्ग्यः (गर्ग का गोत्रापत्य)–गर्गस्य गोत्रापत्यम्। गर्ग + यञ् (य)। प्रथमस्वर को वृद्धि, अ का लोप। वात्स्यः (वत्स का गोत्रापत्य)–वत्स + यञ् (य)। आदि-स्वर-वृद्धि और अ-लोप।

९९४. यञञोश्च (२–४–६४)

गोत्र अर्थ में जो यञ् और अञ् प्रत्ययान्त पद, उनके अवयव यञ् और अञ् का लोप हो जाता है, यदि गोत्र का बहुत्व बताना हो तो, स्त्रीलिंग में नहीं। गर्गाः–गार्ग्य + जस् (अः)। इससे यञ् का लोप, गर्ग + अः। रामाः के तुल्य। वत्साः–वात्स्य + जस् (अः)। यञ् का लोप, वत्स + अः। पूर्ववत्।

९९५. जीवति तु वंश्ये युवा (४–१–१६३)

वंश में पूर्वज पिता, पितामह आदि जीवित हों तो पौत्र आदि के अपत्य (प्रपौत्र आदि) जो चौथी पीढ़ी आदि में हों, उनकी युवा संज्ञा होगी, अर्थात् उन्हें युवाऽपत्य कहा जाएगा।

९९६. गोत्राद् यून्यस्त्रियाम् (४–१–९४)

युवापत्य अर्थ में गोत्र-प्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होता है। स्त्रीलिङ्ग में युवापत्य संज्ञा नहीं होती।

९९७. यञिञोश्च (४–१–१०१)

गोत्र में जो यञ् और इञ् प्रत्यय होते हैं, तदन्त से युवापत्य अर्थ में फक् (आयन) प्रत्यय होता है।

९९८. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् (७–१–२)

प्रत्यय के आदि के इन वर्णों को ये आदेश होते हैं:–फ्> आयन्, ढ्> एय्, ख्> ईन्, छ्> ईय् और घ्>इय्। गार्ग्यायणः (गर्ग का युवापत्य अर्थात् गर्ग की चौथी

पीढ़ी का बालक)—गर्गस्य युवापत्यम् । गार्ग्य + फक् (आयन) । गर्गसे गोत्रापत्य अर्थ में यञ्,उससे पुनः यञिञोश्च (९९७) से फक् । इससे फ को आयन, गार्ग्य के अ का लोप, न् को ण् । दाक्षायणः (दक्ष का युवापत्य,दक्ष की चौथी पीढ़ी का बालक) –दक्षस्य युवापत्यम् । दक्ष + इञ् (इ) + फक् (आयन) । गोत्रापत्य अर्थ में अत इञ् (९९९) से इञ्, दाक्षि, उससे फक् (आयन), इ का लोप, अट्कु० से न् को ण् ।

९९९. अत इञ् (४–१–९५)

ह्रस्व अकारान्त शब्द से अपत्य अर्थ में इञ् (इ) प्रत्यय होता है। दाक्षिः (दक्ष का पुत्र)—दक्षस्य अपत्यम् , दक्ष + इञ् (इ) । प्रथम स्वर को वृद्धि, अ का लोप।

१०००. बाह्वादिभ्यश्च (४–१–९६)

बाहु आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में इञ् (इ) प्रत्यय होता है। बाहविः (बाहु का पुत्र)—बाहोः अपत्यम्, बाहु + इञ् (इ) । प्रथम स्वर को वृद्धि, उ को ओर्गुणः से गुण और अव् आदेश । औडुलोमिः (उडुलोमन् ऋषि का पुत्र)—उडुलोमन् + इञ् (इ) । प्रथम स्वर को वृद्धि, नस्तद्धिते (९०४) से अन् का लोप । (लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः, वा०) अपत्य अर्थ के बहुवचन में लोमन् शब्द से अ प्रत्यय होता है । उडुलोमाः (उडुलोमन् के पुत्र)—उडुलोम्नः अपत्यानि, उडुलोमन् + अ । नस्तद्धिते (९०४) से अन् का लोप । प्र० बहु० रामाः के तुल्य । बाहु आदि शब्द आकृतिगण है । इस प्रकार के अन्य शब्दों से भी इञ् प्रत्यय होगा ।

१००१. अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् (४–१–१०४)

बिद आदि शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में अञ् (अ) प्रत्यय होता है, किन्तु इस गण में जो ऋषि नहीं हैं, उनसे अपत्य अर्थ में अञ् (अ) होगा । सूचना—बिद आदि से गोत्रापत्य अर्थ में अञ् होने पर बहुवचन में यञञोश्च (९९४) से अञ् का लोप होगा । अपत्य अर्थ में अञ् होने पर लोप नहीं होगा । बैदः (बिद ऋषि का गोत्रापत्य)—बिदस्य गोत्रापत्यम् , बिद + अञ् (अ) । आदिवृद्धि, अ-लोप । बैदौ । बिदाः—बहु० में अञ् का लोप । पौत्रः (पौत्र, पुत्र का पुत्र)—पुत्रस्य अपत्यम् , पुत्र + अञ् (अ) । आदि-वृद्धि, अ-लोप । पौत्रौ, पौत्राः । बहु० में अञ् का लोप नहीं होगा । दौहित्रः (धेवता, पुत्री का लड़का)—दुहितुः अपत्यम् , दुहितृ + अञ् (अ) । आदि-वृद्धि, यण् ।

१००२. शिवादिभ्योऽण् (४–१–११२)

शिव आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय होता है। शैवः (शिव का पुत्र)—शिवस्य अपत्यम् , शिव + अण् (अ) । आदि-वृद्धि, अ-लोप । गाङ्गः (गंगा का पुत्र)—गङ्गायाः अपत्यम् , गङ्गा + अण् (अ) । आदिवृद्धि, आ-लोप ।

१००३. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च (४-१-११४)

ऋषि (ऋषिवाचक शब्द), अन्धक, वृष्णि और कुरु-वंशियों से अपत्य अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय होता है। १. ऋषिवाचक—वासिष्ठः (वसिष्ठ का पुत्र)—वसिष्ठस्य अपत्यम्, वसिष्ठ + अण् (अ)। आदिवृद्धि और अ-लोप। वैश्वामित्रः (विश्वामित्र का पुत्र)—विश्वामित्रस्य अपत्यम्। विश्वामित्र + अण्। आदि-वृद्धि, अ-लोप। २. अन्धक-वंशी—श्वाफल्कः (श्वफल्क का पुत्र)—श्वफल्कस्य अपत्यम्, श्वफल्क + अण्। आदि-वृद्धि, अ-लोप। ३. वृष्णि-वंशी—वासुदेवः (वसुदेव का पुत्र, कृष्ण)—वसुदेवस्य अपत्यम्, वसुदेव + अण्। आदि-वृद्धि, अ-लोप। ४. कुरुवंशी—नाकुलः (नकुल का पुत्र)—नकुल + अण्। साहदेवः (सहदेव का पुत्र)—सहदेव + अण्। दोनों में आदिवृद्धि और अ-लोप।

१००४. मातुरुत् संख्यासंभद्रपूर्वायाः (४-१-११५)

संख्या, सम् और भद्र पहले होने पर मातृ शब्द से अपत्य अर्थ में अण् (अ) होता है और मातृ के ऋ को उर् आदेश होता है। द्वैमातुरः (दो माताओं का पुत्र, गणेश)—द्वयोः मात्रोः अपत्यम्, द्विमातृ + अण् (अ)। यहाँ पर तद्धितार्थो० (९२१) से समास और बाद में अण्। आदि-वृद्धि, इससे ऋ को उर्। इसी प्रकार आगे के तीनों उदाहरणों में कार्य होगा। षाण्मातुरः (६ माताओं का पुत्र, कार्तिकेय)—षण्णां मातॄणाम् अपत्यम्, षण्मातृ + अण्। सांमातुरः (उत्तम माता का पुत्र)—संमातुः अपत्यम्। संमातृ + अण्। भाद्रमातुरः (अच्छी माता का पुत्र)—भद्रमातुः अपत्यम्। भद्रमातृ + अण्।

१००५. स्त्रीभ्यो ढक् (४-१-१२०)

स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य अर्थ में ढक् (एय) प्रत्यय होता है। वैनतेयः (गरुड़)—विनतायाः पुत्रः। विनता + ढक् (एय)। ढ को एय, आदिवृद्धि, आ का लोप।

१००६. कन्यायाः कनीन च (४-१-११६)

कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय होता है और कन्या को कनीन आदेश होता है। कानीनः (कुमारी का पुत्र, व्यास और कर्ण)—कन्यायाः पुत्रः, कन्या + अण् (अ)। कन्या को कनीन, आदिवृद्धि और अ-लोप।

१००७. राजश्वशुराद्यत् (४-१-१३७)

राजन् और श्वशुर शब्द से अपत्य अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है। (राज्ञो जातावेति वाच्यम्, वा०) राजन् शब्द से जाति अर्थ में ही यत् होता है। इसलिए राजन् से जातिवाचक अपत्य अर्थ में ही यत् होगा।

१००८. ये चाभावकर्मणोः (६–४–१६८)

यकारादि तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर अन् उसी प्रकार रहता है, अर्थात् उसका लोप नहीं होता है, भाव और कर्म में लोप होगा। राजन्यः (क्षत्रिय जाति)—राज्ञः अपत्यं जातिः। राजन् + य। नस्तद्धिते (९०४) से प्राप्त अन्-लोप का इससे निषेध।

१००९. अन् (६–४–१६७)

अण् प्रत्यय बाद में होने पर अन् प्रकृति से रहता है, अर्थात् अन् का लोप नहीं होता है। राजनः (राजा का पुत्र)—राज्ञः अपत्यम्। राजन् + अण् (अ)। जाति अर्थ न होने से यत् नहीं हुआ। आदि-वृद्धि, इससे प्रकृतिभाव होने से अन् के लोप का निषेध। श्वशुर्यः (श्वशुर का पुत्र)—श्वशुरस्य अपत्यम्। श्वशुर + यत् (य)। राज० (१००७) से यत्, अ का लोप।

१०१०. क्षत्राद् घः (४–१–१३८)

क्षत्र शब्द से जाति अर्थ में ही घ (इय) प्रत्यय होता है। क्षत्रियः (क्षत्रिय जाति)—क्षत्रस्य अपत्यं जातिः, क्षत्र + घ (इय)। घ को इय, अ का लोप। क्षात्रिः (क्षत्र का पुत्र)—क्षत्रस्य अपत्यम्। क्षत्र + इञ् (इ)। अत इञ् (९९९) से इञ्, आदिवृद्धि, अ का लोप।

१०११. रेवत्यादिभ्यष्ठक् (४–१–१४६)

रेवती आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है।

१०१२. ठस्येकः (७–३–५०)

अंग (शब्द) के बाद ठ् को इक् आदेश होता है। रैवतिकः (रेवती का पुत्र)—रेवत्याः अपत्यम्। रेवती + ठक् (इक)। पूर्व सूत्र से ठक्, इससे ठ् को इक्। आदि-वृद्धि, ई का लोप।

१०१३. जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् (४–१–१६८)

जनपदवाचक शब्द क्षत्रिय-वाचक हो तो उससे अपत्य अर्थ में अञ् (अ) प्रत्यय होता है। पाञ्चालः (पञ्चालों का पुत्र)—पञ्चालानाम् अपत्यम्, पञ्चाल + अञ् (अ)। आदिवृद्धि, अ-लोप। (क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात् तस्य राजन्यपत्यवत्, वा०) क्षत्रिय-जाति-वाचक के तुल्य यदि जनपदवाचक शब्द है तो उससे राजा अर्थ में अपत्यार्थ के सदृश प्रत्यय होते हैं। पाञ्चालः (पञ्चालों का राजा)—पञ्चालानां राजा। पञ्चाल + अञ् (अ)। आदि-वृद्धि, अ-लोप। (पूरोरण् वक्तव्यः, वा०) पूरु शब्द से राजा अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। पौरवः (पूरु-जनपद का राजा)—पूरूणां राजा, पूरु + अण् (अ)। आदिवृद्धि, उ को गुण ओ, अव् आदेश। (पाण्डो-

दुर्यण्, वा०) पाण्डु शब्द से राजा अर्थ में ड्यण् (य) प्रत्यय होता है। पाण्ड्यः (पाण्डु जनपद का राजा)—पाण्डूनां राजा, पाण्डु + ड्यण् (य)। डित् होने से उ का लोप, आदि-वृद्धि।

१०१४. कुर्वादिभ्यो ण्यः (४-१-१७२)

जनपद और क्षत्रियवाचक कुरु शब्द तथा नकारादि शब्दों से राजा अर्थ में ण्य (य) प्रत्यय होता है। कौरव्यः (कुरुओं का राजा)—कुरूणां राजा, कुरु + ण्य (य)। आदिवृद्धि, उ को गुण ओ, वान्तो यि० (२४) से अव्। नैषध्यः (निषध देश का राजा)—निषधानां राजा। निषध + ण्य (य)। आदिवृद्धि, अ-लोप।

१०१५. ते तद्राजाः (४-१-१७४)

जनपद० (१०१३) आदि सूत्रों से विहित अञ् आदि प्रत्ययों की तद्राज संज्ञा होती है।

१०१६. तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् (२-४-६२)

बहुवचन में तद्राज प्रत्यय का लोप होता है, यदि तद्राज प्रत्यय के अर्थ का बहुत्व हो तो। स्त्रीलिंग में लोप नहीं होगा। इक्ष्वाकवः (इक्ष्वाकु-जनपद के राजा)—इक्ष्वाकूणां राजानः। इक्ष्वाकु + अञ् + प्र० बहु०। इससे अञ् प्रत्यय का लोप। मानवः के तुल्य। पञ्चालाः (पञ्चालों के राजा)—पञ्चालानां राजानः। पञ्चाल + अञ् + प्र० बहु०। इससे अञ् का लोप।

१०१७. कम्बोजाल्लुक् (४-१-१७५)

कम्बोज शब्द के बाद तद्राज प्रत्यय का लोप हो जाता है। कम्बोजः (कम्बोज देश का राजा)—कम्बोजानां राजा, कम्बोज + अञ्। जनपद० (१०१३) से अञ्। इससे अञ् का लोप। इसी प्रकार कम्बोजौ आदि। (कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्, वा०) कम्बोज के स्थान पर कम्बोज आदि कहना चाहिए। अतः अन्य शब्दों से भी तद्राज प्रत्यय का लोप होगा। जैसे—चोलः (चोलदेश का राजा), शकः (शकों का राजा), केरलः (केरल का राजा), यवनः (यवनों का राजा)। चोलानां, शकानां, केरलानां, यवनानां च राजा। चोल और शक से द्व्यञ्० (४-१-१७०) से अण् और केरल तथा यवन से जनपद० (१०१३) से राजा अर्थ में अञ् और इससे उनका लोप।

अपत्याधिकार समाप्त।

जैन ... हूँगरशहर, बीकानेर

३. रक्ताद्यर्थक प्रत्यय

१०१८. तेन रक्तं रागात् (४-२-१)

रंगविशेष-वाचक शब्द से 'उससे रँगा' इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। राग का अर्थ है रंग, जिससे रँगा जाता है। काषायम् (गेरुआ रंग से रँगा हुआ वस्त्र)—कषायेण रक्तं वस्त्रम्, कषाय + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अ-लोप।

१०१९. नक्षत्रेण युक्तः कालः (४-२-३)

नक्षत्र-विशेष के वाचक शब्द से 'नक्षत्र से युक्त काल' अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। (तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्, वा०) नक्षत्र-सम्बन्धी अण् प्रत्यय बाद में होने पर तिष्य और पुष्य शब्दों के य् का लोप हो जाता है। पौषम् अहः (पुष्य नामक नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा से युक्त दिन)—पुष्येण युक्तम्, पुष्य + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अ-लोप, इस वार्तिक से य् का लोप।

१०२०. लुबविशेषे (४-२-४)

पूर्व सूत्र से विहित प्रत्यय का लोप होता है, यदि ६० घड़ी (२४ घंटे) वाले समय का अवान्तर भेद (रात या दिन) न बताया गया हो। अद्य पुष्यः (आज पुष्य-नक्षत्र युक्त चन्द्रमा से युक्त काल है)—पुष्येण युक्तः कालः, पुष्य + अण्। इससे अण् का लोप।

१०२१. दृष्टं साम (४-२-७)

तृतीयान्त से अण् (अ) प्रत्यय होता है, उसने 'साम देखा' अर्थात् सामवेद की ऋचा का साक्षात्कार किया, इस अर्थ में। वासिष्ठं साम (वसिष्ठ ऋषि के द्वारा देखा गया सामवेद का मंत्र)—वसिष्ठेन दृष्टं साम, वसिष्ठ + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अ-लोप।

१०२२. वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ (४-२-९)

वामदेव शब्द से 'दृष्टं साम' अर्थ में ड्यत् (य) और ड्य (य) प्रत्यय होते हैं। सूचना—दोनों प्रत्ययों का य शेष रहता है। ड्यत् तित् है, अतः तित्स्वरितम् (६-१-१८५) से इसका य स्वरित है और ड्य का य उदात्त है। वामदेव्यम् (वामदेव से देखा गया साम-मन्त्र)—वामदेवेन दृष्टं साम, वामदेव + ड्यत् (य), ड्य (य)। अन्तिम अ का टेः (६-४-१४३) से लोप।

१०२३. परिवृतो रथः (४-२-१०)

'उससे ढका हुआ रथ' इस अर्थ में तृतीयान्त से अण् (अ) प्रत्यय होता है। वास्त्रः रथः (वस्त्र से ढका हुआ रथ)—वस्त्रेण परिवृतः, वस्त्र + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अ-लोप।

१०२४. तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः (४–२–१४)

'उसमें निकाल कर रखा' इस अर्थ में सप्तम्यन्त अमत्र (पात्र) वाचक शब्द से अण् (अ) प्रत्यय होता है। शारावः ओदनः (परई या तस्तरी में निकाल कर रखा हुआ भात)–शरावे उद्धृतः, शराव + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अ-लोप।

१०२५. संस्कृतं भक्षाः (४–२–१६)

सप्तम्यन्त से संस्कृत (पकाया या भुना) अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, संस्कृत पदार्थ खाने की वस्तु हो तो। भ्राष्ट्रा यवाः (भाड़ में भुने हुए जौ)–भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः, भ्राष्ट्र + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अ-लोप।

१०२६. साऽस्य देवता (४–२–२४)

'वह इसका देवता है' इस अर्थ में प्रथमान्त देवतावाचक शब्द से अण् आदि प्रत्यय होते हैं। ऐन्द्रं हविः (हवि, जिसका देवता इन्द्र है)–इन्द्रः देवता अस्य, इन्द्र + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अ-लोप। पाशुपतम् (इसका देवता पशुपति है)–पशुपतिः देवता अस्य, पशुपति + अण् (अ)। अश्वपत्यादिभ्यश्च (९८३) से अण्, आदिवृद्धि, इ का लोप। बार्हस्पत्यम् (इसका देवता बृहस्पति है)–बृहस्पतिः देवता अस्य, बृहस्पति + ण्य (य)। दित्य० (९८४) से ण्य, आदिवृद्धि, इ का लोप।

१०२७. शुक्राद्घन् (४–२–२६)

शुक्र शब्द से 'वह इसका देवता है' अर्थ में घन् (इय) प्रत्यय होता है। शुक्रियम् (इसका देवता शुक्र है) – शुक्रः देवता अस्य, शुक्र + घन् (इय)। घ को इय, अ का लोप।

१०२८. सोमाट्ट्यण् (४–२–३०)

सोम शब्द से 'वह इसका देवता है' अर्थ में ट्यण् (य) प्रत्यय होता है। सौम्यम् (इसका देवता सोम है)–सोमः देवता अस्य। सोम + ट्यण् (य)। आदि-वृद्धि, अ का लोप।

१०२९. वाय्वृतुपित्रुषसो यत् (४–२–३१)

वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्दों से 'साऽस्य देवता' अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है। वायव्यम् (इसका देवता वायु है)–वायुः देवताऽस्य, वायु + यत् (य)। उ को गुण और वान्तो० (२४) से ओ को अव्। ऋतव्यम् (इसका देवता ऋतु है) ऋतुः देवताऽस्य, ऋतु + य। उ को गुण और पूर्ववत् ओ को अव्।

१०३०. रीङ् ऋतः (७–४–२७)

कृत् और सार्वधातुक से भिन्न य और च्वि बाद में हो तो ऋकारान्त शब्द के ऋ को रीङ् (री) आदेश होता है। पित्र्यम् (पितृगण जिसके देवता हैं)–पितरः देवताऽस्य,

पितृ + य । पूर्वसूत्र से यत् (य), इससे ऋ को री, यस्येति च से री के ई का लोप। उपस्यम् (इसका देवता उषा है)—उषा देवताऽस्य, उषस् + य ।

१०३१. पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः (४–२–३६)

ये चारो शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं, अर्थात् इनमें यथायोग्य प्रत्यय लगाने चाहिएँ :—१. पितृव्यः (चाचा, ताऊ)–पितुः भ्राता, पितृ + व्यत् (व्य)। २. मातुलः (मामा)—मातुः भ्राता, मातृ + डुलच् (उल)। डित् होने से ऋ का लोप। ३. मातामहः (नाना)—मातुः पिता, मातृ + डामहच् (आमह)। डित् होने से ऋ का लोप। ४. पितामहः (बाबा)–पितुः पिता। पितृ + डामहच् (आमह)। ऋ का लोप।

१०३२. तस्य समूहः (४–२–३७)

षष्ठ्यन्त पद से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। काकम् (कौओं का समूह)—काकानां समूहः, काक + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०३३. भिक्षादिभ्योऽण् (४–२–३८)

भिक्षा आदि शब्दों से समूह अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय होता है। भैक्षम् (भिक्षा का समूह)—भिक्षाणां समूहः, भिक्षा + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। (भस्याढे तद्धिते, वा०) ढ-भिन्न तद्धित प्रत्यय बाद में हो तो भसंज्ञक को पुंलिंग होता है।

१०३४. इनण्यनपत्ये (६–४–१६४)

अपत्य अर्थ से भिन्न अण् बाद में हो तो इन् प्रकृति से रहता है, अर्थात् उसका लोप नहीं होता है। गार्भिणम् (गर्भिणियों का समूह)–गर्भिणीनां समूहः, गर्भिणी + अण् (अ)। भस्याढे० (वा) से पुंलिंग गर्भिन्, नस्तद्धिते (९०४) से इन् का लोप प्राप्त था, इससे निषेध हुआ, आदि-वृद्धि। यौवनम् (युवतियों का समूह)—युवतीनां समूहः, युवति + अण्। भस्याढे० से पुंवत्–युवन्, नस्तद्धिते (९०४) से लोप प्राप्त था, अन् (१००९) से प्रकृतिभाव, आदि-वृद्धि।

१०३५. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (४–२–४३)

ग्राम, जन और बन्धु शब्दों से समूह अर्थ में तल् (त) प्रत्यय होता है। (तलन्तं स्त्रियाम्, लिंगा०) तल्-प्रत्ययान्त शब्द का स्त्रीलिंग में ही प्रयोग होता है। अतः यहाँ पर त से टाप् (आ) होकर ता बनेगा। ग्रामता (ग्रामों का समूह)—ग्रामाणां समूहः, ग्राम + त + आ। जनता (जनों का समूह)—जनानां समूहः, जन + ता। बन्धुता (बन्धुओं का समूह)—बन्धूनां समूहः, बन्धु + ता। (गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्, वा०) गज और सहाय शब्दों से भी समूह अर्थ में तल् (ता) होता है। गजता (हाथियों

१०२४. तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः (४-२-१४)

'उसमें निकाल कर रखा' इस अर्थ में सप्तम्यन्त अमत्र (पात्र) वाचक शब्द से अण् (अ) प्रत्यय होता है। शारावः ओदनः (परई या तश्तरी में निकाल कर रखा हुआ भात)-शरावे उद्धृतः, शराव + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अ-लोप।

१०२५. संस्कृतं भक्षाः (४-२-१६)

सप्तम्यन्त से संस्कृत (पकाया या भुना) अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, संस्कृत पदार्थ खाने की वस्तु हो तो। भ्राष्ट्रा यवाः (भाड़ में भुने हुए जौ)-भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः, भ्राष्ट्र + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अ-लोप।

१०२६. साऽस्य देवता (४-२-२४)

'वह इसका देवता है' इस अर्थ में प्रथमान्त देवतावाचक शब्द से अण् आदि प्रत्यय होते हैं। ऐन्द्रं हविः (हवि, जिसका देवता इन्द्र है)-इन्द्रः देवता अस्य, इन्द्र + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अ-लोप। पाशुपतम् (इसका देवता पशुपति है)-पशुपतिः देवता अस्य, पशुपति + अण् (अ)। अश्वपत्यादिभ्यश्च (९८३) से अण्, आदिवृद्धि, इ का लोप। बार्हस्पत्यम् (इसका देवता बृहस्पति है)-बृहस्पतिः देवता अस्य, बृहस्पति + ण्य (य)। दित्य० (९८४) से ण्य, आदिवृद्धि, इ का लोप।

१०२७. शुक्राद्घन् (४-२-२६)

शुक्र शब्द से 'वह इसका देवता है' अर्थ में घन् (इय) प्रत्यय होता है। शुक्रियम् (इसका देवता शुक्र है) – शुक्रः देवता अस्य, शुक्र + घन् (इय)। घ को इय, अ का लोप।

१०२८. सोमाट्ट्यण् (४-२-३०)

सोम शब्द से 'वह इसका देवता है' अर्थ में ट्यण् (य) प्रत्यय होता है। सौम्यम् (इसका देवता सोम है)-सोमः देवता अस्य। सोम + ट्यण् (य)। आदि-वृद्धि, अ का लोप।

१०२९. वाय्वृतुपित्रुषसो यत् (४-२-३१)

वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्दों से 'साऽस्य देवता' अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है। वायव्यम् (इसका देवता वायु है)-वायुः देवताऽस्य, वायु + यत् (य)। उ को गुण और वान्तो० (२४) से ओ को अव्। ऋतव्यम् (इसका देवता ऋतु है) ऋतुः देवताऽस्य, ऋतु + य। उ को गुण और पूर्ववत् ओ को अव्।

१०३०. रीङ् ऋतः (७-४-२७)

कृत् और सार्वधातुक से भिन्न य और च्वि बाद में हो तो ऋकारान्त शब्द के ऋ को रीङ् (री) आदेश होता है। पित्र्यम् (पितृगण जिसके देवता हैं)-पितरः देवताऽस्य,

पितृ+य। पूर्वसूत्र से यत् (य), इससे ऋ को री, यस्येति च से री के ई का लोप। उषस्यम् (इसका देवता उषा है)—उषा देवताऽस्य, उषस्+य।

१०३१. पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः (४-२-३६)

ये चारों शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं, अर्थात् इनमें यथायोग्य प्रत्यय लगाने चाहिएँ :—१. पितृव्यः (चाचा, ताऊ)-पितुः भ्राता, पितृ+व्यत् (व्य)। २. मातुलः (मामा)—मातुः भ्राता, मातृ+डुलच् (उल)। डित् होने से ऋ का लोप। ३. मातामहः (नाना)—मातुः पिता, मातृ+डामहच् (आमह)। डित् होने से ऋ का लोप। ४. पितामहः (बाबा)-पितुः पिता। पितृ+डामहच् (आमह)। ऋ का लोप।

१०३२. तस्य समूहः (४-२-३७)

षष्ठ्यन्त पद से समूह अर्थ मे अण् प्रत्यय होता है। काकम् (कौओं का समूह)—काकानां समूहः, काक+अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०३३. भिक्षादिभ्योऽण् (४-२-३८)

भिक्षा आदि शब्दों से समूह अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय होता है। भैक्षम् (भिक्षा का समूह)—भिक्षाणां समूहः, भिक्षा+अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। (भस्याढे तद्धिते, वा०) ढ-भिन्न तद्धित प्रत्यय बाद में हो तो भसंज्ञक को पुंलिंग होता है।

१०३४. इनण्यनपत्ये (६-४-१६४)

अपत्य अर्थ से भिन्न अण् बाद में हो तो इन् प्रकृति से रहता है, अर्थात् उसका लोप नहीं होता है। गार्भिणम् (गर्भिणियों का समूह)-गर्भिणीनां समूहः, गर्भिणी+अण् (अ)। भस्याढे० (वा) से पुंलिंग गर्भिन्, नस्तद्धिते (९०४) से इन् का लोप प्राप्त था, इससे निषेध हुआ, आदि-वृद्धि। यौवनम् (युवतियों का समूह)-युवतीनां समूहः, युवति+अण्। भस्याढे० से पुंवत्-युवन्, नस्तद्धिते (९०४) से लोप प्राप्त था, अन् (१००९) से प्रकृतिभाव, आदि-वृद्धि।

१०३५. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (४-२-४३)

ग्राम, जन और बन्धु शब्दों से समूह अर्थ मे तल् (त) प्रत्यय होता है। (तलन्तं स्त्रियाम्, लिंगा०) तल्-प्रत्ययान्त शब्द का स्त्रीलिंग में ही प्रयोग होता है। अतः यहाँ पर त से टाप् (आ) होकर ता बनेगा। ग्रामता (ग्रामों का समूह)-ग्रामाणां समूहः, ग्राम+त+आ। जनता (जनों का समूह)-जनानां समूहः, जन+ता। बन्धुता (बन्धुओं का समूह)-बन्धूनां समूहः, बन्धु+ता। (गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्, वा०) गज और सहाय शब्दों से भी समूह अर्थ में तल् (ता) होता है। गजता (हाथियों

का समूह)-गजानां समूहः, गज+ता। सहायता (सहायकों का समूह)-सहायानां समूहः, सहाय+ता। (अह्नः खः क्रतौ, वा०) अहन् शब्द से समूह अर्थ में ख (ईन) प्रत्यय होता है, यज्ञवाच्य हो तो। अहीनः (कई दिन चलने वाला यज्ञ)-अह्नां समूहेन साध्यः क्रतुः, अहन्+ख (ईन)। ख को ईन, नस्तद्धिते (९०४) से अन् का लोप।

१०३६. अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् (४-२-४७)

अचेतन वाचक, हस्तिन् और धेनु से समूह अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

१०३७. इसुसुक्तान्तात् कः (७-३-५१)

इस्, उस्, उक् (उ, ऋ, ऌ) और त् अन्त वाले शब्दों के बाद ठ को क हो जाता है। साक्तुकम् (सत्तू का समूह)-सक्तूनां समूहः। सक्तु+ठ (क)। ठ को इससे क, आदि-वृद्धि। हास्तिकम् (हाथियों का समूह)-हस्तिनां समूहः, हस्तिन्+ठ (इक)। ठ को इक, आदि-वृद्धि, नस्तद्धिते (९०४) से इन् का लोप। धैनुकम् (गायों का समूह)-धेनूना समूहः, धेनु+ठ (क)। इससे ठ को क, आदि-वृद्धि।

१०३८. तदधीते तद्वेद (४-२-५९)

द्वितीयान्त से 'उसे पढ़ता है या उसे जानता है' अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

१०३९. न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् (७-३-३)

पदान्त य् और व् के बाद के स्वर को वृद्धि नहीं होती है, अपितु उनसे पहले ऐ और औ आगम होते हैं, अर्थात् य् से पहले ऐ और व् से पहले औ। वैयाकरणः (व्याकरण पढ़ता है या व्याकरण जानता है)-व्याकरणम् अधीते वेद वा, व्याकरण+अण् (अ)। इससे य् से पहले ऐ, अन्त्य-लोप।

१०४०. क्रमादिभ्यो वुन् (४-२-६१)

क्रम आदि शब्दों से 'उसे पढ़ता है या जानता है' अर्थ में वुन् (अक) प्रत्यय होता है। युवो० (७८६) से वु को अक। क्रमकः (क्रमपाठ को पढ़ने वाला या जानने वाला)-क्रमम् अधीते वेद वा, क्रम+वुन् (अक)। अन्त्य-लोप। पदकः (पदपाठ को पढ़ने या जानने वाला)-पदम् अधीते वेद वा, पद+वुन् (अक)। अ का लोप। शिक्षकः (शिक्षा-ग्रन्थों को पढ़ने या जानने वाला)-शिक्षाम् अधीते वेद वा। शिक्षा+वुन् (अक)। आ का लोप। मीमांसकः (मीमांसा-दर्शन पढ़ने या जानने वाला)-मीमांसाम् अधीते वेद वा। मीमांसा+वुन् (अक)। अ का लोप।

रक्ताद्यर्थक-प्रत्यय समाप्त।

---

४. चातुरर्थिक-प्रत्यय

सूचना—इस प्रकरण में ४ अर्थों में प्रत्यय कहे गए हैं, अतः इसे चातुरर्थिक कहते हैं। चार अर्थ हैं—१. तदस्मिन्नस्ति (वह वस्तु इसमें है), २. तेन निर्वृत्तम् (उसने बनाया), ३. तस्य निवासः (उनका निवास-स्थान), ४. अदूरभवः (उसके समीप होना)।

१०४१. तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि (४–२–६७)

'वह वस्तु इसमें है' इस अर्थ में प्रथमान्त से अण् आदि प्रत्यय होते हैं, यदि प्रत्ययान्त शब्द देश का नाम हो। औदुम्बरः देशः (जिस देश में गूलर अधिक होते हैं)–उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् देशे, उदुम्बर + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०४२. तेन निर्वृत्तम् (४–२–६८)

तृतीयान्त से निर्वृत्त (बसाया, बनाया) अर्थ में अण् आदि होते हैं। कौशाम्बी नगरी (राजा कुशाम्ब के द्वारा बसाई गई नगरी)–कुशाम्बेन निर्वृत्ता, कुशाम्ब + अण् (अ) + ङीप् (ई)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप, स्त्रीलिंग में टिड्ढा० (१२३६) से ङीप् (ई)।

१०४३. तस्य निवासः (४–२–६९)

'उसका निवास' अर्थ में षष्ठ्यन्त से अण् (अ) आदि प्रत्यय होते हैं। शैबः देशः (शिबि राजाओं का निवास देश)–शिबीनां निवासो देशः, शिबि + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य इ का लोप।

१०४४. अदूरभवश्च (४–२–७०)

अदूरभव (दूर न होना) अर्थ में पंचम्यन्त से अण् आदि होते हैं। वैदिशं नगरम् (विदिशा नगरी के समीप का नगर)–विदिशाया अदूरभवम्, विदिशा + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

१०४५. जनपदे लुप् (४–२–८१)

यदि जनपद (प्रदेश-विशेष) वाच्य होगा तो चातुरर्थिक प्रत्यय का लोप होगा।

१०४६. लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने (१–२–५१)

प्रत्यय का लोप होने पर प्रकृति (मूलशब्द) के तुल्य ही लिंग और वचन होंगे। पञ्चालाः (पञ्चाल लोगों का निवास जनपद)–पञ्चालानां निवासो जनपदः, पञ्चाल + अण्। पूर्वसूत्र से अण् का लोप, इससे मूल शब्द के तुल्य पुंलिंग बहु०। इसी प्रकार कुरवः (कुरुओं का निवास जनपद), अङ्गाः (अङ्गों का निवास जनपद), वङ्गाः (वंगों का निवास जनपद), कलिङ्गाः (कालिंगों का निवास जनपद)। सभी स्थानों पर अण् और उसका लोप। मूल शब्द के आधार पर पुंलिंग और बहुवचन।

१०४७. वरणादिभ्यश्च (४-२-८२)

वरणा आदि शब्दों से अदूरभव आदि अर्थों में चातुरर्थिक प्रत्यय का लोप होता है। वरणाः (वरणा के समीप वाला नगर)-वरणानाम् अदूरभवं नगरम्, वरणा + अण्। अदूरभवश्च (१०४४) से अण्, इससे अण् का लोप, लुपि० (१०४६) से स्त्रीलिंग बहु० ।

१०४८. कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् (४-२-८७)

कुमुद, नड और वेतस शब्दों से 'तद् अस्मिन् अस्ति' अर्थ में ड्मतुप् (मत्) प्रत्यय होता है, यदि देश का वाचक हो तो। सूचना-ड्ित् होने से टि का लोप होगा।

१०४९. झयः (८-२-१०)

झय् (वर्ग के १ से ४) अन्त वाले शब्द के बाद मतु के म् को व् आदेश होता है। कुमुद्वान् (जिस देश में कुमुद होते हैं)-कुमुदाः सन्ति अस्मिन् देशे, कुमुद + मत्। डित् होने टेः से अन्तिम अ का लोप, इससे म् को व्, प्र० एक०। नड्वान् (जिस देश में नड या नरकट अधिक होते हैं)-नडाः सन्ति अस्मिन् देशे, नड + मत्। पूर्ववत्।

१०५०. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः (८-२-९)

म् और अ अन्त में हों या म् और अ उपधा में हों तो मतु के म् को व् हो जाता है, यव आदि के बाद म् को व् नहीं होता है। वेतस्वान् (जिस देश में बेंत अधिक होते हैं)-वेतसाः सन्ति अस्मिन् देशे, वेतस + मत्। कुमुद० (१०४८) से मत्, डित् होने से अन्तिम अ का लोप, उपधा में अ होने से म् को व्, प्र० एक०।

१०५१. नडशादाड् ड्वलच् (४-२-८८)

नड और शाद शब्दों से 'तदस्मिन् अस्ति देशे' अर्थ में ड्वलच् (वल) प्रत्यय होता है। नड्वलः (नड या नरकट जिस देश में अधिक होते हैं)-नडाः सन्ति अस्मिन् देशे, नड + वल। डित् होने से टेः से टि अ का लोप। शाद्वलः (जिस देश में हरी घास अधिक हो)-शादाः सन्ति अस्मिन् देशे, शाद + वल। डित् होने से अ का लोप।

१०५२. शिखाया वलच् (४-२-८९)

शिखा शब्द से 'तदस्मिन् अस्ति देशे' अर्थ में वलच् (वल) प्रत्यय होता है। शिखावलः (जिस देश में शिखा या मोरपंख अधिक हो)-शिखाः सन्ति अस्मिन् देशे, शिखा + वल।

चातुरर्थिक-प्रत्यय समाप्त।

---

५. शैषिक-प्रत्यय

१०५३. शेषे (४-२-९२)

अपत्याधिकार से लेकर चातुरर्थिक तक के अर्थों से शेष अर्थों में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। चाक्षुषं रूपम् (आँख से जिसका ग्रहण होता है, रूप)–चक्षुषा गृह्यते, चक्षुष्+अण् (अ)। आदि-वृद्धि। श्रावणः शब्दः (कान से जिसका ग्रहण किया जाता है, शब्द)–श्रवणेन गृह्यते, श्रवण+अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। औपनिषदः पुरुषः (उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित, पुरुष)–उपनिषद्भिः प्रतिपादितः, उपनिषद्+अण्। आदि-वृद्धि। दार्षदाः सक्तवः (पत्थर पर पिसे हुए, सत्तू)–दृषदि पिष्टाः, दृषद्+अण्। आदि-वृद्धि। चातुरं शकटम् (चार बैल या घोड़ों से ले जाने योग्य, गाड़ी या बग्घी)–चतुर्भिः उह्यम्, चतुर्+अण्। आदि-वृद्धि। चातुर्दशं रक्षः (चतुर्दशी को दिखाई देने वाला, राक्षस)–चतुर्दश्यां दृश्यते, चतुर्दशी+अण्। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। तस्य विकारः (१०९५) सूत्र से पूर्व तक शेष का अधिकार है।

१०५४. राष्ट्रावारपाराद् घखौ (४-२-९३)

राष्ट्र और अवारपार शब्दों से क्रमशः घ (इय) और ख (ईन) प्रत्यय होते हैं, शेष अर्थ में। राष्ट्रियः (राष्ट्र में उत्पन्न या होने वाला)–राष्ट्रे जातः भवः वा, राष्ट्र+घ (इय)। घ् को इय्। अवारपारीणः (आर-पार गया हुआ, तत्त्वज्ञ)–अवारपारं गतः, अवारपार+ख (ईन)। ख् को ईन्, अन्त्य-लोप, अट्कु० से न् को ण्। (अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्, वा०) अवारपार शब्द से, पृथक् करने पर भी अर्थात् अवार और पार से तथा उलट देने पर अर्थात् पारावार से भी ख प्रत्यय होता है। अवारीणः (इस ओर को प्राप्त)–अवारं गतः, अवार+ख (ईन)। पूर्ववत्। पारीणः (पारंगत)–पारं गतः, पार+ख (ईन)। पारावारीणः (पारंगत)–पारावारं गतः, पारावार+ख (ईन)। सूचना–यहाँ पर विशेष शब्दों से घ प्रत्यय (१०५४) से लेकर ट्यु ट्युल् (१०७१) तक प्रत्यय कहे गए हैं, इनके जातः आदि अर्थ तथा समर्थ (सप्तमी आदि) विभक्तियाँ आगे कही जाएँगी।

१०५५. ग्रामाद् यखञौ (४-२-९४)

ग्राम शब्द से जात आदि अर्थों में य और खञ् (ईन) प्रत्यय होते हैं। ग्राम्यः, ग्रामीणः (गाँव में उत्पन्न)–ग्रामे जातः भवः वा, ग्राम+य। अन्त्य-लोप। ग्राम+ख (ईन)। ख् को ईन्, अन्त्य-लोप, न् को ण्।

१०५६. नद्यादिभ्यो ढक् (४-२-९७)

नदी आदि शब्दों से जात आदि अर्थों में ढक् (एय) प्रत्यय होता है। नादेयम् (नदी में होने वाला)-नद्यां जातम्, नदी + ढक् (एय)। ढ् को एय्, आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। माहेयम् (पृथ्वी पर होने वाला)-मह्यां जातम्, मही + ढक् (एय)। पूर्ववत्। वाराणसेयम् (वाराणसी में होने वाला)-वाराणस्यां भवम्, वाराणसी + ढक् (एय)। ढ् को एय्, अन्त्य-लोप।

१०५७. दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् (४-२-९८)

दक्षिणा, पश्चात् और पुरस्, इन अव्ययों से जात आदि अर्थों में त्यक् (त्य) प्रत्यय होता है। दाक्षिणात्यः (दक्षिण में उत्पन्न या होने वाला)-दक्षिणा जातः भवो वा, दक्षिणा + त्यक् (त्य)। आदि-वृद्धि। पाश्चात्यः (पश्चिम में होनेवाला या उत्पन्न)- पश्चाद्भवः जातो वा, पश्चात् + त्यक् (त्य)। आदिवृद्धि। पौरस्त्यः (पूर्व में होने वाला या उत्पन्न)-पुरो भवः, पुरस् + त्य। आदिवृद्धि।

१०५८. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् (४-२-१०१)

दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रतीच् शब्दों से जात आदि अर्थों में यत् (य) प्रत्यय होता है। दिव्यम् (स्वर्ग में होने वाला)-दिवि भवम्, दिव् + य। प्राच्यम् (पूर्व दिशा में होने वाला)-प्राच्यां भवम्, प्राच् + य। अपाच्यम् (दक्षिण दिशा में होने वाला)-अपाच्यां भवम्, अपाच् + य। उदीच्यम् (उत्तर दिशा में होने वाला)-उदीच्यां भवम्, उदीच् + य। प्रतीच्यम् (पश्चिम दिशा में होने वाला)-प्रतीच्यां भवम्, प्रतीच् + य।

१०५९. अव्ययात् त्यप् (४-२-१०४)

अव्ययों से जात आदि अर्थों में त्यप् (त्य) प्रत्यय होता है। (अमेहक्वतसित्रेभ्य एव, वा०) अमा, इह, क्व, तस् और त्र-प्रत्ययान्तों से ही त्यप् होता है। अमात्यः (मंत्री)-अमा भवः, अमा + त्य। अमा अर्थात् साथ रहने वाला। इहत्यः (यहाँ रहने वाला)-इह भवः, इह + त्य। क्वत्यः (कहाँ रहने वाला)-क्व भवः, क्व + त्य। ततस्त्यः (वहाँ से आया हुआ)-ततः आगतः, ततः + त्य। तत्रत्यः (वहाँ रहने वाला)-तत्र भवः, तत्र + त्य। (त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्, वा०) नि उपसर्ग से ध्रुव (स्थिर) अर्थ में त्यप् (त्य) होता है। नित्यः (स्थिर)-नियतं भवः, नि + त्य।

१०६०. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् (१-१-७३)

जिस शब्द के स्वर-समूह में प्रथम स्वर वृद्धि संज्ञक (आ, ऐ, औ) हो, उसे वृद्ध कहते हैं।

१०६१. त्यदादीनि च (१-१-७४)

त्यद् आदि शब्दों की भी वृद्ध संज्ञा होती है।

१०६२. वृद्धाच्छः (४-२-११४)

वृद्धसंज्ञक शब्दों से जात आदि अर्थों में छ (ईय) प्रत्यय होता है। शालीयः (शाला में होने वाला)-शालायां भवः, शाला + छ (ईय)। वृद्ध होने से छ, छ् को ईय्। मालीयः (माला में होने वाला)-मालायां भवः, माला + छ (ईय)। तदीयः (उसका)-तस्य अयम्, तद् + छ (ईय)। (वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या, वा०) -व्यक्ति के नाम की विकल्प से वृद्ध संज्ञा होती है। देवदत्तीयः, दैवदत्तः (देवदत्त का) —देवदत्तस्य अयम्, देवदत्त + छ (ईय)। अन्त्य-लोप। देवदत्त + अण् (अ)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। वृद्धसंज्ञा होने से छ, पक्ष में अण्।

१०६३. गहादिभ्यश्च (४-२-१३८)

गह आदि शब्दों से जात आदि अर्थों में छ (ईय) प्रत्यय होता है। गहीयः (गह-नामक देश में उत्पन्न)-गहे जातः, गह + छ (ईय)। अन्त्य-लोप।

१०६४. युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च (४-३-१)

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से जात आदि शैषिक अर्थों में विकल्प से खञ् (ईन) और छ (ईय) प्रत्यय होते हैं। पक्ष में अण् होता है। युष्मदीयः (तुम दोनों का या तुम्हारा)-युवयोः युष्माकं वा अयम्, युष्मद् + छ (ईय)। अस्मदीयः (हम दोनों का या हमारा)- आवयोः अस्माकं वा अयम्, अस्मद् + छ (ईय)।

१०६५. तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ (४-३-२)

खञ् और अण् प्रत्यय बाद में होंगे तो युष्मद् को युष्माक और अस्मद् को अस्माक आदेश होते हैं। यौष्माकीणः (तुम्हारा)—युवयोः युष्माकं वा अयम्, युष्मद् + ख (ईन)। युष्मद् को इससे युष्माक, आदिवृद्धि, अन्त्यलोप, अट् कु० से न् को ण्। आस्माकीनः (हमारा)-अस्मद् + ख (ईन)। अस्मद् को अस्माक, शेष पूर्ववत्। यौष्माकः (तुम्हारा) —युष्मद् + अण् (अ)। युष्मद् को युष्माक। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप। आस्माकः (हमारा)-अस्मद् + अण्। अस्मद् को अस्माक, आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०६६. तवकममकावेकवचने (४-३-३)

एक (एकवचन) अर्थ के वाचक युष्मद् को तवक और अस्मद् को ममक आदेश होते हैं, बाद में खञ् और अण् प्रत्यय हों तो। तावकीनः, तावकः (तेरा)—तव अयम्, युष्मद् + खञ् (ईन), युष्मद् + अण्। युष्मद् को तवक, आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप। मामकीनः, मामकः (मेरा)—मम अयम्, अस्मद् + खञ् (ईन), अस्मद् + अण् (अ)। अस्मद् को ममक, आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०६७. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (७-२-९८)

एकार्थ-वाचक युष्मद् और अस्मद् के म्-पर्यन्त भाग को त्व और म आदेश होते हैं, बाद में प्रत्यय और उत्तरपद हो तो। अर्थात् युष्मद् को त्वद् और अस्मद् को मद् होगा। त्वदीयः (तेरा)—तव अयम्, युष्मद्+छ (ईय)। छ् को ईय्, युष्म् को त्व। मदीयः (मेरा)—मम अयम्, अस्मद्+छ (ईय)। छ् को ईय्, अस्म् को म। त्वत्पुत्रः (तेरा पुत्र)—तव पुत्रः, युष्मद्+पुत्रः। षष्ठी समास, युष्म् को त्व, द् को त्। मत्पुत्रः (मेरा पुत्र)—मम पुत्रः, अस्मद्+पुत्रः। षष्ठीसमास, अस्म् को म, द् को त्।

१०६८. मध्यान्मः (४-३-८)

मध्य शब्द से जात आदि अर्थों में म प्रत्यय होता है। मध्यमः (मध्य में होने वाला, बीच का)—मध्ये भवः, मध्य+म।

१०६९. कालाट्ठञ् (४-३-११)

काल शब्द तथा कालवाचक से जात आदि अर्थों में ठञ् (इक) प्रत्यय होता है। कालिकम् (समय पर होने वाला)—काले भवम्, काल+ठञ् (इक)। ठ को इक, अन्त्य-लोप। इसी प्रकार मासिकम् (मासिक)—मासे भवम्, मास+ठञ् (इक) और सांवत्सरिकम् (वार्षिक)—संवत्सरे भवम्, संवत्सर+ठञ् (इक)। (अव्ययानां भमात्रे टिलोपः, वा०) भसंज्ञा होने पर सर्वत्र अव्ययों की टि (अन्तिम अच्-सहित अंश) का लोप होता है। सायंप्रातिकः (प्रातः और सायं होने वाला)—सायंप्रातर्भवः, सायंप्रातर्+ठञ् (इक)। ठ को इक, टि अर् का लोप। पौनःपुनिकः (बार बार होने वाला)—पुनःपुनर्भवः, पुनःपुनर्+ठञ् (इक)। आदिवृद्धि, टि अर् का लोप।

१०७०. प्रावृष एण्यः (४-३-१७)

प्रावृष् शब्द से भव आदि अर्थों में एण्य प्रत्यय होता है। प्रावृषेण्यः (वर्षा ऋतु में होने वाला)—प्रावृषि भवः, प्रावृष्+एण्य।

१०७१. सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च (४-३-२३)

सायम्, चिरम्, प्राह्णे और प्रगे तथा कालवाचक अव्ययों से ट्यु (अन) और ट्युल् (अन) प्रत्यय होते हैं और उनको तुट् (त्) का आगम होता है। सूचना—१. ट्यु और ट्युल् दोनों का यु शेष रहता है। यु को युवोरनाकौ (७८६) से अन होगा। तुट् का आगम होने से यह 'तन' प्रत्यय हो जाता है। २. ट्यु और ट्युल् दोनों का अन शेष रहता है, केवल स्वर में अन्तर होता है। ट्यु करने पर शब्द आद्युदात्त होगा और ट्युल् करने पर तन से पूर्व स्वर उदात्त होगा। ३. इस सूत्र के सभी उदाहरणों में 'तन' लगेगा।

सायन्तनम् (सायंकाल को होने वाला)—सायं भवम्, सायम्+तन। चिरन्तनम् (देर से होने वाला)—चिरं भवम्, चिरम्+तन। प्राह्णे और प्रगे निपातन से एकारान्त होते है। प्राह्णेतनम् (पूर्वाह्ण में उत्पन्न)—प्राह्णे भवम्, प्राह्णे+तन। प्रगेतनम् (प्रातःकाल मे होने वाला)—प्रगे भवम्, प्रगे+तन। दोषातनम् (रात में होने वाला)—दोषा भवम्, दोषा+तन।

१०७२. तत्र जातः (४-३-२५)

सप्तम्यन्त समर्थ से जातः (हुआ) अर्थ में अण् आदि और घ आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (स्रुघ्न में उत्पन्न)—स्रुघ्ने जातः, स्रुघ्न+अण् (अ)। आदि वृद्धि, अन्त्य-लोप। औत्सः (उत्स या स्रोत में उत्पन्न)—उत्स+अञ्। राष्ट्रियः (राष्ट्र में उत्पन्न)—राष्ट्र+घ (इय)। अवारपारीणः (अवारपार मे उत्पन्न)—अवारपारे जातः, अवारपार+ख (ईन)। इनकी सिद्धि पहले दी गई है।

१०७३. प्रावृषष्ठप् (४-३-२६)

प्रावृष् (वर्षा) शब्द से जात अर्थ में ठप् (इक) प्रत्यय होता है। यह सूत्र एण्य का अपवाद है। प्रावृषिकः (वर्षा ऋतु में उत्पन्न)—प्रावृषि जातः, प्रावृष्+ठप् (इक)। ठ को इक।

१०७४. प्रायभवः (४-३-३९)

सप्तम्यन्त से प्रायभव (अधिकतर होने वाला) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (स्रुघ्न में अधिकतर होनेवाला)—स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति, स्रुघ्न+अण्। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

१०७५. सम्भूते (४-३-४१)

सप्तम्यन्त से संभूत (होने की सम्भावना है) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (जिसकी स्रुघ्न में होने की सम्भावना है)—स्रुघ्ने संभवति, स्रुघ्न+अण् (अ)। पूर्ववत्।

१०७६. कोशाड्ढञ् (४-३-४२)

कोश शब्द से संभूत (उत्पन्न) अर्थ में ढञ् (एय) प्रत्यय होता है। कौशेयं वस्त्रम् (रेशमी वस्त्र)—कोशे संभूतम्, कोश+ढञ् (एय)। ढ् को एय्, आदि-वृद्धि, अन्त्यलोप। कोश का अर्थ है—रेशमी कीड़े के द्वारा बनाया हुआ गोला, उससे उत्पन्न।

१०७७. तत्र भवः (४-३-५३)

सप्तम्यन्त से भवः (विद्यमान, होने वाला) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

१०६७. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (७-२-९८)

एकार्थ-वाचक युष्मद् और अस्मद् के म्-पर्यन्त भाग को त्व और म आदेश होते हैं, बाद में प्रत्यय और उत्तरपद हो तो। अर्थात् युष्मद् को त्वद् और अस्मद् को मद् होगा। त्वदीयः (तेरा)-तव अयम्, युष्मद्+छ (ईय)। छ् को ईय्, युष्म् को त्व। मदीयः (मेरा)-मम अयम्, अस्मद्+छ (ईय)। छ् को ईय्, अस्म् को म। त्वत्पुत्रः (तेरा पुत्र)-तव पुत्रः, युष्मद्+पुत्रः। षष्ठी समास, युष्म् को त्व, द् को त्। मत्पुत्रः (मेरा पुत्र)-मम पुत्रः, अस्मद्+पुत्रः। षष्ठीसमास, अस्म् को म, द् को त्।

१०६८. मध्यान्मः (४-३-८)

मध्य शब्द से जात आदि अर्थों में म प्रत्यय होता है। मध्यमः (मध्य में होने वाला, बीच का)-मध्ये भवः, मध्य+म।

१०६९. कालाट्ठञ् (४-३-११)

काल शब्द तथा कालवाचक से जात आदि अर्थों में ठञ् (इक) प्रत्यय होता है। कालिकम् (समय पर होने वाला)—काले भवम्, काल+ठञ् (इक)। ठ को इक, अन्त्य-लोप। इसी प्रकार मासिकम् (मासिक)—मासे भवम्, मास+ठञ् (इक) और सांवत्सरिकम् (वार्षिक)—संवत्सरे भवम्, संवत्सर+ठञ् (इक)। (अव्ययानां भमात्रे टिलोपः, वा०) भसंज्ञा होने पर सर्वत्र अव्ययों की टि (अन्तिम अच्-सहित अंश) का लोप होता है। सायंप्रातिकः (प्रातः और सायं होने वाला)—सायंप्रातर्भवः, सायंप्रातर्+ठञ् (इक)। ठ को इक, टि अर् का लोप। पौनःपुनिकः (बार बार होने वाला)—पुनःपुनर्भवः, पुनःपुनर्+ठञ् (इक)। आदिवृद्धि, टि अर् का लोप।

१०७०. प्रावृष एण्यः (४-३-१७)

प्रावृष् शब्द से भव आदि अर्थों में एण्य प्रत्यय होता है। प्रावृषेण्यः (वर्षा ऋतु में होने वाला)—प्रावृषि भवः, प्रावृष्+एण्य।

१०७१. सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च (४-३-२३)

सायम्, चिरम्, प्राह्णे और प्रगे तथा कालवाचक अव्ययों से ट्यु (अन) और ट्युल् (अन) प्रत्यय होते हैं और उनको तुट् (त्) का आगम होता है। सूचना—१. ट्यु और ट्युल् दोनों का यु शेष रहता है। यु को युवोरनाकौ (७८६) से अन होगा। तुट् का आगम होने से यह 'तन' प्रत्यय हो जाता है। २. ट्यु और ट्युल् दोनों का अन शेष रहता है, केवल स्वर में अन्तर होता है। ट्यु करने पर शब्द आद्युदात्त होगा और ट्युल् करने पर तन से पूर्व स्वर उदात्त होगा। ३. इस सूत्र के सभी उदाहरणों में 'तन' लगेगा।

सायन्तनम् (सायंकाल को होने वाला)—सायं भवम्, सायम्+तन। चिरन्तनम् (देर से होने वाला)—चिरं भवम्, चिरम्+तन। प्राह्णे और प्रगे निपातन से एकारान्त होते हैं। प्राह्णेतनम् (पूर्वाह्ण में उत्पन्न)—प्राह्णे भवम्, प्राह्णे+तन। प्रगेतनम् (प्रातःकाल में होने वाला)—प्रगे भवम्, प्रगे+तन। दोषातनम् (रात में होने वाला)—दोषा भवम्, दोषा+तन।

१०७२. तत्र जातः (४–३–२५)

सप्तम्यन्त समर्थ से जातः (हुआ) अर्थ में अण् आदि और घ आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (स्रुघ्न में उत्पन्न)—स्रुघ्ने जातः, स्रुघ्न+अण् (अ)। आदि वृद्धि, अन्त्य-लोप। औत्सः (उत्स या स्रोत में उत्पन्न)—उत्स+अञ्। राष्ट्रियः (राष्ट्र में उत्पन्न)—राष्ट्र+घ (इय)। अवारपारीणः (अवारपार में उत्पन्न)—अवारपारे जातः, अवारपार+ख (ईन)। इनकी सिद्धि पहले दी गई है।

१०७३. प्रावृषष्ठप् (४–३–२६)

प्रावृष् (वर्षा) शब्द से जात अर्थ में ठप् (इक) प्रत्यय होता है। यह सूत्र एण्य का अपवाद है। प्रावृषिकः (वर्षा ऋतु में उत्पन्न)—प्रावृषि जातः, प्रावृष्+ठप् (इक)। ठ को इक।

१०७४. प्रायभवः (४–३–३९)

सप्तम्यन्त से प्रायभव (अधिकतर होने वाला) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (स्रुघ्न में अधिकतर होनेवाला)—स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति, स्रुघ्न+अण्। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

१०७५. सम्भूते (४–३–४१)

सप्तम्यन्त से संभूत (होने की सम्भावना है) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (जिसकी स्रुघ्न में होने की सम्भावना है)—स्रुघ्ने संभवति, स्रुघ्न+अण् (अ)। पूर्ववत्।

१०७६. कोशाड्ढञ् (४–३–४२)

कोश शब्द से संभूत (उत्पन्न) अर्थ में ढञ् (एय) प्रत्यय होता है। कौशेयं वस्त्रम् (रेशमी वस्त्र)—कोशे संभूतम्, कोश+ढञ् (एय)। ढ् को एय्, आदि-वृद्धि, अन्त्यलोप। कोश का अर्थ है—रेशमी कीड़े के द्वारा बनाया हुआ गोला, उससे उत्पन्न।

१०७७. तत्र भवः (४–३–५३)

सप्तम्यन्त से भवः (विद्यमान, होने वाला) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः (स्रुघ्न में होने वाला)—स्रुघ्ने भवः, स्रुघ्न + अण् । औत्सः (झरने में होने वाला) । राष्ट्रियः (राष्ट्र में होने वाला) । पूर्ववत् ।

१०७८. दिगादिभ्यो यत् (४–३–५४)

दिश् आदि सप्तम्यन्त पदों से भव अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है । दिश्यम् (दिशा में होने वाला)—दिशि भवम्, दिश् + यत् (य) । वर्ग्यम् (वर्ग या समूह में होने वाला)—वर्गे भवम्, वर्ग + य । अन्त्यलोप ।

१०७९. शरीरावयवाच्च (४–३–५५)

शरीर के अवयववाचक सप्तम्यन्त पदों से भव अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है । दन्त्यम् (दाँतों में होने वाला)—दन्तेषु भवम्, दन्त + य । अन्त्य-लोप । कण्ठ्यम् (कण्ठ में होने वाला)—कण्ठे भवम्, कण्ठ + य । अन्त्यलोप । (अध्यात्मादेष्ठञिष्यते, वा०) अध्यात्म आदि सप्तम्यन्त पदों से भव अर्थ में ठञ् (इक) प्रत्यय होता है । आध्यात्मिकम् (आत्मा में होने वाला)—अध्यात्मं भवम्, अध्यात्म + ठञ् (इक) । ठ् को इक्, आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप ।

१०८०. अनुशतिकादीनां च (७–३–२०)

अनुशतिक आदि समस्त पदों के दोनों पदों (पूर्वपद और उत्तरपद) की वृद्धि होती है, बाद में ञित्, णित् और कित् प्रत्यय हो तो । सूचना—दोनों पदों के प्रथम स्वर को वृद्धि होगी । आधिदैविकम् (देवों में होने वाला)—अधिदेवं भवम्, अधिदेव + ठञ् (इक) । उभयपद-वृद्धि, अन्त्य-लोप । आधिभौतिकम् (पंचभूतों में होने वाला)—अधिभूतं भवम्, अधिभूत + ठञ् (इक) । उभयपद वृद्धि, अन्त्य-लोप । ऐहलौकिकम् (इस लोक में होने वाला)—इह लोके भवम्, इहलोक + ठञ् (इक) । उभयपद वृद्धि, अन्त्य-लोप । पारलौकिकम् (परलोक में होने वाला)—परलोक + ठञ् (इक) । उभयपद वृद्धि, अन्त्य-लोप । अनुशतिक आदि गण आकृतिगण है, अर्थात् उभयपद वृद्धिवाले प्रयोग इसके उदाहरण समझने चाहिएँ ।

१०८१. जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः (४–३–६२)

जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्द से 'तत्र भवः' अर्थ में छ (ईय) प्रत्यय होता है । जिह्वामूलीयम् (जिह्वामूल में होने वाला)—जिह्वामूले भवम्, जिह्वामूल + छ (ईय) । अन्त्यलोप । अङ्गुलीयम् (अंगुलि में रहने वाली, अंगूठी)—अङ्गुल्यां भवम्, अङ्गुलि + छ (ईय) । अन्त्य-लोप ।

१०८२. वर्गान्ताच्च (४–३–६३)

वर्ग शब्द अन्त वाले शब्दों से भी 'तत्र भवः' अर्थ में छ (ईय) प्रत्यय होता है । कवर्गीयम् (कवर्ग में होने वाला)–कवर्गे भवम्, कवर्ग + (ईय) । छ् को ईय, अन्त्य-लोप ।

१०८३. तत आगतः (४-३-७४)

पंचम्यन्त समर्थ से आगतः (आया हुआ) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (स्रुघ्न से आया हुआ)-स्रुघ्नाद् आगतः, स्रुघ्न + अण्। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०८४. ठगायस्थानेभ्यः (४-३-७५)

पंचम्यन्त आय-स्थान (आमदनी के स्थान) वाचक शब्दों से ठक् (इक) प्रत्यय होता है। शौल्कशालिकः (चुंगी-घर से आया हुआ)-शुल्कशालाया आगतः, शुल्कशाला + ठक् (इक)। ठ् को इक्, आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०८५. विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् (४-३-७७)

विद्या और योनि (रक्त) के संबन्धवाचक शब्दों से 'तत आगतः' अर्थ में वुञ् (अक) प्रत्यय होता है। औपाध्यायकः (उपाध्याय या गुरु से आया हुआ)-उपाध्यायाद् आगतः, उपाध्याय + वुञ् (अक)। युवो० (७८६) से वु को अक, आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। पैतामहकः (पितामह अर्थात् बाबा से आया हुआ)-पितामहाद् आगतः, पितामह + वुञ् (अक)। आदि-वृद्धि, अन्त्यलोप। प्रथम विद्या-संबन्ध का और द्वितीय योनि-संबन्ध का उदाहरण है।

१०८६. हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः (४-३-८१)

हेतु-वाचक और मनुष्य-नाम-वाचक शब्दों से 'तत आगतः' अर्थ में विकल्प से रूप्य प्रत्यय होता है। समरूप्यम्, समीयम् (सरल उपाय से प्राप्त)-समाद् आगतम्, सम + रूप्य, सम + छ (ईय)। रूप्य प्रत्यय, पक्ष में गहादिभ्यश्च (१०६३) से छ (ईय) प्रत्यय, अन्त्यलोप। विषमीयम् (कठिन उपाय से प्राप्त)-विषमाद् आगतम्, विषम + छ (ईय)। अन्त्यलोप। देवदत्तरूप्यम्, दैवदत्तम् (देवदत्त से प्राप्त)-देवदत्ताद् आगतम्, देवदत्त + रूप्य, देवदत्त + अण्। पक्ष में अण्।

१०८७. मयट् च (४-३-८२)

हेतु-वाचक और मनुष्य-नाम-वाचक से 'तत आगतः' अर्थ में मयट् (मय) प्रत्यय भी होता है। सममयम्—सम + मय। देवदत्तमयम्—देवदत्त + मय। अर्थ आदि पूर्ववत् हैं।

१०८८. प्रभवति (४-३-८३)

पंचम्यन्त से प्रभवति (प्रकट होती है, निकलती है) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। हैमवती गङ्गा (हिमालय से निकलती है, गंगा)-हिमवतः प्रभवति। हिमवत् + अण्। आदिवृद्धि, टिड्ढा० से ङीप् (ई), अन्त्यलोप।

१०८९. तद्गच्छति पथिदूतयोः (४-३-८५)

द्वितीयान्त से गच्छति (जाता है) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं, यदि जाने

वाला मार्ग या दूत हो तो। स्रौघ्नः पन्था दूतो वा (स्रुघ्न को जाने वाला मार्ग या दूत)-स्रुघ्नं गच्छति, स्रुघ्न + अण्। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०९०. अभिनिष्क्रामति द्वारम् (४-३-८६)

द्वितीयान्त से अभिनिष्क्रामति (उस ओर निकलता है) अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं, यदि निकलने वाला द्वार हो। स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम् (स्रुघ्न की ओर निकलने वाला, कन्नौज का दरवाजा)-स्रुघ्नम् अभिनिष्क्रामति-स्रुघ्न + अण्। सूचना-१. प्राचीन समय में सुरक्षा के लिए बड़े नगरों के चारों ओर प्राकार (चहारदीवारी) होती थी। बाहर जाने के लिए गेट (दरवाजे) होते थे। जो दरवाजे जिस ओर निकलते थे, उसके नाम से वह दरवाजा कहलाता था। जैसे-अजमेरी गेट, कश्मीरी गेट, लाहौरी गेट, आदि। २. स्रुघ्न एक प्राचीन नगर और जिला था। यह पाटलिपुत्र (पटना) से कुछ दूरी पर था। वर्तमान 'सुग' स्थान को स्रुघ्न माना जाता है।

१०९१. अधिकृत्य कृते ग्रन्थे (४-३-८७)

'उस विषय को लेकर बनाया हुआ ग्रन्थ' अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ से अण् आदि प्रत्यय होते हैं। शारीरकीयः (जीवात्मा विषय को लेकर बनाया हुआ ग्रन्थ)-शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, शारीरक + छ (ईय)। वृद्धाच्छः (१०६२) से छ, छ् को ईय्, अन्त्य-लोप। शरीरम् एव शरीरकम्, तत्र भवः, शरीरक + अण्, शारीरकः।

१०९२. सोऽस्य निवासः (४-३-८९)

'वह इसका निवास-स्थान है' इस अर्थ में प्रथमान्त से अण् आदि प्रत्यय होते हैं। स्रौघ्नः (स्रुघ्न इसका निवास-स्थान है)-स्रुघ्नो निवासोऽस्य, स्रुघ्न + अण्।

१०९३. तेन प्रोक्तम् (४-३-१०१)

'उसके द्वारा प्रवचन किया हुआ' अर्थ में तृतीयान्त से अण् आदि प्रत्यय होते हैं। *पाणिनीयम् (पाणिनि के द्वारा प्रवचन किया हुआ, व्याकरण)-पाणिनिना प्रोक्तम्*, पाणिनि + छ (ईय)। वृद्धाच्छः (१०६२) से छ, छ् को ईय्, अन्तिम इ का लोप।

१०९४. तस्येदम् (४-३-१२०)

'उसका यह' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त से अण् आदि प्रत्यय होते हैं। औपगवम् (उपगु का यह है, उपगु-संबन्धी)-उपगोरिदम्, उपगु + अण् (अ)। आदिवृद्धि, उ को गुण ओ, ओ को अव्।

शैषिक-प्रत्यय समाप्त।

---

६. विकारार्थक-प्रत्यय

१०९५. तस्य विकारः (४-३-१३४)

षष्ठ्यन्त से विकार अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। विकार का अर्थ है—प्रकृति-विकृति, अर्थात् कारण का कार्य के रूप में परिणत होना। (अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः, वा०) विकारार्थक प्रत्यय बाद में होने पर अश्मन् की टि अर्थात् अन् का लोप होता है। आश्मः (पत्थर का विकार या पत्थर का बना हुआ)—अश्मनो विकारः, अश्मन् + अण्। आदिवृद्धि, इस वर्तिक से अन् का लोप। भास्मनः (राख का विकार)—भस्मनो विकारः, भस्मन् + अण्। आदिवृद्धि, अन् (१००९) से टि-लोप का निषेध। मार्त्तिकः (मिट्टी का विकार, मिट्टी का बना हुआ)—मृत्तिकाया विकारः, मृत्तिका + अण्। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०९६. अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः (४-३-१३५)

प्राणिवाचक, ओषधिवाचक और वृक्षवाचक षष्ठ्यन्त शब्दों से अवयव और विकार अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। मायूरः (मोर का अंग या विकार)—मयूरस्य अवयवो विकारो वा, मयूर + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप। मौर्वं काण्डं भस्म वा (मूर्वा नामक ओषधि का तना या राख)—मूर्वायाः अवयवः भस्म वा, मूर्वा + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप। पैप्पलम् (पीपल का अंग या विकार)—पिप्पलस्य अवयवो विकारो वा, पिप्पल + अण्। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१०९७. मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः (४-३-१४३)

प्रकृति (उपादान कारण) मात्र से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से मयट् (मय) प्रत्यय होता है, लौकिक संस्कृत में, किन्तु वह विकार या अवयव भक्ष्य (खाद्य-पदार्थ) या आच्छादन (वस्त्र) न हो। अश्ममयम्, आश्मनम् (पत्थर का विकार या अवयव)—अश्मनो विकारोऽवयवो वा, अश्मन् + मयट् (मय)। नलोपः ० (१८०) से न् का लोप। पक्ष में अण्, अश्मन् + अण् (अ)। आदिवृद्धि, अन् (१००९) से टि-लोप का अभाव। प्रत्युदाहरण— मौद्गः सूपः (मूँग की दाल)—मुद्गानां विकारः, मुद्ग + अण्। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। कार्पासम् आच्छादनम् (कपास की बनी हुई चादर)—कार्पासस्य विकारः, कार्पास + अण्। अन्त्य-लोप। भक्ष्य और आच्छादन होने से मयट् नहीं हुआ।

१०९८. नित्यं वृद्धशरादिभ्यः (४-३-१४४)

वृद्ध संज्ञक और शर आदि शब्दों से विकार और अवयव अर्थ में नित्य मयट् (मय) होता है। आम्रमयम् (आम का विकार या अवयव)—आम्रस्य विकारोऽवयवो

वा, आम्र + मय। आम्र वृद्धसंज्ञक है। शरमयम् (सरकंडों का विकार या अवयव)-शराणां विकारोऽवयवो वा, शर + मय।

१०९९. गोश्च पुरीषे (४-३-१४५)

गो शब्दों से पुरीष (गोबर) अर्थ में मयट् (मय) होता है। गोमयम् (गोबर)-गोः पुरीषम्, गो + मय।

११००. गोपयसोर्यत् (४-३-१६०)

गो और पयस् शब्द से विकार और अवयव अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है। गव्यम् (गाय का विकार या अवयव, गाय का दूध और उससे बना पदार्थ, पंचगव्य) -गोः विकारोऽवयवो वा, गो + यत् (य)। वान्तो यि० (२४) से ओ को अव्। पयस्यम् (दूध का बना पदार्थ, खीर आदि)-पयसः विकारोऽवयवो वा, पयस् + य।

विकारार्थक-प्रत्यय समाप्त।

---

७. ठगधिकार प्रारम्भ

११०१. प्राग् वहतेष्ठक् (४-४-१)

तद्वहति० (१११६) सूत्र से पहले ठक् (इक) का अधिकार है।

११०२. तेन दीव्यति खनति जयति जितम् (४-४-२)

तृतीयान्त से खेलना, खोदना, जीतना और जीत लिया गया, अर्थों में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। आक्षिकः (पासों से खेलता है, खोदता है, जीतता है या जीता गया)-अक्षैः दीव्यति खनति जयति जितो वा, अक्ष + ठक्। ठ् को इक्, आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

११०३. संस्कृतम् (४-४-३)

तृतीयान्त से संस्कृत (स्वादिष्ट बनाना, बघारना) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। दाधिकम् (दही से संस्कृत)-दध्ना संस्कृतम्, दधि + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, इ का लोप। मारीचिकम् (मिर्चों से बघारा हुआ)-मरीचिकाभिः संस्कृतम्, मरीचिका + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

११०४. तरति (४-४-५)

तृतीयान्त से तरति (तैरना, पार जाना) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है।

औडुपिकः (डोंगी से पार जाने वाला)—उडुपेन तरति, उडुप + ठक् (इक)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

११०५. चरति (४–४–८)

तृतीयान्त से चरति (जाना और खाना) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। हास्तिकः (हाथी से जाने वाला)—हस्तिना चरति, हस्तिन् + ठक् (इक)। ठ् को इक्, नस्तद्धिते से इन् का लोप, आदि-वृद्धि। दाधिकः (दही से खाने वाला)—दध्ना चरति, दधि + ठक् (इक)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

११०६. संसृष्टे (४–४–२२)

तृतीयान्त से संसृष्ट (मिला हुआ) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। दाधिकम् (दही मिला हुआ, दही-बड़ा)—दध्ना संसृष्टम्, दधि + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

११०७. उञ्छति (४–४–३२)

द्वितीयान्त से उञ्छति (कणों को चुनना) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। बादरिकः (बेरों को चुनने वाला)—बदराणि उञ्छति, बदर + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप।

११०८. रक्षति (४–४–३३)

द्वितीयान्त से रक्षति (रक्षा करना) अर्थ में ठक् (इक) होता है। सामाजिकः (समाज की रक्षा करने वाला)—समाजं रक्षति, समाज + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप।

११०९. शब्ददर्दुरं करोति (४–४–३४)

द्वितीयान्त शब्द और दर्दुर से करोति (करना) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। शाब्दिकः (शब्द करने वाला)—शब्दं करोति, शब्द + ठक् (इक)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप। दार्दुरिकः (दर्दुर अर्थात् मिट्टी के बर्तन या बाजे को बनाने वाला)—दर्दुरं करोति, दर्दुर + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

१११०. धर्मं चरति (४–४–४१)

द्वितीयान्त धर्म शब्द से चरति (आचरण करना) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। धार्मिकः (धर्म का आचरण करने वाला)-धर्मं चरति, धर्म + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। (अधर्माच्चेति वक्तव्यम्, वा०) द्वितीयान्त अधर्म शब्द से भी 'आचरण करना' अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। आधर्मिकः (अधर्म का आचरण करने वाला)-अधर्मं चरति, अधर्म + ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। अधार्मिकः में न धार्मिकः, नञ् समास है।

११११. शिल्पम् (४–४–५५)

प्रथमान्त से शिल्पम् (कला या व्यवसाय) अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। मार्दङ्गिकः (मृदङ्ग बजाना जिसकी कला है)–मृदङ्गवादनं शिल्पम् अस्य, मृदङ्ग+ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

१११२. प्रहरणम् (४–४–५७)

प्रथमान्त से 'यह इसका शस्त्र है' अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। आसिकः (तलवार चलाने वाला)–असिः प्रहरणम् अस्य, असि+ठक् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्य–लोप। धानुष्कः (धनुष चलाने वाला)—धनुः प्रहरणम् अस्य, धनुस्+ठक्। इसुसु० (१०३७) से ठ को क, आदि-वृद्धि, इणः षः से धनुस् के स् को ष्।

१११३. शीलम् (४–४–६१)

प्रथमान्त से 'इसका स्वभाव है' अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। आपूपिकः (पूए खाना जिसका स्वभाव है)–अपूपभक्षणं शीलम् अस्य, अपूप+ठक् (इक)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

१११४. निकटे वसति (४–४–७३)

सप्तम्यन्त निकट शब्द से 'रहना' अर्थ में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। नैकटिकः भिक्षुकः (पास में रहने वाला)–निकटे वसति, निकट+ठक् (इक)। आदि-वृद्धि, अन्त्य-लोप।

ठगधिकार समाप्त।

---

८. यदधिकार प्रारम्भ

१११५. प्राग्घिताद् यत् (४–४–७५)

तस्मै हितम् (११२४) से पहले यत् (य) प्रत्यय का अधिकार है।

१११६. तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम् (४–४–७६)

द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासङ्ग शब्दों से वहति (ढोना) अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है। रथ्यः (रथ ढोने वाला, घोड़ा आदि)–रथं वहति, रथ+य। अन्त्य-लोप। युग्यः (जुआ ढोने वाला, बैल)–युगं वहति, युग+य। अन्त्यलोप। प्रासङ्ग्यः (प्रासंग को ढोने वाला, नया बछड़ा)–प्रासङ्गं वहति, प्रासङ्ग+य। नए घोड़े या बछड़े

को शिक्षित करने के लिए उनके कन्धे पर जो जुआ रखा जाता है, उसे प्रासंग कहते हैं।

१११७. धुरो यड्ढकौ (४-४-७७)

द्वितीयान्त धुर् शब्द से वहति (ढोना) अर्थ में यत् (य) और ढक् (एय) प्रत्यय होते हैं।

१११८. न भकुर्छुराम् (८-२-७९)

भसंज्ञक, कुर् और छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है। धुर्यः; धौरेयः (धुरा को ढोने वाला)—धुरं वहति, धुर् + य। हलि च (६१२) से उ को दीर्घ प्राप्त था, इससे निषेध। धौरेयः—धुर् + ढक् (एय)। ढ् को एय्, आदिवृद्धि।

१११९. नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसंमितेषु (४-४-९१)

तृतीयान्त १. नौ, २. वयस्, ३. धर्म, ४. विष, ५. मूल, ६. मूल, ७. सीता और ८. तुला शब्दों से क्रमशः १. तार्य (तरने योग्य), २. तुल्य (समान), ३. प्राप्य (पाने योग्य), ४. वध्य (मारने योग्य), ५. आनाम्य (लाभांश), ६. सम (बराबर), ७. समित (बराबर किया हुआ), ८. संमित (बराबर नापा हुआ), अर्थों में यत् (य) प्रत्यय होता है। १. नाव्यं जलम् (नाव से तरने योग्य जल)—नावा तार्यम्, नौ + य। वान्तो यि० (२४) से औ को आव्। २. वयस्यः (समान आयु का, मित्र)—वयसा तुल्यः, वयस् + य। ३. धर्म्यम् (धर्म से पाने योग्य)—धर्मेण प्राप्यम्, धर्म + य। अन्त्यलोप। ४. विष्यः (विष से मारने योग्य)—विषेण वध्यः, विष + य। अन्त्यलोप। ५. मूल्यम् (मूलधन से प्राप्त होने वाला लाभांश)—मूलेन आनाम्यम्, मूल + य। अन्त्यलोप। ६. मूल्यः (मूल अर्थात् लागत के बराबर)—मूलेन समः, मूल + य। अन्त्यलोप। ७. सीत्यं क्षेत्रम् (हल से बराबर किया हुआ खेत)—सीतया समितं, सीता + य। अन्त्यलोप। ८. तुल्यम् (तराजू से बराबर नापा हुआ)—तुलया संमितम्, तुला + य। अन्त्यलोप।

११२०. तत्र साधुः (४-४-९८)

सप्तम्यन्त से साधु (प्रवीण, योग्य) अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है। अग्र्यः (आगे रहने योग्य)—अग्रे साधुः, अग्र + य। अन्त्यलोप। सामन्यः (सामगान में प्रवीण)—सामनि साधुः, सामन् + य। ये चाभावकर्मणोः (१००८) से अन् के लोप का निषेध। इसी प्रकार कर्मण्यः (काम करने में प्रवीण)—कर्मणि साधुः, कर्मन् + य। शरण्यः (रक्षा करने में प्रवीण)—शरणे साधुः, शरण + य। अन्त्य-लोप।

११२१. सभाया यः (४–४–१०५)

सप्तम्यन्त सभा शब्द से साधु (प्रवीण, योग्य) अर्थ में य प्रत्यय होता है। सभ्यः (सभा के योग्य, सभा में प्रवीण)—सभायां साधुः, सभा + य। अन्त्यलोप।

यदधिकार समाप्त।

---

९. छयदधिकार प्रारम्भ

११२२. प्राक् क्रीताच्छः (५–१–१)

तेन क्रीतम् (११२९) से पहले छ प्रत्यय का अधिकार है।

११२३. उगवादिभ्यो यत् (५–१–२)

तेन क्रीतम् (११२९) से पहले यत् का भी अधिकार है। उकारान्त और गो आदि शब्दों से यत् (य) प्रत्यय होता है। शङ्कव्यं दारु (शंकु अर्थात् बाण या खूँटे के लिए उपयोगी, लकड़ी)—शङ्कवे हितम्, शङ्कु + य। ओर्गुणः से उ को ओ, वान्तो यि० (२४) से ओ को अव्। गव्यम् (गायों के लिए हितकर, घास आदि)—गोभ्यो हितम्, गो + य। वान्तो यि० (२४) से ओ को अव्। (नाभि नभं च, वा०) नाभि को नभ आदेश होता है और यत् (य) प्रत्यय होता है, हित (हितकर) अर्थ में। नभ्योऽक्षः (रथ की नाभि के लिए उपयोगी अक्ष या डंडा), नभ्यम् अञ्जनम् (रथ की नाभि के लिए उपयोगी, तेल आदि)—नाभ्यै हितः, नाभि + य। नाभि को इस वार्तिक से नभ, अन्त्यलोप।

११२४. तस्मै हितम् (५–१–५)

चतुर्थ्यन्त से हित (हितकर) अर्थ में छ (ईय) प्रत्यय होता है। वत्सीयः गोधुक् (बछड़ों के लिए हितकर, गाय दुहने वाला)—वत्सेभ्यो हितः, वत्स + छ (ईय)। अन्त्यलोप।

११२५. शरीरावयवाद् यत् (५–१–६)

शरीर के अवयववाची चतुर्थ्यन्त शब्दों से यत् (य) प्रत्यय होता है। दन्त्यम् (दाँतों के लिए हितकर, मंजन)—दन्तेभ्यो हितम्, दन्त + य। कण्ठ्यम् (गले के लिए हितकर)—कण्ठाय हितम्, कण्ठ + य। अन्त्यलोप। नस्यम् (नाक के लिए हितकर, सुँघनी)—नासिकायै हितम्, नासिका + य। पद्दन्नो० (६-१-६३) से नासिका को नस्।

११२६. आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः (५-१-९)

आत्मन्, विश्वजन और भोग-अन्त वाले शब्दों से हितकर अर्थ में ख (ईन) प्रत्यय होता है।

११२७. आत्माध्वानौ खे (६-४-१६९)

आत्मन् और अध्वन् शब्दों को प्रकृतिभाव होता है, बाद में ख प्रत्यय हो तो। अर्थात् अन् का लोप नहीं होता है। आत्मनीनम् (अपने लिए हितकर)--आत्मने हितम्, आत्मन्+ख (ईन)। अन् का लोप नहीं हुआ। विश्वजनीनम् (सबके लिए हितकर)--विश्वजनाय हितम्, विश्वजन+ख (ईन)। अन्त्यलोप। मातृभोगीणः (माता के शरीर के लिए हितकर)--मातृभोगाय हितः, मातृभोग+ख (ईन)। अन्त्य-लोप, कुमति च (८-४-१३) से न् को ण्।

छयदधिकार समाप्त।

---

१०. ठञधिकार प्रारम्भ

११२८. प्राग्वतेष्ठञ् (५-१-१८)

तेन तुल्यं० (११३६) से पहले ठञ् का अधिकार है।

११२९. तेन क्रीतम् (५-१-३७)

तृतीयान्त से क्रीतम् (खरीदा हुआ) अर्थ में ठञ् (इक) प्रत्यय होता है। साप्त-तिकम् (७० रुपए में खरीदा हुआ)--सप्तत्या क्रीतम्, सप्तति+ठञ् (इक)। ठ् को इक्, आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। प्रास्थिकम् (प्रस्थ या सेर भर अन्न से खरीदा हुआ)--प्रस्थेन क्रीतम्, प्रस्थ+ठञ् (इक)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

११३०. सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ (५-१-४१)

११३१. तस्येश्वरः (५-१-४२)

षष्ठ्यन्त सर्वभूमि और पृथिवी शब्दों से ईश्वर (स्वामी) अर्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं। सार्वभौमः (सारी पृथ्वी का स्वामी चक्रवर्ती राजा)--सर्वभूमेः ईश्वरः, सर्वभूमि+अण् (अ)। अनुशतिकादीनां च (१०८०) से उभयपद वृद्धि, अन्त्य-लोप। पार्थिवः (पृथ्वी का स्वामी, राजा)--पृथिव्या ईश्वरः, पृथिवी+अञ् (अ)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप। अण्-प्रत्ययान्त अन्तोदात्त होगा और अञ्-प्रत्ययान्त आद्युदात्त।

११३२. पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्-षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् (५-१-५९)

पङ्क्ति आदि रूढ शब्द हैं, इनकी निपातन से सिद्धि होती है अर्थात् इनसे यथायोग्य प्रत्यय करके बना लेना चाहिए। पङ्क्तिः (दस), विंशतिः (बीस), त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (४०), पञ्चाशत् (५०), षष्टिः (६०), सप्ततिः (७०), अशीतिः (८०), नवतिः (९०), शतम् (१००)। सूचना—'विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येय-संख्ययोः' (वाक्यपदीय) 'तासु चाऽऽनवतेः स्त्रियः' (अमरकोष)। संख्या और संख्येय (क्रमवाचक) दोनों अर्थों में विंशति से नवति तक सारे शब्द एकवचनान्त और स्त्रीलिंग हैं। जैसे—विंशतिः छात्राः।

११३३. तदर्हति (५-१-६३)

द्वितीयान्त से अर्हति (पाने योग्य है) अर्थ में ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं। श्वैतच्छत्रिकः (सफेद छाता पाने योग्य)—श्वेतच्छत्रम् अर्हति, श्वेतच्छत्र + ठञ् (इक)। ठ् को इक्, आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

११३४. दण्डादिभ्यो यत् (५-१-६६)

द्वितीयान्त दण्ड आदि शब्दों से अर्हति (पाने योग्य है) अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है। दण्ड्यः (दण्ड पाने योग्य)—दण्डम् अर्हति, दण्ड + य। अन्त्यलोप। अर्घ्यः (पूजा के योग्य)—अर्घम् अर्हति, अर्घ + य। अन्त्यलोप। वध्यः (वध के योग्य)—वधम् अर्हति, वध + य। अन्त्यलोप।

११३५. तेन निर्वृत्तम् (५-१-७९)

तृतीयान्त से निर्वृत्तम् (पूर्ण हुआ) अर्थ में ठञ् (इक) प्रत्यय होता है। आह्निकम् (एक दिन में पूरा होनेवाला)—अह्ना निर्वृत्तम्, अहन् + ठञ्। ठ् को इक्, अल्लोपोऽनः (२४७) से उपधा अ का लोप, आदिवृद्धि।

ठञधिकार समाप्त।

---

११. त्वतलधिकार प्रारम्भ

११३६. तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः (५-१-११५)

तृतीयान्त से तुल्य अर्थ में वति (वत्) प्रत्यय होता है, यदि क्रिया की समानता हो। ब्राह्मणवद् अधीते (ब्राह्मण के तुल्य पढ़ता है)—ब्राह्मणेन तुल्यम्, ब्राह्मण +

वति (वत्)। प्रत्युदाहरण—पुत्रेण तुल्यः स्थूलः (पुत्र के तुल्य मोटा)—यहाँ पर गुण की समानता है, अतः वत् नहीं हुआ।

११३७. तत्र तस्येव (५–१–११६)

सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त से इव (तुल्य, सदृश) अर्थ में वति (वत्) प्रत्यय होता है। मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः (मथुरा के तुल्य स्रुघ्न में प्राकार या परकोटा है)—मथुरायाम् इव, मथुरा + वत्। चैत्रवत् मैत्रस्य गावः (चैत्र की तरह मैत्र की गाय हैं)—चैत्रस्य इव, चैत्र + वत्।

११३८. तस्य भावस्त्वतलौ (५–१–११९)

षष्ठ्यन्त से भाव (जाति) अर्थ में त्व और तल् (ता) प्रत्यय होते हैं। (त्वान्तं क्लीबम्, तलन्तं स्त्रियाम्) त्व-प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग में आते हैं और तल्-प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग में। तल् का त शेष रहता है, टाप् (आ) होकर त + आ = ता होता है। गोत्वम्, गोता (गायपना या गाय जाति)—गोर्भावः, गो + त्व, गो + ता।

११३९. आ च त्वात् (५–१–१२०)

ब्रह्मणस्त्वः (५–१–१३६) से पहले त्व और तल् का अधिकार है। इस अधिकार में सामान्य त्व, ता और अपवाद प्रत्यय इमनिच्, ष्यञ्, अण् आदि का भी समावेश है। नञ् और स्नञ् का भी समावेश इसमें है। स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्, स्त्रीता (स्त्री-जाति)—स्त्रियाः भावः, स्त्री + नञ् (न), आदिवृद्धि, न् को ण्। स्त्री + त्व, स्त्री + ता। पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता (पुरुषत्व)—पुंसः भावः, पुंस् + स्नञ् (स्न)। आदि-वृद्धि। पुंस् + त्व, पुंस् + ता।

११४०. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा (५–१–१२२)

पृथु आदि शब्दों से भाव अर्थ में विकल्प से इमनिच् (इमन्) प्रत्यय होता है। इमनिच् का इमन् शेष रहता है। इमनिच्-प्रत्ययान्त शब्द पुंलिंग होता है। पक्ष में अण् आदि प्रत्यय होंगे।

११४१. र ऋतो हलादेर्लघोः (६–४–१६१)

हलादि (व्यञ्जन से प्रारम्भ होने वाले) ह्रस्व ऋ को र हो जाता है, बाद में इष्ठ, इमन् और ईयस् प्रत्यय हों तो। (पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्) इन शब्दों के ही ऋ को र होता है—पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ और परिवृढ।

११४२. टेः (६–४–१५५)

भसंज्ञक टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर-सहित व्यञ्जन) का लोप हो जाता है, बाद में इष्ठ, इमन् और ईयस् प्रत्यय हों तो। प्रथिमा (विशालता, विस्तृतता)—

पृथोः भावः, पृथु + इमन् । र ऋतो० से ऋ को र, टेः से उ का लोप, प्रथिमन् + प्र० एकवचन ।

११४३. इगन्ताच्च लघुपूर्वात् (५-१-१३१)

जिस प्रातिपदिक के अन्त में इक् (इ, उ, ऋ) है और उससे पूर्व लघु स्वर है, उससे भाव अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय होता है। पार्थवम् (विशालता)—पृथोः भावः, पृथु + अण् (अ)। आदिवृद्धि, ओर्गुणः से उ को ओ, ओ को अव् आदेश। प्रदिमा, मार्दवम् (मृदुता)—मृदोः भावः, मृदु + इमनिच् (इमन्)। पृथ्वादिभ्यः० से इमनिच्, र ऋतो० से ऋ को र, टेः से उ का लोप। पक्ष में मृदु + अण् (अ)। पार्थव के तुल्य आदिवृद्धि, ओ, अव्।

११४४. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च (५-१-१२३)

षष्ठ्यन्त वर्ण-विशेष-वाचक शब्दों तथा दृढ आदि से भाव अर्थ में ष्यञ् (य) और इमनिच् (इमन्) प्रत्यय होते हैं। शौक्ल्यम्, शुक्लिमा (शुक्लता, सफेदी)—शुक्लस्य भावः, शुक्ल + ष्यञ् (य)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप। शुक्ल + इमन्। अ का लोप। दार्ढ्यम्, द्रढिमा (दृढता)—दृढस्य भावः, दृढ + ष्यञ् (य)। आदिवृद्धि, अन्त्य-लोप। दृढ + इमन्, र ऋतो० (११४१) से ऋ को र, अ का लोप, प्र० एक०।

११४५. गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (५-१-१२४)

षष्ठ्यन्त गुणवाचक और ब्राह्मण आदि शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् (य) प्रत्यय होता है। जाड्यम् (मूर्खपना या मूर्ख का कार्य)—जडस्य भावः कर्म वा, जड + ष्यञ् (य)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। मौढ्यम् (मूर्खता या मूर्ख का कार्य) —मूढस्य भावः कर्म वा, मूढ + ष्यञ् (य)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। ब्राह्मण्यम् (ब्राह्मणत्व या ब्राह्मण का कार्य)—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा, ब्राह्मण + ष्यञ् (य)। अन्त्यलोप। इस सूत्र में ब्राह्मण आदि आकृतिगण हैं।

११४६. सख्युर्यः (५-१-१२६)

षष्ठ्यन्त सखि शब्द से भाव और कर्म अर्थ में य प्रत्यय होता है। सख्यम् (मित्रता या मित्र का कार्य)—सख्युः भावः कर्म वा, सखि + य। अन्त्यलोप।

११४७. कपिज्ञात्योर्ढक् (५-१-१२७)

षष्ठ्यन्त कपि और ज्ञाति शब्द से भाव और कर्म अर्थ में ढक् (एय) प्रत्यय होता है। कापेयम् (बन्दरपना या बन्दर का कार्य)—कपेः भावः कर्म वा, कपि + ढक् (एय)। ढ् को एय्, आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। ज्ञातेयम् (सम्बन्धीपना या सम्बन्धी का कार्य)—ज्ञातेः भावः कर्म वा, ज्ञाति + ढक् (एय)। अन्त्यलोप।

११४८. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् (५-१-१२८)

षष्ठ्यन्त पति-अन्त वाले शब्दों और पुरोहित आदि शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में यक् (य) प्रत्यय होता है। सैनापत्यम् (सेनापतित्व या सेनापति का कार्य)—सेनापतेः भावः कर्म वा, सेनापति + यक् (य)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। पौरोहित्यम् (पुरोहिताई या पुरोहित का काम)—पुरोहितस्य भावः कर्म वा, पुरोहित + यक् (य)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

त्वतलधिकार समाप्त।

---

१२. भवनाद्यर्थक प्रत्यय

११४९. धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् (५-२-१)

षष्ठ्यन्त धान्यविशेष-वाचक शब्दों से भवनं क्षेत्रम् (उत्पत्ति-स्थान, खेत) अर्थ में खञ् (ईन) प्रत्यय होता है। भवत्यस्मिन् इति भवनम्, भवन का अर्थ है उत्पत्ति-स्थान। मौद्गीनम् (जिसमें मूँग होती है, ऐसा खेत)—मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्, मुद्ग + खञ् (ईन)। ख् को ईन्, आदिवृद्धि, अन्त्यलोप।

११५०. व्रीहिशाल्योर्ढक् (५-२-२)

षष्ठ्यन्त व्रीहि और शालि शब्दों से 'भवनं क्षेत्रम्' अर्थ में ढक् (एय) प्रत्यय होता है। व्रैहेयम् (जिस खेत में धान होते हैं)—व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्, व्रीहि + ढक् (एय)। आदिवृद्धि, अन्त्यलोप। शालेयम् (जिस खेत में शालि धान होते हैं)—शालीनां भवनं क्षेत्रम्, शालि + ढक् (एय)। अन्त्यलोप। व्रीहि, शालि, ये धानों के भेद हैं।

११५१. हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् (५-२-२३)

षष्ठ्यन्त ह्योगोदोह शब्द को हियङ्गु आदेश होता है और विकार अर्थ में खञ् (ईन) प्रत्यय निपातन से होता है, संज्ञा में। दोह का अर्थ है दूध। हैयङ्गवीनं नवनीतम् (कल के दुहे हुए दूध से निकला हुआ, मक्खन)—ह्योगोदोहस्य विकारः, ह्योगोदोह + खञ् (ईन)। ह्योगोदोह को हियङ्गु, आदि-वृद्धि, उ को ओ, ओ को अव्। हैयङ्गवीन रूप निपातन से बनता है।

११५२. तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् (५-२-३६)

प्रथमान्त तारका आदि शब्दों से अस्य संजातम् (इसके हो गए हैं, इसमें

प्रादुर्भूत हो गए हैं) अर्थ में इतच् (इत) प्रत्यय होता है। तारकितं नभः (जिसमें तारे निकल आए हैं, ऐसा आकाश)—तारकाः संजाता अस्य, तारका + इतच् (इत)। अन्त्यलोप। पण्डितः (जिसमें विवेक बुद्धि आ गई है, विद्वान्)—पण्डा संजाता अस्य, पण्डा + इत। अन्त्यलोप। सत् और असत् में विवेक करने वाली बुद्धि को पण्डा कहते हैं। तारका आदि आकृतिगण है।

११५३. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः (५–२–३७)

'इसका यह प्रमाण है' अर्थ में प्रथमान्त पद से द्वयसच् (द्वयस), दघ्नच् (दघ्न) और मात्रच् (मात्र) प्रत्यय होते हैं। तीनों प्रत्ययों का च् इत् है। ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम् (जाँघ तक, जल आदि)—ऊरू प्रमाणमस्य, ऊरु + द्वयस, ऊरु + दघ्न, ऊरु + मात्र।

११५४. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् (५–२–३९)

प्रथमान्त यत्, तत् और एतत् शब्दों से परिमाण (नाप, तोल) अर्थ में वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है। वतुप् का वत् शेष रहता है। सूचना—वतुप् करने पर आ सर्वनाम्नः (३४८) से यत् तत् एतत् के त् को आ होकर या, ता, एता हो जाएँगे। यावान् (जितना)—यत् परिमाणम् अस्य, यत् + वत्। त् को आ, प्रथमा एक० का रूप है। तावान् (उतना)—तत् परिमाणम् अस्य, तत् + वत्। त् को आ, प्र० एक०। एतावान् (इतना)—एतत् परिमाणम् अस्य, एतत् + वत् + प्र० एक०। त् को आ।

११५५. किमिदंभ्यां वो घः (५–२–४०)

प्रथमान्त किम् और इदम् शब्दों से परिमाण अर्थ में वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है और वत् के व को घ (इय) आदेश होता है।

११५६. इदंकिमोरीश्की (६–३–९०)

इदम् को ईश् (ई) और किम् को की आदेश होते हैं, बाद में दृग्, दृश और वतुप् (वत्) हों तो। कियान् (कितना)—किं परिमाणम् अस्य, किम् + वत्। किम् को की, व को घ, घ् को इय् आदेश, की के ई का यस्येति च से लोप, क् + इयत्, प्र० एक०। इयान् (इतना)—इदं परिमाणम् अस्य, इदम् + वत्। इदम् को ई, व को घ, घ् को इय्, यस्येति च से ई का लोप, प्र० एक०। इयान् में इदम् का कुछ भी अंश शेष नहीं रहता है, केवल प्रत्यय बनता है। ई और की पूरे शब्द के स्थान पर आदेश होते हैं।

११५७. संख्याया अवयवे तयप् (५–२–४२)

प्रथमान्त संख्यावाचक शब्द से 'इतने अवयव हैं' अर्थ में तयप् (तय)

प्रत्यय होता है। पञ्चतयम् (पाँच अवयव वाला)—पञ्च अवयवा अस्य, पञ्चन् + तयप् (तय)। न् का लोप।

११५८. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा (५-२-४३)

द्वि और त्रि शब्द के बाद तयप् को विकल्प से अयच् (अय) आदेश होता है। द्वयम्, द्वितयम् (दो अवयव वाला, दुहरा)—द्वौ अवयवौ अस्य, द्वि + तय = द्वितयम्, द्वि + अय = द्वयम्। इ का लोप। त्रयम्, त्रितयम् (तीन अवयव वाला, तिहरा)—त्रयः अवयवाः अस्य, त्रि + तय = त्रितयम्, त्रि + अय = त्रयम्। इ का लोप।

११५९. उभादुदात्तो नित्यम् (५-२-४४)

उभ शब्द के बाद तयप् को अयच् (अय) आदेश नित्य होता है और वह आद्युदात्त होता है। उभयम् (दोनों)—उभौ अवयवौ अस्य, उभ + तय। तय को अय, अन्त्य-लोप।

११६०. तस्य पूरणे डट् (५-२-४८)

षष्ठयन्त संख्यावाचक से पूरण (पूरा करना) अर्थ में डट् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—१. डट् का अ शेष रहता है। डित् होने से पूर्ववर्ती शब्द की टि का टेः (२४२) से लोप होगा। २. पूरण-प्रत्ययान्त शब्दों को पूरणी-संख्या कहते हैं। ये शब्द प्रथम, द्वितीय आदि क्रमवाचक संख्याबोधक विशेषण होते हैं। एकादशः (११ को पूरा करने वाला, ११ वाँ)—एकादशानां पूरणः, एकादशन् + डट् (अ)। टि अन् का लोप। राम के तुल्य रूप चलेंगे।

११६१. नान्तादसंख्यादेर्मट् (५-२-४९)

न्-अन्त वाले संख्यावाचक शब्द से डट् (अ) को मट् (म्) आगम होता है, यदि नकारान्त शब्द से पहले कोई संख्यावाचक शब्द न हो। डट् और मट् होकर म् + अ = म प्रत्यय बनता है। पञ्चमः (पाँचवाँ)—पञ्चानां पूरणः, पञ्चन् + म् + अ। डट्, मट्, न् का लोप।

११६२. ति विंशतेर्डिति (६-४-१४२)

विंशति शब्द के भ-संज्ञक ति शब्द का लोप होता है, बाद में डित् प्रत्यय हो तो। विंशः (बीसवाँ)–विंशतेः पूरणः, विंशति + डट् (अ)। तस्य पूरणे० (११६०) से डट् (अ), इससे ति का लोप, विंश + अ, अतो गुणे (२७४) से श के अ को पररूप। विंशति नकारान्त नहीं है, अतः मट् नहीं हुआ। एकादशः (११वाँ)–एकादशन् + डट् (अ)। अन् का लोप। एक संख्या पहले होने से मट् आगम नहीं हुआ।

प्रादुर्भूत हो गए हैं) अर्थ में इतच् (इत) प्रत्यय होता है। तारकितं नभः (जिसमें तारे निकल आए हैं, ऐसा आकाश)—तारकाः संजाता अस्य, तारका + इतच् (इत)। अन्त्यलोप। पण्डितः (जिसमें विवेक बुद्धि आ गई है, विद्वान्)—पण्डा संजाता अस्य, पण्डा + इत। अन्त्यलोप। सत् और असत् में विवेक करने वाली बुद्धि को पण्डा कहते हैं। तारका आदि आकृतिगण है।

११५३. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः (५–२–३७)

'इसका यह प्रमाण है' अर्थ में प्रथमान्त पद से द्वयसच् (द्वयस), दघ्नच् (दघ्न) और मात्रच् (मात्र) प्रत्यय होते हैं। तीनों प्रत्ययों का च् इत् है। ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम् (जाँघ तक, जल आदि)—ऊरु प्रमाणमस्य, ऊरु + द्वयस, ऊरु + दघ्न, ऊरु + मात्र।

११५४. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् (५–२–३९)

प्रथमान्त यत्, तत् और एतत् शब्दों से परिमाण (नाप, तोल) अर्थ में वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है। वतुप् का वत् शेष रहता है। सूचना—वतुप् करने पर आ सर्वनाम्नः (३४८) से यत् तत् एतत् के त् को आ होकर या, ता, एता हो जाएँगे। यावान् (जितना)—यत् परिमाणम् अस्य, यत् + वत्। त् को आ, प्रथमा एक० का रूप है। तावान् (उतना)—तत् परिमाणम् अस्य, तत् + वत्। त् को आ, प्र० एक०। एतावान् (इतना)—एतत् परिमाणम् अस्य, एतत् + वत् + प्र० एक०। त् को आ।

११५५. किमिदंभ्यां वो घः (५–२–४०)

प्रथमान्त किम् और इदम् शब्दों से परिमाण अर्थ में वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है और वत् के व को घ (इय) आदेश होता है।

११५६. इदंकिमोरीश्की (६–३–९०)

इदम् को ईश् (ई) और किम् को की आदेश होते हैं, बाद में दृग्, दृश और वतुप् (वत्) हों तो। कियान् (कितना)—किं परिमाणम् अस्य, किम् + वत्। किम् को की, व को घ, घ् को इय् आदेश, यी के ई का यस्येति च से लोप, क् + इयत्, प्र० एक०। इयान् (इतना)—इदं परिमाणम् अस्य, इदम् + वत्। इदम् को ई, व को घ, घ् को इय्, यस्येति च से ई का लोप, प्र० एक०। इयान् में इदम् का कुछ भी अंश शेष नहीं रहता है, केवल प्रत्यय बनता है। ई और की पूरे शब्द के स्थान पर आदेश होते हैं।

११५७. संख्याया अवयवे तयप् (५–२–४२)

प्रथमान्त संख्यावाचक शब्द से 'इतने अवयव हैं' अर्थ में तयप् (तय)

प्रत्यय होता है। पञ्चतयम् (पाँच अवयव वाला)—पञ्च अवयवा अस्य, पञ्चन् + तयप् (तय)। न् का लोप।

११५८. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा (५-२-४३)

द्वि और त्रि शब्द के बाद तयप् को विकल्प से अयच् (अय) आदेश होता है। द्वयम्, द्वितयम् (दो अवयव वाला, दुहरा)—द्वौ अवयवौ अस्य, द्वि + तय = द्वितयम्, द्वि + अय = द्वयम्। इ का लोप। त्रयम्, त्रितयम् (तीन अवयव वाला, तिहरा)—त्रयः अवयवाः अस्य, त्रि + तय = त्रितयम्, त्रि + अय = त्रयम्। इ का लोप।

११५९. उभादुदात्तो नित्यम् (५-२-४४)

उभ शब्द के बाद तयप् को अयच् (अय) आदेश नित्य होता है और वह आद्युदात्त होता है। उभयम् (दोनों)—उभौ अवयवौ अस्य, उभ + तय। तय को अय, अन्त्य-लोप।

११६०. तस्य पूरणे डट् (५-२-४८)

षष्ठयन्त संख्यावाचक से पूरण (पूरा करना) अर्थ में डट् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—१. डट् का अ शेष रहता है। डित् होने से पूर्ववर्ती शब्द की टि का टेः (२४२) से लोप होगा। २. पूरण-प्रत्ययान्त शब्दों को पूरणी-संख्या कहते हैं। ये शब्द प्रथम, द्वितीय आदि क्रमवाचक संख्याबोधक विशेषण होते हैं। एकादशः (११ को पूरा करने वाला, ११ वाँ)—एकादशानां पूरणः, एकादशन् + डट् (अ)। टि अन् का लोप। राम के तुल्य रूप चलेंगे।

११६१. नान्तादसंख्यादेर्मट् (५-२-४९)

न्-अन्त वाले संख्यावाचक शब्द से डट् (अ) को मट् (म्) आगम होता है, यदि नकारान्त शब्द से पहले कोई संख्यावाचक शब्द न हो। डट् और मट् होकर म् + अ = म प्रत्यय बनता है। पञ्चमः (पाँचवाँ)—पञ्चानां पूरणः, पञ्चन् + म् + अ। डट्, मट्, न् का लोप।

११६२. ति विंशतेर्डिति (६-४-१४२)

विंशति शब्द के भ-संज्ञक ति शब्द का लोप होता है, बाद में डित् प्रत्यय हो तो। विंशः (बीसवाँ)—विंशतेः पूरणः, विंशति + डट् (अ)। तस्य पूरणे० (११६०) से डट् (अ), इससे ति का लोप, विंश + अ, अतो गुणे (२७४) से श के अ को पररूप। विंशति नकारान्त नहीं है, अतः मट् नहीं हुआ। एकादशः (११वाँ)—एकादशन् + डट् (अ)। अन् का लोप। एक संख्या पहले होने से मट् आगम नहीं हुआ।

प्रादुर्भूत हो गए हैं) अर्थ में इतच् (इत) प्रत्यय होता है। तारकितं नभः (जिसमें तारे निकल आए हैं, ऐसा आकाश)—तारकाः संजाता अस्य, तारका + इतच् (इत)। अन्त्यलोप। पण्डितः (जिसमें विवेक बुद्धि आ गई है, विद्वान्)—पण्डा संजाता अस्य, पण्डा + इत। अन्त्यलोप। सत् और असत् में विवेक करने वाली बुद्धि को पण्डा कहते हैं। तारका आदि आकृतिगण है।

११५३. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः (५-२-३७)

'इसका यह प्रमाण है' अर्थ में प्रथमान्त पद से द्वयसच् (द्वयस), दघ्नच् (दघ्न) और मात्रच् (मात्र) प्रत्यय होते हैं। तीनों प्रत्ययों का च् इत् है। ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम् (जाँघ तक, जल आदि)—ऊरू प्रमाणमस्य, ऊरु + द्वयस, ऊरु + दघ्न, ऊरु + मात्र।

११५४. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् (५-२-३९)

प्रथमान्त यत्, तत् और एतत् शब्दों से परिमाण (नाप, तोल) अर्थ में वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है। वतुप् का वत् शेष रहता है। सूचना—वतुप् करने पर आ सर्वनाम्नः (३४८) से यत् तत् एतत् के त् को आ होकर या, ता, एता हो जाएँगे। यावान् (जितना)—यत् परिमाणम् अस्य, यत् + वत्। त् को आ, प्रथमा एक० का रूप है। तावान् (उतना)—तत् परिमाणम् अस्य, तत् + वत्। त् को आ, प्र० एक०। एतावान् (इतना)—एतत् परिमाणम् अस्य, एतत् + वत् + प्र० एक०। त् को आ।

११५५. किमिदंभ्यां वो घः (५-२-४०)

प्रथमान्त किम् और इदम् शब्दों से परिमाण अर्थ में वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है और वत् के व को घ (इय) आदेश होता है।

११५६. इदंकिमोरीश्की (६-३-९०)

इदम् को ईश् (ई) और किम् को की आदेश होते हैं, बाद में दृग्, दृश और वतुप् (वत्) हो तो। कियान् (कितना)—किं परिमाणम् अस्य, किम् + वत्। किम् को की, व को घ, घ् को इय् आदेश, की के ई का यस्येति से लोप, क् + इयत्, प्र० एक०। इयान् (इतना)—इदं परिमाणम् अस्य, इदम् + वत्। इदम् को ई, व को घ, घ् को इय्, यस्येति से ई का लोप, प्र० एक०। इयान् में इदम् का कुछ भी अंश शेष नहीं रहता है, केवल प्रत्यय बचता है। ई और की पूरे शब्द के स्थान पर आदेश होते हैं।

११५७. संख्याया अवयवे तयप् (५-२-४२)

प्रथमान्त संख्यावाचक शब्द से 'इतने अवयव हैं' अर्थ में तयप् (तय)

प्रत्यय होता है। पञ्चतयम् (पाँच अवयव वाला)—पञ्च अवयवा अस्य, पञ्चन् + तयप् (तय)। न् का लोप।

११५८. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा (५-२-४३)

द्वि और त्रि शब्द के बाद तयप् को विकल्प से अयच् (अय) आदेश होता है। द्वयम्, द्वितयम् (दो अवयव वाला, दुहरा)—द्वौ अवयवौ अस्य, द्वि + तय = द्वितयम्, द्वि + अय = द्वयम्। इ का लोप। त्रयम्, त्रितयम् (तीन अवयव वाला, तिहरा)—त्रयः अवयवाः अस्य, त्रि + तय = त्रितयम्, त्रि + अय = त्रयम्। इ का लोप।

११५९. उभादुदात्तो नित्यम् (५-२-४४)

उभ शब्द के बाद तयप् को अयच् (अय) आदेश नित्य होता है और वह आद्युदात्त होता है। उभयम् (दोनों)—उभौ अवयवौ अस्य, उभ + तय। तय को अय, अन्त्य-लोप।

११६०. तस्य पूरणे डट् (५-२-४८)

षष्ठ्यन्त संख्यावाचक से पूरण (पूरा करना) अर्थ में डट् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—१. डट् का अ शेष रहता है। डित् होने से पूर्ववर्ती शब्द की टि का टेः (२४२) से लोप होगा। २. पूरण-प्रत्ययान्त शब्दों को पूरणी-संख्या कहते हैं। ये शब्द प्रथम, द्वितीय आदि क्रमवाचक संख्याबोधक विशेषण होते हैं। एकादशः (११ को पूरा करने वाला, ११ वाँ)—एकादशानां पूरणः, एकादशन् + डट् (अ)। टि अन् का लोप। राम के तुल्य रूप चलेंगे।

११६१. नान्तादसंख्यादेर्मट् (५-२-४९)

न्-अन्त वाले संख्यावाचक शब्द से डट् (अ) को मट् (म्) आगम होता है, यदि नकारान्त शब्द से पहले कोई संख्यावाचक शब्द न हो। डट् और मट् होकर म् + अ = म प्रत्यय बनता है। पञ्चमः (पाँचवाँ)—पञ्चानां पूरणः, पञ्चन् + म् + अ। डट्, मट्, न् का लोप।

११६२. ति विंशतेर्डिति (६-४-१४२)

विंशति शब्द के भ-संज्ञक ति शब्द का लोप होता है, बाद में डित् प्रत्यय हो तो। विंशः (बीसवाँ)—विंशतेः पूरणः, विंशति + डट् (अ)। तस्य पूरणे० (११६०) से डट् (अ), इससे ति का लोप, विंश + अ, अतो गुणे (२७४) से श के अ को पररूप। विंशति नकारान्त नहीं है, अतः मट् नहीं हुआ। एकादशः (११वाँ)—एकादशन् + डट् (अ)। अन् का लोप। एक संख्या पहले होने से मट् आगम नहीं हुआ।

११६३. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् (५–२–५१)

षष्, कति, कतिपय और चतुर् शब्दों को थुक् (थ्) आगम होता है, बाद में डट् हो तो। षष्ठः (६ का पूरक, छठा)–षण्णां पूरणः, षष्+थ्+डट् (अ)। इससे डट् से पहले थ्, ष्टुत्व। कतिथः (कितनी संख्या वाला)–कतीनां पूरणः, कति+थ्+डट् (अ)। पूर्ववत्। कतिपयथः (कितनी संख्या वाला)–कतिपयानां पूरणः, कतिपय+थ्+डट् (अ)। कतिपय शब्द यद्यपि संख्यावाचक नहीं है, फिर भी उससे डट् प्रत्यय होता है, क्योंकि इस सूत्र से कतिपय के बाद डट् को थुक् कहा गया है। इसी ज्ञापक से डट्। चतुर्थः (चौथा)–चतुर्णां पूरणः, चतुर्+थ्+डट् (अ)। तस्य पूरणे० से डट्, इससे थुक्।

११६४. द्वेस्तीयः (५–२–५४)

द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है। यह डट् का अपवाद है। द्वितीयः (दूसरा)–द्वयोः पूरणः, द्वि+तीय।

११६५. त्रेः संप्रसारणं च (५–२–५५)

त्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है और त्रि को संप्रसारण (ऋ) होता है। तृतीयः (तीसरा)–त्रयाणां पूरणः, त्रि+तीय। इससे संप्रसारण होकर र् को ऋ और संप्रसारणाच्च (२५८) से इ को पूर्वरूप।

११६६. श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते (५–२–८४)

छन्दोऽधीते (वेद पढ़ता है) अर्थ में विकल्प से श्रोत्रियन् यह घन्-प्रत्ययान्त निपातन होता है। श्रोत्रियः, छान्दसः (वेदपाठी)–छन्दोऽधीते, श्रोत्र+घन् (इय)। घ् को इय्, अन्त्यलोप। पक्ष में अण् होकर छन्दस्+अण् (अ)। आदिवृद्धि।

११६७. पूर्वादिनिः (५–२–८६)

द्वितीयान्त पूर्व शब्द से अनेन कृतम् (इसने किया) अर्थ में इनि (इन्) प्रत्यय होता है। पूर्वी (पहले काम करने वाला)–पूर्वं कृतम् अनेन, पूर्व+इनि (इन्)+ प्र० एक०। अन्त्यलोप।

११६८. सपूर्वाच्च (५–२–८७)

पूर्व शब्द से पहले कोई शब्द होगा तो भी 'इसने किया' अर्थ में इनि (इन्) प्रत्यय होगा। कृतपूर्वी (इसने पहले किया है)–कृतं पूर्वम् अनेन, कृत+पूर्व+इनि (इन्)+प्र० एक०। अन्त्यलोप।

११६९. इष्टादिभ्यश्च (५–२–८८)

इष्ट आदि शब्दों से अनेन (इसने अर्थात् क्रिया के कर्ता में) अर्थ में इनि

(इन्) प्रत्यय होता है। इष्टी (इसने यज्ञ किया है)-इष्टम् + अनेन, इष्ट + इन्। अन्त्यलोप। अधीती (इसने पढ़ लिया है)-अधीत + इन् + प्र० एक०। अन्त्यलोप।

भवनाद्यर्थक-प्रत्यय समाप्त।

---

१३. मत्वर्थीय-प्रत्यय

११७०. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (५-२-९४)

प्रथमान्त शब्द से 'तद् अस्यास्ति' (वह इसका है) और 'तद् अस्मिन् अस्ति' (वह इसमें है) अर्थों में मतुप् (मत्) प्रत्यय होता है। मतुप् का मत् शेष रहता है। गोमान् (गाएँ जिसकी या जिसमें हैं)-गावः अस्य अस्मिन् वा सन्ति, गो + मत् + प्र०एक०। यह प्रथमा एक० का रूप है। '**भूम-निन्दा-प्रशंसासु, नित्ययोगेऽतिशायने। संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥**' मत्वर्थक प्रत्यय प्रायः इन अर्थों में होते हैं-१. भूमा (बहुत्व), २. निन्दा, ३. प्रशंसा, ४. नित्ययोग (नित्य संबन्ध), ५. अतिशय (अधिकता), ६. संसर्ग (संबन्ध), ७. अस्ति (इसके पास है, या इसमें है)।

११७१. तसौ मत्वर्थे (१-४-१९)

त् और स् अन्त वाले शब्द भसंज्ञक होते हैं, बाद में मत्वर्थक प्रत्यय हो तो। भसंज्ञा होने से पद-संज्ञा वाले कार्य त् को द् और स् को रु आदि नहीं होंगे। गरुत्मान् (पंखवाले, पक्षी)-गरुतः अस्य सन्ति, गरुत् + मत् + प्र० एक०। त् को द् नहीं हुआ। विदुष्मान् (विद्वानों से युक्त)-विद्वांसः अस्य सन्ति, विद्वस् + मत् + प्र० एक०। वसोः संप्रसारणम् (३५३) से व् को उ संप्रसारण और अ को पूर्वरूप, संप्रसारणाच्च से अ को पूर्वरूप, स् को ष्। (**गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः**, वा०) गुणवाचक शब्दों के बाद मतुप् का लोप होता है। शुक्लः पटः (सफेद वस्त्र)-शुक्लः गुणः अस्यास्ति, शुक्ल + मत्। मत् का इससे लोप। इसी प्रकार कृष्णः (काले रंग वाला)। मत् का लोप।

११७२. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् (५-२-९६)

प्राणी के अंगवाचक आकारान्त शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से लच् (ल) प्रत्यय होता है। पक्ष में मतुप् होगा। चूडालः, चूडावान् (चोटी वाला)-चूडा अस्य अस्ति, चूडा + ल, चूडा + मत् + प्र० एक०। मादु० (१०५०) से मत् के म् को व्। प्रत्युदाहरण-शिखावान् दीपः (शिखायुक्त दीपक)-शिखा प्राणिस्थ नहीं है,

अतः श्च् नहीं हुआ। मेधावान् (मेधावी)-मेधा प्राणी का अंग नहीं है, अतः श्च् नहीं हुआ।

११७३. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः (५-२-१००)

लोमन् आदि से श, पामन् आदि से न और पिच्छ आदि से इलच् (इल) प्रत्यय मत्वर्थ में विकल्प से होते हैं। लोमशः, लोमवान् (बाल वाला)-लोमानि अस्य सन्ति, लोमन्+श, लोमन्+मत्। दोनों स्थानों पर नलोपः० (१८०) से न् का लोप। म् को मादु० (१०५०) से व्। इसी प्रकार रोमशः, रोमवान् (रोम-युक्त)-रोमाणि अस्य सन्ति। पूर्ववत्। पामनः (खाज वाला)-पामा अस्यास्ति, पामन्+न। न् का लोप। (अङ्गात् कल्याणे, गणसूत्र) कल्याण (सुन्दर, सुखद) अर्थ में अङ्ग शब्द से मत्वर्थ में न प्रत्यय होता है। अङ्गना (सुन्दर अङ्गोंवाली, स्त्री)-कल्याणानि अङ्गानि अस्याः सन्ति, अङ्ग+न+टाप् (आ)। स्त्रीलिंग में टाप् आ। (लक्ष्म्या अच, गणसूत्र) लक्ष्मी शब्द से मत्वर्थ में न प्रत्यय होता है और अन्तिम ई को अ होता है। लक्ष्मणः (लक्ष्मी वाला)-लक्ष्मीः अस्यास्ति, लक्ष्मी+न। ई को अ, अट्कु० से न् को ण्। पिच्छिलः, पिच्छवान् (मोरपंख वाला, मोर)-पिच्छम् अस्यास्ति, पिच्छ+इलच् (इल)। अन्त्यलोप। पिच्छ+मत्+प्र० एक०। मादु० (१०५०) से म् को व्।

११७४. दन्त उन्नत उरच् (५-२-१०६)

ऊँचे दाँत अर्थ में दन्त शब्द से मत्वर्थ में उरच् (उर) प्रत्यय होता है। दन्तुरः (ऊँचे दाँत वाला, दन्तुरा)—उन्नता दन्ताः सन्ति अस्य, दन्त+उर। अन्त्यलोप।

११७५. केशाद् वोऽन्यतरस्याम् (५-२-१०९)

केश शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से व प्रत्यय होता है। पक्ष में मतुप् और अत इनिठनौ (११७६) से इन् और ठन् (इक) प्रत्यय भी होंगे। केशवः, केशी, केशिकः, केशवान् (बालों वाला)-केशाः अस्य सन्ति, केश+व=केशवः। केश+इन्+प्र० एक० = केशी। अल्लोप। केश+ठन् (इक)। अल्लोप। केश+मतुप् (मत्)+प्र० एक०। मादु० (१०५०) से म् को व्। (अन्येभ्योऽपि दृश्यते, वा०) केश से भिन्न शब्दों से भी मत्वर्थ में व प्रत्यय होता है। मणिवः (मणि वाला, सर्प-विशेष)-मणिः अस्यास्ति, मणि+व। (अर्णसो लोपश्च, वा०) अर्णस् शब्द से मत्वर्थ में व प्रत्यय होता है और अर्णस् के स् का लोप होता है। अर्णवः (जल वाला, समुद्र)-अर्णांसि अस्य सन्ति, अर्णस्+व। स् का लोप।

११७६. अत इनिठनौ (५-२-११५)

ह्रस्व अकारान्त शब्दों से मत्वर्थ में इनि (इन्) और ठन् (इक) विकल्प से होते हैं। पक्ष में मतुप्। ठ को इक हो जाता है। दण्डी, दण्डिकः (दण्डधारी)-दण्डः

अस्यास्ति; दण्ड + इन् + प्र० एक० । अन्त्य-लोप । दण्ड + ठन् (इक) । ठ् को इक्, अन्त्यलोप ।

११७७. व्रीह्यादिभ्यश्च (५-२-११६)

व्रीहि आदि शब्दों से इनि (इन्) और ठन् (इक) प्रत्यय मत्वर्थ में होते हैं । व्रीही, व्रीहिकः (धान वाला)–व्रीहयः अस्य सन्ति, व्रीहि + इन् + प्र० एक० । अन्त्य-लोप । व्रीहि + ठन् (इक) । अन्त्यलोप ।

११७८. अस्मायामेधास्रजो विनिः (५-२-१२१)

अस् अन्त वाले शब्दों तथा माया, मेधा और स्रज् से मत्वर्थ में विकल्प से विनि (विन्) प्रत्यय होता है । यशस्वी, यशस्वान् (यशस्वी)–यशः अस्यास्ति, यशस् + विन् + प्र० एक० । तसौ मत्वर्थे से भसंज्ञा, अतः स् को रु नहीं । यशस् + मत् + प्र० एक० । मादु० (१०५०) से म् को व् । शेष पूर्ववत् । मायावी (छली)–माया अस्यास्ति, माया + विन् + प्र० एक० । मेधावी (धारणा शक्तिवाला)–मेधा अस्यास्ति, मेधा + विन् + प्र० एक० । स्रग्वी (माला वाला)–स्रग् अस्यास्ति, स्रज् + विन् + प्र० एक० । चोः कुः से ज् को ग् ।

११७९. वाचो ग्मिनिः (५-२-१२४)

वाच् शब्द से मत्वर्थ में ग्मिनि (ग्मिन्) प्रत्यय होता है । वाग्मी (कुशल वक्ता)– वाचः अस्य सन्ति, वाच् + ग्मिन् । चोः कुः से च् को क्, जश्त्व से क् को ग ।

११८०. अर्शआदिभ्योऽच् (५-२-१२७)

अर्शस् आदि शब्दों से मत्वर्थ में अच् (अ) प्रत्यय होता है । अर्शसः (बवासीर रोग वाला)–अर्शांसि अस्य सन्ति, अर्शस् + अ । अर्शस् आदि यह आकृतिगण है । मत्वर्थ अ-प्रत्ययान्त अन्य शब्द इस गण में समझने चाहिए ।

११८१. अहंशुभमोर्युस् (५-२-१४०)

अहम् और शुभम्, इन मकारान्त अव्ययों से मत्वर्थ में युस् (युः) प्रत्यय होता है । पक्ष में मतुप् । अहंयुः (अहंकारयुक्त)–अहम् अहंकारः अस्यास्ति, अहम् + युस (युः) । म् को अनुस्वार । शुभंयुः (शुभयुक्त)–शुभं कल्याणम् अस्यास्ति, शुभम् + युः । म् को अनुस्वार ।

मत्वर्थीय-प्रत्यय समाप्त ।

---

१४. प्रागदिशीय-प्रत्यय

११८२. प्रागदिशो विभक्तिः (५-३-१)

दिक्शब्देभ्यः० (५-२-२७) से पहले सूत्रों के द्वारा किए जाने वाले प्रत्ययों को विभक्ति कहते हैं।

११८३. किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः (५-३-२)

दिक्शब्देभ्यः० (५-२-२७) से पहले जो प्रत्यय कहे गए हैं, वे किम्, सर्वनाम शब्द और बहु शब्द से होते हैं। द्वि आदि शब्दों से ये प्रत्यय नहीं होंगे।

११८४. पञ्चम्यास्तसिल् (५-३-७)

पंचम्यन्त किम् आदि शब्दों से विकल्प से तसिल् (तः) प्रत्यय होता है। तसिल् का तस् शेष रहता है। स् को विसर्ग होकर तः होता है।

११८५. कु तिहोः (७-२-१०४)

किम् शब्द को कु आदेश होता है, बाद में त और ह से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय हो तो। कुतः, कस्मात् (किससे, कहाँ से)—किम् + ङसि + तः। सुपो धातु० (७२१) से पंचमी विभक्ति का लोप, इससे किम् को कु। पक्ष में कस्मात्।

११८६. इदम इश् (५-३-३)

इदम् को इश् (इ) आदेश होता है, बाद में प्रागदिशीय प्रत्यय हो तो। इतः (इससे, यहाँ से)—अस्मात्, इदम् + ङसि + तः। पञ्चमी को तः, पञ्चमी का लोप, इससे पूरे इदम् को इ।

११८७. अन् (५-३-५)

एतद् शब्द को अन् (अ) आदेश होता है, बाद में प्रागदिशीय प्रत्यय हो तो। सूचना—१. पूरा सूत्र 'एतदोऽन्' है। योगविभाग से उसे दो सूत्र बनाया गया है। आधा यह है, आधा 'एतदः' (११९१) पर है। २. पूरे एतद् शब्द के स्थान पर यह 'अ' आदेश होता है। अतः (इससे, इसलिए)—एतस्मात्, एतद् + ङसि + तः। पंचमी-लोप, एतद् को अ। अमुतः (उससे)—अमुष्मात्, अदस् + तः। त्यदादीनामः से स् को अ, अतो गुणे से अ को पररूप, अदसो० (३५६) से अद के द् के बाद के अ को उ और द् को म, अमु + तः। यतः (जिससे)—यस्मात्, यद् + तः। त्यदादि० द् को अ, पररूप। इसी प्रकार ततः (उससे, वहाँ से)—तस्मात्, तद् + तः। बहुतः (बहुतों से)—बहोः, बहु + तः। द्वि आदि शब्दों का द्वाभ्याम् आदि ही बनेगा।

११८८. पर्यभिभ्यां च (५-३-९)

परि और अभि से तसिल् (तः) प्रत्यय होता है। परितः (सर्वतः, चारों ओर)-परि + तः। अभितः (उभयतः, दोनों ओर)-अभि + तः।

११८९. सप्तम्यास्त्रल् (५-३-१०)

सप्तम्यन्त किम् आदि शब्दों से त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है। कुत्र (कहाँ, किसमें)-कस्मिन्, किम् + त्र। कु तिहोः (११८५) से किम् को कु। यत्र (जहाँ, जिसमें)-यस्मिन्, यद् + त्र। द् को अ, पूर्वरूप। इसी प्रकार तत्र (वहाँ, उसमें)-तस्मिन्, तद् + त्र। द् को अ, पूर्वरूप। बहुत्र (बहुत स्थानों पर, बहुतों में)-बहुषु, बहु + त्र।

११९०. इदमो हः (५-३-११)

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से ह प्रत्यय होता है। यह त्रल् का बाधक है। इह (यहाँ, इसमें)-अस्मिन्, इदम् + ह। इदम इश् (११८६) से इदम् को इ। सूचना-'अत्र' रूप एतद् + त्र, अन् (११८७) से एतद् को अ आदेश होकर बनता है। इदम् शब्द से नहीं बनता।

११९१. किमोऽत् (५-३-१२)

सप्तम्यन्त किम् शब्द से विकल्प से अत् (अ) प्रत्यय होता है। पक्ष में त्रल् (त्र) होगा। यहाँ पर वा ह० (५-३-१३) सूत्र से वा ऊपर लाया गया है।

११९२. क्वाति (७-२-१०५)

किम् को क्व आदेश होता है, बाद में अत् प्रत्यय हो तो। क्व, कुत्र (कहाँ, किसमें)-कस्मिन्, किम् + अत् (अ)। किम् को क्व, अतो गुणे से अ + अ = अ पररूप। किम् + त्र। किम् को कु तिहोः (११८५) से कु।

११९३. इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते (५-३-१४)

पंचमी और सप्तमी से भिन्न विभक्ति वाले शब्दों से भी तसिल् और त्रल् आदि प्रत्यय दिखाई देते हैं। ये प्रत्यय भवत् आदि शब्दों के योग में ही होंगे। स भवान्, ततो भवान्, तत्र भवान् (पूज्य आप)-तत् + तः = ततः, तत् + त्र = तत्र। सः के अर्थ में ततः और तत्र हैं। तं भवन्तम्, ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम् (पूज्य आपको)-तम् के स्थान पर ततः और तत्र हैं। इनके पहले लगाने से पूज्य अर्थ हो जाता है। जैसे-तत्रभवान्, अत्रभवान् (पूज्य आप), तत्रभवती, अत्रभवती (पूजनीया आप)। इसी प्रकार दीर्घायुः, देवानां प्रियः और आयुष्मान् के साथ भी ततः और तत्र लगते हैं। जैसे-ततो दीर्घायुः, तत्र दीर्घायुः (दीर्घायु आप)।

११९४. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा (५-३-१५)

सप्तम्यन्त कालवाचक सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् और तद्, इन शब्दों से स्वार्थ (उसी अर्थ) में दा प्रत्यय होता है।

११९५. सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि (५-३-६)

सर्व शब्द को स आदेश विकल्प से होता है, बाद में द से प्रारम्भ होने वाला प्रागदिशीय प्रत्यय हो तो। सदा, सर्वदा (सदा)—सर्वस्मिन् काले, सर्व+दा। इससे विकल्प से सर्व को स। पक्ष में सर्वदा। एकदा (एक बार)—एकस्मिन् काले, एक+दा। अन्यदा (अन्य समय)—अन्यस्मिन् काले, अन्य+दा। कदा (कब)—कस्मिन् काले, किम्+दा। किमः कः (२७१) से किम् को क। यदा (जब)—यस्मिन् काले, यद्+दा। त्यदादीनामः (१९३) से द् को अ, अतो गुणे से अ+अ =अ, पररूप। इसी प्रकार तदा (तब)—तस्मिन् काले, तद्+दा। सभी स्थानों पर सर्वैकान्य० (११९४) से दा। सर्वत्र देशे, में समय अर्थ न होने से दा नहीं हुआ।

११९६. इदमो र्हिल् (५-३-१६)

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से काल अर्थ में र्हिल् (र्हि) प्रत्यय होता है।

११९७. एतेतौ रथोः (५-३-४)

इदम् शब्द को क्रम से एत और इत् आदेश होते हैं, बाद में र् और थ् से प्रारम्भ होने वाले प्रागदिशीय प्रत्यय हों तो। बाद में र् होगा तो इदम् को एत होगा और बाद में थ् होगा तो इत् आदेश होगा। एतर्हि (इस समय, अब)—अस्मिन् काले, इदम्+र्हिल् (र्हि)। इदम् को इससे एत। इह देशे, मे समय अर्थ न होने से र्हि प्रत्यय नहीं हुआ।

११९८. अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् (५-३-२१)

अनद्यतन (जो आज का न हो)—बोधक सप्तम्यन्त किम् आदि शब्दों से विकल्प से र्हिल् (र्हि) प्रत्यय होता है। पक्ष में दा प्रत्यय होगा। दा-प्रत्यय के रूप सूत्र ११९५ में दिए जा चुके हैं। कर्हि, कदा (कब, किस समय)—कस्मिन् काले, किम्+र्हि। किमः कः (२७१) से किम् को क। किम्+दा=कदा। यर्हि, यदा (जब, जिस समय)—यस्मिन् काले, यद्+र्हि, यद्+दा। द् को अ, पररूप। तर्हि, तदा (तब, उस समय)—तस्मिन् काले, तद्+र्हि, तद्+दा। द् को अ, पररूप।

११९९. एतदः (५-३-५)

एतद् शब्द को एत और इत् आदेश होते हैं, बाद में र् और थ् से प्रारम्भ होने वाला प्रागदिशीय प्रत्यय हो तो। बाद में र् होगा तो एत, थ् होगा तो इत् होगा। एतर्हि (अब, इस समय)—एतस्मिन् काले, एतद्+र्हि। एतद् को एत आदेश। पूर्व सूत्र से र्हि।

१२००. प्रकारवचने थाल् (५-३-२३)

प्रकार अर्थ में किम् आदि शब्दों से थाल् (था) प्रत्यय स्वार्थ में होता है। यथा

(वैसा, उस प्रकार से)—तेन प्रकारेण, तद् + था। द् को अ, और पूर्व अ को पर-रूप। यथा (जैसा, जिस प्रकार से)—येन प्रकारेण, यद् + था। पूर्ववत्।

१२०१. इदमस्थमुः (५-३-२४)

इदम् शब्द से प्रकार अर्थ में थमु (थम्) प्रत्यय स्वार्थ में होता है। (एतदोऽपि वाच्यः, वा०) एतद् शब्द से भी प्रकार अर्थ में थमु (थम्) प्रत्यय होता है। इत्थम् (इस प्रकार से)—अनेन एतेन वा प्रकारेण, इदम् + थम्, एतद् + थम्। इदम् को एतेतौ० (११९७) से और एतद् को एतदः (११९९) से इत् आदेश।

१२०२. किमश्च (५-३-२५)

किम् शब्द से भी प्रकार अर्थ में थमु (थम्) प्रत्यय होता है। कथम् (कैसे, किस प्रकार)—केन प्रकारेण, किम् + थम्। किमः कः (२७१) से किम् को क।

प्रागदिशीय प्रत्यय समाप्त।

---

१५. प्रागिवीय-प्रत्यय

१२०३. अतिशायने तमबिष्ठनौ (५-३-५५)

अतिशय अर्थ में विद्यमान शब्द से स्वार्थ में तमप् (तम) और इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय होते हैं। सूचना—१. तमप् और इष्ठन् प्रत्यय बहुतों में उत्कर्ष बताने में होते हैं। २. तमप् का तम और इष्ठन् का इष्ठ शेष रहता है। ३. इष्ठ प्रत्यय होने पर टेः (११४२) से पूर्व शब्द की टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वरसहित बाद का व्यंजन) का लोप होगा। आढ्यतमः (इनमें यह अधिक संपन्न है)—अयम् एषाम् अतिशयेन आढ्यः, आढ्य + तमप् (तम)। लघुतमः, लघिष्ठः (इनमें यह सबसे छोटा है)—अयम् एषाम् अतिशयेन लघुः, लघु + तम। लघु + इष्ठ। टेः से उ का लोप।

१२०४. तिङश्च (५-३-५६)

तिङन्त से अतिशय अर्थ में तमप् (तम) प्रत्यय होता है।

१२०५. तरप्तमपौ घः (१-१-२२)

तरप् (तर) और तमप् (तम) को घ कहते हैं।

१२०६. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे (५-४-११)

किम्, एकारान्त, तिङ् (तिङन्त), और अव्यय के बाद जो घ (तर, तम) प्रत्यय, तदन्त से आमु (आम्) प्रत्यय होता है, यदि द्रव्य का प्रकर्ष (उत्कर्ष) बताना होगा

१२१७. प्रागिवात् कः (५-३-७०)

इवे प्रतिकृतौ (१२२३) से पहले क प्रत्यय का अधिकार है।

१२१८. अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः (५-३-७१)

अव्यय और सर्वनाम शब्दों से अकच् (अक्) प्रत्यय होता है और वह टि (स्वर-सहित अंश) से पहले होता है। यह क का बाधक सूत्र है। इस सूत्र में 'तिङश्च' (तिङन्त से भी) की अनुवृत्ति होती है।

१२१९. अज्ञाते (५-३-७३)

अज्ञात अर्थ में क और अकच् (यथायोग्य) होते हैं। अश्वकः (अज्ञात व्यक्ति का घोड़ा)— कस्य अयम् अश्वः, अश्व + क। उच्चकैः (अज्ञात ऊँचा)—अज्ञातम् उच्चैः, उच्चैः + अकच्, उच्च् + अक् + ऐः। *टि ऐः से पहले अक्।* नीचकैः (अज्ञात नीचा)—अज्ञातं नीचैः, नीच् + अक् + ऐः। पूर्ववत्। सर्वके (अज्ञात सब)—अज्ञाताः सर्वे, सर्व् + अक् + ए। (**ओकारसकारमकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्। अन्यत्र सुबन्तस्य, वा०**) यदि सुप् (विभक्ति-प्रत्यय) के प्रारम्भ में ओ, स या भ होगा तो उनके बाद में होने पर सर्वनाम की टि से पहले अकच् (अक्) होगा, अन्यत्र सुबन्त की टि से पहले अकच् होगा। युष्मकाभिः (अज्ञात तुम लोगों ने)—अज्ञातैः युष्माभिः, युष्म् + अक् + आभिः। युष्म् के बाद अक् हुआ। इसी प्रकार युवकयोः (अज्ञात तुम दोनों का)—अज्ञातयोः युवयोः, युव् + अक् + अयोः। इन दोनों में भिः और ओः प्रत्यय है। त्वयका (अज्ञात तूने)—अज्ञातेन त्वया, त्वय् + अक् + आ। *यहाँ सुबन्त की टि से पहले अक् हुआ है।*

१२२०. कुत्सिते (५-३-७४)

कुत्सित (बुरा, निन्दित) अर्थ में क और अकच् प्रत्यय (यथायोग्य) होते हैं। अश्वकः (बुरा घोड़ा)—कुत्सितः अश्वः, अश्व + क।

१२२१. किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् (५-३-९२)

दो में से एक का निर्धारण (निर्णय) करने में किम्, यद् और तद् शब्दों से डतरच् (अतर) प्रत्यय होता है। **सूचना**—१. डतर का अतर शेष रहता है। २. डित् होने से टेः (२४२) से पूर्ववर्ती शब्द की टि (इम् या अद्) का लोप होगा। कतरः वैष्णवः (इन दोनों में कौन वैष्णव है ?)—अनयोः कः वैष्णवः, किम् + अतर। इम् का लोप।

इसी प्रकार यतरः (इन दोनों में जो)—अनयोः यः, यद् + अतर। अद् का लोप। ततरः (इन दोनों में वह)—अनयोः सः। तद् + अतर। अद् का लोप।

१२२२. वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् (५-३-९३)

बहुतों में से एक का निर्धारण (निर्णय) करने में किम्, यद् और तद् शब्दों से विकल्प से डतमच् (अतम) प्रत्यय होता है। सूचना- १. डतमच् का अतम शेष रहता है। २. डित् होने से टेः (२४२) से टि (इम् या अद्) का लोप होगा। ३. सूत्र में जातिपरिप्रश्ने (जातिविषयक प्रश्न) पद है। भाष्यकार पतंजलि ने इसको अनावश्यक बताया है। कतमः भवतां कठः (आपमें कठ-शाखाध्यायी कौन है?)- किम्+अतम। इम् का लोप। इसी प्रकार यतमः (आपमें जो)-यः भवताम्, यद्+ अतम। अद् का लोप। ततमः (आपमें वह)-स भवताम, तद्+अतम। अद् का लोप। पक्ष में अकच् होकर यकः (आपमें जो), सकः (आपमें वह) होता है।

प्राग्दिवीय-प्रत्यय समाप्त।

---

१६. स्वार्थिक-प्रत्यय

१२२३. इवे प्रतिकृतौ (५-३-९६)

इव (सदृश) अर्थ में विद्यमान (उपमानवाचक) शब्द से कन् (क) प्रत्यय होता है, यदि प्रतिकृति (मूर्ति या चित्र) उपमेय हो। अश्वकः (घोड़े के तुल्य मूर्ति)-अश्व इव प्रतिकृतिः, अश्व+क। (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्, वा०) सभी प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् (क) प्रत्यय होता है। अश्वकः (घोड़ा)-अश्व एव, अश्व+क।

१२२४. तत्प्रकृतवचने मयट् (५-४-२१)

प्रथमान्त से प्रचुरता (अधिकता) अर्थ बताने में स्वार्थ में मयट् (मय) प्रत्यय होता है। सूचना-१. सूत्र में प्रकृत का अर्थ है-अधिकता से प्रस्तुत, वचन का अर्थ है प्रतिपादन (कहना)। अधिकता अर्थ को बताना। २. वचन शब्द भाव और अधिकरण में ल्युट् (अन) प्रत्यय करके वच्+अन बनता है। भाव में अर्थ होगा-अधिकता का कहना। अधिकरण में ल्युट् होने पर अर्थ होगा-जिसमें अधिकता कही जाए। १. भाव में ल्युट् मानने पर-अन्नमयम् (अन्न की अधिकता)-प्रकृतं प्रचुरम् अन्नम्, अन्न+मय। इसी प्रकार अपूपमयम् (पूओं की अधिकता)-प्रचुरम् अपूपम्, अपूप+मय। २. अधिकरण में ल्युट् मानने पर-अन्नमयः यज्ञः (जिसमें अन्न की अधिकता है, ऐसा यज्ञ)-प्रचुरम् अन्नं यस्मिन् यज्ञे सः, अन्न+मय। इसीप्रकार अपूपमयं पर्व (जिस पर्व के दिन पूए अधिक बनते हैं)-प्रचुराः अपूपाः यस्मिन् तत्, अपूप+मय।

अतः डाच् नहीं। खरटखरटाकरोति (खरटत् शब्द करता है)—इसमें दो से अधिक अच् हैं, अतः डाच् हुआ। पटपटाकरोतिवत्। पटिति करोति (पट् ऐसा शब्द करता है)—पट्+इति करोति। यहाँ बाद में इति शब्द है, अतः डाच् नहीं हुआ।

स्वार्थिक-प्रत्यय समाप्त।

तद्धित-प्रकरण समाप्त।

स्त्री-प्रत्यय

आवश्यक-निर्देश

(१) लिंग (स्त्रीलिंग आदि) प्रातिपदिक का अर्थ है। टाप् (आ) आदि प्रत्यय स्त्रीलिंग के द्योतक हैं। टाप् आदि लगाने से स्त्रीलिंग का अर्थ व्यक्त हो जाता है। (२) मुख्यरूप से स्त्रीलिंग में ये प्रत्यय होते हैं—१. टाप् (आ), २. ङीप् (ई), ३. ङीष् (ई), ४. ङीन् (ई), ५. ऊङ् (ऊ), ६. ति। १. टाप् (आ) अकारान्त शब्दों से होता है। अ+आ=आ, टाप् होने पर सवर्ण-दीर्घ हो जाएगा। २-४. ङीप्, ङीष् और ङीन् का ई शेष रहता है। इनसे पूर्व यदि कोई अकारान्त शब्द होगा तो यस्येति च (२३६) से अ या आ का लोप हो जाएगा। ५. ऊङ् (ऊ) होने पर प्रायः उ+ऊ=ऊ सवर्णदीर्घ होता है। ६. ति होने पर युवतिः में युवन् के न् का लोप नलोपः० (१८०) से होगा। (३) आकारान्त और ङीप् आदि के ईकारान्त शब्दों के बाद प्रथमा एक० में सु (स्) का हल्ङ्याब्भ्यो० (१७९) से लोप होता है। (४) आकारान्त के रूप रमा या सर्वा के तुल्य तथा ईकारान्त के रूप नदी के तुल्य चलावें।

१२३३. स्त्रियाम् (४-१-३)

समर्थानां प्रथमाद् वा (४-१-८२) सूत्र तक स्त्रीलिंग का अधिकार है। वहाँ तक के सूत्रों से स्त्रीलिंग में प्रत्यय होते हैं।

१२३४. अजाद्यतष्टाप् (४-१-४)

अज आदि शब्द तथा अकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व को प्रकट करने के लिए टाप् (आ) प्रत्यय होता है। अजा (बकरी)—अज+टाप् (आ)। प्र० एक० के सु (स्) का लोप। इसी प्रकार एडक> एडका (भेड़), अश्व> अश्वा (घोड़ी), चटक> चटका (चिड़िया), मूषक> मूषिका (चुहिया), बाल> बाला (लड़की), वत्स> वत्सा (लड़की), होड> होडा, मन्द> मन्दा, विलात> विलाता (इन तीनों का अर्थ कुमारी

है)। मेध>मेधा (बुद्धि), गङ्ग>गङ्गा (गंगा), सर्व>सर्वा (सब)। अजा से मूषिका तक के शब्दों में जातेरस्त्री० (१२५४) से ङीप् प्राप्त था और बाला से विलाता तक में वयसि प्रथमे (१२४१) से ङीप् प्राप्त था, इनको रोक कर टाप् हुआ।

१२३५. उगितश्च (४–१–६)

उगित् (उ और ऋ जिसमें से हटा है) प्रत्यय अन्त वाले शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) होता है। भवती (आप, स्त्रीलिंग)—भा+डवतु (अवत्)=भवत्+ई। भवन्ती (होती हुई)—भवत्+ङीप् (ई)। शप्० (३६६) से बीच में नुम् (न्)। इसी प्रकार पचन्ती (पकाती हुई)—पचत्+ङीप् (ई), दीव्यन्ती (खेलती हुई)—दीव्यत्+ङीप् (ई)। भवन्ती आदि तीनों में शतृ (अत्) प्रत्यय है। ऋ हटने से उगित् है। शप्० (३६६) से नुम् हुआ है।

१२३६. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः (४–१–१५)

निम्नलिखित प्रत्यय अन्त में होने पर अनुपसर्जन (जो गौण न हो) और ह्रस्व अकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) प्रत्यय होता है:—टित् (जिसमें से ट् हटा हो), ढ (एय), अण् (अ), अञ् (अ), द्वयसच् (द्वयस), दघ्नञ् (दघ्न), मात्रच् (मात्र), तयप् (तय), ठक् (इक), ठञ् (इक), कञ् (अ), क्वरप् (वर)। इनके क्रमशः उदाहरण हैं:—१. टित्–कुरुचरी (कुरु देश में घूमने वाली स्त्री)—कुरु+चर्+ट (अ)+ङीप् (ई)। चरेष्टः (७९३) से ट प्रत्यय, अ-लोप। नदी (नदी)—नद+ई। अ का लोप। नदट् टित् शब्द है। देवी (देवी)—देव+ई। अ का लोप। देवट् टित् शब्द है। २. ढ–सौपर्णेयी (सुपर्णी की पुत्री, गरुड़ की बहन)—सौपर्णेय+ई। अ का लोप। यहाँ पर स्त्रीभ्यो ढक् (१००५) से ढक् (एय) प्रत्यय है। ३. अण्—ऐन्द्री (इन्द्र-संबन्धिनी)—ऐन्द्र+ई। अ का लोप। यहाँ पर साऽस्य देवता (१०२६) से अण् है। ४. अञ्–औत्सी (झरना-संबन्धिनी)—औत्स+ई। अ का लोप। यहाँ पर उत्सादिभ्यो० (९८७) से अञ् है। ५–७ ऊरुद्वयसी ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री (जाँघ तक जल वाला, छोटा तालाब आदि)—ऊरुद्वयस+ई, ऊरुदघ्न+ई, ऊरुमात्र+ई। अन्तिम अ का तीनों स्थानों पर लोप। यहाँ पर प्रमाणे० (५-२-३७) से द्वयसच्, दघ्नञ् और मात्रच् प्रत्यय हैं। ८. तयप्–पञ्चतयी (पाँच अवयव वाली)—पञ्चतय+ई। अ का लोप। यहाँ पर संख्याया० (११५७) से तयप् है। ९. ठक्–आक्षिकी (पासों से खेलने वाली)—आक्षिक+ई। अ का लोप। यहाँ तेन दीव्यति० (११०२) से ठक् (इक) है। १०. ठञ्–लावणिकी (नमक बेचने वाली)—लावणिक+ई। यहाँ पर लवणाट् ठञ् (४–४–५२) से ठञ् (इक) है। ११. कञ्–यादृशी (जैसी)—यादृश+ई। अ-लोप। यहाँ पर त्यदादिषु० (३४७) से कञ् (अ) है। १२. क्वरप्–इत्वरी

(कुलटा)–इत्वर + ई। अ-लोप। यहाँ पर इण्नश० (३-२-१६३) से क्वरप् (वर) प्रत्यय है।

(नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्, वा०) नञ् (न), स्नञ् (स्न), ईकक् (ईक) और ख्युन् (अन)-प्रत्ययान्त तथा तरुण और तलुन शब्दों से भी ङीप् (ई) होता है। १. नञ्–स्त्रैणी (स्त्री-संबन्धिनी)–स्त्रैण + ई। अ-लोप। स्त्रीपुंसाभ्यां० (९८८) से नञ् (न) प्रत्यय है। २. स्नञ्–पौंस्नी (पुरुष-संबन्धिनी)–पौंस्न + ई। अ-लोप। स्त्री० (९८८) से स्नञ् (स्न) प्रत्यय है। ३. ईकक्–शाक्तीकी (शक्ति-नामक अस्त्र वाली)–शाक्तीक + ई। अ–लोप। शक्तियष्ट्योः० (४-४-५९) से ईकक् (ईक) प्रत्यय है। इसी प्रकार याष्टीकी (लाठी-वाली)–याष्टीक + ई। शाक्तीकी के तुल्य। ४. ख्युन्–आढ्यंकरणी (धनी बनाने वाली)–आढ्यंकरण + ई। अ-लोप। आढ्य० (३-२-५६) से ख्युन् (अन) प्रत्यय है। ५. तरुणी, तलुनी (युवति)–तरुण + ई, तलुन + ई। अ-लोप।

१२३७. यञश्च (४–१–१६)

यञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् (ई) प्रत्यय होता है।

१२३८. हलस्तद्धितस्य (६–४–१५०)

हल् (व्यंजन) के बाद तद्धित के उपधारूप में विद्यमान य का लोप होता है, बाद में ई हो तो। गार्गी (गर्गगोत्र की स्त्री)–गार्ग्य + ई। यञश्च से ङीप्, अ का लोप, इससे य् का लोप। यहाँ पर गर्गादिभ्यो० (९९३) से यञ् है।

१२३९. प्राचां ष्फ तद्धितः (४–१–१७)

यञ्-प्रत्ययान्त से विकल्प से ष्फ (आयन) प्रत्यय स्त्रीलिंग में होता है और वह तद्धित-संज्ञक होता है। ष् इत् है। फ को आयन होता है।

१२४०. षिद्गौरादिभ्यश्च (४–१–४१)

षित् (जिसमें से ष् हटा हो) और गौर आदि शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीष् (ई) प्रत्यय होता है। ङीष् का ई शेष रहता है। गार्ग्यायणी (गर्ग की पुत्री)–गार्ग्य + ष्फ (आयन) + ई। पूर्वसूत्र से ष्फ, फ को आयन, न् को ण्, अ का लोप। गार्ग्यायण षित् है। नर्तकी (नाचने वाली)–नर्तक + ई। अ-लोप। नर्तक में शिल्पिनि ष्वुन् (३-१-१४५) से ष्वुन् (अक) षित् प्रत्यय है, अतः ङीष्। गौरी (पार्वती, गौर वर्ण की स्त्री)–गौर+ ई। गौरादि के कारण ङीष्। अ-लोप। (आमनडुहः स्त्रियां वा वाच्यः, वा०) स्त्रीलिंग में अनडुह् शब्द को विकल्प से आम् (आ) आगम होता है। अनडुही, अनड्वाही (गाय)–अनडुह् + ई। गौरादि में होने से ङीष्, अनडुही। आम् (आ) आगम उ के बाद होगा, यण् होकर अनड्वाह् + ई। आम् विकल्प से हुआ। गौरादि आकृतिगण है। इस प्रकार के अन्य शब्द भी इस गण में समझने चाहिएँ।

१२४१. वयसि प्रथमे (४-१-२०)

प्रथम (कुमार) अवस्था के वाचक ह्रस्व अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) होता है। कुमारी (अविवाहित लड़की)—कुमार + ङीप् (ई)। अ का लोप।

१२४२. द्विगोः (४-१-२१)

ह्रस्व अकारान्त द्विगु से ङीप् (ई) प्रत्यय होता है। त्रिलोकी (तीन लोकों का समूह)—त्रिलोक + ई। अ—लोप। त्रयाणां लोकानां समाहारः, द्विगु-समास है। त्रिफला (तीन फलों का समूह—हर्र, बहेड़ा, आँवला)—त्रिफल + टाप् (आ)। अजादिगण में है, अतः अजाद्यतष्टाप् (१२३४) से टाप्। इसी प्रकार त्र्यनीका (सेना)—त्रयाणाम् अनीकानां समाहारः, त्र्यनीक + टाप् (आ)। अजादिगण में होने से टाप्।

१२४३. वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तो नः (४-१-३९)

वर्णवाचक जो अनुदात्तान्त (अन्त में अनुदात्त) और तोपध (उपधा में त हो) शब्द तदन्त अनुपसर्जन (जो गौण न हो) प्रातिपदिक से विकल्प से ङीप् होता है और त को न होता है। एनी, एता (कबरी)—एत + टाप् (आ) = एता। एत + ङीप् (ई)। त को न, अ-लोप। रोहिणी, रोहिता (लाल रंग वाली)—रोहित+टाप् (आ) = रोहिता। रोहित + ई। त को न, अ-लोप, अट्कु० से न् को ण् रोहिणी।

१२४४. वोतो गुणवचनात् (४-१-४४)

ह्रस्व उकारान्त गुणवाचक शब्द से स्त्रीलिंग में विकल्प से ङीप् (ई) प्रत्यय होता है। मृद्वी, मृदुः (कोमल)—मृदु + ङीप् (ई)। यण्। पक्ष में मृदुः।

१२४५. बह्वादिभ्यश्च (४-१-४५)

बहु आदि शब्दों से विकल्प से ङीप् (ई) प्रत्यय होता है। बह्वी, बहुः (बहुत)—बहु + ई। यण्। पक्ष में बहुः। (कृदिकारादक्तिनः, वा०) कृत् प्रत्यय का जो इकार, तदन्त प्रातिपदिक से विकल्प से ङीप् (ई) होता है, क्तिन्-प्रत्ययान्त से नहीं। रात्री, रात्रिः (रात)—रात्रि + ई। यस्येति च से इ का लोप। पक्ष में रात्रिः। रात्रि शब्द रा + त्रिप् (त्रि) उणादि प्रत्यय से बनता है। (सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके, वा०) क्तिन् अर्थ वाले प्रत्ययों से भिन्न सभी इकारान्त शब्दों से विकल्प से ङीप् (ई) होता है, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। शकटी, शकटिः (छोटी गाड़ी)—शकटि + ई। इ का लोप। पक्ष में शकटिः।

१२४६. पुंयोगादाख्यायाम् (४-१-४८)

जो पुरुषवाचक शब्द लक्षणा से स्त्रीलिंग में आता है, उससे ङीप् (ई) प्रत्यय होता है। गोपी (ग्वालिन)—गोपस्य स्त्री, गोप + ङीप् (ई)। अ का लोप। (पालकान्तान्न,

वा०) पालक-अन्त वाले शब्द से पुंयोग (लक्षणा द्वारा संबन्ध) में ङीप् प्रत्यय नहीं होगा।

१२४७. प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः (७-३-४४)

प्रत्ययस्थ क से पूर्ववर्ती अ को इ होता है, बाद में आप् (आ) हो तो, वह आप् सुप् के बाद न हो। गोपालिका (गोपालन करने वाले की स्त्री)—गोपालक+टाप् (आ)। पूर्व वार्तिक से ङीप् का निषेध, अतः टाप्, इससे ल के अ को इ, दीर्घसन्धि। इसी प्रकार अश्वपालिका (अश्वपालक की स्त्री)। सर्विका (सभी)—सर्वक+आ। इससे अ को इ। इसी प्रकार कारिका (करने वाली)—कृ+ण्वुल्=कारक+आ। इससे अ को इ। प्रत्युदाहरण—नौका (नाव)—नौ+क+आ। क से पूर्व अ नहीं है, अतः इ नहीं। शका (कर सकने वाली)—शक्नोतीति, शक्+अच् (अ)+आ। पचाद्यच् फिर टाप्। इसमें प्रत्यय का क नहीं है, अतः इ नहीं। बहुपरिव्राजका नगरी (बहुत संन्यासियों से युक्त नगरी)—बहवः परिव्राजकाः यस्यां सा, बहुपरिव्राजक+आ। यहाँ विभक्ति का लोप होकर टाप् हुआ है, अतः इ नहीं होगा। (सूर्याद् देवतायां चाप् वक्तव्यः, वा०) पुंयोग के द्वारा देवता स्त्री अर्थ में विद्यमान सूर्य शब्द से चाप् (आ) प्रत्यय होता है। चाप् का आ शेष रहता है। सूर्या (सूर्य की देवता स्त्री)—सूर्यस्य स्त्री देवता, सूर्य+चाप् (आ)। (सूर्यागस्त्ययोश्छे ङ्यां च, वा०) सूर्य और अगस्त्य शब्दों के य् का लोप होता है, बाद में छ (ईय) और ङी (ई) हो तो। सूरी (सूर्य की मनुष्य जाति की स्त्री, कुन्ती)—सूर्य+ङीप् (ई)। पुंयोगादा० (१२४६) से ङीप्, अ का लोप, इससे य् का लोप। मनुष्य स्त्री होने से चाप् प्रत्यय नहीं हुआ।

१२४८. इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् (४-१-४९)

इन शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) प्रत्यय होता है और आनुक् (आन्) का आगम होता है:—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य। सूचना—ङीप् (ई) और आनुक् (आन्) होकर आन्+ई = आनी अन्त में लगता है। इन्द्राणी (इन्द्र की स्त्री)—इन्द्रस्य स्त्री, इन्द्र+आनी। दीर्घ, अट्कु० से न् को ण्। इसी प्रकार वरुणानी (वरुण की स्त्री), भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी (शिव की स्त्री। भव, शर्व, रुद्र, मृड ये शिव के नाम हैं)। (हिमारण्ययोर्महत्त्वे, वा०) हिम और अरण्य शब्दों से महत्त्व (अधिकता) अर्थ में 'आनी' लगता है। हिमानी (अधिक बर्फ)—महद् हिमम्, हिम+आनी। अरण्यानी (बड़ा जंगल)—महद् अरण्यम्, अरण्य+आनी। (यवाद् दोषे, वा०) यव शब्द से दोषयुक्त (खराब) अर्थ में आनी लगता है। यवानी (खराब जौ)—दुष्टो यवः, यव+आनी। (यवनाल्लिप्याम्, वा०) यवन शब्द से लिपि अर्थ में

आनी लगता है। यवनानी (यवनों की लिपि)—यवनानां लिपिः, यवन + आनी। (मातुलोपाध्याययोरानुग् वा, वा०) मातुल और उपाध्याय शब्दों से विकल्प से आनुक् (आन्) होता है। अतः एक स्थान पर आनी लगेगा, अन्यत्र केवल ई। मातुलानी, मातुली (मामी)—मातुलस्य स्त्री, मातुल + आनी, मातुल + ई। अ का लोप। उपाध्यायानी, उपाध्याया। (गुरु की स्त्री)। पूर्ववत्। (आचार्यादणत्वं च, वा०) आचार्य शब्द से आनी लगने पर न् को ण् नहीं होता है। आचार्यानी (आचार्य की स्त्री)—आचार्यस्य स्त्री, आचार्य + आनी। (अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे, वा०) अर्य और क्षत्रिय शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से आनी लगता है। पक्ष में टाप् होगा। अर्याणी, अर्या (वैश्य वर्ण की स्त्री)—अर्य + आनी, अर्य + टाप् (आ)। न् को ण्। इसी प्रकार क्षत्रियाणी, क्षत्रिया (क्षत्रिय स्त्री)। पूर्ववत्।

१२४९. क्रीतात् करणपूर्वात् (४-१-५०)

करण कारक पहले होने पर क्रीत अन्त वाले अकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) होता है। वस्त्रक्रीती (वस्त्र से खरीदी हुई)—वस्त्रेण क्रीता, वस्त्रक्रीत + ङीप् (ई)। गतिकारको० (वा०) से समास और इससे ङीप्, अन्त्य-लोप। धनक्रीता (धन से खरीदी गई)—धनेन क्रीता, धनक्रीत + टाप् (आ)। सवर्णदीर्घ। यह ङीप् कहीं पर नहीं भी होता है, अतः यहाँ पर ङीप् न होकर टाप् हुआ।

१२५०. स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् (४-१-५४)

जिसकी उपधा में संयोग नहीं है, ऐसा उपसर्जन (गौण) स्वांग (शरीरावयव) वाचक जो शब्द, तदन्त ह्रस्व अकारान्त शब्द से विकल्प से ङीप् (ई) होता है। अतिकेशी, अतिकेशा (बालों का अतिक्रमण करने वाली)–केशान् अतिक्रान्ता, अतिकेश + ङीप् (ई)। अन्त्य-लोप। अतिकेश + टाप् (आ)। अत्यादयः० (वा०) से समास, ङीप् (ई)। पक्ष में टाप्। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा (चन्द्रमा के तुल्य मुखवाली)–चन्द्र इव मुखं यस्याः सा, चन्द्रमुख + ङीप् (ई)। अन्त्य-लोप। चन्द्रमुख + टाप् (आ)। बहुव्रीहि–समास, ङीप्। पक्ष में टाप्। प्रत्युदाहरण–सुगुल्फा (सुन्दर गुल्फ या टखने वाली)–शोभनौ गुल्फौ यस्याः सा, सुगुल्फ + टाप्। उपधा में संयुक्त वर्ण है, अतः ङीप् नहीं। टाप् होगा। शिखा (चोटी)–शिख + टाप्। यह गौण नहीं है, अतः ङीप् नहीं हुआ। टाप् होगा।

१२५१. न क्रोडादिबह्वचः (४-१-५६)

क्रोड आदि गण तथा अनेकाच् स्वांगवाचक प्रातिपदिक से ङीप् (ई) नहीं होता है। अतः टाप् होगा। कल्याणक्रोडा (कल्याणकारी वक्षःस्थल वाली, घोड़ी)–कल्याणी क्रोडा यस्याः सा, कल्याणक्रोड + टाप् (आ)। बहुव्रीहि समास, इससे ङीप् का निषेध, टाप्। क्रोड आदि आकृतिगण है। अतः सुजघना (सुन्दर जाँघ वाली, स्त्री)–शोभनं जघनं यस्याः सा, सुजघन + टाप्। पूर्ववत्।

१२५२. नखमुखात् संज्ञायाम् (४-१-५८)

स्वांगवाचक नख और मुख शब्दों से संज्ञा में ङीप् (ई) नहीं होता।

१२५३. पूर्वपदात् संज्ञायामगः (८-४-३)

पूर्वपद में विद्यमान निमित्त (र्, ष्) के बाद न् को ण् होता है संज्ञा में, यदि बीच में ग होगा तो नहीं। शूर्पणखा (सूप के समान नाखून वाली, रावण की बहिन का नाम है)-शूर्पाणि इव नखानि यस्याः सा, शूर्पनख + आ। नख० (१२५२) से निषेध के कारण ङीप् नहीं हुआ, टाप्, इससे न् को ण्। गौरमुखा (गौर मुख वाली, नाम है)-गौरं मुखं यस्याः सा, गौरमुख + आ। ङीप् का निषेध, टाप्। प्रत्युदाहरण-ताम्रमुखी कन्या (लाल मुँह वाली, कन्या)-ताम्रं मुखं यस्याः सा, ताम्रमुख + ङीप् (ई)। यह संज्ञा नहीं है, अतः नख० (१२५२) से ङीप् का निषेध नहीं होगा। स्वाङ्गा० (१२५०) से ङीप् (ई), अन्त्यलोप।

१२५४. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (४-१-६३)

जो शब्द जातिवाचक हो, नित्य-स्त्रीलिंग न हो और उसकी उपधा में य् न हो, ऐसे अकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) प्रत्यय होता है। सूचना-जाति का लक्षण है:—१. आकृतिग्रहणा जातिः, २. लिङ्गानां च न सर्वभाक्। सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या, ३. गोत्रं च ४. चरणैः सह। १. आकृति से जिसका ग्रहण हो। जैसे-जातिवाचक संज्ञा शब्द, गो आदि। २. जो सब लिंगों में नहीं आते और एक में बता देने से अन्यों में जिसका ग्रहण होता है। जैसे-ब्राह्मण आदि। ३. गोत्र-प्रत्ययान्त शब्द। जैसे-औपगव आदि। ४. चरण अर्थात् वेद की शाखा के पढ़ने वाले। जैसे-कठ आदि। ये चारों प्रकार के शब्द जाति कहलाते हैं। १. तटी (किनारा)-तट + ङीप् (ई)। अन्त्य-लोप। पहले प्रकार की जाति है। २. वृषली (शूद्र स्त्री)-वृषल + ङीप् (ई)। अन्त्यलोप। दूसरे प्रकार की जाति है। ३. कठी (कठ शाखा को पढ़ने वाली)-कठशाखाम् अधीयाना। कठ + ई। अन्त्यलोप। चौथे प्रकार की जाति है। ४. बह्वृची (बह्वृच शाखा को पढ़ने वाली)-बह्वृचशाखाम् अधीयाना, बह्वृच + ई। अन्त्य-लोप। यह भी चौथे प्रकार की जाति है। प्रत्युदाहरण-मुण्डा। (मुँडी हुई, मुण्डित स्त्री)-मुण्ड + टाप्। यह जातिवाचक नहीं है, अतः ङीप् नहीं हुआ। बलाका (बगुला स्त्री)-बलाक + टाप्। यह नित्य-स्त्रीलिंग है, अतः ङीप् नहीं हुआ। क्षत्रिया (क्षत्रिय स्त्री)-क्षत्रिय + टाप्। उपधा में य् है, अतः ङीप् नहीं हुआ। (योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः, वा०) योपध के निषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य का निषेध नहीं होगा, अर्थात् इनसे ङीप् होगा। हयी (घोड़ी)-हय + ङीप् (ई)। अ का लोप। इसी प्रकार गवयी (जंगली नील गाय)-गवय + ई। मुकयी (मुकय पशु जाति की मादा)-मुकय + ई। मनुषी (मनुष्य स्त्री)-मनुष्य + ई। अन्त्य-लोप, हलस्तद्धितस्य

(१२३८) से य् का लोप। (मत्स्यस्य ङ्याम्, वा०) मत्स्य शब्द के य् का लोप होता है, बाद में ङी हो तो। मत्सी (मछली)—मत्स्य + ई। अ-लोप, इससे य् का लोप।

१२५५. इतो मनुष्यजातेः (४-१-६५)

मनुष्य-जातिवाचक ह्रस्व इकारान्त शब्द से ङीप् (ई) प्रत्यय होता है। दाक्षी (दक्ष की पुत्री)—दक्षस्यापत्यं स्त्री, दक्ष + इञ् (इ) होकर दाक्षि + ङीप् (ई)। यस्येति च से इ का लोप।

१२५६. ऊङुतः (४-१-६६)

ह्रस्व उकारान्त, अयोपध (उपधा में य् न हो), मनुष्य जातिवाचक शब्द से स्त्रीलिंग में ऊङ् (ऊ) प्रत्यय होता है। कुरूः (कुरुजाति की स्त्री)—कुरु + ऊङ् (ऊ)। सवर्णदीर्घ। सूचना—'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' परिभाषा से ऊङ्-प्रत्ययान्त शब्दों से सुप् प्रत्यय होंगे। प्रत्युदाहरण—अध्वर्युः ब्राह्मणी। अध्वर्यु शाखा पढ़ने वाली स्त्री—इसमें उपधा में य् है, अतः ऊङ् नहीं हुआ।

१२५७. पङ्गोश्च (४-१-६८)

पङ्गु शब्द से स्त्रीलिंग मे ऊङ् (ऊ) प्रत्यय होता है। पङ्गूः (लंगड़ी)—पङ्गु + ऊ। सवर्णदीर्घ। (श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च, वा०) श्वशुर शब्द से स्त्रीलिंग में ऊङ् (ऊ) प्रत्यय होता है और श्वशुर के उ और अन्तिम अ का लोप होता है। श्वश्रूः (सास)—श्वशुर + ऊ। श्वशुर के उ और अन्तिम अ का लोप।

१२५८. ऊरूत्तरपदादौपम्ये (४-१-६९)

जिस प्रातिपादिक का पूर्वपद उपमानवाचक हो—और उत्तरपद ऊरु शब्द हो, उससे स्त्रीलिंग में ऊङ् (ऊ) होता है। करभोरूः (करभ के तुल्य जंघा वाली)—करभौ इव ऊरू यस्याः सा, करभोरु + ऊ। सवर्णदीर्घ। करभ का अर्थ है—'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। हाथ की कलाई से लेकर कनी अंगुलितक हाथ के बाहर का ऊपर से नीचे की ओर उतार वाला भाग।

१२५९. संहितशफलक्षणवामादेश्च (४-१-७०)

संहित, शफ, लक्षण और वाम पूर्वपद हों तो ऊरु शब्द से स्त्रीलिंग में ऊङ् (ऊ) प्रत्यय होता है। संहितोरूः (मिली हुई जंघाओं वाली)—संहितौ ऊरू यस्याः सा, संहितोरु + ऊ। सवर्णदीर्घ। इसी प्रकार शफोरूः (मिली हुई जंघाओं वाली)—शफौ ऊरू यस्याः सा, शफ + ऊरु + ऊ। लक्षणोरूः (शुभ लक्षण युक्त जाँघ वाली) लक्षणौ ऊरू यस्याः सा, लक्षणोरु + ऊ। वामोरूः (सुन्दर जंघा वाली)—वामौ ऊरू यस्याः सा, वामोरु + ऊ।

१२६०. शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् (४-१-७३)

शार्ङ्गरव आदि शब्दों से तथा अञ् प्रत्यय का जो अ, तदन्त जातिवाचक प्रातिपदिक से ङीन् (ई) प्रत्यय होता है। शार्ङ्गरवी (शृंगरु की पुत्री)—शृङ्गरोरपत्यं स्त्री, शार्ङ्गरव + ङीन् (ई)। अन्त्यलोप। बैदी (बिद की पुत्री)—बिदस्यापत्यं स्त्री, बैद + ई। अन्त्यलोप। ब्राह्मणी (ब्राह्मण स्त्री)—ब्राह्मण + ङीन् (ई) अन्त्यलोप। (नृनरयोर्वृद्धिश्च, वा०) नृ और नर शब्द से स्त्रीलिंग में ङीन् (ई) प्रत्यय होता है और इन दोनों शब्दों को वृद्धि भी होती है, अर्थात् दोनों का नार् बनेगा, नृ के ऋ को आर्, नर् के अ को आ वृद्धि। नारी (स्त्री)—नृ + ई, नर + ई = नारी। ऋ को आर्। अन्त्य-लोप, उपधा के अ को आ।

१२६१. यूनस्तिः (४-१-७७)

युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में ति प्रत्यय होता है। युवतिः (युवा स्त्री)—युवन् + ति। नलोपः ० (१८०) से न् का लोप। सूचना—१. ति प्रत्यय तद्धित होने से कृत्तद्धित० से प्रातिपदिक संज्ञा और सुप् प्रत्यय। २. युवती शब्द इस प्रकार बनता है—यु मिश्रणामिश्रणयोः धातु से शतृ, उ को उव्, युवत् + ङीप् (ई)। उगितश्च (१२३५) से ङीप्।

स्त्रीप्रत्यय समाप्त।

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी॥

अन्य शास्त्रों में प्रवेश पाए हुए, (व्याकरण न जानने के कारण) बालकों (बाल्बुद्धि के लोगों) के उपकार के लिए श्री वरदराज ने यह लघुसिद्धान्त-कौमुदी बनाई है।

लघु-सिद्धान्त कौमुदी समाप्त।

---

२. सिद्धान्तकौमुदी–कारकप्रकरण

१२६२. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (२--३--४६)

किसी शब्द का नियत अर्थ बताने में, केवल लिंग या केवल परिमाण (तोल) या केवल वचन (संख्या) का बोध कराने में प्रथमा विभक्ति होती है। प्रातिपदिक का अर्थ है नियतोपस्थितिक—अर्थात् जिस अर्थ की नियम से उपस्थिति होती है। सूत्र में मात्र शब्द का प्रत्येक के साथ संबन्ध है। अतः सूत्र का अर्थ होता है–प्रातिपदिकार्थ मात्र में, लिंग-मात्र की अधिकता में, परिमाण मात्र में और संख्यामात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। उच्चैः (ऊपर), नीचैः (नीचे), कृष्णः (कृष्ण), श्रीः (लक्ष्मी), ज्ञानम् (ज्ञान)। ये पाँचों प्रातिपदिकार्थ के उदाहरण हैं। जो शब्द अलिंग (लिंग-रहित, अव्यय) और नियतलिंग (निश्चित लिंग वाले) हैं, वे प्रातिपदिकार्थ मात्र के उदाहरण होते हैं। उच्चैस् और नीचैस् ये अव्यय हैं, अतः अलिंग हैं। इनसे प्रथमा एकवचन सु आने पर अव्ययादाप्सुपः (३७१) से सुप् का लोप हो जाता है। कृष्णः—कृष्ण+सु (स्)। यह नित्य पुंलिंग है। श्रीः, नित्य स्त्रीलिंग हैं। ज्ञानम्, नित्य नपुंसक लिंग है। इनसे प्रथमा विभक्ति एकवचन है।

सूचना—'अपदं न प्रयुञ्जीत। न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः।' व्याकरण का नियम है कि अपद का प्रयोग न करें, अर्थात् शब्द और धातु को पद बनाकर ही प्रयोग करें। सुप्तिङन्तं पदम् (१४) सुबन्त और तिङन्त को पद कहते हैं। शब्दों से सुप् (सु, औ, अः आदि) प्रत्यय और धातुओं से तिङ् (ति, तः, अन्ति आदि) प्रत्यय लगाकर ही प्रयोग करना चाहिए। अतएव कहा है कि—न केवल प्रकृति (मूल शब्द या धातु) का प्रयोग करना चाहिए और न केवल प्रत्यय का।

जो शब्द अनिश्चित लिंग वाले हैं, वे लिंगमात्र की अधिकता के उदाहरण होंगे। जैसे—तटः, तटी, तटम्। तट शब्द तीनों लिंगों में आता है। इससे प्रथमा विभक्ति एकवचन।

परिमाणमात्र का उदाहरण है–द्रोणो व्रीहिः (द्रोण भर चावल)। द्रोणरूप परिमाण (तोल) से परिच्छिन्न (नापा हुआ) चावल। यहाँ पर प्रत्यय सु का अर्थ है सामान्य परिमाण और प्रकृति द्रोण का अर्थ है द्रोणनामक एक परिमाणविशेष। दोनों का अभेद संबन्ध से अन्वय हो जाता है। अतः द्रोणः का अर्थ है 'द्रोणरूपी परिमाण।' प्रत्ययार्थ परिमाण परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव (माप्य-मापक, नापा जानेवाला और नापने वाला) से व्रीहिः (चावल) का विशेषण हो जाता है। सूचना–द्रोण लकड़ी या लोहे का एक पात्र होता था, जिससे धान आदि की माप होती थी।

वचन का अर्थ संख्या है। एकः (एक), द्वौ (दो), बहवः (बहुत) में संख्या अर्थ में प्रथमा है। यहाँ पर एक, द्वि, बहु के द्वारा संख्या अर्थ उक्त (कहा गया) होने से विभक्ति प्राप्त नहीं थी, अतः इस सूत्र से प्रथमा का विधान किया गया है।

१२६३. संबोधने च (२–३–४७)

संबोधन में भी प्रथमा विभक्ति होती है। हे राम (हे राम)—राम + सु (स)। स् का लोप।

प्रथमा-विभक्ति समाप्त।

द्वितीया विभक्ति

१२६४. कारके (१–४–२३)

आगे के सूत्रों में 'कारक' का अधिकार है। अतएव आगे के सूत्रों से कारक की कर्म, करण आदि संज्ञा की गई है। कारक का अर्थ है–'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' 'करोतीति कारकम्, क्रियाया निर्वर्तकम्, येन विना क्रियानिर्वाहो न भवति तत् कारकम्'। वाक्य में क्रिया के साथ जिसका अन्वय (संबन्ध) होता है, उसे कारक कहते हैं। 'रामः पुस्तकं पठति' में पठति क्रिया के साथ कर्ता राम और कर्म पुस्तक का संबन्ध है। कारक का अर्थ है करने वाला अर्थात् क्रिया का साधक या पूरक। जिसके बिना क्रिया का निर्वाह नहीं होता है, वह कारक है। अतः क्रिया के संपादन में उपयोगी सभी कारण-बोधक शब्द कारक कहे जाते हैं। संस्कृत में ६ कारक हैं। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है। उसका संबन्ध क्रिया से साक्षात् नहीं होता है। ६ कारक हैं— "कर्ता कर्म च करणं संप्रदानं तथैव च। अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्।"

१२६५. कर्तुरीप्सिततमं कर्म (१–४–४९)

कर्ता अपनी क्रिया से जिस पदार्थ को सबसे अधिक प्राप्त करने की इच्छा करता है, उस कारक को कर्म कहते हैं। प्रत्युदाहरण-माषेष्वश्वं बध्नाति (उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है)—यहाँ पर माष (उड़द) कर्म अश्व को अभीष्ट हैं, कर्ता को नहीं। अतः माषेषु में द्वितीया नहीं हुई। पयसा ओदनं भुङ्क्ते (दूध से भात खाता है) यहाँ पर पयस् साधन है, अतः उसमें द्वितीया नहीं हुई। साधन में तृतीया है। अधिशीङ्स्थासां कर्म (१२७२) से इस सूत्र में कर्म की अनुवृत्ति आ रही थी, फिर दुबारा कर्म रखने का अभिप्राय यह है कि 'आधार में ही द्वितीया हो' यह नियम न रहे। नहीं तो गेहं प्रविशति (घर में घुसता है) में ही द्वितीया होती। सर्वत्र न होती।

१२६६. अनभिहिते (२–३–१)

अनभिहिते (अनुक्त में ही) का आगे अधिकार है।

१२६७. कर्मणि द्वितीया (२–३–२)

अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है। सूचना–जिस वाच्य में क्रिया में प्रत्यय होता है, वह अर्थ उक्त होता है, अन्य अर्थ अनुक्त। जैसे–कर्तृवाच्य में प्रत्यय होगा तो कर्ता उक्त होगा, कर्म और भाव अनुक्त। हरिं भजति (हरि को भजता है)–भजति क्रिया कर्तृवाच्य में है, अतः कर्म अनुक्त है। अनुक्त कर्म के कारण हरिम् में द्वितीया है।

सूचना–जहाँ पर कर्म उक्त होगा, वहाँ पर 'प्रातिपदिकार्थ मात्र' में प्रथमा ही होगी। **अभिधानं च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः।** तिङ्, कृत्, तद्धित और समास से प्रायः कर्म आदि उक्त होते हैं। जैसे–हरिः सेव्यते। कर्मवाच्य में लट् है, अतः कर्म उक्त है। उक्त कर्म में प्रथमा। इसी प्रकार कृत् का उदाहरण है—*लक्ष्म्या सेवितः।* कर्मवाच्य में क्त है, कर्म उक्त है, कर्ता अनुक्त। अनुक्त कर्ता में कर्तृ० (१२९१) से तृतीया। तद्धित– शतेन क्रीतः, शत्यः (सौ से खरीदा हुआ)– शत+यत् (य)+प्र० एक०। तद्धित यत् के द्वारा कर्म उक्त होने से शत्यः में प्रथमा। समास– प्राप्तः आनन्दः यं सः, प्राप्तानन्दः। द्वितीया के अर्थ मे बहुव्रीहि समास होने से समस्त पद में प्रथमा। कभी-कभी निपात (अव्यय) से भी कर्म आदि उक्त होता है। जैसे— विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम् (विष के वृक्ष को भी बढ़ाकर स्वयं काटना उचित नहीं है)। यहाँ पर असाम्प्रतम् का अर्थ है—न युज्यते, उचित नहीं है। यहाँ 'विषवृक्षं छेत्तुं न युज्यते' तात्पर्य है। असांप्रतम् अव्यय के द्वारा वृक्ष कर्म उक्त है, *अतः विषवृक्षम् के स्थान पर विषवृक्षः प्रथमा विभक्ति है।*

१२६८. तथायुक्तं चानीप्सितम् (१–४–५०)

जिस प्रकार क्रिया से युक्त ईप्सिततम (अतिप्रिय) वस्तु कर्म होती है, उसी प्रकार क्रिया से युक्त अनीप्सित (अप्रिय, उपेक्ष्य) वस्तु भी कर्म होती है। ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशति (*गाँव को जाता हुआ तिनके को छूता है*)–यहाँ पर अनीप्सित (उपेक्ष्य) तृण में भी कर्म संज्ञा होने से द्वितीया हुई। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते (भात खाता हुआ विष भी खाता है)–यहाँ अप्रिय विष में भी द्वितीया हुई।

१२६९. अकथितं च (१–४–५१)

जहाँ पर अपादान आदि कारकों को वक्ता नहीं कहना चाहता, वहाँ पर उन कारकों के स्थान पर कर्म कारक होता है।

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

निम्नलिखित धातुओं के दो कर्म होते हैं:—दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (चुनना), ब्रू (कहना), शास् (सिखाना), जि (जीतना), मथ् (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् (खींचना), वह् (ढोना)। सूचना–(१) इन १६ धातुओं के साथ दो कर्म होते हैं–१. प्रधान या मुख्य कर्म। प्रधान कर्म में कर्तु० (१२६५) से कर्मसंज्ञा और द्वितीया होती है। २. गौण या अप्रधान कर्म। अकथितं च से गौण कर्म में कर्म संज्ञा होती है और द्वितीया होती है। (२) अकथित का अभिप्राय है कि वक्ता अपादान आदि कारकों के स्थान पर उन कारकों का प्रयोग नहीं करना चाहता है, अतः वे अकथित या अविवक्षित हैं। ऐसे स्थानों पर इससे कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया होगी। (३) इन १६ धातुओं के प्रधान कर्म से जिनका संबन्ध होता है, वे अकथित

(गौण) कर्म कहे जाते हैं। (४) यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि अपादान आदि विभक्तियों की विवक्षा होगी और वक्ता अपादान आदि का प्रयोग करना चाहता है तो पंचमी आदि विभक्तियाँ होंगी। जैसे—गाय से ही दूध दुहता है—गोः एव पयः दोग्धि।

(१) दुह्—गां पयः दोग्धि (गाय से दूध दुहता है)—गोः पयः दोग्धि, अपादान की अविवक्षा के कारण इससे गाम् में द्वितीया, पयः में कर्तु० (१२६५) से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया। पयः प्रधान कर्म है और गाम् गौण कर्म। आगे भी इसी प्रकार प्रधान कर्म में कर्तु० (१२६५) से कर्मसंज्ञा और द्वितीया तथा गौण कर्म में इस सूत्र से द्वितीया समझें। प्रत्येक स्थान पर दो कर्म हैं। (२) याच्—बलिं याचते वसुधाम् (बलि से पृथ्वी माँगता है)—बलेः याचते वसुधाम्, अपादान के अर्थ में बलिम् में द्वितीया। अविनीतं विनयं याचते (अशिष्ट से विनय की प्रार्थना करता है)—अविनीतात् विनयं याचते, पञ्चमी के अर्थ में द्वितीया। (३) पच्—तण्डुलान् ओदनं पचति (चावलों से भात पकाता है)—तण्डुलैः ओदनं पचति, करण के अर्थ में द्वितीया। (४) दण्ड्—गर्गान् शतं दण्डयति (गर्गों पर सौ रुपए दण्ड लगाता है)—गर्गेभ्यः शतं गृह्णाति, अपादान के अर्थ में द्वितीया। (५) रुध्—व्रजम् अवरुणद्धि गाम् (गाय को बाड़े में रोकता है)—व्रजे गाम् अवरुणद्धि, अधिकरण के अर्थ में द्वितीया। (६) प्रच्छ्—माणवकं पन्थानं पृच्छति (बालक से मार्ग पूछता है)—माणवकात् पन्थानं पृच्छति, अपादान के अर्थ में द्वितीया। (७) चि—वृक्षम् अवचिनोति फलानि (पेड़ से फल चुनता है)—वृक्षात् अवचिनोति फलानि। अपादान के अर्थ में द्वितीया। (८, ९) ब्रू, शास्—माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा (बालक को धर्म का उपदेश देता है)—माणवकाय धर्मं ब्रूते शास्ति वा, सम्प्रदान के अर्थ में द्वितीया। (१०) जि—शतं जयति देवदत्तम् (देवदत्त से सौ रुपए जीतता है)—देवदत्तात् शतं जयति, अपादान के अर्थ में द्वितीया। (११) मथ्—सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति (समुद्र से अमृत मथता है)—सुधां क्षीरनिधेः मथ्नाति, अपादान के अर्थ में द्वितीया। (१२) मुष्—देवदत्तं शतं मुष्णाति (देवदत्त के सौ रुपए चुराता है)—देवदत्तात् शतं मुष्णाति, अपादान के अर्थ में द्वितीया। (१३-१६) नी, हृ, कृष्, वह्—ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा (वह बकरी को गाँव में ले जाता है)—ग्रामे अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा, अधिकरण के अर्थ में द्वितीया।

(अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा) अकथितं च से होनेवाली कर्मसंज्ञा अर्थ पर आश्रित है, अर्थात् दुह्, याच् आदि धातुओं के अर्थवाली अन्य धातुओं के योग में भी दो कर्म होंगे। जैसे—याच् के अर्थ में भिक्ष् धातु है। बलिं भिक्षते वसुधाम्—बलिम् में द्वितीया हुई। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्ति इत्यादि (बालक को धर्म बताता है)। यहाँ पर ब्रू के अर्थ में भाष्, अभि + धा और वच् धातुएँ हैं। प्रत्युदाहरण—माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति (बालक के पिता से मार्ग पूछता है)—सूत्र में अपादान आदि कारक का उल्लेख है। षष्ठी की कारक में गणना नहीं होती है, क्योंकि उसका सम्बन्ध

अर्थ का बोध होता है और उसका क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता है। अतः षष्ठी के स्थान पर द्वितीया नहीं हुई।

(अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्, वा०) अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल (समय), भाव और गन्तव्य मार्ग की कर्मसंज्ञा होती है। कुरून् स्वपिति (कुरु देश में सोता है)–कुरु देशवाचक शब्द है, अतः द्वितीया। स्वप् धातु अकर्मक है। इसी प्रकार आस् धातु अकर्मक होने से मासम् (समय-वाचक), गोदोहम् (भाववाचक घञ्-प्रत्ययान्त) और क्रोशम् (गन्तव्य मार्ग) में द्वितीया होती है। मासम् आस्ते (मास भर रहता है), गोदोहम् आस्ते (गाय दुहने के समय रहता है), क्रोशम् आस्ते (कोस भर है)।

१२७०. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ (१-४-५२)

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम्।
आसयत् सलिले पृथ्वीं, यः स मे श्रीहरिर्गतिः॥

गति अर्थवाली (गम्, या, इ आदि), बुद्धि (ज्ञान) अर्थ वाली (बुध्, ज्ञा, विद् आदि), प्रत्यवसान (खाना) अर्थ वाली (भक्ष्, भुज्, अश् आदि), शब्दकर्मक (पढ़ना, बोलना अर्थवाली, पठ्, अधि + इ, उच्चर् आदि) और अकर्मक धातुओं का अण्यन्त (प्रेरणार्थक णिच् से रहित, सामान्य तिङन्त) अवस्था में जो कर्ता होता है, वह ण्यन्त (प्रेरणार्थक णिच्-सहित) अवस्था में कर्म हो जाता है। सूचना–इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि गति (जाना) आदि अर्थों वाली धातुओं के साथ सामान्य (अण्यन्त, अ-णि) अवस्था में जो कर्ता होता है, वह प्रेरणार्थक णिच् (ण्यन्त) होने पर कर्म हो जाता है। २. उपर्युक्त श्लोक में क्रमशः इनके उदाहरण हैं।

सामान्य अर्थ में (अण्यन्त)	प्रेरणार्थ में (ण्यन्त)
१. गत्यर्थक—शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्।	शत्रून् स्वर्गम् अगमयत्।
(शत्रु स्वर्ग गए)	(शत्रुओं को स्वर्ग भेजा)
२. बुद्ध्यर्थक—स्वे वेदार्थम् अविदुः।	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्।
(स्वजनों ने वेद का अर्थ जाना)	(स्वजनों को वेद का अर्थ बताया)
३. भक्षणार्थक—देवाः अमृतम् आश्नन्।	देवान् अमृतम् आशयत्।
(देवों ने अमृत खाया)	(देवों को अमृत खिलाया)
४. शब्दकर्मक—विधिः वेदम् अध्यैत।	विधिं वेदम् अध्यापयत्।
(ब्रह्मा ने वेद पढ़ा)	(ब्रह्मा को वेद पढ़ाया)
५. अकर्मक—पृथ्वी सलिले आस्त।	पृथ्वीं सलिले आसयत्।
(पृथ्वी जल पर थी)	(पृथ्वी को जल पर रखा)

सूचना—उपर्युक्त उदाहरणों में अण्यन्त अवस्था का कर्ता ण्यन्त अवस्था में कर्म हो गया है। जैसे—शत्रवः > शत्रून्, स्वे > स्वान्, देवाः > देवान्, विधिः > विधिम्, पृथ्वी > पृथ्वीम्।

श्लोक का अर्थ—जिस श्री हरि (विष्णु) ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा, स्वजनों को वेद का अर्थ बताया, देवों को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया और पृथ्वी को जल पर रखा, वह मेरी गति है।

प्रत्युदाहरण—अण्यन्त । ण्यन्त	ण्यन्त
१. देवदत्तः ओदनं पचति ।	देवदत्तेन ओदनं पाचयति ।
(देवदत्त भात पकाता है)	(वह देवदत्त से भात पकवाता है)
२. गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तम् ।	गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः ।
(देवदत्त यज्ञदत्त को भेजता है)	(विष्णुमित्र देवदत्त से यज्ञदत्त को भिजवाता है)

उदाहरण १ में पच् धातु गति आदि अर्थ से बाहर है, अतः उसके साथ देवदत्तः > देवदत्तेन में कर्तृ० (१२९१) से तृतीया। उदाहरण २ में देवदत्तः णिजन्त गमयति का कर्ता है, अतः णिजन्त से फिर णिच् होने पर कर्म नहीं होगा। अतः देवदत्तः > देवदत्तेन। इस नियम के अनुसार अण्यन्त का कर्ता कर्म होता है, ण्यन्त का कर्ता नहीं।

(नीवह्योर्न, वा०) नी और वह् धातु के अण्यन्त के कर्ता को ण्यन्त होने पर कर्म नहीं होता है। गत्यर्थक होने से कर्म प्राप्त था। भृत्यो भारं नयति वहति वा। नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। (नौकर भार ले जाता है, ढोता है) (वह नौकर से बोझा लिवा जाता है)—नी और वह् के साथ निषेध होने से भृत्यः > भृत्येन बना। (नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः, वा०) जहाँ पर वह् धातु का कर्ता कोई नियन्ता (सारथि) होगा, वहाँ पूर्व वार्तिक से निषेध नहीं होगा, अर्थात् कर्ता को कर्म होगा। वाहाः रथं वहन्ति। वाहयति रथं वाहान् सूतः। (घोड़े रथ को ढोते हैं) (सारथि घोड़ों से रथ को ढुलवाता है)—*सूतः नियन्ता है, अतः वाहाः > वाहान्* कर्म होगा।

(आदिखाद्योर्न, वा०) अद् और खाद् धातु के अण्यन्तकर्ता को ण्यन्त अवस्था में कर्म नहीं होता है। अतः प्रयोज्य कर्ता में तृतीया होगी। ण्यन्त का कर्ता प्रयोजक कर्ता होता है। वटुः अन्नम् अत्ति खादति वा। वटुना अन्नम् आदयति खादयति वा। भक्षणार्थक होने पर भी इस निषेध के कारण वटुः > वटुना में तृतीया होगी।

(भक्षेरहिंसार्थस्य न, वा०) यदि भक्ष् धातु हिंसा (पीड़ा देना या दुःख पहुँचाना) अर्थ में नहीं है तो अण्यन्त का कर्ता ण्यन्त का कर्म नहीं होगा। अतः वहाँ पर तृतीया होगी। यदि भक्ष् धातु हिंसा (हानि पहुँचाना) अर्थ में होगी तो अण्यन्त का कर्ता ण्यन्त का कर्म होगा। दोनों प्रकार के उदाहरण क्रमशः ये हैं :—

१. बटुः अन्नं भक्षयति। बटुना अन्नं भक्षयति।
(छात्र अन्न खाता है) (वह छात्र से अन्न खिलवाता है)

२. बलीवर्दाः सस्यं भक्षयन्ति। भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्।
(बैल अनाज खाते हैं) (वह बैलों से पराया खेत चरवाता है)

प्रथम उदाहरण में बटुः > बटुना होगा और द्वितीय उदाहरण में पराया खेत चरवाने से हिंसा है, अतः बलीवर्दाः > बलीवर्दान् में द्वितीया होगी।

(जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्, वा०) जल्पति आदि धातुओं का अण्यन्त का कर्ता ण्यन्त में कर्म हो जाता है। पुत्रः धर्मं जल्पति भाषते वा। जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। (पुत्र धर्म कहता है) (देवदत्त पुत्र से धर्म कहवाता है)—इस नियम से पुत्रः > पुत्रम् कर्म हुआ।

(दृशेश्च, वा०) दृश् (देखना) धातु का अण्यन्त का कर्ता ण्यन्त में कर्म हो जाता है।

भक्ताः हरिं पश्यन्ति। दर्शयति हरिं भक्तान्।
(भक्त हरि को देखते हैं) (भक्तों को हरि का दर्शन कराता है)

इस नियम से भक्ताः > भक्तान् कर्म हुआ। सूचना—इस वार्तिक से सिद्ध होता है कि सूत्र में ज्ञान अर्थ से ज्ञानसामान्य (जानना) अर्थवाली धातुओं का ही ग्रहण होता है, ज्ञान-विशेष के बोधक स्मृ (स्मरण करना), घ्रा (सूँघना) आदि का ग्रहण नहीं होगा। अन्यथा दृश् (देखना) भी ज्ञान में आ जाता। स्मृ आदि के साथ तृतीया होगी। देवदत्तः स्मरति जिघ्रति वा। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन। (देवदत्त याद करता है, सूँघता है) (वह देवदत्त से याद कराता है, सुँघवाता है)।

यहाँ देवदत्तः> देवदत्तेन में तृतीया हुई।

(शब्दायतेर्न, वा०) शब्दायति का अण्यन्त का कर्ता ण्यन्त में कर्म नहीं होगा। अतः तृतीया होगी। शब्दायति (शब्दं करोति) धातु अकर्मक है, क्योंकि धातु के अर्थ में कर्म (शब्द) आ गया है। अकर्मक होने से प्राप्त कर्म का यह निषेध करता है।

देवदत्तः शब्दायते। शब्दाययति देवदत्तेन।
(देवदत्त शब्द करता है) (वह देवदत्त से हल्ला करवाता है)

इससे निषेध के कारण देवदत्तः> देवदत्तेन में तृतीया।

सूचना—इस सूत्र में अकर्मक धातुएँ वे मानी गई हैं, जिनका देश काल आदि से भिन्न कर्म संभव नहीं है। जो धातुएँ कर्म की अविवक्षा के कारण अकर्मक होती हैं, वे यहाँ अकर्मक नहीं मानी गई हैं। दोनों प्रकार के उदाहरण ये हैं:—

१. मासम् आस्ते देवदत्तः। मासम् आसयति देवदत्तम्।
(देवदत्त मास भर बैठता है) (देवदत्त को मास भर बैठाता है)

२. देवदत्तः पचति। देवदत्तेन पाचयति।
(देवदत्त पकाता है) (देवदत्त से पकवाता है)

प्रथम उदाहरण में मास कर्म होते हुए भी आस् अकर्मक है। अतः देवदत्तः> देवदत्तम् कर्म हुआ। द्वितीय उदाहरण में सकर्मक पच् धातु कर्म की अविवक्षा से अकर्मक है। उसका अकर्मक में ग्रहण न होने से देवदत्तः>देवदत्तेन में तृतीया होगी।

सूचना—सकर्मक धातुएँ निम्नलिखित चार कारणों से अकर्मक हो जाती हैं। १. धातु का अन्य अर्थ में प्रयोग, २. धातु के अर्थ से कर्म का संग्रह हो जाना, ३. प्रसिद्धि, ४. कर्म की अविवक्षा। धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया। (सि० कौ० आत्मनेपद०)

१२७१. हृक्रोरन्यतरस्याम् (१-४-५३)

हृ और कृ धातु का अण्यन्त का कर्ता ण्यन्त अवस्था में विकल्प से कर्म होता है। पक्ष में तृतीया होगी। भृत्यः कटं हरति करोति वा (नौकर चटाई ले जाता है या बनाता है)।

हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्।

(नौकर से चटाई ढुलवाता है या बनवाता है)।

यहाँ भृत्यः>भृत्यम्, भृत्येन हो जाता है। (अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्, वा०) अभि+वद् और दृश् धातु का अण्यन्त का कर्ता ण्यन्त आत्मनेपदी के साथ विकल्प से कर्म होता है। पक्ष में तृतीया होगी। भक्तः देवम् अभिवदति पश्यति वा (भक्त देवता को प्रणाम करता है या देखता है)।

अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा।

(वह भक्त से देवता को प्रणाम करवाता है या देवता को दिखाता है)—भक्तः> भक्तम्, भक्तेन होता है।

१२७२. अधिशीङ्स्थासां कर्म (१-४-४६)

अधि+शी, अधि+स्था और अधि+आस् धातुओं के आधार की कर्मसंज्ञा होती है। कर्म में द्वितीया। अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में सोते हैं, रहते हैं, बैठते हैं)—आधार वैकुण्ठ में द्वितीया।

१२७३. अभिनिविशश्च (१-४-४७)

अभि+नि+विश् धातु के आधार में द्वितीया होती है। अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग में प्रवृत्त होता है)—आधार सन्मार्ग में द्वितीया। सूचना—परिक्रयणे संप्रदानम्० (१३१०) सूत्र से मण्डूकप्लुति (मेंढक की कूद) से इस सूत्र में अन्यतरस्याम् (विकल्प से) की अनुवृत्ति करके व्यवस्थित-विभाषा (नियमित विकल्प) का आश्रय लेने से अभिनिविश् के साथ कहीं पर द्वितीया नहीं भी होती है। जैसे—पापेऽभिनिवेशः (पाप में प्रवृत्ति)—यहाँ पाप में द्वितीया नहीं हुई।

१२७४. उपान्वध्याङ्वसः (१-४-४८)

उपवस्, अनुवस्, अधिवस् और आवस् के आधार में द्वितीया होती है। उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में रहते हैं)–आधार वैकुण्ठ में द्वितीया। (अभुक्त्यर्थस्य न, वा०) उप + वस् का उपवास करना अर्थ होगा तो द्वितीया नहीं होगी। वने उपवसति (वन में उपवास करता है)–सप्तमी हुई है।

उभसर्वतसोः कार्या, धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ (वा०)

इन शब्दों के योग में द्वितीया होती है:–उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अध्यधि और अधोऽधः। तस्–प्रत्ययान्त उभ और सर्व अर्थात् उभयतः, सर्वतः, धिक्, आम्रेडितान्त (द्विरुक्त) उपरि, अधि और अधः शब्द अर्थात् उपर्युपरि, अध्यधि और अधोऽधः। सूचना–क्रिया को आधार मानकर जो विभक्तियाँ होती हैं, उन्हें कारक-विभक्ति कहते हैं। जो विभिन्न पदों (शब्दों) के आधार पर विभक्तियाँ होती हैं, उन्हें उपपद-विभक्ति कहते हैं। इस वार्तिक तथा आगे के द्वितीया के सूत्रों से होने वाली द्वितीया उपपद-विभक्ति है। इनमें किसी पद को मानकर द्वितीया वर्णित है।

इन स्थानों पर द्वितीया हुई है:—उभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं)। सर्वतः कृष्णम् (कृष्ण के चारों ओर ग्वाले हैं)। धिक् कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के अभक्त को धिक्कार है)। उपर्युपरि लोकं हरिः (हरि संसार के ऊपर है)। अध्यधि लोकम् (हरि संसार के अन्दर हैं)। अधोऽधो लोकम् (हरि संसार के नीचे नीचे हैं)। उपरि आदि तीनों शब्द समीप अर्थ में द्विरुक्त होते हैं।

(अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि, वा०) अभितः (दोनों ओर), परितः (चारों ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा (हाय) और प्रति (ओर) के योग में द्वितीया होती है। अभितः कृष्णम् (कृष्ण के दोनों ओर)। परितः कृष्णम् (कृष्ण के चारों ओर)। ग्रामं समया (गाँव के समीप)। निकषा लङ्काम् (लंका के समीप)। हा कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के अभक्त के लिए खेद है)। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित् (भूखे को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है)–प्रति के कारण द्वितीया। सभी स्थानों पर अभितः आदि के कारण द्वितीया है।

१२७५. अन्तरान्तरेणयुक्ते (२-३-४)

अन्तरा (बीच में) और अन्तरेण (विषय में, बिना, अतिरिक्त) के योग में द्वितीया होती है। अन्तरा त्वां मां हरिः (हरि तेरे और मेरे बीच में हैं)–अन्तरा के कारण त्वाम् माम् में द्वितीया। अन्तरेण हरिं न सुखम् (हरि के बिना सुख नहीं)–अन्तरेण के कारण हरिम् में द्वितीया है।

१२७६. कर्मप्रवचनीयाः (१-४-८३)

इससे आगे कर्मप्रवचनीय संज्ञा का अधिकार है। सूचना– कर्मप्रवचनीय का

अर्थ है–कर्म क्रियां प्रोक्तवन्तः कर्मप्रवचनीयाः, जिन्होंने कर्म अर्थात् क्रिया को कहा है। कर्मप्रवचनीय उपसर्ग और निपात शब्द हैं। कुछ विशेष अर्थों में इनकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, अतः वे उपसर्ग और गति-संज्ञक नहीं रहते हैं। ये कर्मप्रवचनीय क्रिया के द्योतक थे, परन्तु अब क्रिया के द्योतक नहीं रहते हैं। ये क्रिया द्वारा वर्णित संबन्ध-विशेष को कहते हैं। ये स्वतन्त्र शब्द के तुल्य प्रयोग में आते हैं। आकृति में उपसर्ग के तुल्य होने पर भी ये उपसर्ग से भिन्न होते हैं। इनका स्वतन्त्र प्रयोग होता है। इनके योग में कोई विभक्ति होती है। भर्तृहरि ने कर्मप्रवचनीय के विषय में कहा है कि–ये क्रिया के द्योतक नहीं हैं, न संबन्ध के वाचक हैं और न किसी क्रियापद का आक्षेप करते हैं, अपितु संबन्ध के भेदक हैं अर्थात् विभक्ति-विशेष के प्रयोजक हैं। 'क्रियाया द्योतको नायं, संबन्धस्य न वाचकः। नापि क्रियापदाक्षेपी, संबन्धस्य तु भेदकः। (वाक्यपदीय)।

१२७७. अनुर्लक्षणे (१–४–८४)

लक्षण (हेतु, कारण) अर्थ में अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यह गति और उपसर्ग संज्ञा का अपवाद है।

१२७८. कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया (२–३–८)

कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जपमनु प्रावर्षत् (जप के पश्चात् वर्षा हुई)–अनु कारण अर्थ में है, अतः जपम् में द्वितीया। जप के कारण वर्षा हुई। हेतौ (१२९८) से प्राप्त तृतीया का यह बाधक है। लक्षणेत्थं० (१२८२) से अनु के योग में द्वितीया हो सकती थी, परन्तु इस सूत्र से पुनः विधान हुआ है, अतः यह हेतौ से प्राप्त तृतीया का बाधक है।

१२७९. तृतीयार्थे (१–४–८५)

अनु जब तृतीया का अर्थ बताता है, तब वह कर्मप्रवचनीय होता है। नदीमन्ववसिता सेना (सेना नदी के किनारे पड़ी हुई है)–नद्या सह संबद्धा इत्यर्थः, अनु तृतीया के अर्थ में है, अतः नदीम् में द्वितीया।

१२८०. हीने (१–४–८६)

हीन अर्थ में अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। अतः द्वितीया। अनु हरिं सुराः (देवता हरि से हीन हैं)–अनु के कारण द्वितीया।

१२८१. उपोऽधिके च (१–४–८७)

अधिक और हीन अर्थ में उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। अधिक अर्थ में सप्तमी का आगे वर्णन किया गया है। उप हरिं सुराः (देवता हरि से हीन हैं)–हीन अर्थ में उप है, अतः द्वितीया।

१२८२. लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (१-४-९०)

लक्षण (ज्ञापक, चिह्न), इत्थंभूताख्यान (ऐसा हुआ, इसका वर्णन करना), भाग (अंश, हिस्सा) और वीप्सा (द्विरुक्ति, व्याप्तुम् इच्छा, प्रत्येक वस्तु के साथ संबन्ध करने की इच्छा) अर्थों में प्रति, परि और अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। लक्षण में–वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत् (वृक्ष की ओर बिजली चमक रही है)–वृक्ष बिजली चमकने की दिशा का लक्षण (ज्ञापक) है, अतः प्रति आदि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा और वृक्षम् में द्वितीया। आगे के उदाहरणों में भी इसी प्रकार द्वितीया है। इत्थभूताख्यान मे–भक्तो विष्णुं प्रति परि अनु वा (भक्त विष्णु की भक्ति से युक्त है)–विष्णुम् मे द्वितीया। भक्त की भक्ति के स्वरूप का वर्णन है। भाग अर्थ में–लक्ष्मीर्हरिं प्रति परि अनु वा (लक्ष्मी हरि का भाग है, अर्थात् हरि लक्ष्मी के स्वामी हैं)—भाग अर्थ में हरिम् मे द्वितीया। वीप्सा में–वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष को सींचता है)–वीप्सा (द्विरुक्ति) होने से दोनों वृक्षम् में द्वितीया। प्रति आदि की कर्मप्रवचनीय सज्ञा होने से उपसर्ग संज्ञा नहीं रही, अतः उपसर्गात् सुनोति० (८-३-६५) से सिञ्चति के स् को ष् नहीं हुआ। प्रत्युदाहरण–परिषिञ्चति (चारों ओर सींचता है)—में लक्षण आदि अर्थ न होने के कारण उपसर्ग संज्ञा होने से उपसर्गात्० (८-३-६५) से स् को ष्।

१२८३. अभिरभागे (१-४-९१)

भाग अर्थ को छोड़कर शेष (लक्षण, इत्थंभूताख्यान, वीप्सा) अर्थों में अभि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। लक्षण में—हरिमभिवर्तते (हरि के अनुकूल है)। इत्थंभूताख्यान में—भक्तो हरिमभि (भक्त हरि की भक्ति से युक्त है)। वीप्सा मे—देवं देवमभिसिञ्चति (प्रत्येक देव को स्नान कराता है)। अभि की उपसर्गसज्ञा न होने से उपसर्गात्० (८–३–६५) से स् को ष् नहीं। प्रत्युदाहरण—यदत्र ममाभिष्यात् तद् दीयताम् (इसमें जो मेरा हिस्सा हो, वह दीजिए)—भाग अर्थ होने से उपसर्ग संज्ञा और स् को ष्, उपसर्गप्रादुर्भ्याम्० (८–३–८७) से।

१२८४. अधिपरी अनर्थकौ (१-४-९३)

अनर्थक अधि और परि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। कुतोऽध्यागच्छति (कहाँ से आता है?), कुतः पर्यागच्छति (कहाँ से आता है?)—दोनों उदाहरणों में जो आगच्छति का अर्थ है, वही अध्यागच्छति (आता है) और पर्यागच्छति (आता है) का है, अतः अधि और परि अनर्थक हैं। इनकी उपसर्ग या गति संज्ञा नहीं रही। अतः अधि और परि को गतिर्गतौ (८–१–७०) से निघात (अनुदात्त) नहीं हुआ। यदि गति संज्ञा होती तो आ (आङ्) को गति मानकर अधि और परि गतिसंज्ञकों को अनुदात्त हो जाता।

१२९१. कर्तृकरणयोस्तृतीया (२-३-१८)

अनुक्त कर्ता और करण में तृतीया होती है। रामेण बाणेन हतो वाली (राम ने बाण से वाली को मारा)—हतः (हन्+क्त) में क्त प्रत्यय कर्मवाच्य में है, अतः कर्म उक्त है और कर्ता अनुक्त। अनुक्त कर्ता होने से राम में तृतीया। साधकतम होने से बाण करण है। करण में तृतीया।

(प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्, वा०) प्रकृति आदि शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है। प्रकृत्या चारुः (स्वभाव से सुन्दर)—प्रकृति में तृतीया। इसी प्रकार प्रायेण याज्ञिकः (प्रायः याज्ञिक है), गोत्रेण गार्ग्यः (गोत्र से गार्ग्य है), समेनैति (सम मार्ग से जाता है), विषमेणैति (विषम मार्ग से जाता है), द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति (दो द्रोण अर्थात् तोल-विशेष के भाव से अन्न खरीदता है), सुखेन याति (सुखपूर्वक जाता है), दुःखेन याति (दुःखपूर्वक जाता है)। सभी स्थानों पर इस वार्तिक से तृतीया।

१२९२. दिवः कर्म च (१-४-४३)

दिव् (जुआ खेलना) धातु के साधकतम कारक की कर्म और करण संज्ञा होती है। अतः दिव् के साथ द्वितीया और तृतीया दोनों होंगी। अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति (पासों से जुआ खेलता है)—द्वितीया और तृतीया।

१२९३. अपवर्गे तृतीया (२-३-६)

अपवर्ग का अर्थ है फलप्राप्ति या कार्य की सिद्धि। फलप्राप्ति अर्थ बताने के लिए काल और अध्वा (दूरी) वाचक शब्दों के अत्यन्तसंयोग (लगातार अर्थ) में तृतीया विभक्ति होती है अर्थात् समय और दूरीवाचक शब्दों में तृतीया होगी। अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः (एक दिन में या एक कोस भर में अनुवाक पढ़ लिया)—अह्ना और क्रोशेन में तृतीया। अनुवाक ऋग्वेद के मन्त्रों का एक विभाजन है, इसमें मन्त्रों के कई सूक्त होते हैं। प्रत्युदाहरण—मासम् अधीतो नायातः (एक महीने भर पढ़ा, पर समझ में नहीं आया)—यहाँ पर कार्यसिद्धि नहीं हुई है, अतः कालाध्वनो० (१२८८) से द्वितीया है।

१२९४. सहयुक्तेऽप्रधाने (२-३-१९)

सह (साथ) अर्थ वाले शब्दों (सह, साकम्, सार्धम्, समम् आदि) के योग में अप्रधान (गौण, सहकारी) में तृतीया होती है। पुत्रेण सहागतः पिता (पिता पुत्र-सहित आया)—पिता प्रधान (मुख्य) है और पुत्र अप्रधान (गौण), अतः पुत्र में तृतीया। सूचना—पाणिनि ने वृद्धो यूना० (१-२-६५) सूत्र में सह शब्द के बिना भी यूना में तृतीया (युवन्+तृ० एक०) की है, इससे ज्ञात होता है कि जहाँ पर सह का अर्थ रहता है, वहाँ तृतीया होती है। सह आदि शब्द न होने पर भी ऐसे स्थानों पर तृतीया होगी। सह का अध्याहार (आक्षेप) कर लिया जाता है।

१२९५. येनाङ्गविकारः (२–३–२०)

जिस अंग में विकार से अंगी (व्यक्ति) विकृत दिखाई पड़ता है, उस अंग में तृतीया होती है। अक्ष्णा काणः (वह आँख से काना है, अर्थात् आँख-सम्बन्धी काणत्व से युक्त है)। इस सूत्र में अंग का अर्थ अंगी (अंगों वाला, व्यक्ति) है। अतः अक्षि काणम् अस्य (इसकी एक आँख कानी है) में तृतीया नहीं हुई।

१२९६. इत्थंभूतलक्षणे (२–३–२१)

जिस चिह्न या लक्षण के द्वारा किसी विशेष अवस्था का बोध कराया जाता है, उस चिह्न में तृतीया होती है। जटाभिस्तापसः (जटाओं से तपस्वी ज्ञात होता है)– जटा चिह्न में तृतीया।

१२९७. संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि (२–३–२२)

सम्+ज्ञा के कर्म में विकल्प से तृतीया होती है। पक्ष में द्वितीया होगी। पित्रा पितरं वा संजानीते (पिता को अच्छी तरह जानता है)–पित्रा और पितरम् में तृतीया तथा द्वितीया।

१२९८. हेतौ (२–३–२३)

कारण अर्थ में तृतीया होती है। सूचना–करण और हेतु मे अन्तर है, अतएव करण में तृतीया कहने के बाद हेतु में तृतीया कही गई है। (१) हेतु–द्रव्य, गुण और क्रिया तीनों का साधक हो सकता है। निर्व्यापार (क्रिया-हीन) और सव्यापार (क्रिया-युक्त) दोनों प्रकार का होता है। (२) करण–केवल क्रिया का साधक होता है। केवल सव्यापार (क्रियायुक्त) होता है। दण्डेन घटः (दंड से घड़ा, दंड घड़े का हेतु है)–दण्ड द्रव्य है और सव्यापार है। दण्ड में तृतीया। पुण्येन दृष्टो हरिः (पुण्य से हरि को देखा)–पुण्य दर्शन-क्रिया का हेतु है, परन्तु निर्व्यापार (क्रिया-हीन) है। पुण्य में हेतु अर्थ में तृतीया। इस सूत्र में फल (प्रयोजन) को भी हेतु माना गया है। अध्ययनेन वसति (अध्ययन के निमित्त रहता है)–अध्ययन फल है, उसमें तृतीया होती है।

(गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका) वाक्य में क्रिया का प्रयोग न हो और वह गम्यमान (जिसका अर्थ प्रतीत होता हो) हो तो भी वह कारक–विभक्तियों का कारण होती है। अलं श्रमेण (श्रम करना व्यर्थ है, परिश्रम से यह काम सिद्ध नहीं होगा)–श्रमेण साध्यं नास्ति। साधन-क्रिया के प्रति श्रम करण है, अतः उसमें तृतीया है। शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः (बछड़ों को सौ सौ की संख्या में बाँटकर जल पिलाता है)–शतेन परिच्छिद्य (सौ सौ में बाँट कर), परिच्छिद्य क्रिया का शत करण है, उसमें तृतीया।

(अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया, वा०) अशिष्ट व्यवहार (अनुचित या अनैतिक आचरण) में दाण् (दा, देना) धातु के प्रयोग में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया होती है। दास्या संयच्छते कामुकः (कामुक व्यक्ति दासी

को, प्रलोभनार्थ धन, देता है)–दास्या में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया है। जहाँ पर शिष्ट या धर्मानुकूल व्यवहार होगा, वहाँ पर चतुर्थी ही होगी। भार्यायै संप्रयच्छति (भार्या को धन देता है)–संप्रदान में चतुर्थी।

तृतीया विभक्ति समाप्त।

चतुर्थी विभक्ति

१२९९. कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम् (१–४–३२)

कर्ता दान (देना)–क्रिया के कर्म के लिए जिसकी अभिलाषा करता है अर्थात् जिसको दान देना चाहता है, वह संप्रदान कहलाता है।

१३००. चतुर्थी संप्रदाने (२–३–१३)

संप्रदान कारक (प्राप्तिकर्ता) में चतुर्थी होती है। विप्राय गां ददाति (ब्राह्मण को गाय देता है)–विप्र में चतुर्थी। अनुक्त संप्रदान में ही चतुर्थी होती है। दानीयो विप्रः (दान के योग्य ब्राह्मण)–दीयते अस्मै इति–दानीयः। अनीयर् प्रत्यय के द्वारा संप्रदान उक्त है, अतः चतुर्थी नहीं हुई। प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा।

(क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम्, वा०) कर्ता क्रिया (कार्य) के द्वारा जिसको चाहता है, वह भी संप्रदान कहलाता है। पत्ये शेते (पति के लिए अर्थात् पति को प्रसन्न करने के लिए सोती है)–क्रिया के द्वारा पति अभिप्रेत है, उसमें चतुर्थी। (यजेः कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा, वा०) यज् धातु के कर्म की करण संज्ञा होती है और संप्रदान की कर्म संज्ञा। पशुना रुद्रं यजते (पशुं रुद्राय ददाति, रुद्र के लिए पशु देता है)–कर्म पशु में तृतीया और संप्रदान रुद्र में द्वितीया।

१३०१. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः (१–४–३३)

रुच् (अच्छा लगना) अर्थ वाली धातुओं के योग में प्रीयमाण (प्रसन्न होने वाला) व्यक्ति संप्रदान कहलाता है। हरये रोचते भक्तिः (हरि को भक्ति अच्छी लगती है)–हरि में चतुर्थी। अन्यकर्तृकोऽभिलाषो रुचिः। हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री। अन्य के द्वारा उत्पन्न की हुई अभिलाषा रुचि है। हरि में विद्यमान प्रसन्नता को उत्पन्न करने-वाली भक्ति है। भक्ति से हरि प्रसन्न होते हैं। प्रत्युदाहरण—देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि (देवदत्त को रास्ते में लड्डू अच्छा लगता है)–प्रीयमाण देवदत्त में चतुर्थी होगी, पथि (मार्ग में) नहीं।

१३०२. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः (१-४-३४)

श्लाघ् (प्रशंसा करना), ह्नुङ् (छिपाना), स्था (रुकना) और शप् (उलाहना देना). धातुओं के प्रयोग में कर्ता जिसको अपना भाव प्रकट करना चाहता है, उसकी संप्रदान संज्ञा होती है। गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा (गोपी कामभाव के कारण (१) कृष्ण की प्रशंसा करती है, (२) कृष्ण के लिए अपने आपको छिपाती है कि कृष्ण से अलग मिल सके, (३) कृष्ण के लिए रुकती है अर्थात् कृष्ण की प्रतीक्षा करती है, (४) कृष्ण को उलाहना देती है)-कृष्ण में चतुर्थी। प्रत्युदाहरण-देवदत्ताय श्लाघते पथि (मार्ग में देवदत्त की प्रशंसा करता है)-देवदत्त में चतुर्थी होगी, मार्ग में नहीं।

१३०३. धारेरुत्तमर्णः (१-४-३५)

धारयति (धृ + णिच्, ऋणी होना) धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण (ऋणदाता, महाजन) की संप्रदान संज्ञा होती है। भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (हरि भक्त के लिए मोक्ष धारण करते हैं, अर्थात् भक्त को मोक्ष देने के लिए ऋणी हैं)—उत्तमर्ण भक्त में चतुर्थी। प्रत्युदाहरण—देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे (गाँव में देवदत्त का सौ रु० ऋणी है)—उत्तमर्ण देवदत्त में चतुर्थी होगी। ग्राम उत्तमर्ण नहीं है, अतः चतुर्थी नहीं होगी।

१३०४. स्पृहेरीप्सितः (१-४-३६)

स्पृह् (चाहना) धातु के योग में ईप्सित (इष्ट) पदार्थ की संप्रदान संज्ञा होती है। पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों को चाहता है)—पुष्पेभ्यः में चतुर्थी। प्रत्युदाहरण—पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति (वन में फूलों को चाहता है)—वन ईप्सित नहीं है, अतः उसमें चतुर्थी नहीं हुई। सूचना—यह चतुर्थी ईप्सित (अभीष्ट) अर्थ में होती है। ईप्सिततम (बहुत अधिक इष्ट) अर्थ में द्वितीया ही होगी। पुष्पाणि स्पृहयति (फूलों को बहुत अधिक चाहता है)—कर्तुरीप्सिततमं० (१२६५) से द्वितीया।

१३०५. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः (१-४-३७)

क्रुध् (क्रोध करना), द्रुह् (द्रोह करना), ईर्ष्य् (ईर्ष्या करना) और असूय (गुणों में दोष निकालना) धातुओं और इन अर्थों वाली अन्य धातुओं के प्रयोग में जिस पर क्रोध आदि किया जाए, उसे संप्रदान कहते हैं। हरये क्रुध्यति द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति वा (वह हरि पर क्रोध करता है, उससे द्रोह करता है, ईर्ष्या करता है या उसके दोष निकालता है)—क्रोध का पात्र हरि है, अतः उसमें चतुर्थी। प्रत्युदाहरण—भार्याम् ईर्ष्यति, मैनामन्योऽद्राक्षीदिति (दूसरे उसकी पत्नी को देखें, वह यह सहन नहीं करता है)—क्रोध का पात्र भार्या नहीं है, अतः उसमें चतुर्थी नहीं होगी। क्रोधोऽमर्षः। द्रोहोऽपकारः। ईर्ष्याऽक्षमा। असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्।

क्रोध का अर्थ है अमर्ष (गुस्सा), द्रोह का अर्थ है अपकार, ईर्ष्या का अर्थ है अक्षमा (असहिष्णुता) और असूया का अर्थ है गुणों में दोष निकालना । द्रोह आदि भी क्रोध से उत्पन्न ही लिये जाएँगे, अतः सूत्र में सामान्य रूप से कहा गया है—यं प्रति कोपः (जिस पर क्रोध किया जाय)।

१३०६. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म (१–४–३८)

उपसर्ग-युक्त क्रुध् और द्रुह् धातु के योग में जिस पर क्रोध किया जाता है, उसकी कर्मसंज्ञा होती है । क्रूरम् अभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति (क्रूर पर क्रोध करता है, उससे द्रोह करता है)—क्रूरम् में द्वितीया ।

१३०७. राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः (१–४–३९)

राध् और ईक्ष् धातु जब 'शुभाशुभ विचारना' अर्थ में हों तो जिसके विषय में शुभाशुभ-विषयक प्रश्न होता है, उसकी संप्रदान संज्ञा होती है । संप्रदान संज्ञा होने से चतुर्थी । विप्रश्न का अर्थ है—विविध प्रश्न पूछना अर्थात् शुभाशुभ भाग्य-सम्बन्धी प्रश्न पूछना । कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा (गर्ग कृष्ण के शुभाशुभ का विचार करता है)—इस नियम से कृष्ण में चतुर्थी ।

१३०८. प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता (१–४–४०)

प्रति + श्रु और आ + श्रु (प्रतिज्ञा करना) के योग में प्रवर्तक (प्रेरक) की संप्रदान संज्ञा होती है । प्रवर्तक पहले किसी कार्य के लिए अनुरोध करता है, तब दूसरा वैसा करने की प्रतिज्ञा करता है । विप्राय गां प्रतिशृणोति, आशृणोति वा (ब्राह्मण को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है)—इस सूत्र से प्रेरक विप्र में चतुर्थी । ब्राह्मण ने यजमान से कहा कि 'मुझे गाय दान दो' तब यजमान ब्राह्मण को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है ।

१३०९. अनुप्रतिगृणश्च (१–४–४१)

अनु + गृ और प्रति + गृ (प्रोत्साहित करना) के योग में पूर्व व्यापार (कार्य) के कर्ता की संप्रदान संज्ञा होती है । होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति वा (होता को प्रोत्साहित करता है)—इससे होतृ में चतुर्थी । होता पहले मन्त्र पढ़ता है और बाद में अध्वर्यु मन्त्रपाठ में उसका साथ देकर उसे प्रोत्साहित करता है ।

१३१०. परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् (१–४–४४)

परिक्रयण (कुछ निश्चित समय के लिए किसी को वेतन देकर उसे खरीदना या अपना बनाना) अर्थ में साधकतम कारक (करण) की विकल्प से संप्रदान संज्ञा होती है । शतेन शताय वा परिक्रीतः (सौ रुपये वेतन पर नौकर रखा)—इससे विकल्प से शत में चतुर्थी, पक्ष में तृतीया । (तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या, वा०) जिस

प्रयोजन के लिए कोई काम किया जाय, उस प्रयोजन में चतुर्थी होती है। मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि को भजता है)—मुक्ति प्रयोजन है, अतः उसमें चतुर्थी। (क्लृपि संपद्यमाने च, वा०) क्लृप् (उत्पन्न होना, समर्थ होना, होना) धातु और इस अर्थ वाली अन्य धातुओं के साथ संपद्यमान (जो उत्पन्न या परिणत होता है) में चतुर्थी होती है। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, संपद्यते, जायते इत्यादि (भक्ति ज्ञान के लिए होती है)—कल्प् आदि के कारण ज्ञान में चतुर्थी। (उत्पातेन ज्ञापिते च, वा०) उत्पात (शुभाशुभ-सूचक कोई भौतिक विकार) से सूचित होने वाले अर्थ में चतुर्थी होती है। वाताय कपिला विद्युत् (चितकबरे रंग की बिजली आँधी की सूचक है)—कपिला विद्युत् उत्पात है, उससे वात (आँधी) की सूचना मिलने से वात में चतुर्थी। (हितयोगे च, वा०) हित शब्द के योग में चतुर्थी होती है। ब्राह्मणाय हितम् (ब्राह्मण के लिए हितकारी, यज्ञादि)—हित के कारण चतुर्थी। चतुर्थी तदर्थार्थ० (९१२) में सुख के साथ भी चतुर्थी तत्पुरुष समास का विधान है। अतः ब्राह्मणाय सुखम् (ब्राह्मण के लिए सुखकर) में सुख के साथ भी चतुर्थी होती है।

१३११. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (२-३-१४)

क्रियार्थक क्रिया (एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया) उपपद (पास में उच्चारित पद) हो और उस तुमुन्-प्रत्ययान्त का प्रयोग न किया गया हो तो उसके कर्म में चतुर्थी होती है। स्थानिनः का अर्थ है जिसका स्थान हो, पर प्रयोग न किया गया हो, अतः वह अप्रयुज्यमान है। इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि जहाँ पर प्रयोग में तुमुन् प्रत्ययान्त का अर्थ विद्यमान हो, पर उसका प्रयोग न किया गया हो तो उसके कर्म में चतुर्थी होती है। फलेभ्यो याति (फलानि आहर्तुं याति, फल लाने के लिए जाता है)–याति क्रियार्थक क्रिया है, क्योंकि वह फल लाना क्रिया के लिए है और वह उपपद है तथा तुमुन्-प्रत्ययान्त आहर्तुम् का प्रयोग नहीं हुआ है, अतः उसके कर्म फल में चतुर्थी है। नमस्कुर्मो नृसिंहाय (नृसिंहम् अनुकूलयितुं नमस्कुर्मः, नृसिंह को अनुकूल बनाने के लिए नमस्कार करते हैं)–पूर्ववत् यहाँ पर भी नृसिंह में चतुर्थी। इसी प्रकार स्वयंभुवे नमस्कृत्य (ब्रह्मा को अनुकूल बनाने को लिए नमस्कार करके)–पूर्ववत् स्वयंभू में चतुर्थी।

१३१२. तुमर्थाच्च भाववचनात् (२-३-१५)

तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में भाववचनाश्च (३-३-११) सूत्र से जो घञ् (अ) प्रत्यय होता है, तदन्त शब्द से चतुर्थी होती है। यागाय याति (यष्टुं याति, यज्ञ करने के लिए जाता है)–यज्+घञ् (अ)=याग, घञ्-प्रत्ययान्त है, तुमुन् के अर्थ में घञ् है, अतः चतुर्थी।

क्रोध का अर्थ है अमर्ष (गुस्सा), द्रोह का अर्थ है अपकार, ईर्ष्या का अर्थ है अक्षमा (असहिष्णुता) और असूया का अर्थ है गुणों में दोष निकालना। द्रोह आदि भी क्रोध से उत्पन्न ही लिये जाएँगे, अतः सूत्र में सामान्य रूप से कहा गया है—यं प्रति कोपः (जिस पर क्रोध किया जाय)।

१३०६. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म (१–४–३८)

उपसर्ग-युक्त क्रुध् और द्रुह् धातु के योग में जिस पर क्रोध किया जाता है, उसकी कर्मसंज्ञा होती है। क्रूरम् अभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति (क्रूर पर क्रोध करता है, उससे द्रोह करता है)—क्रूरम् में द्वितीया।

१३०७. राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः (१–४–३९)

राध् और ईक्ष् धातु जब 'शुभाशुभ विचारना' अर्थ में हों तो जिसके विषय में शुभाशुभ-विषयक प्रश्न होता है, उसकी संप्रदान संज्ञा होती है। संप्रदान संज्ञा होने से चतुर्थी। विप्रश्न का अर्थ है—विविध प्रश्न पूछना अर्थात् शुभाशुभ भाग्य-सम्बन्धी प्रश्न पूछना। कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा (गर्ग कृष्ण के शुभाशुभ का विचार करता है)—इस नियम से कृष्ण में चतुर्थी।

१३०८. प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता (१–४–४०)

प्रति + श्रु और आ + श्रु (प्रतिज्ञा करना) के योग में प्रवर्तक (प्रेरक) की संप्रदान संज्ञा होती है। प्रवर्तक पहले किसी कार्य के लिए अनुरोध करता है, तब दूसरा वैसा करने की प्रतिज्ञा करता है। विप्राय गां प्रतिशृणोति, आशृणोति वा (ब्राह्मण को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है)—इस सूत्र से प्रेरक विप्र में चतुर्थी। ब्राह्मण ने यजमान से कहा कि 'मुझे गाय दान दो' तब यजमान ब्राह्मण को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है।

१३०९. अनुप्रतिगृणश्च (१–४–४१)

अनु + गृ और प्रति + गृ (प्रोत्साहित करना) के योग में पूर्व व्यापार (कार्य) के कर्ता की संप्रदान संज्ञा होती है। होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति वा (होता को प्रोत्साहित करता है)—इससे होतृ में चतुर्थी। होता पहले मन्त्र पढ़ता है और बाद में अध्वर्यु मन्त्रपाठ में उसका साथ देकर उसे प्रोत्साहित करता है।

१३१०. परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् (१–४–४४)

परिक्रयण (कुछ निश्चित समय के लिए किसी को वेतन देकर उसे खरीदना या अपना बनाना) अर्थ में साधकतम कारक (करण) की विकल्प से संप्रदान संज्ञा होती है। शतेन शताय वा परिक्रीतः (सौ रुपये वेतन पर नौकर रखा)—इससे विकल्प से शत में चतुर्थी, पक्ष में तृतीया। (तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या, वा०) जिस

प्रयोजन के लिए कोई काम किया जाय, उस प्रयोजन में चतुर्थी होती है। मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि को भजता है)—मुक्ति प्रयोजन है, अतः उसमें चतुर्थी। (क्लृपि संपद्यमाने च, वा०) क्लृप् (उत्पन्न होना, समर्थ होना, होना) धातु और इस अर्थ वाली अन्य धातुओं के साथ संपद्यमान (जो उत्पन्न या परिणत होता है) में चतुर्थी होती है। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, संपद्यते, जायते इत्यादि (भक्ति ज्ञान के लिए होती है)—कल्प् आदि के कारण ज्ञान में चतुर्थी। (उत्पातेन ज्ञापिते च, वा०) उत्पात (शुभाशुभ-सूचक कोई भौतिक विकार) से सूचित होने वाले अर्थ में चतुर्थी होती है। वाताय कपिला विद्युत् (चितकबरे रंग की बिजली आँधी की सूचक है)—कपिला विद्युत् उत्पात है, उससे वात (आँधी) की सूचना मिलने से वात में चतुर्थी। (हितयोगे च, वा०) हित शब्द के योग में चतुर्थी होती है। ब्राह्मणाय हितम् (ब्राह्मण के लिए हितकारी, यज्ञादि)—हित के कारण चतुर्थी। चतुर्थी तदर्थार्थ० (९१२) में सुख के साथ भी चतुर्थी तत्पुरुष समास का विधान है। अतः ब्राह्मणाय सुखम् (ब्राह्मण के लिए सुखकर) में सुख के साथ भी चतुर्थी होती है।

१३११. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (२–३–१४)

क्रियार्थक क्रिया (एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया) उपपद (पास में उच्चारित पद) हो और उस तुमुन्-प्रत्ययान्त का प्रयोग न किया गया हो तो उसके कर्म में चतुर्थी होती है। स्थानिनः का अर्थ है जिसका स्थान हो, पर प्रयोग न किया गया हो, अतः वह अप्रयुज्यमान है। इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि जहाँ पर प्रयोग में तुमुन् प्रत्ययान्त का अर्थ विद्यमान हो, पर उसका प्रयोग न किया गया हो तो उसके कर्म में चतुर्थी होती है। फलेभ्यो याति (फलानि आहर्तुं याति, फल लाने के लिए जाता है)—याति क्रियार्थक क्रिया है, क्योंकि वह फल लाना क्रिया के लिए है और वह उपपद है तथा तुमुन्-प्रत्ययान्त आहर्तुम् का प्रयोग नहीं हुआ है, अतः उसके कर्म फल में चतुर्थी है। नमस्कुर्मो नृसिंहाय (नृसिंहम् अनुकूलयितुं नमस्कुर्मः, नृसिंह को अनुकूल बनाने के लिए नमस्कार करते हैं)—पूर्ववत् यहाँ पर भी नृसिंह में चतुर्थी। इसी प्रकार स्वयंभुवे नमस्कृत्य (ब्रह्मा को अनुकूल बनाने को लिए नमस्कार करके)—पूर्ववत् स्वयंभू में चतुर्थी।

१३१२. तुमर्थाच्च भाववचनात् (२–३–१५)

तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में भाववचनाश्च (३–३–११) सूत्र से जो घञ् (अ) प्रत्यय होता है, तदन्त शब्द से चतुर्थी होती है। यागाय याति (यष्टुं याति, यज्ञ करने के लिए जाता है)—यज् + घञ् (अ) = याग, घञ्-प्रत्ययान्त है, तुमुन् के अर्थ में घञ् है, अतः चतुर्थी।

(जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्, वा०) जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना, हटना) और प्रमाद (असावधानी करना) अर्थवाली धातुओं के योग में जुगुप्सा आदि के विषय में पंचमी होती है। पापाद् जुगुप्सते, विरमति (पाप से घृणा करता है, पाप करने से रुकता है)-पंचमी। धर्मात् प्रमाद्यति (धर्म से प्रमाद करता है)-धर्मात् में पंचमी।

१३१८. भीत्रार्थानां भयहेतुः (१-४-२५)

भी (डरना) और त्रै (बचाना, रक्षा करना), इन धातुओं तथा इन अर्थों वाली अन्य धातुओं के प्रयोग में भय का कारण अपादान होता है। अतः उसमें पंचमी होती है। चोराद् बिभेति (चोर से डरता है), चोरात् त्रायते (चोर से बचाता है)-भय के कारण चोर में पंचमी। प्रत्युदाहरण—अरण्ये बिभेति त्रायते वा (जंगल में डरता है या जंगल में बचाता है)-अरण्य भय का कारण नहीं है, अतः उसमें पंचमी नहीं हुई।

१३१९. पराजेरसोढः (१-४-२६)

परा+जि (हार मानना) धातु के योग में असह्य वस्तु (जिससे हार माने या ऊब जाए) की अपादान संज्ञा होती है। अतः पंचमी। अध्ययनात् पराजयते (पढ़ाई से हार मानता है)-असह्य अध्ययन में पंचमी। प्रत्युदाहरण-शत्रून् पराजयते (शत्रुओं को हराता है)-शत्रु असह्य वस्तु नहीं है, अतः पंचमी न होकर द्वितीया हुई।

१३२०. वारणार्थानामीप्सितः (१-४-२७)

वारण (रोकना, हटाना) अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में इष्ट वस्तु (जिससे किसी को हटाया जाय) में पंचमी होती है। यवेभ्यो गां वारयति (जौ से गाय को हटाता है)-इष्ट वस्तु यव में पंचमी। प्रत्युदाहरण-यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे (खेत में गाय को जौ से हटाता है)—क्षेत्र इष्ट वस्तु नहीं है, अतः उसमें पंचमी नहीं हुई।

१३२१. अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति (१-४-२८)

अन्तर्धि (छिपना, ओट में होना) अर्थ में जिससे अपने आपको छिपाना चाहता है, उसमें पंचमी होती है। मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण माता से छिपता है)-माता से छिपना चाहता है, अतः मातुः में पंचमी है। प्रत्युदाहरण-चौरान्न दिदृक्षते (चोरों को नहीं देखना चाहता)-यहाँ पर व्यवधान या ओट में होना अर्थ नहीं है, अतः पंचमी नहीं हुई। सूत्र में अदर्शनम् इच्छति (छिपना चाहता है) का अभिप्राय यह है कि छिपने की इच्छा होने पर यदि वह दिखाई पड़ जाता है, तब भी पंचमी होती है। देवदत्ताद् यज्ञदत्तो निलीयते (देवदत्त से यज्ञदत्त छिपता है)-यहाँ दिखाई पड़ जाने पर भी पंचमी होगी।

१३२२. आख्यातोपयोगे (१-४-२९)

नियमपूर्वक विद्या-ग्रहण करने में अध्यापक या शिक्षक में पंचमी होती है। आख्याता का अर्थ है-वक्ता, उपदेष्टा, शिक्षक या अध्यापक। उपयोग का अर्थ है-ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करते हुए विद्याध्ययन करना। उपाध्यायाद् अधीते (गुरु से पढ़ता है)-उपाध्याय में पंचमी। प्रत्युदाहरण-नटस्य गाथां शृणोति (नट की गाथा सुनता है)-यहाँ पर नियमपूर्वक विद्या-ग्रहण नहीं है, अतः पंचमी न होने से षष्ठी हुई।

१३२३. जनिकर्तुः प्रकृतिः (१-४-३०)

उत्पन्न होने वाली वस्तु के कारण में पंचमी होती है। जनि का अर्थ है-जन्म, उत्पत्ति। प्रकृति का अर्थ है-आदि कारण, मूल कारण या कारण। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मा से प्रजा उत्पन्न होती है)-कारण ब्रह्मा में पंचमी।

१३२४. भुवः प्रभवः (१-४-३१)

भू धातु (होना, उत्पन्न होना) के उत्पत्तिस्थान में पंचमी होती है। भू का अर्थ है-प्रकट होना, उत्पन्न होना। प्रभव का अर्थ है-उत्पत्ति स्थान या उद्गम स्थान। हिमवतो गङ्गा प्रभवति (हिमालय से गङ्गा निकलती है)-उद्गम स्थान हिमवत् में पंचमी।

१. (ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च, वा०) ल्यप् या क्त्वा प्रत्ययान्त का अर्थ गुप्त रहने पर कर्म और आधार में पंचमी होती है। प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते, महल पर चढ़कर देखता है, महल से देखता है)-यहाँ पर आरुह्य का अर्थ गुप्त है, अतः कर्म प्रासाद में पंचमी। आसनात् प्रेक्षते (आसने उपविश्य प्रेक्षते, आसन पर बैठकर देखता है, आसन से देखता है)-उपविश्य का अर्थ गुप्त रहने से आधार आसन में पंचमी। श्वशुरात् जिह्रेति (श्वशुरं वीक्ष्य०, श्वशुर को देखकर लज्जा करती है, श्वशुर से शरमाती है)-वीक्ष्य का अर्थ गुप्त होने से कर्म श्वशुर में पंचमी। **२. (गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम्, वा०)** गम्यमान (प्रकरण आदि से ज्ञेय, understood) क्रिया भी कारक-विभक्तियों का कारण होती है। कस्मात् त्वम् ? (तुम कहाँ से आ रहे हो ?) नद्याः (नदी से आ रहा हूँ)-ज्ञेय क्रिया आगतः के आधार पर कस्मात् और नद्याः में पंचमी। **३. (यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पंचमी, वा०)** जिसको आधार मानकर मार्ग या काल की दूरी नापी जाती है, उस आधारसूचक शब्द (देश या काल) में पंचमी होती है। **४. (तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ, वा०)** ऐसे पंचमी से युक्त मार्ग की दूरी-वाचक शब्द में प्रथमा और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। **५. (कालात् सप्तमी च वक्तव्या, वा०)** ऐसी पंचमी से युक्त कालवाचक शब्द में सप्तमी होती है। वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा (वन से गाँव एक योजन या चार कोस है)-वन में पंचमी तथा मार्ग की दूरी के बोधक योजन में प्रथमा और सप्तमी। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे (कार्तिक-पूर्णिमा से अगहन-पूर्णिमा एक मास में होती है)-आधार कार्तिकी में पंचमी और कालवाचक मास मे सप्तमी।

१३२५. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (२-३-२९)

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाचक शब्द, जिसके उत्तर पद में अञ्च् धातु है, आच् (आ) और आहि-प्रत्ययान्त शब्दों के योग में पंचमी होती है। अन्य शब्द अन्य अर्थ वाले शब्दों का बोधक है। अन्य अर्थ वाले इतर शब्द का ग्रहण केवल विस्तार के लिए है। अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् (कृष्ण से भिन्न)-अन्य के कारण कृष्ण में पंचमी। आराद् वनात् (वन से दूर या समीप)-आरात् के कारण पंचमी। ऋते कृष्णात् (कृष्ण के बिना)- ऋते के कारण कृष्ण में पंचमी। पूर्वो ग्रामात् (गाँव से पूर्व की ओर)-दिशावाचक पूर्व के कारण ग्राम में पंचमी। सूत्र में दिक्शब्द का अर्थ है कि जो शब्द दिशा अर्थ में प्रचलित है। यदि ऐसा दिक्शब्द देश और काल-वाचक होगा तो भी उसके साथ पंचमी होगी। चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः (चैत से पहले फाल्गुन आता है)-कालवाचक पूर्व के कारण चैत्र में पंचमी। यदि दिशावाचक शब्द देश और काल का बोध न कराकर किसी अवयवी (व्यक्ति आदि) के अवयव का बोध कराएगा तो पंचमी नहीं होगी। पाणिनि ने तस्य परमाम्रेडितम् (८-१-२) में पर के साथ तस्य में षष्ठी का प्रयोग करके इस बात की ओर संकेत किया है। तस्य परम्० में पर शब्द अवयववाची है। पूर्वं कायस्य (शरीर का अगला हिस्सा)-पूर्व अवयववाचक है, अतः कायस्य में षष्ठी हुई है। अन्त में अञ्च् धातु वाले प्राक्, प्रत्यक् (प्र + अञ्च्, प्रति + अञ्च्) आदि शब्द दिशावाचक हैं, इनके दिक्शब्द होने से पंचमी हो जाती। इनका पुनः उल्लेख षष्ठ्यतसर्थ-प्रत्ययेन (१३३९) से प्राप्त षष्ठी को रोककर पंचमी करने के लिए है। प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात् (गाँव से पूर्व या पश्चिम)-प्राक् प्रत्यक् के योग में पंचमी। दक्षिणा ग्रामात् (गाँव से दक्षिण की ओर)-दक्षिण + आच् (आ) = दक्षिणा। दक्षिणा आच्-प्रत्ययान्त है, अतः ग्रामात् में पंचमी। दक्षिणाहि ग्रामात् (गाँव से दूर दक्षिण की ओर)-दक्षिण + आहि, दूर अर्थ में आहि। आहि-प्रत्ययान्त होने से दक्षिणाहि के योग में ग्रामात् में पंचमी। भाष्यकार पतंजलि ने अपादाने पञ्चमी (१३१७) सूत्र की व्याख्या में 'कार्तिक्याः प्रभृति' प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि प्रभृति अर्थ-वाले शब्दों के साथ पंचमी होती है। भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः (जन्म से ही हरि की सेवा करनी चाहिए)-प्रभृति और आरभ्य के योग में भवात् में पंचमी है। अपपरिबहि० (२-१-१२) सूत्र में बहिः के साथ पंचम्यन्त के समास का विधान है। इससे ज्ञात होता है कि बहिः के योग में पंचमी होती है। ग्रामाद् बहिः (गाँव से बाहर)-बहिः के कारण ग्रामात् में पंचमी।

१३२६. अपपरी वर्जने (१-४-८८)

वर्जन (छोड़ना, अतिरिक्त) अर्थ में अप और परि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

१३२७. आङ्मर्यादावचने (१-४-८९)

मर्यादा (सीमा) अर्थ में आङ् (आ) की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। सूत्र में मर्यादायाम् कहने से काम चल सकता था, वचन शब्द अधिक देने का अभिप्राय यह है कि अभिविधि अर्थ में भी आङ् की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। मर्यादा का अर्थ है—तेन विना (उसको छोड़कर) और अभिविधि का अर्थ है—तेन सह (उसको लेकर)।

१३२८. पञ्चम्यपाङ्परिभिः (२-३-१०)

अप, आङ् (आ) और परि, इन कर्मप्रवचनीयों के योग में पंचमी होती है। अप हरेः संसारः, परि हरेः संसारः (हरि को छोड़कर संसार है अर्थात् जहाँ हरि है वहाँ संसार का अस्तित्व नहीं है)—अप और परि कर्मप्रवचनीय हैं, अतः पंचमी। यहाँ पर परि वर्जन अर्थ में है। जहाँ पर परि का लक्षण आदि अर्थ होगा, वहाँ पर *लक्षणेत्थं०* (१२८२) से कर्मप्रवचनीय होने से द्वितीया होगी। जैसे—*हरिं परि* (हरि की ओर भक्ति से युक्त)—यहाँ पर द्वितीया होगी। आमुक्ते संसारः (मुक्ति तक या मुक्ति से पहले संसार है)—मर्यादा अर्थ में आ है, अतः पंचमी। आसकलाद् ब्रह्म (ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है)—अभिविधि अर्थ में आ है, अतः पंचमी है।

१३२९. प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः (१-४-९२)

प्रतिनिधि और प्रतिदान (बदलना) अर्थ में प्रति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

१३३०. प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् (२-३-११)

जिसका प्रतिनिधि होता है या जिससे कोई वस्तु बदली जाती है, इन दोनों अर्थों मे विद्यमान प्रति के योग में पंचमी विभक्ति होती है। प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति (प्रद्युम्न कृष्ण का प्रतिनिधि है)—प्रतिनिधि अर्थ होने के कारण प्रति के साथ पंचमी। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् (तिलों से उड़द को बदलता है)—प्रतिदान अर्थ के कारण तिलेभ्यः में पंचमी।

१३३१. अकर्तर्यृणे पञ्चमी (२-३-२४)

ऋणवाचक शब्द जब स्वयं कर्ता न होकर किसी कार्य का कारण होता है, तब उससे पंचमी होती है। शताद् बद्धः (सौ रुपए ऋण के कारण बँधा है)—कारण शत में पंचमी। प्रत्युदाहरण—शतेन बन्धितः (सौ रुपये के कारण ऋणदाता ने ऋणी को बाँध लिया)—यहाँ पर शत प्रयोजक कर्ता है, अतः बन्ध् से णिच् है। शत कर्ता है, इसलिए पंचमी न होकर तृतीया हुई।

१३३२. विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् (२-३-२५)

जो गुणवाचक शब्द हेतु (कारण) भी हो और स्त्रीलिंग में न हो तो उससे विकल्प से पंचमी विभक्ति होती है। पक्ष में तृतीया विभक्ति होगी। जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः (मूर्खता के कारण बँध गया)—जाड्य शब्द बन्धन का कारण है और स्त्रीलिंग

में नहीं है, अतः पंचमी और तृतीया विभक्ति हुई। प्रत्युदाहरण—धनेन कुलम् (धन के कारण कुल)—धन शब्द गुणवाचक नहीं है, अतः पंचमी नहीं हुई। बुद्ध्या मुक्तः (बुद्धि से मुक्त हुआ)—बुद्धि शब्द स्त्रीलिंग में है, अतः पंचमी नहीं हुई। इस सूत्र का विभाग करके विभाषा एक अलग सूत्र मान लिया जाता है। उसका अर्थ होता है-हेतु में विकल्प से पंचमी होती है। इसका फल यह होता है कि जो शब्द गुण-वाचक नहीं हैं या स्त्रीलिंग में हैं, उनसे भी कहीं-कहीं पंचमी हो जाती है। जैसे—धूमादग्निमान् (धुँआ होने के कारण पर्वत अग्निवाला है)—धूम गुणवाचक नहीं है, फिर भी पंचमी होती है। नास्ति घटोऽनुपलब्धेः (घड़ा नहीं है, क्योंकि दिखाई नहीं पड़ता है)—अनुपलब्धि शब्द स्त्रीलिंग है, फिर भी पंचमी होती है।

१३३३. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् (२-३-३२)

पृथक्, विना और नाना के योग में विकल्प से तृतीया होती है। पक्ष में पंचमी और द्वितीया भी होंगी। सूत्र में *अन्यतरस्याम्* शब्द पंचमी और द्वितीया के समावेश के लिए है। पूर्व सूत्रों से पंचमी और द्वितीया की अनुवृत्ति होती है। पृथग् रामेण रामात् रामं वा (राम से भिन्न)—पृथक् शब्द के कारण तृतीया, पंचमी और द्वितीया हुई। इसी प्रकार विना और नाना के साथ भी तीनों विभक्तियाँ होंगी।

१३३४. करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य (२-३-३३)

स्तोक (थोड़ा), अल्प (कम), कृच्छ्र (कठिनाई) और कतिपय (कुछ), ये चारों शब्द जब द्रव्यवाचक न हों और करण (साधन) के रूप में प्रयुक्त हों तो, इनके योग में तृतीया और पंचमी होती हैं। स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्तः (थोड़े से प्रयास से ही छूट गया)—इससे तृतीया और पंचमी। प्रत्युदाहरण—स्तोकेन विषेण हतः (थोड़े से विष से मर गया)—स्तोक द्रव्यवाची विष का विशेषण है, अतः केवल तृतीया हुई।

१३३५. दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च (२-३-३५)

दूर और समीप के वाचक शब्दों में द्वितीया होती है। सूत्र में च के द्वारा पंचमी और तृतीया भी होती हैं। यह सूत्र प्रातिपदिक अर्थात् प्रथमा के अर्थ में लगता है। अन्य अर्थों में अन्य विभक्तियाँ भी आ सकती हैं। ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा (गाँव से दूर)—इस सूत्र से द्वितीया, पंचमी और तृतीया। इसी प्रकार ग्रामात् अन्तिकम् अन्तिकात् अन्तिकेन वा (गाँव के समीप)—पूर्ववत् तीनों विभक्तियाँ। इस सूत्र में असत्त्ववचनस्य (द्रव्यवाचक न हो) की अनुवृत्ति से दूर और समीपवाचक शब्द द्रव्य-वाचक होंगे तो ये विभक्तियाँ नहीं होंगी। जैसे—अदूरः पन्थाः (मार्ग समीप है)—अदूर शब्द द्रव्यवाचक मार्ग का विशेषण है, अतः ये विभक्तियाँ नहीं हुई।

पंचमी-विभक्ति समाप्त।

षष्ठी विभक्ति

१३३६. षष्ठी शेषे (२--३--५०)

कारक (कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण) और प्रातिपदिकार्थ (प्रथमा) से शेष स्व (अपनी वस्तु आदि) और स्वामी आदि के सम्बन्ध को शेष कहते हैं। उस संबन्ध को प्रकट करने के लिए षष्ठी होती है। राज्ञः पुरुषः (राजा का पुरुष)–पुरुष स्व है और राजा स्वामी है, अतः स्वस्वामिभाव संबन्ध में षष्ठी है। (कर्मादीनामपि संबन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव।) जहाँ पर कर्म आदि कारकों में केवल संबन्ध बताना अभीष्ट होता है, वहाँ पर षष्ठी ही होती है। जैसे—सतां गतम् (सज्जनों का जाना)–कर्ता सत् में प्रथमा की अविवक्षा के कारण षष्ठी। इसी प्रकार सर्पिषो जानीते (घी के द्वारा प्रवृत्त होता है)–सर्पिष् करण है, उसमें करण की अविवक्षा के कारण षष्ठी। मातुः स्मरति (माता को स्मरण करता है)–कर्म की अविवक्षा के कारण षष्ठी। एधो दकस्योपस्कुरुते (लकड़ी जल को परिष्कृत करती है, अर्थात् लकड़ी जल को अपनी उष्णता प्रदान करती है)–संबन्ध की विवक्षा में षष्ठी। भजे शम्भोश्चरणयोः (शम्भु के चरणों का भजन करता हूँ)–कर्म के स्थान पर सम्बन्ध की विवक्षा में षष्ठी। फलानां तृप्तः (फलों से तृप्त)–करण के स्थान पर संबन्ध की विवक्षा में षष्ठी।

१३३७. षष्ठी हेतुप्रयोगे (२–३–२६)

हेतु शब्द का प्रयोग होने पर और कारण अर्थ होने पर कारणवाचक शब्द और हेतु शब्द दोनों में षष्ठी होती है। अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के लिए रहता है)–इससे अन्न और हेतु शब्द दोनों में षष्ठी हुई।

१३३८. सर्वनाम्नस्तृतीया च (२–३–२७)

सर्वनाम के साथ हेतु शब्द का प्रयोग होने पर यदि वे हेतु अर्थ प्रकट करते हों तो सर्वनाम और हेतु दोनों में तृतीया और षष्ठी होती है। केन हेतुना वसति (किस कारण से रहता है?)–इस नियम से केन और हेतुना में तृतीया। षष्ठी होने पर कस्य हेतोः वसति, रूप होता है। (निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्, वा०) निमित्त के पर्यायवाची (निमित्त, कारण, प्रयोजन, हेतु आदि) शब्दों का प्रयोग होने पर प्रायः सभी विभक्तियाँ देखी जाती है। किं निमित्तं वसति, केन निमित्ताय, कस्मै निमित्ताय वसति, इत्यादि (किसलिए रहता है?)–किम् और निमित्त शब्दों में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी आदि विभक्तियाँ हैं। इसी प्रकार किं कारणम्, को हेतुः, किं निमित्तम्, आदि रूप बनते हैं। वार्तिक में प्रायः शब्द के उल्लेख से अभिप्राय है कि जो शब्द सर्वनाम नहीं हैं, उनसे प्रथमा और द्वितीया विभक्तियाँ नहीं

हन् धातु के साथ बने संहत, विपरीत क्रम और पृथक् के उदाहरण हैं। सूत्र में नाट से नट अवस्कन्दने चुरादिगणी का ग्रहण है। चौरस्योन्नाटनम् (चोर को मारना)–इससे षष्ठी। चौरस्य क्राथनम् (चोर को पीटना), वृषलस्य पेषणम् (शूद्र को बहुत अधिक पीटना, पीस डालना)–सम्बन्धमात्र अर्थ में षष्ठी। प्रत्युदाहरण–धाना-पेषणम् (धान कूटना और पीसना)–यहाँ पर कर्तृकर्मणोः कृति (१३५३) से कर्म में षष्ठी होगी और धान का आपेषणम् के साथ षष्ठी समास हो जायगा। जहाँ पर इस सूत्र से षष्ठी होती है, वहाँ पर षष्ठी-समास नहीं होता है।

१३४८. व्यवहृपणोः समर्थयोः (२–३–५७)

समान अर्थ वाली व्यवहृ (वि + अव + हृ, हृञ् हरणे) और पण् (पण व्यवहारे स्तुतौ च) धातु के कर्म में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी होती है। जुआ खेलना और क्रय-विक्रय करना अर्थ में दोनों धातुएँ समान अर्थ वाली हैं। शतस्य व्यवहरणं पणनं वा (सौ रुपए का लेन-देन करना या सौ रुपए का जुआ खेलना)–सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी। यहाँ पर समास नहीं होगा। प्रत्युदाहरण–शलाकाव्यवहारः (सलाई की गिनती), ब्राह्मणपणनम् (ब्राह्मण की स्तुति)–दोनों उदाहरणों में द्यूत और क्रय-विक्रय-व्यवहार अर्थ न होने से इस सूत्र से षष्ठी नहीं हुई। दोनों स्थानों पर षष्ठी शेषे से षष्ठी और षष्ठी-समास।

१३४९. दिवस्तदर्थस्य (२–३–५८)

द्यूत और क्रय-विक्रय करना अर्थ में दिव् धातु के कर्म में षष्ठी होती है। शतस्य दीव्यति (सौ रुपए का दाँव लगाता है या सौ रुपए का लेन-देन करता है)–कर्म शत में षष्ठी। प्रत्युदाहरण–ब्राह्मणं दीव्यति (ब्राह्मण की स्तुति करता है)–द्यूत और क्रय-विक्रय अर्थ न होने से कर्म में द्वितीया।

१३५०. विभाषोपसर्गे (२–३–५९)

उपसर्ग सहित दिव् धातु द्यूत और क्रय-विक्रय अर्थ में होगी तो दिव् के कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है। यह पहले सूत्र का अपवाद है। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति (सौ रुपए दाँव पर लगाता है या सौ का लेन-देन करता है)–शत में विकल्प से षष्ठी।

१३५१. प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने (२–३–६१)

प्रेष्य (प्र + इष् धातु दिवादिगणी लोट् म० १, भेजो या प्रेषित करो) और ब्रूहि (ब्रू धातु अदादिगणी, लोट् म० १, समर्पण करो) का कर्म जब हविष्य का वाचक होता है और देवता के लिए देय होता है, तब हवि-वाचक शब्द से षष्ठी होती है। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा (अग्नि देवता के लिए छाग की वपा और मेदस् रूप हवि को प्रेषित करो या समर्पण करो)–इस नियम से हवि-विशेष के वाचक वपा और मेदस् में षष्ठी तथा हविष् में भी षष्ठी।

१३५२. कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (२-३-६४)

कृत्वसुच् (कृत्वः) तथा इस अर्थ वाले अन्य प्रत्ययों के योग में कालवाचक अधिकरण में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी होती है। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् (दिन में पाँच बार भोजन)–कृत्वसुच् प्रत्यय के कारण अधिकरण अहन् में षष्ठी। द्विरह्नो भोजनम् (दिन में दो बार भोजन)–द्वि शब्द से कृत्वसुच् के अर्थ में सुच् (स्, :) प्रत्यय है, अतः अहन् में षष्ठी। जब संबन्धमात्र की विवक्षा न होकर अधिकरण की विवक्षा होगी तो सप्तमी होगी। जैसे–द्विरहन्यध्ययनम् (दिन में दो बार पढ़ना)—अहन् में सप्तमी।

१३५३. कर्तृकर्मणोः कृति (२-३-६५)

कृत्-प्रत्ययान्त शब्दों के योग में उनके कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। कृष्णस्य कृतिः (कृष्ण का कार्य)–कृति (कृ + क्तिन्) के कर्ता कृष्ण में षष्ठी। जगतः कर्ता कृष्णः (जगत् का कर्ता कृष्ण, कृष्ण ने संसार को बनाया है)—कर्ता (कृ + तृच् प्र० एक०) के कर्म जगत् मे षष्ठी। (गुणकर्मणि वेष्यते, वा०) कृत्-प्रत्ययान्त द्विकर्मक धातुओं के योग में गौण कर्म मे विकल्प से षष्ठी होती है। नेताऽश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा (घोड़े को स्रुघ्न देश में ले जाने वाला)–नी धातु द्विकर्मक है, अतः नेता (नी + तृच्) के मुख्य कर्म अश्व में नित्य षष्ठी और गौण कर्म स्रुघ्न में विकल्प से षष्ठी। पक्ष में द्वितीया। प्रत्युदाहरण–कृतपूर्वी कटम् (इसने पहले चटाई बनाई)–सूत्र में कृत्-प्रत्ययान्त के साथ षष्ठी का विधान है। यहाँ पर कृतपूर्वी तद्धित-प्रत्ययान्त है, अतः षष्ठी न होकर कटम् में द्वितीया हुई। कृतपूर्वी–कृतं पूर्वम् अनेन, कृत + पूर्व + इनि (इन्)। सपूर्वाच्च (५-२-८७) से तद्धित इनि प्रत्यय। कृत के कारण षष्ठी प्राप्त थी।

१३५४. उभयप्राप्तौ कर्मणि (२-३-६६)

कृत्-प्रत्ययान्त के योग मे जहाँ कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त होती है, वहाँ पर केवल कर्म में ही षष्ठी होती है, कर्ता में नहीं। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन (जो ग्वाला नहीं है, उसके द्वारा गायों का दुहा जाना आश्चर्य की बात है)—दोहः (दुह् + घञ्) कृदन्त के योग में कर्ता अगोप और कर्म गो दोनों मे षष्ठी प्राप्त थी, इस नियम से कर्म गो में षष्ठी हुई और कर्ता अगोप में अनुक्त कर्ता में तृतीया। (स्त्रीप्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः, वा०) स्त्रीप्रत्यय में होने वाले अक और अ कृत्-प्रत्ययान्तों के साथ यह नियम नहीं लगता है। भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः (रुद्र के द्वारा जगत् का विनाश या जगत् के विनाश की इच्छा)—कृत्-प्रत्ययान्त भेदिका में अक + टाप् है और बिभित्सा में बिभित्स + अ + टाप् है। स्त्री-प्रत्ययान्त अक और अ होने से यह नियम नहीं लगा और कर्ता रुद्रस्य तथा कर्म जगतः में षष्ठी हुई। (शेषे विभाषा, वा०) कुछ आचार्यों का मत है कि अक और अ प्रत्यय से भिन्न

स्त्रीलिंग कृत्-प्रत्ययों के योग में विकल्प से षष्ठी होती है। जैसे—विचित्रा जगतः कृतिः हरेर्हरिणा वा (हरि के द्वारा की गई यह जगत् की रचना विचित्र है)—कृत्-प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्द कृति (कृ + क्तिन्) के कारण कर्ता हरि में विकल्प से षष्ठी, पक्ष में तृतीया। कुछ आचार्यों का मत है कि सामान्यरूप से सर्वत्र कृत्-प्रत्ययान्त के साथ कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है। शब्दानामनुशासनमाचार्येणाचार्यस्य वा (आचार्य के द्वारा शब्दों का अनुशासन)—अनुशासनम् के कारण आचार्य में विकल्प से षष्ठी, पक्ष में तृतीया। अनुशासनम्—अनु + शास् + ल्युट् (अन), नपुंसकलिंग शब्द है।

१३५५. क्तस्य च वर्तमाने (२–३–६७)

वर्तमान अर्थ में होने वाले क्त प्रत्यय के साथ षष्ठी होती है। न लोकाव्यय० (१३५७) से षष्ठी का निषेध प्राप्त था, उसका यह अपवाद सूत्र है। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा (राजा मुझे मानते हैं, जानते हैं या पूजते हैं)—यहाँ पर मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च (३-२-१८८) से वर्तमान अर्थ में मन्, बुध् और पूज् धातुओं से क्त प्रत्यय है, अतः इनके योग में षष्ठी हुई।

१३५६. अधिकरणवाचिनश्च (२–३–६८)

अधिकरणवाचक क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी होती है। इदमेषाम् आसितं शयितं गतं भुक्तं वा (यह इनका आसन, इनकी शय्या, इनका मार्ग या इनका भोजन का पात्र है)—आसितम् आदि में अधिकरण में क्त प्रत्यय है, अतः एषाम् में षष्ठी हुई। इनमें क्तोऽधिकरणे० (३-४-७६) से अधिकरण अर्थ में क्त प्रत्यय होता है, अतः इनका अर्थ होता है:—आसितम् (जिस पर बैठा जाए, आसन), शयितम् (जिस पर सोया जाए, शय्या), गतम् (जिस पर चला जाए, मार्ग), भुक्तम् (जिसमें खाया जाए, भोजन का पात्र)।

१३५७. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (२–३–६९)

ल (लकार के स्थान पर होने वाले शतृ, शानच्, क्वसु, कानच् आदि), उ, उक, अव्यय (क्त्वा, तुमुन्, ल्यप् आदि कृत् प्रत्ययों से बनने वाले अव्यय शब्द), निष्ठा (क्त, क्तवतु), खल् प्रत्यय के अर्थ वाले प्रत्यय और तृन् (यह प्रत्याहार है, शतृशानचौ के तृ से लेकर तृन् प्रत्यय के न् तक आने वाले सभी ल के स्थान पर होने वाले प्रत्यय), इनके योग में षष्ठी नहीं होती है। लादेश के उदाहरण—कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः (सृष्टि की रचना करता हुआ हरि)-शतृ और शानच् प्रत्ययान्त कुर्वन् और कुर्वाणः के साथ षष्ठी न होने से द्वितीया हुई। इसी प्रकार आगे के उदाहरणों में षष्ठी न होने से द्वितीया या तृतीया होती है। उ का उदाहरण–हरिं दिदृक्षुः (हरि को देखने का इच्छुक)–दृश् + सन् + उ। द्वितीया। हरिम् अलंकरिष्णुः (हरि को अलंकृत करने वाला)–अलम् + कृ + इष्णुच् (इष्णु)। शील या स्वभाव अर्थ में

इष्णुन्। द्वितीया। उक का उदाहरण—दैत्यान् घातुको हरिः (दैत्यों को मारने वाला हरि)—हन्+उकञ् (उक)। लषपत० (३-२-१५४) से स्वभाव अर्थ में उकञ्। ह को घ, न् को त् और अ को आ होकर हन् का घातुक रूप बनता है। कर्म दैत्य में द्वितीया। (कमेरनिषेधः, वा०) उक-प्रत्ययान्त कम् धातु (कामुक) के साथ षष्ठी का निषेध नहीं होता है। लक्ष्म्याः कामुको हरिः (लक्ष्मी की कामना करने वाले हरि)—कामुकः के कारण लक्ष्म्याः में षष्ठी। अव्यय के उदाहरण—जगत् सृष्ट्वा (संसार को बनाकर)—सृज्+क्त्वा। क्त्वा-प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः कर्म जगत् में द्वितीया। सुखं कर्तुम् (सुख करने के लिए)—कृ+तुमुन्। तुमुन्-प्रत्ययान्त अव्यय होता है, अतः सुखम् में द्वितीया। निष्ठा (क्त और क्तवतु) के उदाहरण—विष्णुना हता दैत्याः (विष्णु ने दैत्यों का वध किया)—हन्+क्त। कर्ता अनुक्त होने से विष्णुना में तृतीया। दैत्यान् हतवान् विष्णुः (विष्णु ने दैत्यों को मारा)—हन्+क्तवतु। तवत् के द्वारा कर्ता उक्त होने के कारण विष्णुः में प्रथमा हुई। खलर्थ का उदाहरण—ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा (हरि के लिए संसार-रूपी प्रपञ्च को करना सरल कार्य है)—ईषत्+कृ+खल् (अ)। खल् प्रत्यय कर्मवाच्य में है, अतः कर्ता के अनुक्त होने से हरिणा में तृतीया हुई। तृन् यह प्रत्याहार है। यह शतृशानचौ० (३-२-१२४) में शतृ के तृ से लेकर तृन् (३-२-१३५) सूत्र के न् तक है। इनके बीच में जितने सूत्र आते हैं, उनसे होने वाले शानन् (आन), चानश् (आन), शतृ (अत्) और तृन् (तृ) प्रत्ययान्त शब्दों के साथ षष्ठी न होने से द्वितीया होगी। शानन् प्रत्यय—सोमं पवमानः (सोम को पवित्र करता है)—पू+शानन् (आन)। सोम में द्वितीया। चानश् प्रत्यय—आत्मानं मण्डयमानः (अपने आपको अलंकृत करने वाला)—मण्डि+चानश् (आन)—ताच्छील्य० (३-२-१२९) से स्वभाव अर्थ में चानश् (आन) प्रत्यय। आत्मानम् में द्वितीया। शतृ प्रत्यय—वेदम् अधीयन् (वेद को सरलता से पढ़ता हुआ)—अधि+इ+शतृ (अत्)। सरलता अर्थ में इङ्धार्योः० (३-२-१३०) से शतृ प्रत्यय। इङ् आत्मनेपदी है, अतः साधारणतया इससे शानच् होकर अधीयमानः रूप बनता है। यहाँ द्वितीया हुई। तृन् प्रत्यय—कर्ता लोकान् (लोकों को बनाने वाला)—कृ+तृन् (तृ)। लोकान् में द्वितीया। (द्विषः शतुर्वा, वा०) शतृ-प्रत्ययान्त द्विष् धातु के योग में षष्ठी और द्वितीया दोनों होती हैं। मुरस्य मुरं वा द्विषन् (मुर नामक राक्षस का द्वेषी या शत्रु)—इस नियम से षष्ठी और द्वितीया। यह न लोकाव्यय० सूत्र कर्तृकर्मणोः० आदि सूत्रों से प्राप्त षष्ठी का ही निषेध करता है। शेषे षष्ठी से होने वाली शेष में षष्ठी होती ही है। जैसे—ब्राह्मणस्य कुर्वन् (ब्राह्मण को बनाने वाला, हरि) नरकस्य जिष्णुः (नरकासुर का जेता)—दोनों स्थानों पर सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी।

१३५८. अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः (२-३-७०)

भविष्यत् अर्थ में होने वाले अक प्रत्यय तथा भविष्यत् और आधमर्ण्य (कर्जदार होना) अर्थ में होने वाले इन् प्रत्यय के साथ षष्ठी नहीं होती है। कर्म में द्वितीया

होती है। सतः पालकोऽवतरति (सज्जनों का पालन करने वाला अवतार लेता है)-पालि + ण्वुल् (अक)। भविष्यत् अर्थ में तुमुन्ण्वुलौ० (३-३-१०) से ण्वुल् प्रत्यय। उसको अक आदेश। व्रजं गामी (व्रज को जाने वाला)-गम् + णिन्। आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः (३-३-१७०) से आवश्यक अर्थ में णिनि (इन्) प्रत्यय। शतं दायी (सौ रुपए का देनदार)-दा + णिनि। आवश्यका० से णिनि। तीनों उदाहरणों में कर्म में द्वितीया।

१३५९. कृत्यानां कर्तरि वा (२-३-७१)

कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है। पक्ष में तृतीया होगी। मया मम वा सेव्यो हरिः (हरि मेरा सेव्य है)-सेव्य शब्द सेव् + ण्यत्, कृत्य प्रत्यय ण्यत् से बना है, अतः इसके योग में मम और मया में षष्ठी और तृतीया हुई हैं। प्रत्युदाहरण-गेयो माणवकः साम्नाम् (बालक सामवेद का गान कर रहा है)-गा + यत् (य)-गेय। यहाँ पर भव्यगेय० (३-४-६८) से कर्तृवाच्य में यत् होने से कर्म अनुक्त है, अतः कर्तृकर्मणोः० से नित्य षष्ठी होगी। सेव्यः में कर्मवाच्य में ण्यत् है, अतः अनुक्त कर्ता में षष्ठी और तृतीया हुई। भाष्यकारों ने इस सूत्र का योगविभाग किया है और इसे दो पृथक् सूत्र माना है-१. कृत्यानाम्। इसमें उभयप्राप्तौ और न की अनुवृत्ति की जाती है। इसका अर्थ होता है-कृत्य प्रत्ययों के योग में जहाँ पर कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त होती है, वहाँ पर कर्ता और कर्म दोनों में ही षष्ठी नहीं होती है। जैसे-नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन (कृष्ण को गाएँ व्रज में ले जानी चाहिएँ)-यहाँ पर कर्म व्रज में और कर्ता कृष्ण में षष्ठी न होने से क्रमशः द्वितीया और तृतीया हुई। २. कर्तरि वा। इसका अर्थ है-कृत्य-प्रत्ययों के योग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है। उदाहरण मया मम वा सेव्यो हरिः है।

१३६०. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् (२-३-७२)

तुला और उपमा दो शब्दों को छोड़कर शेष तुल्य अर्थ वाले शब्दों के साथ विकल्प से तृतीया होती है। पक्ष में षष्ठी होगी। तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा (कृष्ण के सदृश)-तुल्य, सदृश और सम शब्द तुल्य अर्थ वाले हैं, अतः इनके साथ कृष्ण में तृतीया और षष्ठी दोनों होती हैं। प्रत्युदाहरण-तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति (कृष्ण की तुलना या उपमा नहीं है)-तुला और उपमा के साथ सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी होने से षष्ठी।

१३६१. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः (२-३-७३)

आशीर्वाद अर्थ में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित अर्थवाले शब्दों के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। पक्ष में षष्ठी होने से षष्ठी होगी। आयुष्यं चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् (कृष्ण आयुष्मान् या चिरंजीवी हों)-

आयुष्य अर्थ में ही चिरंजीवित है, अतः दोनों के साथ चतुर्थी होती है। पक्ष में षष्ठी शेषे से षष्ठी है। इसी प्रकार मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् (कृष्ण का कुशल, शुभ, आनन्द, नीरोगता, सुख, कल्याण, सफलता, प्रयोजन, हित या भला हो)-इनके साथ चतुर्थी और षष्ठी। प्रत्युदाहरण-देवदत्तस्यायुष्यमस्ति (देवदत्त दीर्घायु है)-यहाँ पर केवल तथ्य-वर्णन है, आशीर्वाद अर्थ नहीं है, अतः षष्ठी शेषे से षष्ठी ही होगी। इस सूत्र में पठित सभी शब्दों के पर्यायवाची शब्द भी लिये जाते हैं। सभी शब्दों के अर्थवाले शब्दों का ग्रहण किया जाता है, ऐसा सभी आचार्यों का मत है। मद्र और भद्र दोनों का ही अर्थ कुशल है, अतः इन दोनों शब्दों में से एक शब्द का सूत्र में पाठ न होना ही उचित है।

षष्ठी-विभक्ति समाप्त।

सप्तमी-विभक्ति

१३६२. आधारोऽधिकरणम् (१-४-४५)

कर्ता और कर्म से सम्बद्ध क्रिया के आधार को अधिकरण कहते हैं। अधिकरण साक्षात् क्रिया का आधार नहीं होता है, अपितु कर्ता और कर्म के द्वारा। क्रिया कर्ता या कर्म मे रहती है और अधिकरण कर्ता तथा कर्म का आधार होता है, इस प्रकार परम्परा से अधिकरण क्रिया का आधार होता है।

१३६३. सप्तम्यधिकरणे च (२-३-३६)

अधिकरण में सप्तमी होती है। सूत्र में पठित च शब्द के द्वारा दूर और समीपवाची शब्दों में भी सप्तमी होती है। (औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा) आधार तीन प्रकार का होता है- १. औपश्लेषिक (संयोग-संबन्ध-मूलक आधार)। उपश्लेष का अर्थ है—संयोग-संबन्ध। औपश्लेषिक—जहाँ पर कर्ता या कर्म संयोग-संबन्ध से आधार में रहते हैं। २. वैषयिक (विषय से संबन्ध रखनेवाला आधार)। इसमें आधार और आधेय का बौद्धिक संबन्ध होता है। ३. अभिव्यापक (सब अवयवों में व्याप्त रहने वाला आधार)।-इसमें आधार और आधेय में व्याप्य-व्यापक संबन्ध होता है। १. औपश्लेषिक के उदाहरण-कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है)—बैठने वाले कर्ता का कट के साथ संयोग-संबन्ध है। कट में सप्तमी। स्थाल्यां पचति (पतीली में

पकाता है)–कर्म चावल आदि का स्थाली के साथ संयोग-संबन्ध है, अतः स्थाली में सप्तमी। २. वैषयिक का उदाहरण–मोक्षे इच्छास्ति (मोक्ष के बारे में इच्छा है)–मोक्ष इच्छा का विषय है, अतः वैषयिक आधार है। मोक्ष में सप्तमी। ३. अभिव्यापक का उदाहरण–सर्वस्मिन् आत्माऽस्ति (सबमें आत्मा है)–सर्व और आत्मा में व्याप्य-व्यापक संबन्ध है, अतः सर्वस्मिन् में सप्तमी। वनस्य दूरे अन्तिके वा (वन से दूर या समीप)–दूर और अन्तिक में इससे सप्तमी। दूरान्तिकार्थेभ्यः० (१३३५) सूत्र में दूर और समीप-वाची शब्दों से द्वितीया, तृतीया और पंचमी का विधान है। सप्तमी को लेकर दूर और समीपवाची शब्दों से चार विभक्तियाँ होती हैं। (क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युप-संख्यानम्, वा०) क्त-प्रत्ययान्त शब्दों से इन्-प्रत्यय होकर बने हुए शब्दों के कर्म में सप्तमी होती है। अधीती व्याकरणे (जिसने व्याकरण पढ़ लिया है)–अधीती क्त प्रत्यय करके इन्-प्रत्ययान्त है, अतः कर्म व्याकरण में सप्तमी। अधीतम् अनेन इति अधीती–अधि + इ + क्त (त) = अधीत + इनि (इन्) = अधीतिन्। इष्टादिभ्यश्च (५-२-८८) से कर्ता में इनि प्रत्यय। (साध्वसाधुप्रयोगे च, वा०) साधु और असाधु शब्द के साथ सप्तमी होती है। साधुः कृष्णो मातरि (कृष्ण माता के लिए भला है)–साधु के कारण मातरि में सप्तमी। असाधुः कृष्णो मातुले (कृष्ण मामा के लिए बुरा है)–मातुले में सप्तमी। (निमित्तात् कर्मयोगे, वा०) निमित्त (अर्थात् फलवाचक शब्द) में सप्तमी विभक्ति होती है, यदि उस फलवाचक शब्द का कर्म के साथ संयोग या समवाय संबन्ध हो तो। वार्तिक में निमित्त का अर्थ है–फल। योग का अर्थ है–संयोग या समवाय संबन्ध।

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः॥ (इति भाष्यम्)

भाष्यकार पतंजलि ने इस वार्तिक के ये चार उदाहरण दिए हैं:—१. चर्मणि द्वीपिनं हन्ति (चमड़े के लिए बघेरे को मारता है)–चर्म फल है, द्वीपिन् (बघेरा) कर्म है। चर्म और द्वीपी का समवाय संबन्ध है, अतः चर्मणि में सप्तमी हुई। २. दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् (दाँतों के लिए हाथी को मारता है)–दन्त फल है, कुञ्जर कर्म है। दोनों में समवाय संबन्ध है, अतः दन्तयोः में सप्तमी है। ३. केशेषु चमरीं हन्ति (बालों के लिए चमरी मृग को मारता है)–केश फल है, चमरी कर्म है। दोनों में समवाय संबन्ध है, अतः केशेषु में सप्तमी है। ४. सीम्नि पुष्कलको हतः (अण्डकोश या अण्डकोश में विद्यमान कस्तूरी के लिए कस्तूरी-मृग को मारता है)–सीमा का अर्थ है अंडकोश। पुष्कलक का अर्थ है कस्तूरी-मृग। कस्तूरी फल है, पुष्कलक मृग कर्म है। दोनों में समवाय संबन्ध है, अतः सीमन् शब्द में सप्तमी हुई। इन चारों उदाहरणों में हेतौ (१२९८) सूत्र से हेतु अर्थ में तृतीया प्राप्त थी, उसको रोकने के लिए यह नियम है। प्रत्युदाहरण-वेतनेन धान्यं लुनाति (वेतन के लिए धान काटता है)–यहाँ पर वेतन और धान्य में संयोग या समवाय संबन्ध नहीं है, अतः हेतौ से वेतनेन में तृतीया हुई है।

१३६४. यस्य च भावेन भावलक्षणम् (२-३-३७)

जिस (कर्तृनिष्ठ या कर्मनिष्ठ) क्रिया से दूसरी क्रिया का होना लक्षित (सूचित) होता है, उस (कर्तृनिष्ठ या कर्मनिष्ठ) क्रिया में, तथा उसके कर्ता और कर्म में भी, सप्तमी विभक्ति होती है। सूचना—इस सूत्र से होने वाली सप्तमी को 'सति सप्तमी' या 'भावे सप्तमी' (ऐसा होने पर या यह क्रिया होने पर) कहते हैं। गोषु दुह्यमानासु गतः (जब गाएँ दुही जा रही थीं, तब वह गया)—गायरूपी कर्म में रहने वाली दोहन-क्रिया से गमनरूपी क्रिया लक्षित होती है, अतः दुह्यमानासु और गोषु में सप्तमी हुई। (अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च, वा०) अर्ह (योग्य या उपयुक्त व्यक्ति) के कर्तृत्व बतलाने में, अनर्ह (अयोग्य या अनुपयुक्त व्यक्ति) के अकर्तृत्व बतलाने में या इसके विपरीत कार्य बतलाने में कर्ता और बोधक क्रिया दोनों में सप्तमी होती है। सत्सु तरत्सु असन्त आसते (जब सज्जन तैरते हैं, तब असज्जन बैठे रहते हैं)—सत्सु और तरत्सु में सप्तमी। इसी प्रकार असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति (जब असज्जन बैठे रहते हैं, तब सज्जन तैरते हैं), सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति (सज्जन बैठे रहते हैं, तो असज्जन तैरते हैं), असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति (असज्जन तैरते हैं, तो सज्जन बैठे रहते हैं)—सभी उदाहरणों में तिष्ठत्सु, तरत्सु। आदि में सप्तमी।

१३६५. षष्ठी चानादरे (२-३-३८)

अनादर की अधिकता प्रकट करने में जिसकी क्रिया से दूसरी क्रिया सूचित होती है, उसमें षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत् (रोते हुए पुत्र आदि को छोड़कर उसने संन्यास ले लिया)—यहाँ पर रोदन क्रिया से प्रव्रजन (संन्यास) क्रिया लक्षित होती है, अतः रुदति (पुत्रे) और रुदतः (पुत्रस्य) में सप्तमी और षष्ठी हैं।

१३६६. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च (२-३-३९)

स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू और प्रसूत, इन सात शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। इन स्थानों पर केवल षष्ठी प्राप्त थी, अतः पक्ष में सप्तमी के लिए यह नियम है। गवां गोषु वा स्वामी (गायों का स्वामी)—स्वामी के कारण गो शब्द से षष्ठी और सप्तमी। इसी प्रकार गवां गोषु वा प्रसूतः (गायों में उत्पन्न, अर्थात् गायों का ही उपयोग करने के लिए उत्पन्न हुआ है)—पूर्ववत् षष्ठी और सप्तमी।

१३६७. आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् (२-३-४०)

तत्पर या नियुक्त अर्थ में आयुक्त और कुशल शब्दों के साथ षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। आयुक्त का अर्थ है—नियुक्त, लगाया हुआ। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा (हरिपूजन में संलग्न या निपुण)—हरिपूजन में

षष्ठी और सप्तमी। प्रत्युदाहरण–आयुक्तो गौः शकटे (गाड़ी में थोड़ा जुता हुआ बैल)–आयुक्त का अर्थ थोड़ा जुता हुआ है, अतः केवल सप्तमी है।

१३६८. यतश्च निर्धारणम् (२–३–४१)

जाति, गुण, क्रिया या संज्ञा की विशेषता के आधार पर किसी एक को अपने समुदाय से पृथक् करने को निर्धारण (छाँटना) कहते हैं। जिसमें से निर्धारण किया जाता है, उसमें षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः (मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है)—नृ में षष्ठी और सप्तमी। इसी प्रकार गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा (गायों में काली गाय अधिक दूध देती है), गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः (चलनेवालों में दौड़नेवाला शीघ्र जाता है), छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः (छात्रों में मैत्र चतुर है)–इनमें षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं।

१३६९. पञ्चमी विभक्ते (२–३–४२)

दो की तुलना में जिससे विशेषता या भेद बताया जाता है, उसमें पञ्चमी होती है। विभक्त का अर्थ है–विभाग या भेद। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः (मथुरा-वासी पटना के लोगों से अधिक धनी हैं)–इससे पाटलिपुत्रकेभ्यः में पञ्चमी।

१३७०. साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः (२–३–४३)

साधु और निपुण शब्द जब पूजा (आदर) अर्थ में हों तो इनके साथ सप्तमी होती है। यदि इनके साथ प्रति का प्रयोग होगा तो सप्तमी नहीं होगी। मातरि साधुर्निपुणो वा (माता के प्रति सज्जन या माता की सेवा में निपुण)–इससे मातरि में सप्तमी। प्रत्युदाहरण–निपुणो राज्ञो भृत्यः (राजा का नौकर चतुर है)–यहाँ पर केवल वास्तविकता का कथन है, प्रशंसा नहीं, अतः षष्ठी शेषे से षष्ठी। (अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् वा०) सूत्र में अप्रतेः (प्रति-भिन्न) न कहकर अप्रत्यादिभिः (प्रति, परि, अनु से भिन्न) कहना चाहिए। साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति, परि, अनु वा। प्रति परि अनु के कारण सप्तमी न होकर लक्षणेत्थं० (१२८२) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से कर्मप्रवचनीय-युक्ते० (१२७८) से मातरम् में द्वितीया।

१३७१. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च (२–३–४४)

प्रसित (तत्पर) और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी होती हैं। प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (हरि में तल्लीन या हरि में तत्पर)–इस सूत्र से हरि में तृतीया और सप्तमी।

१३७२. नक्षत्रे च लुपि (२–३–४५)

नक्षत्रवाचक शब्द से अण् प्रत्यय का लोप होने पर जब प्रत्यय का अर्थ विद्यमान रहता है, तब उस (नक्षत्रवाचक शब्द) से अधिकरण में तृतीया और सप्तमी होती हैं।

मूलेनावाहयेद् देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् । मूले श्रवणे इति वा (मूल-नक्षत्र से युक्त काल में देवी का आवाहन करे और श्रवण-नक्षत्र से युक्त काल में देवी का विसर्जन करे)– यहाँ पर मूल और श्रवण शब्दों से नक्षत्रेण युक्तः कालः (४–२–३) सूत्र से युक्त काल अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ और लुबविशेषे (४–२–४) से उसका लोप हुआ है। लोप होने के कारण इस सूत्र से मूल और श्रवण शब्दों से तृतीया और सप्तमी। प्रत्युदाहरण– पुष्ये शनिः (पुष्य नक्षत्र में शनि है)–यहाँ पर युक्त काल अर्थ में न अण् हुआ है और न उसका लोप। अतः अधिकरण में सप्तमी।

१३७३. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये (२–३–७)

जब कोई कालवाचक और मार्ग की दूरीवाचक संज्ञा दो कारक-शक्तियों के बीच में होती हैं, तब काल और मार्ग-वाचक शब्दों में सप्तमी और पंचमी होती हैं। अद्य भुक्त्वाऽयं द्वयहे द्वयहाद् वा भोक्ता (यह आज खाकर दो दिन बाद खाएगा)– यहाँ पर आज खाने वाला और दो दिन बाद खाने वाला एक कर्ता है। उस एक कर्ता की दो शक्तियों के बीच में द्वयह (दो दिन) काल है, उसमें सप्तमी और पंचमी। इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्येत् (यहाँ पर स्थित यह कोस भर पर विद्यमान लक्ष्य को बींध सकता है)–कर्ता अयम् और कर्म लक्ष्यम् इन दो कारक-शक्तियों के बीच में मार्ग की दूरी का वाचक क्रोश शब्द है, उससे सप्तमी और पंचमी। अधिक शब्द के योग में सप्तमी और पंचमी विभक्तियाँ होती हैं, क्योंकि पाणिनि ने निम्नलिखित दो सूत्रों में अधिक शब्द के साथ सप्तमी और पंचमी का प्रयोग किया है–तदस्मिन्नधिकम्० (५-२-४५) और यस्मादधिकं० (१३७५)। पहले में सप्तमी है और दूसरे में पंचमी है। लोके लोकाद् वाऽधिको हरिः (हरि लोक से बढ़कर है)—यहाँ पर अधिक के साथ लोक में सप्तमी और पंचमी दोनों हैं।

१३७४. अधिरीश्वरे (१–४–९७)

स्व और स्वामी के अर्थ को प्रकट करने में 'अधि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। स्व–वस्तु, स्वामी-अधिकारी, मालिक।

१३७५. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी (२–३–९)

'जिससे अधिक है' और 'जिसका स्वामित्व कहा जाता है' इन दोनों अर्थों में कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी होती है। उप परार्धे हरेर्गुणाः (हरि के गुण परार्ध से भी अधिक हैं)–अधिक अर्थ में उपोऽधिके च (१२८१) से उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। इससे उप के योग में परार्ध मे सप्तमी है। परार्ध सबसे बड़ी संख्या है। इससे बड़ी कोई संख्या नहीं होती। स्वामित्व अर्थ प्रकट करने में स्व और स्वामी दोनों से ही क्रमशः सप्तमी होती है। अधि भुवि रामः (राम पृथ्वी के स्वामी हैं)–भू स्व है, राम स्वामी हैं, अतः अधि के कारण स्व भुवि में सप्तमी है। अधि रामे भूः

षष्ठी और सप्तमी। प्रत्युदाहरण—आयुक्तो गौः शकटे (गाड़ी में थोड़ा जुता हुआ बैल)—आयुक्त का अर्थ थोड़ा जुता हुआ है, अतः केवल सप्तमी है।

१३६८. यतश्च निर्धारणम् (२–३–४१)

जाति, गुण, क्रिया या संज्ञा की विशेषता के आधार पर किसी एक को अपने समुदाय से पृथक् करने को निर्धारण (छाँटना) कहते हैं। जिसमें से निर्धारण किया जाता है, उसमें षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। *नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः* (मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है)—नृ में षष्ठी और सप्तमी। इसी प्रकार गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा (गायों में काली गाय अधिक दूध देती है), गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः (चलनेवालों में दौड़नेवाला शीघ्र जाता है), छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः (छात्रों में मैत्र चतुर है)—इनमें षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं।

१३६९. पञ्चमी विभक्ते (२–३–४२)

दो की तुलना में जिससे विशेषता या भेद बताया जाता है, उसमें पञ्चमी होती है। विभक्त का अर्थ है—विभाग या भेद। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः (मथुरावासी पटना के लोगों से अधिक धनी हैं)—इससे पाटलिपुत्रकेभ्यः में पञ्चमी।

१३७०. साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः (२–३–४३)

साधु और निपुण शब्द जब पूजा (आदर) अर्थ में हों तो इनके साथ सप्तमी होती है। यदि इनके साथ प्रति का प्रयोग होगा तो सप्तमी नहीं होगी। मातरि साधुर्निपुणो वा (*माता के प्रति सज्जन या माता की सेवा में निपुण*)—इससे मातरि में सप्तमी। प्रत्युदाहरण—निपुणो राज्ञो भृत्यः (राजा का नौकर चतुर है)—यहाँ पर केवल वास्तविकता का कथन है, प्रशंसा नहीं, अतः षष्ठी शेषे से षष्ठी। (अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् वा०) सूत्र में अप्रतेः (प्रति-भिन्न) न कहकर अप्रत्यादिभिः (प्रति, परि, अनु से भिन्न) कहना चाहिए। साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति, परि, अनु वा। प्रति परि अनु के कारण सप्तमी न होकर लक्षणेत्थं० (१२८२) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से कर्मप्रवचनीययुक्ते० (१२७८) से मातरम् में द्वितीया।

१३७१. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च (२–३–४४)

प्रसित (तत्पर) और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी होती हैं। प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (हरि में तल्लीन या हरि में तत्पर)—इस सूत्र से हरि में तृतीया और सप्तमी।

१३७२. नक्षत्रे च लुपि (२–३–४५)

नक्षत्रवाचक शब्द से अण् प्रत्यय का लोप होने पर जब प्रत्यय का अर्थ विद्यमान रहता है, तब उस (नक्षत्रवाचक शब्द) से अधिकरण में तृतीया और सप्तमी होती हैं।

मूलेनावाहयेद् देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् । मूले श्रवणे इति वा (मूल-नक्षत्र से युक्त काल में देवी का आवाहन करे और श्रवण-नक्षत्र से युक्त काल में देवी का विसर्जन करे)–यहाँ पर मूल और श्रवण शब्दों से नक्षत्रेण युक्तः कालः (४–२–३) सूत्र से युक्त काल अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ और लुबविशेषे (४–२–४) से उसका लोप हुआ है। लोप होने के कारण इस सूत्र से मूल और श्रवण शब्दों से तृतीया और सप्तमी। प्रत्युदाहरण–पुष्ये शनिः (पुष्य नक्षत्र में शनि है)–यहाँ पर युक्त काल अर्थ में न अण् हुआ है और न उसका लोप। अतः अधिकरण में सप्तमी।

१३७३. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये (२–३–७)

जब कोई कालवाचक और मार्ग की दूरीवाचक संज्ञा दो कारक-शक्तियों के बीच में होती हैं, तब काल और मार्ग-वाचक शब्दों में सप्तमी और पंचमी होती हैं। अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद् वा भोक्ता (यह आज खाकर दो दिन बाद खाएगा)–यहाँ पर आज खाने वाला और दो दिन बाद खाने वाला एक कर्ता है। उस एक कर्ता की दो शक्तियों के बीच में द्व्यह (दो दिन) काल है, उसमें सप्तमी और पंचमी। इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद् वा लक्ष्यं विध्येत् (यहाँ पर स्थित यह कोस भर पर विद्यमान लक्ष्य को बींध सकता है)–कर्ता अयम् और कर्म लक्ष्यम् इन दो कारक-शक्तियों के बीच में मार्ग की दूरी का वाचक क्रोश शब्द है, उससे सप्तमी और पंचमी। अधिक शब्द के योग में सप्तमी और पंचमी विभक्तियाँ होती हैं, क्योंकि पाणिनि ने निम्नलिखित दो सूत्रों में अधिक शब्द के साथ सप्तमी और पंचमी का प्रयोग किया है–तदस्मिन्नधिकम्० (५-२-४५) और यस्मादधिकं० (१३७५)। पहले में सप्तमी है और दूसरे मे पंचमी है। लोके लोकाद् वाऽधिको हरिः (हरि लोक से बढ़कर है)—यहाँ पर अधिक के साथ लोक में सप्तमी और पंचमी दोनों हैं।

१३७४. अधिरीश्वरे (१–४–९७)

स्व और स्वामी के अर्थ को प्रकट करने में 'अधि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। स्व–वस्तु, स्वामी-अधिकारी, मालिक।

१३७५. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी (२–३–९)

'जिससे अधिक है' और 'जिसका स्वामित्व कहा जाता है' इन दोनों अर्थों में कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी होती है। उप परार्धे हरेर्गुणाः (हरि के गुण परार्ध से भी अधिक हैं)–अधिक अर्थ में उपोऽधिके च (१२८१) से उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। इससे उप के योग में परार्ध में सप्तमी है। परार्ध सबसे बड़ी संख्या है। इससे बड़ी कोई संख्या नहीं होती। स्वामित्व अर्थ प्रकट करने में स्व और स्वामी दोनों से ही क्रमशः सप्तमी होती है। अधि भुवि रामः (राम पृथ्वी के स्वामी हैं)–भू स्व है, राम स्वामी हैं, अतः अधि के कारण स्व भुवि मे सप्तमी है। अधि रामे भूः

ऊँर्, ऋन् > ऋँर्। देवाँ अच्छा। महाँ इन्द्रो०। विद्वाँ अग्ने। परिधीँरति (परिधीन्+अति)। अभीशूँरिव (अभीशून्+इव)। नृँरभि (नॄन्+अभि)।

४. (स्यश्छन्दसि० ६-१-१३३) स्यः के विसर्ग का लोप होता है, बाद में व्यंजन हो तो। एष स्य भानुः।

५. (प्रणवष्टेः, ८-२-८९) यज्ञकर्म में मन्त्र के अन्तिम टि (स्वर-सहित अंश) को ओम् आदेश होता है। अर्थात् यज्ञ में मन्त्रपाठ के बाद 'ओं स्वाहा' कहने में मन्त्र के अन्तिम टि के स्थान पर ओम् पढ़ा जाता है। अपां रेतांसि जिन्वतोम्। (जिन्वत = जिन्वतोम्)।

६. (विसर्ग को स्) कवर्ग, पवर्ग बाद में होने पर भी इन स्थानों पर विसर्ग को स् होता है। संस्कृत में ऐसे स्थानों पर प्रायः विसर्ग ही रहता है। (छन्दसि वा०, ८-३-४९) कवर्ग, पवर्ग बाद में होने पर विसर्ग को विकल्प से स् होता है, प्र और आम्रेडित (द्विरुक्त का अगला रूप) को छोड़कर। ऋतस्कविः। विश्वतस्पृथुः। (कःकरत्०, ८-३-५०) विसर्ग को स् होता है, बाद में कः, करत्, करति, कृधि और कृत हो तो। अपस्कः (अपः+कः)। वस्यसस्करत् (वस्यसः+करत्)। सुपेशसस्करति (सुपेशसः+करति)। उरु णस्कृधि (णः+कृधि)। नस्कृतम् (नः+कृतम्)। (पञ्चम्याः०, ८-३-५१) पंचमी के विसर्ग को स्, बाद में परि हो तो। दिवस्परि (दिवः+परि)। (पातौ च०, ८-३-५२) पंचमी के विसर्ग को स्, बाद में पातु हो तो। सूर्यो नो दिवस्पातु (दिवः+पातु)। (षष्ठ्याः पतिपुत्र०, ८-३-५३) षष्ठी के विसर्ग को स्, बाद में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष हों तो। वाचस्पतिम् (वाचः+पतिम्)। दिवस्पुत्राय। तमसस्पारम्। इळस्पदे। रामस्पोषम्।

७. (स् को ष्) (युष्मत्तत्०, ८-३-१०३) पाद के बीच में स् को ष् होता है, बाद में युष्मद् के रूप (त्वम्, त्वा, ते, तव), तत्, ततक्षु हों तो। त्रिभिष्ट्वम् (त्रिभिस्+त्वम्)। तेभिष्ट्वा। आभिष्टे। सधिष्टव। अग्निष्टत् (अग्निस्+तत्)। निष्टतक्षुः। (पूर्वपदात्, ८-३-१०६) पूर्वपद में विद्यमान निमित्त इण् (इ, उ, ऋ) के कारण अगले स् को ष् होता है। दिविष्ठः (दिवि+स्थः)। (सुञः, ८-३-१०७) पूर्ववत् निपात सु के स् को ष् होता है। ऊर्ध्व ऊ षु णः। अभीषुणः (अभी+सु+णः)। (निव्यभिभ्यो०, ८-३-११९) नि वि और अभि के बाद अट् (अ) का व्यवधान होने पर भी धातु के स् को ष् विकल्प से होता है। न्यषीदत्, न्यसीदत् (नि+असीदत्)। व्यषीदत्। अभ्यष्टौत् (अभि+अस्तौत्)।

८. (न् को ण्) (छन्दस्यृदवग्रहात्, ८-४-२६) पूर्वपद के ऋ के बाद न् को ण् होता है। नृमणाः (नृ+मनाः) पितृयाणम् (पितृ+यानम्)। (नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः, ८-४-२७) धातुस्थ निमित्त (र्, ष्), उरु और षु के बाद नः

(अस्मद् शब्द का नः) के न् को ण् होता है। रक्षा णः। शिक्षा णो अस्मिन्। उरु णस्कृधि। अभी षु णः। मो षु णः।

९. (ड्>ळ, ढ>ळ्ह) (अचोर्मध्यस्थस्य डस्य ळः ढस्य ळ्हश्च प्रातिशाख्ये विहितः) दो स्वरों के बीच के ड् को ळ् होता है और ढ् को ळ्ह्। ईडे>ईळे। साढा>साळ्हा। यह ळ मराठी में मिलता है। इसका उच्चारण ड़ से मिलता-जुलता है।

२. शब्द-रूप-विचार

१०. अकारान्त शब्द (पुंलिंग और नपुंसकलिंग)

(सुपां सुलुक्०, ७-१-३९) औ को आ होता है। देवौ>देवा। (आज्जसेरसुक्, ७-१-५०) प्र० बहु० में आसः। (बहुलं छन्दसि, ७-१-१०) भिः को विकल्प से ऐः। अतः देवैः, देवेभिः। तृतीया एक० में सुपां० से आ। (शेश्छन्दसि०, ६-१-७०) नपुं प्र० और द्वितीया बहु० में इ का लोप। फिर न् का लोप। अतः दो अन्त्यावयव-आ, आनि।

अकारान्त पुंलिंग और नपुं० में मुख्यरूप से ये अन्तर होते हैं:-१. प्र०, द्वि० सं० २-आ, औ। २. प्र० ३-आः, आसः। ३. नपुं० प्र०, द्वि० ३-आ, आनि। ४. तृ० १-एन, आ (तृ० १ में आ का प्रयोग थोड़े ही स्थानों पर है)। ५. तृ० ३-ऐः, एभिः।

प्रिय (पुंलिंग)				प्रिय (नपुं०)		
प्रियः	प्रिया प्रियौ	प्रियाः प्रियासः	प्र०	प्रियम्	प्रिये	प्रिया प्रियाणि
प्रियम्	प्रिया प्रियौ	प्रियान्	द्वि०	,,	,,	,,
प्रियेण प्रिया	प्रियाभ्याम्	प्रियैः प्रियेभिः	तृ०	प्रियेण प्रिया	प्रियाभ्याम्	प्रियैः प्रियेभिः
प्रियाय	प्रियाभ्याम्	प्रियेभ्यः	च०	प्रियाय	प्रियाभ्याम्	प्रियेभ्यः
प्रियात्	,,	,,	पं०	प्रियात्	,,	,,
प्रियस्य	प्रिययोः	प्रियाणाम्	ष०	प्रियस्य	प्रिययोः	प्रियाणाम्
प्रिये	,,	प्रियेषु	स०	प्रिये	,,	प्रियेषु
हे प्रिय	हे प्रिया प्रियौ	प्रियाः प्रियासः	सं०	हे प्रिय	हे प्रिये	हे प्रिया हे प्रियाणि

सूचना—तृतीया एक० का एन प्रायः दीर्घ होकर एना प्रयुक्त होता है।

११. आकारान्त शब्द (स्त्रीलिंग)

सूचना—आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप प्रायः रमा के तुल्य चलते हैं। केवल तृतीया एक० में दो अन्त्यावयव लगते हैं—आ, अया। प्रिया, प्रियया। शेष रमावत्।

१२. इकारान्त शब्द (पुं०, स्त्री०, नपुं०)

(क) इकारान्त पुंलिंगः—हरि शब्द से दो स्थानों पर अन्तर होते हैं:—१. तृ० १—आ, ना। २. स० १—आ, औ। (ख) इकारान्त स्त्रीलिंग—मति के तुल्य। तीन स्थानों पर अन्तर होंगे:—१. तृ० १—अ, इ, ई। २. स० १—आ, औ। ३. च०, पं०, ष० और सप्तमी एक० में आ वाले रूप (ऐ, याः, याम्) नहीं बनते हैं। सूचना—ऋग्वेद में केवल सात स्थानों पर च० १ में ऐ वाले रूप मिलते हैं। जैसे—भृति> भृत्यै। षष्ठी १ में आः वाले ६ रूप ऋग्वेद में मिलते हैं। जैसे—युवति> युवत्याः। सप्तमी १ में वेदि का दो स्थानों पर वेदी रूप मिलता है। (ग) इकारान्त नपुं०—पुलिंग वाले रूप से केवल ४ स्थानों पर अन्तर होगा:—१. प्र०, द्वि०, सं० १–इ। २. प्र० द्वि० सं० ३–इ, ई, ईनि। ३. तृ० १–ना। ४. स० १–आ, औ।

शुचि (पवित्र) पुंलिंग				शुचि (स्त्रीलिंग)		
शुचिः	शुची	शुचयः	प्र०	शुचिः	शुची	शुचयः
शुचिम्	,,	शुचीन्	द्वि०	शुचिम्	,,	शुचीः
शुच्या, शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः	तृ०	शुच्या, शुचि, शुची	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
शुचये	,,	शुचिभ्यः	च०	शुचये	,,	शुचिभ्यः
शुचेः	,,	,,	पं०	शुचेः	,,	,,
,,	शुच्योः	शुचीनाम्	ष०	,,	शुच्योः	शुचीनाम्
शुचा, शुचौ	,,	शुचिषु	स०	शुचा, शुचौ	,,	शुचिषु
हे शुचे	हे शुची	हे शुचयः	सं०	हे शुचे	शुची	शुचयः

शुचि (नपुंसक०)

शुचि	शुची	शुचि, शुची, शुचीनि	प्र०
,,	,,	,, ,, ,,	द्वि०
शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः	तृ०

शेष पुंलिंग के तुल्य।

सूचना—(१) पति शब्द—पति शब्द के रूप संस्कृत के तुल्य चलते हैं और समास होने पर भूपति के तुल्य। (षष्ठीयुक्त०, १-४-९) पति के बाद तृ० १ को विकल्प से ना होता है। पति शब्द के पति (स्त्री का पति) अर्थ में पति के तुल्य रूप चलेंगे, परन्तु स्वामी (lord) अर्थ में इसके रूप भूपति के तुल्य चलते हैं। जैसे—पत्या (पति ने), क्षेत्रस्य पतिना (खेत के स्वामी ने)।

(२) अरि (शत्रु) शब्द—अरि शब्द के रूपों में हरि शब्द से ये अन्तर होते हैं—

प्र० ३—अर्यः, द्वि० १—अरिम्, अर्यम्, द्वि० ३—अर्यः, प० १—अर्यः।

१३. ईकारान्त शब्द (स्त्रीलिंग)

सूचना—नदी के तुल्य रूप चलेंगे। केवल दो स्थानों पर अन्तर होंगे। १. प्र०, द्वि०, सं० २—ई। जैसे—देवी। २. प्र०, द्वि०, सं० ३—ईः। जैसे—देवीः। प्रथमा, द्वितीया और संबोधन के द्विवचन और बहुवचन में ही अन्तर होगा, अन्यत्र नहीं।

१४. उकारान्त शब्द (पुं०, स्त्री०, नपुं०)

मधु (पुं०)				मधु (स्त्री०)		
मधुः	मधू	मधवः	प्र०	मधुः	मधू	मधवः
मधुम्	,,	मधून्	द्वि०	मधुम्	,,	मधूः
मध्वा, मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः	तृ०	मध्वा	मधुभ्याम्	मधुभिः
मधवे	,,	मधुभ्यः	च०	मधवे	,,	मधुभ्यः
मधोः	,,	,,	पं०	मधोः	,,	,,
मधोः, मध्वः	मध्वोः	मधूनाम्	प०	मधोः	मध्वोः	मधूनाम्
मधौ, मधवि	,,	मधुषु	स०	मधौ	,,	मधुषु
हे मधो	हे मधू	हे मधवः	सं०	हे मधो	हे मधू	हे मधवः

मधु (नपुं०)

मधु	मध्वी	मधु, मधू, मधूनि	प्र०
,,	,,	,, ,, ,,	द्वि०
मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः	तृ०
मधवे, मधुने	,,	मधुभ्यः	च०
मधोः, मधुनः	,,	,,	पं०
,, ,,	मध्वोः	मधूनाम्	प०
मधौ, मधुनि	,,	मधुषु	स०
हे मधु	हे मध्वी	हे मधु, मधू, मधूनि	सं०

१५. ऋकारान्त शब्द (पुं०, स्त्री०)

सूचना—ऋकारान्त पुं० और स्त्री० शब्दों के रूप संस्कृत के तुल्य चलते हैं। केवल अन्तर यह है कि प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में दो अन्तिम अंश लगते हैं—आ, औ। जैसे—दातारा, दातारौ। पितरा, पितरौ। मातरा, मातरौ।

(ख) लेट् लकार में मुख्य कार्य—१. (अ और आ विकरण) (लेटोऽडाटौ, ३–४–९४) लेट् लकार में अ और आ विकरण लग जाते हैं। जैसे—पताति विद्युत् (पताति = पतति)। प्रियो अग्ना भवाति (भवाति = भवति)। २. (मध्य में स् का आगम) (सिब्बहुलं लेटि, ३–१–३४) लेट् में धातु और तिङ् के बीच में सिप् (स्) बहुल से लगता है। इस स् से पूर्व इट् (इ) भी होता है। सिप् (स्) पित् होता है, अतः धातु को यथाप्राप्त गुण या वृद्धि भी होगी। तृ > तारिषत्। प्र ण आयूंषि तारिषत्। जुष् > जोषिषत्। सुपेशस्करति जोषिषद्धि। सु > साविषत्। आ साविषत्। ३. (परस्मैपद तिङ् के इ का लोप) (इतश्च लोपः०, ३–४–९७) लेट् में परस्मैपदी तिङों के अन्तिम इ का विकल्प से लोप होता है। अतः ति > त्, अन्ति > अन्, सि > स्, मि को नि > (०)। प्र०१ में त्, म०१ में : (विसर्ग) और उ० १ में कुछ भी शेष नहीं रहेगा। लोप के अभाव पक्ष में ति, सि, नि रहेंगे। भवति > भवाति, भवात्। भवन्ति > भवान्। भवसि > भवासि, भवाः। भवामि > भवानि, भवा। ४. (उ० २, ३ के स् का लोप) (स उत्तमस्य, ३–४–९८) लेट् उ० २, ३ के स् का लोप होता है। करवाव। करवाम। ५. (आताम्, आथाम् के आ को ऐ) (आत ऐ, ३–४–९५) आताम् और आथाम् के आ को ऐ। आताम् > ऐताम्। आथाम् > ऐथाम्। मादयेते > मादयैते। सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते। ६. (अन्तिम ए को ऐ) (वैतोऽन्यत्र, ३–४–९६) लेट् के ए को विकल्प से ऐ होता है। प्र० २, म० २ में नहीं। ईशे > ईशै। पद्मनामीशै। गृह्णान्ते > गृह्णान्तै। ब्रह्म गृह्णान्तै।

(ग) लेट् का प्रयोग—(लिङर्थे लेट्, ३–४–७) विधिलिङ् के अर्थ में लेट् होता है। विधि, निमन्त्रण आदि अर्थ में तथा हेतु–हेतुमद्भाव आदि में लेट् होता है। (उपसंवादाशङ्कयोश्च, ३–४–८) उपसंवाद (वार्तालाप, शर्त लगाना) और आशंका अर्थ में लेट् होता है। अहमेव पद्मनामीशै। नेजिह्मायन्तो नरकं पताम।

२२. लेट् के रूप

सूचना–उदाहरणार्थ कुछ प्रसिद्ध धातुओं के लेट् के रूप दिए जा रहे हैं।

लेट्, परस्मैपद		भू (होना)	(भ्वादि०)	लेट्, आत्मनेपद		
भवाति, भवात्	भवातः	भवान्	प्र०	भवाते, भवातै	भवैते	भवान्ते
भवासि, भवाः	भवाथः	भवाथ	म०	भवासे, भवासै	भवैथे	भवाध्वे
भवानि, भवा	भवाव	भवाम	उ०	भवै	भवावहै	भवामहै

इ (जाना) पर०		(अदादि०)		ब्रू (बोलना) आत्मने०		
अयति, अयत्	अयतः	अयन्	प्र०	ब्रवते	ब्रवैते	ब्रवन्त
अयसि, अयः	अयथः	अयथ	म०	ब्रवसे	ब्रवैथे	ब्रवध्वे
अयानि, अया	अयाव	अयाम	उ०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

पर०		भृ (धारण करना) (जुहोत्यादि०)		आत्मने०		
बिभरत्	बिभरतः	बिभरन्	प्र०	बिभरते	बिभरैते	बिभरन्त
बिभरः	बिभरथः	बिभरथ	म०	बिभरसे	बिभरैथे	बिभरध्वे
बिभराणि	बिभराव	बिभराम	उ०	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै
पर०		कृ (करना) (स्वादि० नु विकरण)		आत्मने०		
कृणवत्	कृणवतः	कृणवन्	प्र०	कृणवते	कृणवैते	कृणवन्त
कृणवः	कृणवथः	कृणवथ	म०	कृणवसे	कृणवैथे	कृणवध्वे
कृणवानि, कृणवा	कृणवाव	कृणवाम	उ०	कृणवै	कृणवावहै	कृणवामहै
पर०		युज् (जोड़ना) (रुधादि०)		आत्मने०		
युनजत्	युनजतः	युनजन्	प्र०	युनजते	युनजैते	युनजन्त
युनजः	युनजथः	युनजथ	म०	युनजसे	युनजैथे	युनजध्वे
युनजानि	युनजाव	युनजाम	उ०	युनजै	युनजावहै	युनजामहै
पर०		ग्रभ् (ग्रह्, पकड़ना) (क्र्यादि०)		आत्मने०		
गृभ्णाति, गृभ्णात्	गृभ्णातः	गृभ्णान्	प्र०	गृभ्णाते	गृभ्णैते	गृभ्णान्त
गृभ्णाः	गृभ्णाथः	गृभ्णाथ	म०	गृभ्णासे	गृभ्णैथे	गृभ्णाध्वे
गृभ्णानि	गृभ्णाव	गृभ्णाम	उ०	गृभ्णै	गृभ्णावहै	गृभ्णामहै

२३. धातुरूपों के विषय में कुछ उल्लेखनीय बातें—

सूचना—वेद में धातुरूपों में जो विशेष उल्लेखनीय अन्तर हैं, उनका यहाँ पर संक्षिप्त विवरण दिया गया है। विस्तृत विवरण के लिए सिद्धान्तकौमुदी का वैदिक-प्रकरण देखें।

(१) विकरण-व्यत्यय-(क) (व्यत्ययो बहुलम्, ३-१-८५) वेद में शप् आदि विकरणों में परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् किसी भी धातु से किसी दूसरे गण के विकरण लग जाते हैं और उसके रूप दूसरे गण के तुल्य चलते हैं। जैसे-भ्वादिगणी धातु से शप् का लोप और अदादिगणी धातु से शप् आदि। जुहोत्यादि० में द्वित्व न होना। आण्डा शुष्णस्य भेदति। (भिनत्ति के स्थान पर भेदति)। जरसा मरते पतिः (मरते = म्रियते)। इन्द्रो वस्तेन नेषतु (नेषतु = नयतु)। इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् (तरुषेम = तरेम)। (ख) (बहुलं छन्दसि, २-४-७३) अदादिगण में भी शप् का लोप नहीं होता है। वृत्रं हनति वृत्रहा (हनति = हन्ति)। अहिः शयते (शयते = शेते)। अदादिगण से भिन्न में भी शप् का लोप। त्राध्वं नो देवाः (त्राध्वम् = त्रायध्वम्)। (ग) (बहुलं छन्दसि, २-४-७६) जुहोत्यादि० में श्लु न होने से धातु को द्वित्व नहीं। दाति प्रियाणि० (दाति = ददाति)। जुहोत्यादि० से भिन्न में शप् को श्लु होकर द्वित्व। पूर्णां विवष्टि (विवष्टि = वष्टि)।

(२) तिङ् और पद-व्यत्यय आदि—

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां, सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥ (महाभाष्य)

पतंजलि का कथन है कि इन स्थानों पर वेद में व्यत्यय (उलट-पुलट) देखा जाता है–१. प्रथमा आदि विभक्तियाँ, २. तिङ् प्रत्यय, ३. उपग्रह (परस्मैपद–आत्मनेपद), ४. पुंलिंग आदि, ५. प्रथम पुरुष आदि, ६. कालवाचक प्रत्यय, ७. व्यंजन, ८. अच् (स्वर), ९. उदात्त आदि स्वर, १०. कृत् और तद्धित प्रत्यय आदि, ११. विकरण आदि। १. तिङ्–व्यत्यय–बहु० के स्थान पर एक० तिङ् प्रत्यय। चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति (तक्षति = तक्षन्ति)। २. पद–व्यत्यय–परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद या इसके विपरीत। ब्रह्मचारिणम् इच्छते (इच्छते = इच्छति)। ऊर्मिर्युध्यति (युध्यति = युध्यते)। ३. पुरुष–व्यत्यय–दूसरे पुरुष के स्थान पर दूसरा पुरुष। प्रथम पु० को मध्यम पु०। दशभिर्वियूयाः। (वियूयाः = वियूयात्)। ४. काल-व्यत्यय–लुट् के स्थान पर लट्। श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन। ५. व्यंजन-व्यत्यय—ध के स्थान पर द। समसो गा अदुक्षत् (अदुक्षत् = अधुक्षत्)।

(३) विविध कार्य—

(क) (मः को मसि) (इदन्तो मसि, ७–१–४६) उ० ३ मः को मसि हो जाता है। नमो भरन्त एमसि (एमः>एमसि)। अर्थात् उ० ३ में मस् के अन्त में इ और जुड़ जाता है।

(ख) लुङ् लकार–१. स्–लोप–(मन्त्रे घस०, २–४–८०) इन धातुओं के बाद लुङ् में च्लि के स् का लोप हो जाता है–घस्, ह्वृ, नश्, वृ, दह्, आकारान्त धातु, वृच्, कृ, गम्, जन्। क्रमशः उदाहरण हैं—अक्षन्नमी। मा ह्वर्मित्रस्य। प्रणङ् मर्त्यस्य। वेन आवः। मा न आधक्। आप्रा द्यावापृथिवी। परावर्क्०। अकन् उपासः। अनु ग्मन्। अज्ञत। २. च्लि को अङ् (अ)–(कृमृदृ०, ३–१–५९) इन धातुओं के बाद च्लि को विकल्प से अङ् (अ) होता है। पक्ष में सिच् वाला रूप होगा। कृ, मृ, दृ और रुह्। क्रमशः उदाहरण हैं– इदं तेभ्योऽकरं नमः। अमरत्। अदरत्। यत् सानोः सानुमारुहत्।

(ग) द्वित्व का अभाव–(छन्दसि वेति०, धा०) वेद में द्वित्व ऐच्छिक है। यो जागार (जागार = जजागार)। दाति प्रियाणि (दाति = ददाति)।

(घ) अट् और आट्–(छन्दस्यपि दृश्यते, ६–४–७३) हलादि धातु से पूर्व भी लङ् आदि में आट् (आ) लगता है। आनट्। आवः। नश् और वृ से पहले लुङ् में आ। (बहुलं छन्दसि०, ६–४–७५) माङ् के बिना भी धातु से पहले लुङ् आदि में अ और आ का अभाव। इसके विपरीत मा के साथ भी अ या आ। जनिष्ठा उग्रः (जनिष्ठाः = अजनिष्ठाः)। मा वः क्षेत्रे परबीजान्यवाप्सुः (वाप्सुः के स्थान पर अवाप्सुः, मा के साथ अट्)।

(ङ) सभी कालों में लुङ् आदि का प्रयोग—(छन्दसि लुङ्लङ्लिटः, ३-४-६) लुङ्, लङ् और लिट् सभी लकारों के स्थान पर हो जाते हैं। देवो देवेभिरागमत् (आगमत् = आगच्छतु, लोट् के अर्थ में लुङ्)। अद्य ममार (ममार = म्रियते, लट् के अर्थ में लिट्)।

(च) हृ और ग्रह् के ह् को भ्–(हृग्रहोर्भश्छन्दसि, वा०) हृ और ग्रह् के ह् को भ् होता है। गृभ्णामि ते (= गृह्णामि)। मन्था जभार (जभार = जहार)।

(छ) अभ्यास के अ को इ—(बहुलं छन्दसि, ७-४-७८) पूर्णां विवष्टि (विवष्टि = वष्टि)

(ज) हि को धि—(श्रुशृणु०, ६-४-१०२) श्रु, शृणु, पॄ, कृ और वृ के बाद लोट् के हि को धि होता है। श्रुधी हवम्। शृणुधी गिरः। रायस्पूर्धि। उरु णस्कृधि। अपावृधि। (अङितश्च, ६-४-१०३) अङित् धातुओं के बाद हि को धि। रारन्धि (रमस्व)। अस्मे प्रयन्धि (प्रयच्छ)। युयोधि (यु लोट् म० १)।

(झ) विविध कार्य–(१) (इरे को रे) (इरयो रे, ६-४-७६) लिट् प्र० ३ के इरे को रे होता है। प्रथमं गर्भं दध्र आपः (दध्रे = दध्रिरे)। (२) उपधा-लोप (तनिपत्योः०, ६-४-९९) तन् और पत् की उपधा के अ का लोप होता है, बाद में कित् ङित् प्रत्यय हों तो। वितत्निरे (= वितेनिरे) कवयः। शकुना इव पप्तिम (= पेतिम)। (घसिभसोः०, ६-४-१००) घस् और भस् की उपधा के अ का लोप होता है, बाद में हलादि कित् ङित् हो तो। सग्धिश्च मे (स + घस् + ति—सग्धि, समान को स है)। बब्धां ते हरी धानाः। (बभस् + ताम्)। (३) (र् का आगम) (बहुलं छन्दसि, ७-१-८) धातु और प्रत्यय के बीच में र् जुड़ जाता है। धेनवो दुह्रे (= दुहते)। घृतं दुह्रते (= दुहते)। अदृश्रम् (= अदर्शम्)। (४) (अम् को म्) (अमो मश्, ७-१-४०) उ० १ मिप् को अम् होने पर उसे म् हो जाएगा। वधीं वृत्रम् (वधीं = अवधिषम्)। (५) (त का लोप) (लोपस्त०, ७-१-४१) आत्मनेपद के त का लोप हो जाता है। देवा अदुह (= अदुहत)। दक्षिणतः शये (शये = शेते, त का लोप, ए को अय्)। (६) (त को तन, थन) (तप्तनप्०, ७-१-४५) लोट् म० ३ के त को तप् (त), तनप् (तन) और थन आदेश होते हैं। शृणोत ग्रावाणः (शृणोत = शृणुत, तप् होने से णु को गुण)। सुनोतन (= सुनुत)। दधातन (= धत्त)। जुजुष्टन (= जुषध्वम्)। मरुतो यतिष्ठन (= स्त)। (७) (आ का लोप) (घोर्लोपो०, ७-३-७०) लेट् में दा और धा के आ का विकल्प से लोप होता है। दधद् रत्नानि दाशुषे (दधत् = दधात्)। सोमो ददद् गन्धर्वाय (ददत् = ददात्)। (८) (आसीत् को आः) (बहुलं छन्दसि, ७-३-९७) अस् को ई का आगम विकल्प से होता है। सर्वमा इदम् (आः = आसीत्, ई का अभाव, स् को विसर्ग)।

(ञ) (अन्तिम स्वर को दीर्घ)–(ऋचि तुनुघ०, ६-३-१३३) लोट् म० ३ के त को दीर्घ होकर ता हो जाता है। भरता जातवेदसम् (भरता = भरत)। (द्व्यचोऽतस्तिङः, ६-३-१३५) दो अच् वाले तिङन्त के अन्तिम अ को आ हो जाता है। विद्मा हि चक्रा जरसम् (विद्मा = विद्म, चक्रा = चक्र)।

५. समास-विचार

सूचना—वेद में समास में संस्कृत से बहुत थोड़ा अन्तर है। समास-कार्य और समासान्त प्रत्यय प्रायः वही होते हैं। कुछ अन्तर निम्नलिखित हैं:—

२४. (क) (पितरामातरा) (पितरामातरा०, ६-३-३३) पितृ और मातृ का द्वन्द्व समास होने पर दोनों शब्दों से आ लगता है और गुण होता है। पितरामातरा। मातरापितरा। (=पितामातरौ, मातापितरौ)। (ख) (समान को स) (समानस्य ०, ६-३-८४) समास में समान को स हो जाता है, मूर्धा आदि से भिन्न उत्तरपद हो तो। सगर्भ्यः (=समानगर्भ्यः)। (ग) (सह को सध) (सधमाद०, ६-३-९६) माद और स्थ बाद में होंगे तो सह को सध हो जाता है। अस्मिन् सधमादे। सोमः सधस्थम् (=सहस्थम्)। (घ) (कु को कव, का) (पथि च०, ६-३-१०८) कुपथः, कवपथः, कापथः। पथिन् बाद में होने पर कु को कव और का। (ङ) (अष्ट को अष्टा) (छन्दसि च, ६-३-१२६) अष्ट को अष्टा होता है, बाद में कोई शब्द हो तो। अष्टापदी। (च) (अ को दीर्घ) (मन्त्रे सोमाश्वे०, ६-३-१३१) सोम, अश्व, इन्द्रिय, विश्वदेव्य के अ को आ होता है, बाद में मतुप् हो तो। अश्वावतीं सोमावतीम्। इन्द्रियावान्। विश्वदेव्यावता। (छ) (पूर्वपद को दीर्घ) (अन्येभ्योऽपि०, ६-३-१३७)। समास में कुछ स्थानों पर पूर्वपद को दीर्घ होता है। पूरुषः (=पुरुषः)। दण्डादण्डि।

६. तद्धित-विचार

सूचना—तद्धित में भी प्रायः संस्कृत वाले रूप ही बनते हैं। कुछ अन्तर निम्नलिखित हैं—

२५. (क) (ठञ् > इक) (वसन्ताच्च, ४-३-२०) वसन्त से ठञ्। वासन्तिकम्। (हेमन्ताच्च, ४-३-२१) हेमन्त से ठञ्। हैमन्तिकम्। (ख) (मयट् > मय) (द्वयच०, ४-३-१५०) दो अच् वाले शब्दों से मय होता है, विकार अर्थ में। शरमयम्। पर्णमयी जुहूः। (ग) (ढ—एय) (ढश्छन्दसि, ४-४-१०६) सभा से ढ होता है। सभेयो युवा (सभेयः = सभ्यः)। (घ) (यत्, घ, छ) (अग्राद्यत्, घच्छौ च, ४-४-११६, ११७) अग्र शब्द से घ (इय), छ (ईय) और यत् (य) प्रत्यय होते हैं। अग्र > अग्रियः, अग्रीयः, अग्र्यः। (ङ) (अण् आदि विकल्प से) (सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वात्) वेद में सभी अण् आदि तद्धित प्रत्यय विकल्प से होते हैं। (च) (य प्रत्यय) (सोममर्हति ४-४-१३७) सोम शब्द से योग्य अर्थ में य होता है। सोम्यः। (मये च, ४-४-१३८) मयट् के अर्थ में भी य होता है। सोम्यं मधु। (छ) (वत् प्रत्यय) (उपसर्गा०, ५-१-११८) उपसर्गों से स्वार्थ में वति (वत्) प्रत्यय होता है। यदुद्वतो निवतः (=उद्गतान्, निर्गतान्)। (ज) (थ प्रत्यय) (थट् च०, ५-२-५०) पञ्चन् से थ भी होता है। पञ्चथम्। पञ्चमम्। (झ) (मत्वर्थ में ई) (छन्दसीवनिपौ०, वा०) मतुप् के अर्थ में ई प्रत्यय भी होता है। रथीरभूत् (रथीः—रथवान्)।

सुमङ्गलीरियं वधूः (सुमङ्गली: = सुमङ्गलवती)। (ज) (दा, र्हि प्रत्यय) (तयोर्दा०, ५-३-२०) इदम् से दा और तद् से र्हि प्रत्यय होते हैं। इदा (= इदानीम्)। तर्हि (= तदा)। (ट) (था प्रत्यय) (था हेतौ च, ५-३-२६) किम् से था होता है। कथा ग्रामं न पृच्छसि। कथा दाशेम। (कथा = कथम्)। (प्रत्नपूर्व०, ५-३-१११) इव अर्थ में प्रत्न, पूर्व, विश्व, इम से था होता है। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा। (ठ) (अम् प्रत्यय) (अमु च, ५-४-१२) तरप्, तमप्-प्रत्ययान्त आदि से आम् के स्थान पर अम् भी लगता है। प्रतं नय प्रतरम् (= प्रतराम्)। (ड) (म का लोप) (ऋत्व्य०, ६-४-१७५) हिरण्य + मय में म का लोप होकर हिरण्यय बनता है। हिरण्ययेन सविता रथेन।

७. कृत्-प्रत्यय-विचार

सूचना—संस्कृत के तुल्य ही वेद में भी कृत्-प्रत्यय लगते हैं। विशेष अन्तर निम्नलिखित हैं—

२६. तुम् अर्थवाले कृत् प्रत्यय :—

(क) (तुमर्थे सेसेनसे०, ३-४-९) तुमुन् (तुम्) प्रत्यय के अर्थ में वेद में निम्नलिखित १५ प्रत्यय होते हैं। जिन प्रत्ययों में न् लगा है, वे नित् होने से आद्युदात्त होते हैं। १. से—वक्षे रायः (वह् + से)। २. सेन् (से)—ता वामेषे (एषे—इ + से)। ३. असे—शरदो जीवसे धाः। (जीवसे—जीव् + असे)। ४. असेन् (असे)—आद्युदात्त होगा। जीवसे। ५. क्से (से)—प्रेषे (प्र + इ + से)। ६. कसेन् (असे)—गवामिव श्रियसे (श्रियसे—श्रि + असे)। ७, ८. अध्यै, अध्यैन् (अध्यै)—जठरं पृणध्यै (पृण् + अध्यै)। ९, १०. कध्यै, कध्यैन् (अध्यै)—आहुवध्यै (आ + हृ—ह्वे + अध्यै)। ११. शध्यै (अध्यै)—मादयध्यै (मादि + अध्यै)। १२. शध्यैन् (अध्यै)—वायवे पिबध्यै (पा > पिब + अध्यै)। १३. तवै—दातवै (दा + तवै)। १४. तवेङ् (तवे)—सूतवे (सू + तवे)। १५. तवेन् (तवे)—कर्तवे (कृ + तवे)।

(ख) तुम् के अर्थ में अन्य कृत्-प्रत्यय ये हैं:—१. (ए, इष्यै) (प्रयै रोहिष्यै०, ३-४-१०) प्रयै (= प्रयातुम्, प्र + या + ऐ)। रोहिष्यै (= रोढुम्, रुह् + इष्यै)। अव्यथिष्यै (= अव्यथितुम्, अ + व्यथ् + इष्यै)। २. (ए प्रत्यय) (दृशे विख्ये च, ३-४-११) दृशे (= द्रष्टुम्, दृश् + ए)। विख्ये (= विख्यातुम्, वि + ख्या + ए)। ३. (णमुल् > अम्, कमुल् > अम्) (शकि णमुल्०, ३-४-१२) विभाजम् (= विभक्तुम्, वि + भज् + णमुल्)। अपलुपम् (= अपलोप्तुम्, अप + लुप् + कमुल् > अम्)। ४. (तोसुन् > तोः, कसुन् > अः) (ईश्वरे तोसुन्०, ३-४-१३) ईश्वर पहले हो तो तोसुन्, कसुन्। ईश्वरो विचरितोः (= विचरितुम्, वि + चर् + तोः)। ईश्वरो विलिखः (= विलेखितुम्, वि + लिख् + कसुन् > अः)।

२७. तुमर्थक प्रत्यय (Infinitive) के विषय में मेकडॉनल के विचार।

५. समास-विचार

सूचना—वेद में समास में संस्कृत से बहुत थोड़ा अन्तर है। समास-कार्य और समासान्त प्रत्यय प्रायः वही होते हैं। कुछ अन्तर निम्नलिखित हैं:—

२४. (क) (पितरामातरा) (पितरामातरा०, ६-३-३३) पितृ और मातृ का द्वन्द्व समास होने पर दोनों शब्दों से आ लगता है और गुण होता है। पितरामातरा। मातरापितरा। (= पितामातरौ, मातापितरौ)। (ख) (समान को स) (समानस्य०, ६-३-८४) समास में समान को स हो जाता है, मूर्धा आदि से भिन्न उत्तरपद हो तो। सगर्भ्यः (= समानगर्भ्यः)। (ग) (सह को सध) (सधमाद०, ६-३-९६) माद और स्थ बाद में होंगे तो सह को सध हो जाता है। अस्मिन् सधमादे। सोमः सधस्थम् (= सहस्थम्)। (घ) (कु को कव, का) (पथि च०, ६-३-१०८) कुपथः, कवपथः, कापथः। पथिन् बाद में होने पर कु को कव और का। (ङ) (अष्ट को अष्टा) (छन्दसि च, ६-३-१२६) अष्ट को अष्टा होता है, बाद में कोई शब्द हो तो। अष्टापदी। (च) (अ को दीर्घ) (मन्त्रे सोमाश्वे०, ६-३-१३१) सोम, अश्व, इन्द्रिय, विश्वदेव्य के अ को आ होता है, बाद में मतुप् हो तो। अश्वावतीं सोमावतीम्। इन्द्रियावान्। विश्वदेव्यावता। (छ) (पूर्वपद को दीर्घ) (अन्येषामपि०, ६-३-१३७)। समास में कुछ स्थानों पर पूर्वपद को दीर्घ होता है। पूरुषः (= पुरुषः)। दण्डादण्डि।

६. तद्धित-विचार

सूचना—तद्धित में भी प्रायः संस्कृत वाले रूप ही बनते हैं। कुछ अन्तर निम्नलिखित हैं—

२५. (क) (ठञ् > इक) (वसन्ताच्च, ४-३-२०) वसन्त से ठञ्। वासन्तिकम्। (हेमन्ताच्च, ४-३-२१) हेमन्त से ठञ्। हैमन्तिकम्। (ख) (मयट् > मय) (द्व्यच०, ४-३-१५०) दो अच् वाले शब्दों से मय होता है, विकार अर्थ में। शरमयम्। पर्णमयी जुहूः। (ग) (ढ-एय) (ढश्छन्दसि, ४-४-१०६) सभा से ढ होता है। सभेयो युवा (सभेयः = सभ्यः)। (घ) (यत्, घ, छ) (अग्राद्यत्, घच्छौ च, ४-४-११६, ११७) अग्र शब्द से घ (इय), छ (ईय) और यत् (य) प्रत्यय होते हैं। अग्र > अग्रियः, अग्रीयः, अग्र्यः। (ङ) (अण् आदि विकल्प से) (सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वात्) वेद में सभी अण् आदि तद्धित प्रत्यय विकल्प से होते हैं। (च) (य प्रत्यय) (सोममर्हति ४-४-१३७) सोम शब्द से योग्य अर्थ में य होता है। सोम्यः। (मये च, ४-४-१३८) मयट् के अर्थ में भी य होता है। सोम्यं मधु। (छ) (वत् प्रत्यय) (उपसर्गा०, ५-१-११८) उपसर्गों से स्वार्थ में वति (वत्) प्रत्यय होता है। यदुद्वतो निवतः (= उद्गतान्, निर्गतान्)। (ज) (थ प्रत्यय) (थट् च०, ५-२-५०) पञ्चन् से थ भी होता है। पञ्चथम्। पञ्चमम्। (झ) (मत्वर्थ में ई) (छन्दसीवनिपौ०, वा०) मतुप् के अर्थ में ई प्रत्यय भी होता है। रथीरभूत् (रथीः—रथवान्)।

सुमङ्गलीरियं वधूः (सुमङ्गली: = सुमङ्गलवती)। (ञ) (दा, र्हि प्रत्यय) (तयोर्दा०, ५-३-२०) इदम् से दा और तद् से र्हि प्रत्यय होते हैं। इदा (=इदानीम्)। तर्हि (=तदा)। (ट) (था प्रत्यय) (था हेतौ च, ५-३-२६) किम् से था होता है। कथा ग्रामं न पृच्छसि। कथा दाशेम। (कथा = कथम्)। (प्रत्नपूर्व०, ५-३-१११) इव अर्थ में प्रत्न, पूर्व, विश्वथेम से था होता है। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा। (ठ) (अम् प्रत्यय) (अमु च, ५-४-१२) तरप्, तमप्-प्रत्ययान्त आदि से आम् के स्थान पर अम् भी लगता है। प्रतं नय प्रतरम् (= प्रतराम्)। (ड) (म का लोप) (ऋत्व्य०, ६-४-१७५) हिरण्य + मय में म का लोप होकर हिरण्यय बनता है। हिरण्ययेन सविता रथेन।

७. कृत्-प्रत्यय-विचार

सूचना—संस्कृत के तुल्य ही वेद में भी कृत्-प्रत्यय लगते हैं। विशेष अन्तर निम्नलिखित हैं—

२६. तुम् अर्थवाले कृत् प्रत्यय :—

(क) (तुमर्थे सेसेनसे०, ३-४-९) तुमुन् (तुम्) प्रत्यय के अर्थ में वेद में निम्नलिखित १५ प्रत्यय होते हैं। जिन प्रत्ययों में न् लगा है, वे नित् होने से आद्युदात्त होते हैं। १. से—वक्षे रायः (वह + से)। २. सेन् (से)—ता वामेषे (एषे—इ + से)। ३. असे—शरदो जीवसे धाः। (जीवसे—जीव् + असे)। ४. असेन् (असे)—आद्युदात्त होगा। जीवसे। ५. क्से (से)—प्रेषे (प्र + इ + से)। ६. कसेन् (असे)—गवामिव श्रियसे (श्रियसे—श्रि + असे)। ७, ८. अध्यै, अध्यैन् (अध्यै)—जठरं पृणध्यै (पृण् + अध्यै)। ९, १०. कध्यै, कध्यैन् (अध्यै)—आहुवध्यै (आ + हू—हु + अध्यै)। ११. शध्यै (अध्यै)–मादयध्यै (मादि + अध्यै)। १२. शध्यैन् (अध्यै)—धायवे पिबध्यै (पा > पिब + अध्यै)। १३. तवै—दातवै (दा + तवै)। १४. तवेङ् (तवे)—सूतवे (सू + तवे)। १५. तवेन् (तवे)—कर्तवे (कृ + तवे)।

(ख) तुम् के अर्थ में अन्य कृत्-प्रत्यय ये हैं:—१. (ऐ, इष्यै) (प्रयै रोहिष्यै०, ३-४-१०) प्रयै (= प्रयातुम्, प्र + या + ऐ)। रोहिष्यै (= रोढुम्, रुह् + इष्यै)। अव्यथिष्यै (= अव्यथितुम्, अ + व्यथ् + इष्यै)। २. (ए प्रत्यय) (दृशे विख्ये च, ३-४-११) दृशे (= द्रष्टुम्, दृश् + ए)। विख्ये (= विख्यातुम्, वि + ख्या + ए)। ३. (णमुल् > अम्, कमुल् > अम्) (शकि णमुल्०, ३-४-१२) विभाजम् (= विभक्तुम्, वि + भज् + णमुल्)। अपलुपम् (= अपलोप्तुम्, अप + लुप् + कमुल् > अम्)। ४. (तोसुन् > तोः, कसुन् > अः) (ईश्वरे तोसुन्०, ३-४-१३) ईश्वर पहले हो तो तोसुन्, कसुन्। ईश्वरो विचरितोः (= विचरितुम्, वि + चर् + तोः)। ईश्वरो विलिखः (= विलेखितुम्, वि + लिख् + कसुन् > अः)।

२७. तुमर्थक प्रत्यय (Infinitive) के विषय में मेकडॉनल के विचार।

सुदामा (सु + दा + मन्)। सुधीवा। सुपीवा (सु + पा + क्वनिप्)। भूरिदावा (दा + वन्)। घृतपावा (पा + वन्)। कीलालपाः (कीलाल + पा + विच्)।

८. Injunctive (अट् या आट् से रहित भूतकाल के रूप)

२९. मेकडॉनल के अनुसार Injunctive (इन्जङ्क्टिव) की कुछ मुख्य बातें नीचे दी जा रही हैं:—

(क) अट् (अ) या आट् (आ) से रहित भूतकाल के तिङन्त रूपों को Injunctive कहते हैं। (न माङ्योगे, ६–४–७४) मा के साथ धातु से पूर्व अ या आ *का आगम नहीं होता है। मा के साथ लुङ् या लङ् लकार आता है। जैसे-मा गाः।* मा कार्षीः। Injunctive में लोट् लकार के उन रूपों को भी लिया गया है, जिनके अन्त में (पर०) ताम, तम्, त और (आ०) एताम्, एथाम्, ध्वम् लगे होते हैं। जैसे-पर० भवताम्, भवतम्, भवत। आत्मने० भवेताम्, भवेथाम्. भवध्वम्। ये रूप मूलरूप में Injunctive थे, बाद में लोट् के रूप माने जाने लगे। Injunctive सबसे प्राचीन वैदिक रूप हैं, ये मुख्यरूप से क्रिया (गति) को प्रकट करते थे। इनमें से जिनके साथ अ या आ लग गया, वे भूतकाल (लुङ् या लङ्) हो गए, शेष लोट् में गिन लिये गए। यह लोट्, लेट् और विधिलिङ् का अर्थ सम्मिलित करते हुए इच्छा (चाहिए) अर्थ को प्रकट करता है। यह मुख्य रूप से मुख्य वाक्यांश (Principal clause) *में आता है। यद् और यदा के साथ कभी-कभी गौण वाक्यांश में भी* आता है।

(ख) उत्तमपुरुष—यह वक्ता की शक्ति के अन्दर विद्यमान इच्छा (कामना) को प्रकट करता है। अर्थात् वक्ता वह कार्य करने की सामर्थ्य रखता है। इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम् (मैं इन्द्र के पराक्रमों का गुणगान करूँगा)। कभी-कभी उस कार्य का करना दूसरे पर निर्भर रहता है। अग्निं हिन्वन्तु नो धियः, तेन जेष्म धनं धनम् (हमारी प्रार्थनाएँ अग्नि को प्रेरित करें, उसकी सहायता से हम शत्रु के प्रत्येक धन को अवश्य जीतेंगे)।

(ग) मध्यम पुरुष—यह विधि (करे) अर्थ को प्रकट करता है और प्रायः लोट् *लकार के साथ आता है। सुगा नः सुपथा कृणु। पूषन्निह क्रतुं विदः* (हमारे मार्गों को सुगम बनाओ। हे पूषन्, यहाँ हमारे लिए ज्ञान प्राप्त कीजिए)। अद्या नो देव सावीः सौभगम्, परा दुष्वप्न्यं सुव) हे देव, आज हमारे लिए ऐश्वर्य प्राप्त करें और कुस्वप्न को दूर करें)।

(घ) प्रथम पुरुष—प्रथम पुरुष भी विधि (करे) अर्थ को प्रकट करता है और प्रायः लोट् के साथ प्रयुक्त होता है। सेमां वेतु वषट्कृतिम्, अग्निर्जुषत नो गिरः (हमारे इस वषट्कार को सुनकर आवे। अग्नि हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार करे)। यह कभी-कभी लोट् म० १ के साथ आता है। एदं बर्हिर्यजमानस्य सीद।

अया च भूद् उक्थम् इन्द्राय शस्तम् (यजमान के इस कुशासन पर बैठिए। तत्र इन्द्र के लिए स्तोत्र गाया जाए)।

(ङ) यह प्रायः स्वतन्त्र (किसी वाक्य से असंबद्ध) वाक्य के रूप में आता है और लोट् का अर्थ प्रकट करता है। इमा हव्या जुषन्त नः (वे हमारे इन हव्यों को स्वीकार करें)।

(च) मा निपात वाले वाक्यों में अनिवार्य रूप से यह Injunctive ही प्रयुक्त होता है। मा न इन्द्र परा वृणक् (हे इन्द्र, हमें न छोड़िए)। मा तन्तुश्छेदि (इस तन्तु को छिन्न न होने दो)। ऋग्वेद में मा के साथ लङ् की अपेक्षा लुङ् अधिक प्रचलित है। अथर्ववेद में मा के साथ लङ् का प्रयोग बढ़ गया है।

(छ) Injunctive दो प्रकार के वाक्यों में लेट् के तुल्य भविष्यत् अर्थ को प्रकट करता है। १. प्रश्नवाचक वाक्यों में:—को नु मह्या अदितये पुनर्दात् (कौन हमें पुनः महान् अदिति को देगा?)। २. न-युक्त निषेधार्थक वाक्यों में:—यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा, नेमघं नशत् (हे आदित्यो, तुम जिसको कष्ट से बचाते हो, उसके पास दुर्भाग्य नहीं आएगा)।

९. Subjunctive (लेट् लकार)

३०. मैकडॉनल के अनुसार Subjunctive (सब्जङ्क्टिव) की कुछ मुख्य बातें नीचे दी जा रही हैं:—

(१) (क) लेट् का प्रयोग वक्ता की इच्छा प्रकट करने में होता है। विधिलिङ् अभिलाषा या संभावना प्रकट करता है। (ख) उत्तमपुरुष-वक्ता की इच्छा प्रकट करता है। स्वस्तये वायुम् उप ब्रवामहै (कल्याण के लिए वायु का आह्वान करेंगे)। इसमें प्रायः नु और हन्त निपातों का भी प्रयोग रहता है। प्र नु वोचा सुतेषु वाम् (मैं सोमसवन के समय तुम दोनों की स्तुति करूँगा)। (ग) मध्यमपुरुष—विधि (आज्ञा) अर्थ को प्रकट करता है। हनो वृत्रम्, जया अपः (वृत्र को मारो, जल पर विजय प्राप्त करो)। इसका प्रायः लोट् म० पु० के बाद प्रयोग होता है। अग्ने शृणुहि, देवेभ्यो ब्रवसि (हे अग्नि सुनो, क्या तुम देवों से कहते हो ?)। कभी-कभी लोट् प्र० पु० के बाद भी इसका प्रयोग होता है। आ वां वहन्तु अश्वाः, पिबाथो अस्मे मधूनि (घोड़े तुम दोनों को लावें, हमारे पास बैठकर मधु पीओ)। (घ) प्रथमपुरुष—देव-विषयक प्रार्थना अर्थ को प्रकट करता है। कर्ता देवता से भिन्न भी कोई हो सकता है। इमं नः शृणवद्धवम् (वह हमारी प्रार्थना सुनेगा)। स देवाँ एह वक्षति (वह देवों को यहाँ लाएगा)। अग्निमीळे स उ श्रवत् (मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ, वह सुनेगा)।

(२) वाक्य-विन्यास की दृष्टि से लेट् का दो प्रकार से प्रयोग होता है:—(क) मुख्य वाक्य में-१. प्रश्नवाचक सर्वनाम या क्रिया-विशेषण कथा (कैसे), कदा (कब) और कुवित् (क्या) के साथ। किमु नु वः कृणवाम (हम आपके लिए क्या कर सकेंगे?)।

हैं, वहाँ पर दूसरे उपसर्ग के बाद अवग्रह-चिह्न लगता है। केवल एक ही अवग्रह चिह्न का प्रयोग होता है। सुप्रयावऽभिः। यहाँ केवल भिः से पहले अवग्रह-चिह्न है।

(७) यदि शब्द में उपसर्ग या प्रत्यय है और बाद में इव लगा है तो न उपसर्ग को और न प्रत्यय ही को अवग्रह से पृथक् किया जाएगा। शक्तस्यऽइव।

(८) शब्द और इव के बीच में अवग्रह चिह्न लगता है। शक्तस्यऽइव।

(९) समस्त पद के विभिन्न पद अवग्रह के द्वारा पृथक् किये जाते हैं।

(१०) जहाँ पर प्रत्ययान्त रूपों को द्विरुक्त किया जाता है और उनमें बाद वाला रूप अनुदात्त (निघात) होता है, वहाँ पर भी द्विरुक्त के बीच में अवग्रह चिह्न लगता है। जैसे—अगात्ऽअगात्। लोम्नोऽलोम्नो।

(११) जहाँ पर एक स्वर वाला पूर्वपद होता है और उसे तद्धित प्रत्यय के कारण वृद्धि होती है तो उन दोनों के बीच में अवग्रह चिह्न नहीं लगता है। जैसे—त्रैष्टुभेन। सौभाग्यम्। वनस्पति में भी अवग्रह-चिह्न नहीं लगता है।

१२. पदपाठ में 'इति' का प्रयोग

३३. पदपाठ में निम्नलिखित स्थानों पर पद के बाद 'इति' का प्रयोग किया जाता है—

(१) सभी प्रगृह्यसंज्ञक पदों के बाद इति लगता है।

(२) उ निपात को पदपाठ में 'ऊँ इति' लिखा जाता है। यदि उ मन्त्र के पूर्वार्ध या उत्तरार्ध के अन्त में होगा तो उसे 'ऊम् इति' लिखेंगे, अन्यत्र 'ऊँ इति'।

(३) अस्मे, युष्मे और त्वे के बाद इति लगता है।

(४) अप्वो, यद्दो, तत्वो, मो आदि ओ अन्त वाले पद प्रगृह्यसंज्ञक के तुल्य माने जाते हैं। इनके अन्त में इति लगता है।

(५) ऐसे विसर्ग (:), जो मूल रूप में र् होते हैं, उनके बाद इति लगता है। जैसे—होतः > होतर् इति। नेतः > नेतर् इति।

(६) जिन शब्दों के अन्त में प्रगृह्यसंज्ञा वाले स्वर होते हैं और उनके बाद इव होगा तो इव के बाद इति लगेगा और उस पदसमूह को दो बार लिखा भी जाता है। हरी इव > हरी इव इति, हरी इव इति हरी इव।

(७) स्वः और इति के बाद प्रायः इति आता है और इनकी द्विरुक्ति भी होती है। स्वः > स्वरिति स्वः।

(८) अकः को 'अकर् इति अकः' लिखा जाता है।

१३. पदपाठ से संहितापाठ बनाना

३४. पदपाठ से संहितापाठ बनाने में इन नियमों का ध्यान रखें—

(१) पदपाठ के सभी पदों में सन्धि-नियम लगावें।

(२) पदपाठ-कर्ता के द्वारा प्रयुक्त सभी 'इति' शब्दों को हटा दें।

(३) मन्त्र को पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भागों में बाँट लें।

(४) सन्धि करते समय प्लुत आदि के लिए कुछ संकेत करने की आवश्यकता भी होती है।

(५) स्वर-नियमों का ध्यान रखते हुए पदों पर स्वर-चिह्न लगावें। इसमें जात्य स्वरित का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जात्य स्वरित में कम्प भी होता है और उसका १ ३ संख्या से निर्देश करते हैं। यदि बाद में उदात्त स्वर होता है तो इस प्रकार संख्याओं से कम्प का निर्देश किया जाता है।

(६) पदान्त ए या ओ के बाद अ होगा तो सन्धि-नियम नहीं लगता है, अन्य संधि-नियम लगते हैं।

(७) जहाँ पर पदपाठ मे 'इति' का प्रयोग है, वहाँ पर संहितापाठ में सन्धि-नियम नहीं लगेंगे। केवल संबोधन के ओ में सन्धि-नियम लगते हैं।

(८) आन्+स्वर होगा तो आन् को आँ होकर आँ+स्वर रहेगा।

१४. संहितापाठ और पदपाठ में स्वर-चिह्न लगाना

३५. संहितापाठ और पदपाठ में स्वर-चिह्न लगाने के लिए निम्नलिखित नियमों को सावधानी से स्मरण कर लें:—

(क) स्वर तीन हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

(ख) तीनों स्वरों को वेद में निम्नलिखित रूप से लगाया जाता है—१. उदात्त—उदात्त पर कोई चिह्न नहीं होगा। जैसे—क। २. अनुदात्त—अनुदात्त पर वर्ण के नीचे सीधी लकीर खींची जाएगी। जैसे—क॒। ३. स्वरित—स्वरित के ऊपर सीधी खड़ी लकीर खींची जाती है। जैसे—क॑, क्वं।

(ग) अंग्रेजी ढंग से स्वरों पर चिह्न लगाने का ढंग यह है:—१. उदात्त—उदात्त पर ऊपर टेढ़ा चिह्न बाईं ओर झुका हुआ लगाया जाता है। जैसे—क॑, Ká। २. अनुदात्त—अनुदात्त पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता है। जैसे—क, Ka। ३. स्वरित—अंग्रेजी ढंग में स्वरित को दो भागों में विभक्त किया गया है—(क) अनुदात्त के स्थान पर होने वाला स्वरित। उदात्त के बाद अनुदात्त को स्वरित हो जाता है, यदि बाद में उदात्त स्वर रहेगा तो अनुदात्त अनुदात्त ही रहेगा। ऐसे अनुदात्त के स्थान पर होने वाले स्वरित पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता है। (ख) स्वतन्त्र स्वरित—(उदात्त०, ८-२-४) उदात्त+अनुदात्त=स्वरित। यदि उदात्त इ या उ के बाद अनुदात्त स्वर होगा और वहाँ पर यण्-सन्धि से इ या उ को य् या व् होगा तो वह इ उ का उदात्त स्वर अगले अनुदात्त को स्वरित करेगा। अर्थात् उदात्त को यण् होने पर अगले अनुदात्त को स्वतन्त्र स्वरित हो जाएगा। ऐसे स्वतन्त्र स्वरित पर ऊपर टेढ़ा दाहिनी ओर झुका हुआ चिह्न लगेगा। जैसे—Kú+a>KVÀ, क्वे

सूचना—× चिह्न का अर्थ है—कुछ नहीं।

स्वर-नाम	संस्कृत का ढंग	अंग्रेजी का ढंग
१. उदात्त	(×) क	(/) क́, Ká
२. अनुदात्त	(–) क॒	(×) क, Ka
३. स्वरित	(।) क॑	(×, /) Ka, KVÁ, क्वे
		(स्वतन्त्र स्वरित पर चिह्न लगेगा)

३६. (१) एक पद में एक उदात्त स्वर-(अनुदात्तं पदमेकवर्जम्, ६-१-१५८) एक पद में एक उदात्त स्वर होता है। शेष सभी वर्णों पर अनुदात्त का चिह्न लगेगा।

(२) दो उदात्त स्वर वाले स्थान-(क) (अन्तश्च तवै युगपत्, ६-१-२००) तवै-प्रत्ययान्त का प्रथम और अन्तिम स्वर उदात्त होते हैं। एतवै (é-tavaí) ए और वै उदात्त हैं। (ख) (देवताद्वन्द्वे च, ६-२-१४१) देवताओं के द्वन्द्व में जहाँ पर दोनों पद द्विवचन के रूप वाले हों। मित्रावरुणा। त्रा और व उदात्त हैं। (ग) (उभे वनस्पत्यादिषु०, ६-२-१४०) वनस्पति, बृहस्पति आदि में। बृहस्पतिः। बृ और प उदात्त हैं।

(३) उदात्त से पहले अनुदात्त-(उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः, १-२-४०) उदात्त और स्वतन्त्र स्वरित से पहले अनुदात्त अवश्य रहेगा।

(४) उदात्त के बाद अनुदात्त को स्वरित-(उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः, ८-४-६६) उदात्त के बाद अनुदात्त को स्वरित होता है। सूचना-१. यह स्वरित स्वतन्त्र स्वरित नहीं है। २. यदि अनुदात्त के बाद उदात्त होगा तो अनुदात्त अनुदात्त ही रहेगा। उस अवस्था में उसे स्वरित नहीं होगा।

(५) स्वरित के बाद अनुदात्तों पर चिह्न नहीं-(स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्, १-२-३९) यदि एक साथ कई अनुदात्त हैं तो उदात्त के बाद वाले अनुदात्त को स्वरित हो जाता है और बाद के अनुदात्तों पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता है। इसको एकश्रुति या प्रचय कहते हैं। बाद में जहाँ उदात्त आएगा, उससे पहले वाले अनुदात्त पर अनुदात्त का चिह्न लगेगा।

३७. पदपाठ में स्वरचिह्न लगाना

पदपाठ में प्रत्येक पद को स्वतन्त्र मानकर स्वर लगाया जाएगा। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान दें:—

(१) पद में पहले उदात्त को ढूँढ़ें। यदि उदात्त है और उदात्त से पहले कोई अक्षर है तो वह अनुदात्त होगा और बाद में कोई अक्षर है तो वह स्वरित हो जाएगा।

(२) यदि उदात्त के बाद कई अक्षर हैं तो उदात्त के ठीक बाद वाले को स्वरित हो जाएगा और स्वरित के बाद वाले अनुदात्तों पर कोई चिह्न नहीं लगेगा।

(३) यदि एक ही अक्षर है और वह उदात्त है तो उस पर कोई चिह्न नहीं लगेगा। जैसे—क।

(४) यदि एक या अनेक अक्षर केवल अनुदात्त हैं तो उन सब पर अनुदात्त का चिह्न लगेगा। जैसे— क॒ क॒ क॒ क॒।

(५) (क) १ उदात्त—क। १ अनुदात्त—क॒।

(ख) २ उदात्त—क क। २ अनुदात्त—क॒ क॒।

(ग) ३ उदात्त—क क क। ३ अनुदात्त—क॒ क॒ क॒।

(घ) २ में प्रथम उदात्त—क क॑। २ में प्रथम अनुदात्त—क॒ क।

(ङ) ३ में प्रथम उदात्त—क क॑ क।

३ ,, द्वितीय ,, —क॒ क क॑।

३ ,, तृतीय ,, —क॒ क॒ क।

(च) ४ में प्रथम उदात्त—क क॑ क क।

४ ,, द्वितीय ,, —क॒ क क॑ क।

४ ,, तृतीय ,, —क॒ क॒ क क॑।

४ ,, चतुर्थ ,, —क॒ क॒ क॒ क।

(६) (क) पदपाठ में ध्यान रखें कि बाद में कोई उदात्त है या नहीं। उदात्त को ढूँढ़ कर आगे और पीछे उपर्युक्त ढंग से स्वरचिह्न लगावें। (ख) यदि मंत्र में स्वरित का चिह्न है तो वह उदात्त के कारण अनुदात्त का स्वरित तो नहीं है? यदि हाँ, तो उसे पदपाठ में अनुदात्त ही समझा जाएगा। (ग) यदि मंत्र में स्वतन्त्र स्वरित है तो उसे पदपाठ में भी स्वरित ही लिखा जाएगा।

(७) स्वतन्त्र स्वरित—(क) (उदात्त०, ८-२-४) उदात्त या स्वतन्त्र स्वरित के स्थान पर यण् होगा तो बाद के अनुदात्त या स्वरित को स्वरित हो जाता है। क्व॑ (कु+अ॑)। वीर्य॑म् (वी॒रि+अ॑म्)। (ख) (स्वरितो वानुदात्ते०, ८-२-६) उदात्त के बाद अनुदात्त होगा तो सन्धि होने पर स्वरित शेष रहेगा। सूचना—स्वतन्त्र स्वरित के ठीक बाद में यदि उदात्त स्वर होगा और स्वतन्त्र स्वरित ह्रस्व होगा तो स्वरित के बाद १ संख्या लिखी जाती है और उसके ऊपर स्वरित का चिह्न तथा नीचे अनुदात्त का चिह्न लगाया जाता है। १॒॑। यदि स्वतन्त्र स्वरित दीर्घ होगा तो बाद में ३ संख्या लिखी जाएगी। उसके ऊपर स्वरित और नीचे अनुदात्त का चिह्न होगा। जैसे—अ॒प्सु+अ॒न्तः > अ॒प्स्व १॒॑ न्तः। रा॒यो+अ॒वनिः > रा॒यो ३॒॑ वनिः। (ग) स्वतन्त्र स्वरित की पहचान है कि उदात्त के तुल्य इससे पहले भी अनुदात्त का चिह्न होता है। यह साधारणतया दो स्वरों में यण् संधि के द्वारा होता है। दोनों में पहला उदात्त या स्वतन्त्र स्वरित और दूसरा अनुदात्त। यण् के द्वारा उदात्त नष्ट होने पर वह उदात्त अगले अनुदात्त को स्वतन्त्र स्वरित बना देता है।

(८) (एकादेश०, ८-२-५) उदात्त के साथ कोई एकादेश होगा तो वह भी उदात्त हो जाएगा। सूचना—गुण आदि के द्वारा दो अक्षरों का एक अक्षर हो

जाता है। यदि दोनों अक्षरों में कोई भी एक उदात्त होगा तो एकादेश भी उदात्त ही होगा। अतएव मंत्र में जहाँ पर दो उदात्त एक साथ एक शब्द में दिखाई पड़ें, वहाँ पर उन्हें दो पद समझना चाहिए और देखना चाहिए कि गुण, वृद्धि या दीर्घ-संधि तो नहीं हुई है। ऐसे स्थानों पर दोनों पदों को पृथक् करके बाद में स्वर-चिह्न लगाने चाहिएँ। प्रायः आ उपसर्ग ऐसे स्थानों पर छिपा रहता है।

१५. स्वर-संबन्धी कुछ मुख्य बातें :–

३८. अनुदात्त-स्वर :—

निम्नलिखित स्थानों पर अनुदात्त स्वर ही रहता है :—

(क) एन (एतद् के स्थान पर हुआ एन आदेश) सर्वनाम के सभी रूप, त्व (अन्य) और सम (कुछ) के सभी रूप, युष्मद् और अस्मद् के आदेश वाले रूप त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, वः, नः तथा ईम् और सीम्, ये सदा अनुदात्त रहते हैं।

(ख) ये निपात अनुदात्त हैं :—च, उ, वा, इव, घ, चिद्, भल, समह, स्म, स्विद्।

(ग) (आमन्त्रितस्य च, ८–१–१९) सभी संबोधन के रूप, यदि वे किसी पद के बाद होंगे तो, अनुदात्त होते हैं। यदि वे पाद या वाक्य के प्रारम्भ में होंगे तो उनका प्रथम स्वर उदात्त होता है।

(घ) (तिङ्ङतिङः, ८–१–२८) अतिङन्त के बाद तिङन्त पद पूरा अनुदात्त रहता है। यदि वाक्य या पद के प्रारम्भ में होगा तो वह उदात्त होगा।

(ङ) (इदमोऽन्वादेशे०, २–४–३२) इदम् के अन्वादेश में अ वाले रूप अनुदात्त होते हैं, यदि वे पाद के प्रारम्भ में न हों तो। अस्य जनिमानि।

(च) यथा (जब इव के अर्थ में हो), नु कम्, सु कम्, हि कम्, ये अनुदात्त रहते हैं।

३९. (क) अस् अन्त वाले शब्द यदि नपुं० होंगे तो धातु पर उदात्त होगा और यदि पुं० होंगे तो प्रत्यय उदात्त होगा। अपस् (कार्य), अपस् (कार्य-चतुर)।

(ख) इष्ठ और ईयस प्रत्यय लगने पर मूल शब्द पर उदात्त होगा।

(ग) सामान्यतया बहुव्रीहि, अव्ययीभाव और द्विरुक्त में प्रथम पद पर उदात्तस्वर रहता है तथा तत्पुरुष, कर्मधारय और द्वन्द्व में बाद वाले पद पर उदात्तस्वर रहता है।

(घ) (लुङ्..अडुदात्तः, ६–४–७१) पद के बाद तिङन्त रूप सर्वथा अनुदात्त होते हैं। पद के आदि या वाक्य के प्रारम्भ में तिङन्तरूप उदात्त होता है। यदि लङ् लुङ् लृङ् का रूप होगा तो अनिवार्यरूप से प्रारम्भ का अ उदात्त होगा।

(ङ) (प्रश्लेष)–दीर्घ, गुण और वृद्धि-संधियों को प्रश्लेष कहते हैं। दीर्घ, गुण और वृद्धिसंधि वाले स्थानों पर यदि दोनों में से एक पर भी उदात्त था, तो एकादेश वाला स्वर उदात्त ही होगा।

(च) (क्षैप्र)—यण् संधि को क्षैप्र कहते हैं। यदि उदात्त इ उ को इको यणचि से य् या व् होगा तो अगले अनुदात्त को स्वरित हो जाता है।

(छ) (अभिनिहित) एङः पदान्तादति से हुए पूर्वरूप को अभिनिहित कहते हैं। यदि ए या ओ के बाद उदात्त अ होता है और उसे पूर्वरूप होता है तो वह पूर्ववर्ती ए या ओ को उदात्त बना देता है।

---

१६. वैदिक-छन्दःपरिचय

१. वैदिक छन्दों में प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या गिनी जाती है। इसी के आधार पर भेद किया जाता है। एक चरण को पाद कहते हैं। एक पाद में कम से कम पाँच वर्ण होते हैं। प्रचलित छन्दों में ८, ११ या १२ वर्ण प्रत्येक पाद में होते हैं। प्रत्येक छन्द में गति या लय होती है। वेद के छन्दों में प्रायः प्रत्येक पद के अन्तिम ४ या ५ वर्णों में *नियमित क्रम* पाया जाता है। *अन्य वर्णों में निश्चित क्रम नहीं पाया* जाता है। ११ और १२ वर्णों वाले त्रिष्टुप् और जगती छन्दों में ४ या ५ वर्णों के बाद यति (स्वल्प-विश्राम) होती है। पाँच या आठ वर्णों वाले छन्दों में इस प्रकार की यति नहीं होती है। ऋग्वेद में २० अक्षरों (४×५ = २०) वाले छन्दों से लेकर ४८ अक्षरों (४×१२ = ४८) वाले छन्द तक हैं। कुछ ६८ और ७२ वर्णों वाले भी छन्द हैं।

२. छन्दोविषयक सामान्य नियम ये हैं:—

(१) पद के अन्त के साथ शब्द का भी अन्त होता है।

(२) ह्रस्व (लघु) स्वर के बाद संयुक्त वर्ण होंगे तो लघु स्वर का गुरु स्वर माना जाता है। च्छ् और ह्ह् को संयुक्त वर्ण माना जाता है।

(३) बाद में कोई स्वर हो तो पूर्ववर्ती स्वर को ह्रस्व कर दिया जाता है। बाद में आ होने पर पूर्ववर्ती ए ओ को ह्रस्व ऍ ऑ पढ़ा जाता है। प्रगृह्य ई ऊ ए दीर्घ ही रहते हैं। तस्मै अदात् > तस्मा अदात् में मा का आ दीर्घ ही रहता है।

(४) शब्द के अन्तर्गत और सन्धि-स्थानों में प्राप्त य्, व् को प्रायः इ और उ पढ़ा जाता है। जैसे—श्याम को सिआम, स्वर् को सुअर्, व्युषाः को वि उषाः।

(५) एकादेश हुए स्वरों (विशेषतया ई और ऊ) को उच्चारण के समय प्रायः एकादेश से पूर्व की स्थिति में पढ़ा जाता है। जैसे—चाग्नये को च अग्नये, वीन्द्रः को वि इन्द्रः, अवतूतये को अवतु ऊतये, एन्द्र को आ इन्द्र।

(६) ए और ओ के बाद पूर्वरूप हुए अ को प्रायः फिर अ के रूप में पढ़ा जाता है।

(७) आम् अन्त वाले षष्ठी बहु० को तथा दास, शूर तथा ए (ज्येष्ठ का ज्या इष्ठ) और ऐ (ऐच्छः का आ इच्छः) को दो ह्रस्व मात्राओं के बराबर पढ़ा जाता है। आम् को अआम्।

३. गायत्री (८, ८ । ८)

इसमें आठ वर्णों वाले ३ पाद होते हैं। २ पाद के बाद विराम होता है। ८, ८ । ८ । यह २४ वर्णों का छन्द होता है। इसमें सामान्यतया लघु गुरु का क्रम यह होता है—(ल = लघु, ग = गुरु) । लघु–।, गुरु–ऽ

१	२	३	४	५	६	७	८
ल । ग	ग	ल । ग	ग ।	ल	ग	ल	ल । ग
।, ऽ	ऽ	।, ऽ	ऽ ।	।	ऽ	।	।, ऽ

जिन स्थानों पर लघु गुरु दोनों दिए हैं, उसका अभिप्राय यह है कि लघु या गुरु में से कोई भी वर्ण हो सकता है।

४. अनुष्टुभ् (अनुष्टुप्) (८-८ । ८-८)

इसमें आठ अक्षर वाले चार पाद होते हैं। दो पाद से पूर्वार्ध बनता है और अन्तिम दो पाद से उत्तरार्ध। सामान्यतया १ और ३ पाद में २, ४, ६, ७ वर्ण गुरु होते हैं, शेष लघु या गुरु। २ और ४ पाद में २, ४, ६ गुरु, ५, ७ लघु, शेष लघु या गुरु।

५. पंक्ति (८-८ । ८-८-८)। महापंक्ति (८ वर्ण वाले ६ पाद), शक्वरी (८ वर्ण वाले ७ पाद)।

६. त्रिष्टुभ् (त्रिष्टुप्) (११ वर्ण वाले ४ पाद)

इसमें ११ वर्ण के ४ पाद होते हैं। ४ या ५ वर्ण के बाद यति होती है। दो पाद के बाद पूर्वार्ध और अन्तिम दो पाद के बाद उत्तरार्ध पूर्ण होता है। ऋग्वेद में यह सबसे अधिक प्रचलित छन्द है। इसके दोनों भेदों का सामान्यतया क्रम यह है—

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
(क)	ऽ।	ऽ	ऽ।	ऽ,	।	।	ऽ,	ऽ	।	ऽ	ऽ।
(ख)	ऽ।	ऽ	ऽ।	ऽ	ऽ।,	।	।,	ऽ	।	ऽ	ऽ।

जहाँ पर दोनों स्वर दिए हैं, उसका भाव यह है कि वहाँ पर लघु या गुरु कोई भी हो सकता है। पहला विराम ४ या ५ वर्ण पर है, दूसरा सात पर और तीसरा ११ वें पर।

७. जगती (१२ वर्ण वाले ४ पाद)

इसमें १२ वर्ण वाले ४ पाद होते हैं। दो और चार पाद पर क्रमशः पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध पूर्ण होता है। ऋग्वेद में प्रचलन की दृष्टि से यह तीसरे नम्बर पर है। त्रिष्टुभ

में ही एक वर्ण अन्त में और जोड़ देने से संभवतः यह छन्द बना है। इसमें भी ४ या ५ पर, ७ पर तथा १२ पर यति होती है।

इसके दोनों भेदों का सामान्यतया क्रम यह है :—

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
(क)	ऽ।	ऽ	ऽ।	ऽ,	।	।	ऽ,	ऽ	।	ऽ	।	ऽ।
(ख)	ऽ।	ऽ	ऽ।	ऽ	ऽ।,	।	।,	ऽ	।	ऽ	।	ऽ।

जहाँ पर दोनों चिह्न दिए हैं, वहाँ पर लघु या गुरु कोई भी वर्ण हो सकता है।

८. मुख्य छन्दों के नाम तथा प्रत्येक पाद में वर्ण संख्या :—

छन्द	पाद १	२	३	४	५
१. गायत्री	८	८।	८		
२. उष्णिक्	८	८।	१२		
३. पुरउष्णिक्	१२	८।	८		
४. ककुभ्	८	१२।	८		
५. अनुष्टुभ्	८	८।	८	८	
६. बृहती	८	८।	१२	८	
७. सतोबृहती	१२	८।	१२	८	
८. पंक्ति	८	८।	८	८	८
९. प्रस्तार पंक्ति	१२	१२।	८	८	
१०. विराज्	१०	१० या	११	११	११
११. त्रिष्टुभ्	११	११।	११	११	
१२. जगती	१२	१२।	१२	१२	
१३. शक्वरी	११	११।	११	११	११
१४. द्विपदा विराज्	५	५।	५	५	

---

४. संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण

[संस्कृत के नाटकों में शौरसेनी, माहाराष्ट्री और मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है। प्राकृत के अंश को ठीक ढंग से समझने के लिए संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण दिया जा रहा है। इस परिशिष्ट के लिखने में A. C. Woolner की पुस्तक Introduction to Prakrit से विशेष सहायता ली गई है। संक्षेप के लिए निम्न-

लिखित संकेतों का उपयोग किया गया है—शौ० = शौरसेनी, मा० = माहाराष्ट्री, माग० = मागधी, > का यह रूप बनता है।]

अध्याय १

प्राकृत-परिचय

(१) प्राकृत को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(क) प्राचीन प्राकृत या पाली, (ख) मध्यकालीन प्राकृत, (ग) परकालीन प्राकृत या अपभ्रंश। (क) प्राचीन प्राकृत में इनका संग्रह है—तृतीय शताब्दी ई० पू० से द्वितीय शताब्दी ई० तक के शिलालेख, पाली बौद्धग्रन्थ महावंश, जातक आदि, प्राचीन जैनसूत्रों की भाषा, प्रारम्भिक नाटकों की भाषा जैसे—अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत, जिसके अवशेष मध्य एशिया में पाये गए हैं। (ख) मध्यकालीन प्राकृत में इन प्राकृतों का संग्रह होता है—माहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, परकालीन जैनग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी जैन माहाराष्ट्री और जैन शौरसेनी, पैशाची। (ग) परकालीन प्राकृत में अपभ्रंश है।

(२) प्राकृत का अर्थ—प्राकृत शब्द प्रकृति शब्द से बना है। प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृति के यहाँ पर दो अर्थ लिये गए हैं। (१) प्रकृति अर्थात् मूलभाषा संस्कृत। वैदिक भाषा को भी संस्कृत में लेने पर यह अर्थ उचित और शुद्ध प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषा संस्कृत से निकली है। यहाँ पर यह विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिए कि जनसाधारण की भाषा का आधार शिष्ट जनों द्वारा व्यवहृत भाषा ही होती है। शिष्ट-जन-व्यवहृत भाषा को जनसाधारण प्रयत्नलाघव आदि के कारण विकृत बना लेते हैं। वही शुद्ध भाषा का प्राकृत रूप हो जाता है। प्रारम्भ में प्रयुक्त भाषा संस्कृत ही थी। उसका ही विकृत रूप प्राकृत है। जनसाधारण में प्रयुक्त प्राकृत भाषा को परिष्कृत करके संस्कृत भाषा बनी है, यह समझना भूल है। (२) प्रकृति अर्थात् प्रजा, जनसाधारण। जनसाधारण में प्रयुक्त भाषा। यहाँ पर प्रथम अर्थ लेना उचित है।

(३) माहाराष्ट्री—प्राकृत के वैयाकरणों ने माहाराष्ट्री को सर्वोत्तम प्राकृत माना है और मुख्यतः उसके ही नियम दिए हैं। केवल अन्तर वाले स्थलों पर अन्य प्राकृतों का नामोल्लेख किया है। अतएव दण्डी ने काव्यादर्श (१–३५) में कहा है—महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः। माहाराष्ट्री प्राकृत का मुख्यतः प्रयोग महाराष्ट्र में होता था। यह गोदावरी-प्रदेश में बोली जाने वाली प्राचीन भाषा पर आधारित है। इस प्राकृत में वर्तमान मराठी भाषा की अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। नाटकों में स्त्रियाँ, जो कि शौरसेनी प्राकृत बोलती थीं, पद्य-रचना माहाराष्ट्री में ही करती थीं। प्राकृत पद्यों की भाषा माहाराष्ट्री ही थी। गउडवहो आदि काव्य माहाराष्ट्री में ही हैं।

(४) शौरसेनी—वर्तमान मथुरा के चारों ओर के स्थान को 'शूरसेन' प्रदेश कहते थे। वहाँ पर प्रयुक्त भाषा को शौरसेनी कहते थे। नाटकों में स्त्रियाँ, विदूषक आदि शौरसेनी का ही प्रयोग करते थे। यह प्राकृत संस्कृत के बहुत निकट है। इससे ही वर्तमान 'हिन्दी' निकली है।

(५) मागधी—प्राचीन मगध (पूर्वी बिहार) में प्रयुक्त भाषा को मागधी कहते थे। नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते थे। इसकी मुख्यतम विशेषताएँ अध्याय ९ मे दी गई हैं। इसमें स के स्थान पर श का प्रयोग होता है; र के स्थान पर ल, ज के स्थान पर य, अकारान्त शब्दों के प्रथमा एकवचन में ए लगता है।

अध्याय २

प्राकृत की मुख्य विशेषताएँ

प्राकृत भाषा की मुख्य विशेषताएँ ये हैं–(१) प्राकृत संयोगात्मक भाषा है, अर्थात् सुप् तिङ् आदि शब्द और धातु के साथ संयुक्त रहते है। (२) प्राचीन व्याकरण को सरल बनाया गया है। (३) शब्दरूपों और धातुरूपों की संख्या कम होने लगी। (४) शब्दों के विभिन्न रूप संक्षिप्त होकर तीन या चार प्रकार के ही रह गए अर्थात् तीन चार प्रकार से ही केवल शब्दरूप चलने लगे। धातुरूप भी प्रायः एक या दो प्रकार से चलने लगे। (५) संक्षेप के कारण उत्पन्न अस्पष्टता के निवारणार्थ परसर्गों (कारक-चिह्न आदि) की सृष्टि प्रारम्भ हुई। उससे ही वर्तमान वियोगात्मक भाषाओं का जन्म हुआ। (६) संक्षेप होने पर भी संस्कृत-व्याकरण के तुल्य प्राकृत-व्याकरण चला। सभी शब्दों के रूप प्रायः अकारान्त शब्द के तुल्य चलने लगे और सभी धातुओं के रूप प्रायः भ्वादिगणी धातु के तुल्य चलने लगे। (७) चतुर्थी विभक्ति का अभाव हो गया। प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन प्रायः एक हो गए। (८) लङ् लिट् और लुङ् लकारों का अभाव हो गया। (९) द्विवचन का अभाव हो गया। (१०) आत्मनेपद का भी प्रायः अभाव हो गया। (११) परसर्गों और सहायक क्रियाओं का अभी विशेष उपयोग नहीं हुआ। (१२) ध्वनि-परिवर्तन मुख्यरूप से हुआ। संयुक्ताक्षरों में प्रायः परसवर्ण या पूर्व सवर्ण का नियम लगा। (१३) कुछ प्राचीन स्वरों और वर्णों का अभाव हो गया। जैसे ऋ, ऐ, औ, य, श (मागधी में य और श हैं, उसमें स नहीं है), ष और विसर्ग। (१४) संस्कृत में अप्राप्त ह्रस्व ऍ और ऑ दो नये स्वर हो गए। (१५) साधारणतया अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है। (१६) ह्रस्व स्वर के बाद दो से अधिक व्यञ्जन नहीं रह सकते और दीर्घ स्वर के बाद एक से अधिक नहीं। (१७) इन परिवर्तनों से कई स्थलों पर शब्द का स्वरूप ही पहचान में नहीं आता। जैसे–वाक्पतिराज का वप्पइराअ, अवतीर्ण का ओइण्ण। (१८) कुछ शब्द

संस्कृत के तत्सम ही हैं और अधिकांश शब्द अपने संस्कृत के स्वरूप को सफलता से प्रकट करते हैं।

प्राकृत में परिवर्तन के निम्नलिखित कारण माने गए हैं–(१) प्रयत्नलाघव, (२) संस्कृति का विकास, (३) जलवायु का प्रभाव, (४) आर्येतरों की भाषा और भाषण-शैली का प्रभाव।

अध्याय ३

ध्वनि-विचार

१—(क) प्रारम्भिक अक्षर—सामान्य नियम यह है कि न, य, श, ष को छोड़कर अन्य एकाकी प्रारम्भिक व्यञ्जन उसी रूप में रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। न को ण होता है, य को ज और श ष को स।

२—समस्त-पद में उत्तरपद का प्रथमाक्षर मध्यगत शब्द समझा जाता है, अतः उसका लोप हो जाता है। किन्तु धातुरूप का प्रथमाक्षर प्रायः शेष रहता है। जैसे—आर्यपुत्र> अज्जउत्त। किन्तु आगतम्> आगदं।

३—अनुदात्त अव्ययों के प्रथमाक्षर का लोप हो जाता है। किं पुनः> किं उण, अपि> वि, च> अ।

४—कुछ प्राकृतों में भू धातु के भ को ह हो जाता है। भवति> होइ।

५—समस्त-पद के उत्तरार्ध का प्रथमाक्षर फ शेष रहता है। चित्रफलक> चित्तफलअ।

६—क और प को क्रमशः ख और फ महाप्राण हो जाता है। क्रीड्> खेल, पनस> फणस।

७—उच्चारणस्थानपरिवर्तन हो जाता है। दन्त्य को तालव्य, त्> च्। तिष्ठति> शौ० चिट्ठदि, मा० चिट्ठइ, माग० चिष्ठदि। दन्त्य को मूर्धन्य, न् को ण्। नयन> णअण, नूनं> णूणं।

८—श, ष, स को स हो जाता है। (मागधी में केवल श रहता है)

९—(ख) मध्यगत अक्षर—मध्यगत क, ग, च, ज, त, द का प्रायः लोप हो जाता है। प, ब, व का कभी-कभी लोप होता है। मध्यगत य का सदा लोप होता है। लोक> लोअ, हृदय> हिअअ, दिवस> दिअह, प्रिय> पिअ, सकल> सअल, अनुराग> अणुराअ, प्रचुर> पउर, भोजन> भोअण, रसातल> रसाअल। रूप> रूअ, विबुध> विउह। वियोग> विओअ।

१०—मध्यगत क त प को क्रमशः ग द व हो जाते हैं। अतिथि> अदिधि, कृत> किद, नायकः> णाअगु, आगताः> आगदो, पारितोषिक> पारिदोसिअ, भवति> भोदि, आनयति> आणेदि, संस्कृत> सक्कद, सरस्वती> सरस्सदी, मा० सरस्सइ।

११—शौरसेनी और माहाराष्ट्री में एक मुख्य अन्तर यह है कि संस्कृत का मध्यगत त शौ० में द हो जाता है, पर मा० में उसका लोप हो जाता है। जैसे जानाति> शौ० जाणादि, मा० जाणाइ। शत> शौ० सद, मा० सअ। एति> शौ० एदि, मा० एइ। हित> शौ० हिद, मा० हिअ। प्राकृत> शौ० पाउद, मा० पाउअ। मरकत> शौ० मरगद, मा० मरगअ। लता> शौ० लदा, मा० लआ। स्थित> शौ० ठिद, मा० ठिअ। प्रभृति> शौ० पहुदि, मा० पहुइ। एतद्> शौ० एदं, मा० एअं।

१२—मध्यगत महाप्राण अक्षर ख, घ, थ, ध, फ तथा भ को ह हो जाता है। मुख> मुह, सखी> सही, मेघ> मेह, लघुक> लहुअ, यूथ> जूह, रुधिर> रुहिर, वधू> वहू, शफर> सहर, अभिनव> अहिणव।

१३—शौरसेनी और माहाराष्ट्री में दूसरा अन्तर यह है कि संस्कृत का मध्यगत थ शौ० में ध हो जाता है, पर मा० में ह रहता है। मागधी आदि में भी थ को ध होता है। जैसे—अथ> शौ० अध, मा० अह; कथं> शौ० कधं, मा० कहं, मनोरथ> शौ० मणोरध, मा० मणोरह, नाथ> शौ० णाध, मा० णाह।

१४—कभी-कभी स्वरों के मध्यगत व्यंजन का लोप न होकर द्वित्व हो जाता है। एक> एक्क, यौवन> जोव्वण, प्रेमन्> पेम्म, ऋजु> उज्जु, नख> णक्ख, तैल> तेल्ल।

१५—स्वरों के मध्यगत ट ठ को क्रमशः ड ढ हो जाते हैं। कुटुम्ब> कुडुम्ब, पट> पड, पटाक (एक प्रकार की चिड़िया का नाम)> पडाअ, कुटिल> कुडिल, वात> वाद, पठन> पढण।

१६—मध्यगत प को व हो जाता है। दीप> दीव, (इसी से हिन्दी दीपावली> दिवाली), उपरि> उवरि, उपकरण> उवअरण, अपि> अवि, अपर> अवर, ताप> ताव, उपाध्याय> उवज्झाअ।

१७—ब को व होता है। शबर> सवर। कबल> कवल।

१८—क को महाप्राण ख होकर ह शेष रहता है। निकष> णिहस। ट को ठ> ढ, वट> वढ। त को थ होकर ह। वसति> वसहि। स्फटिक> फलिह। भरत> भरह। बहुत ही कम स्थानों पर प को महाप्राण फ होकर भ शेष रहता है, यथा कच्छप> कच्छभ (अर्धमागधी)। न्, म्, ल् तथा ऊष्म वर्ण भी कभी-कभी महाप्राण हो जाते हैं—नापित> मा० ण्हाविअ, शौ०, माग०—णाविद। कभी-कभी महाप्राण आपस में बदल जाते हैं—दुहिता> मा० धूआ, शौ०, माग० धूदा। भगिनी> शौ० माग० बहिणी। ग्रहीतुं> घेत्तुं।

कभी-कभी महाप्राण का लोप भी हो जाता है—*शृंखला*> शौ० *सङ्कला*। लेकिन सङ्खला तथा सिङ्खला के प्रयोग भी देखने को मिलते हैं।

१९—उच्चारणस्थानपरिवर्तन। दन्त्य को मूर्धन्य। प्रति> पडि। न को ण। नूनं> णूणं। पतित> मा० पडिअ, शौ० माग०पडिद। प्रथम> पढम। इस प्रकार दन्त्य का मूर्धन्य हो जाना अर्धमागधी में अधिक पाया जाता है—औषध> अर्धमागधी ओसढ, मा० शौ० ओसह।

२०—श ष स को स होता है। मागधी में श। अशेष> असेस। केशेषु> केसेसु।

२१—ड को प्रायः ल होता है। क्रीडा> कीला।

२२—त, द को ल होता है। दोहद> दोहल। सातवाहन> मा० सालवाहण। अतसी> शौ०.अलसी।

२३—दश, दृश, दृक्ष के समासों में द को र होता है। ईदृश> एरिस। युष्मादृश> तुम्हारिस, कीदृश> केरिस।

२४—११ से १८ संख्याओं में द को र। एकादश> एक्कारस। हिन्दी ग्यारह। द्वादश> बारस, हिन्दी बारह।

२५—म को व होता है। मन्मथ> मा० वम्मह। इसी से ग्राम> गाँव।

२६—मागधी में र को सदा ल होता है। दरिद्र> दलिद्द। मुखर> मुहल। यह परिवर्तन माहाराष्ट्री या शौरसेनी की अपेक्षा अर्धमागधी में अधिक प्रचलित है।

२७—कभी-कभी श ष स को ह होता है। पाषाण> पाहाण। धनुष> मा० धणुह, प्रत्यूष> मा० पच्चूह, अनुदिवसम्> मा० अणुदिअहं, नेष्यति> मा० णेहिइ। कभी कभी संस्कृत के ह के स्थान पर हम प्राकृत में महाप्राण घ आदि का प्रयोग पाते हैं। यथा इह> शौ० मा० इध।

२८—(ग) अन्तिम अक्षर—सभी अन्तिम स्पर्श वर्णों का लोप हो जाता है। अनुनासिकों को अनुस्वार होता है, अः को ओ होता है या उसका लोप होता है।

अध्याय ४

संयुक्ताक्षर-विचार

२९—शब्द के प्रारम्भ में एक ही व्यंजन रह सकता है। कुछ अपवाद भी पाए जाते हैं, यथा स्नान> ण्हाण, स्मि> म्हि, स्मः> म्ह, म्हो तथा समस्तपद के अपरभाग का प्रारम्भ।

३०—शब्द के मध्य में दो व्यंजनों से अधिक नहीं रह सकते। ये भी वर्ण के द्वित्व के रूप में होंगे। जैसे क्क, क्ख आदि, या अनुनासिक के बाद स्पर्श, जैसे—ङ्क, ण्ड।

३१—अतएव संयुक्ताक्षरों को पूर्वसवर्ण या परसवर्ण होता है या मध्य में कोई स्वरभक्ति का स्वर आता है।

३२—पूर्वसवर्ण और परसवर्ण का सामान्य नियम यह है कि समबल वाले वर्णों में परवर्ण प्रबल होता है और असमबल वालों में अधिक बल वाला। व्यंजनों को

निम्नलिखित क्रम से रखा जा सकता है। इसमें बाद वाले कम बल वाले हैं। (१) स्पर्श (क से म तक, पंचम वर्ण छोड़कर), (२) वर्गों के पंचम वर्ण, (३) ल, स, व, य, र।

३३—पूर्व नियमानुसार क्+त=त्त, ग्+ध=द्ध, द्+ग=ग्ग, प्+त=त्त। दो स्पर्श वर्णों में परसवर्ण होगा। युक्त> जुत्त, दुग्ध> दुद्ध, उद्गम,> उग्गम, सप्त> सत्त। वाक्पतिराज> वप्पइराअ, षट्+चरण> छच्चर्ण, बलात्कार> बलक्कार, उत्पल> उप्पल, सद्भाव> सब्भाव, सुप्त> सुत्त, खड्ग> खग्ग, शब्द> सद्द, लब्ध> लद्ध आदि

३४—अनुनासिक के बाद उसी वर्ग का स्पर्श होगा तो अनुनासिक उसी रूप में रहेगा, अन्यथा अनुस्वार हो जायगा। क्रौञ्च> कोञ्च, दिङ्मुख> दिंमुह। पङ्क्ति> पंति, विन्ध्य> विंझ।

३५—स्पर्श के बाद अनुनासिक होगा तो पूर्वसवर्ण होगा। अग्नि> अग्गि। विघ्न> विग्घ, सपत्नी> सवत्ती, युग्म> जुग्ग। अपवाद—

(अ) ज्ञ को ण्ण हो जाता है—आज्ञापयति> आण्णवेदि, अनभिज्ञ> अणहिण्ण, यज्ञ> जण्ण।

विशेष—(१) किसी समस्त शब्द के दूसरे पद के प्रारम्भ में ज्ञ को ज्ज हो जाता है—मनोज्ञ> मणोज्ज।

(२) हेमचन्द्र के अनुसार मागधी में ञ्ञ हो जाता है।

(३) माहाराष्ट्री में आत्मन् को अप्प हो जाता है।

(४) द्म को म्म हो जाता है—पद्म> पोम्म।

३६—ल् के बाद स्पर्श होगा तो परसवर्ण होगा। वल्कल> वक्कल, फल्गुन> फग्गुण, अल्प> अप्प, कल्प> कप्प।

३७—श ष स के बाद स्पर्श (क से म तक) होगा तो परसवर्ण होगा और सदा महाप्राण हो जायगा। जैसे—स्त> त्थ, श्च> च्छ, पश्चात्> पच्छा। इनके स्थान पर यह होता है—ष्क और ष्ख> क्ख, ष्ट और ष्ठ> ट्ठ, ष्प और ष्फ> प्फ, स्त और स्थ> त्थ, स्प और स्फ> प्फ। पुष्कर> पोक्खर, शुष्क> सुक्ख, ऐसे उदाहरणों में महाप्राण का लोप भी हो जाता है। दुष्कर> मा० शौ० दुक्कर, निष्क्रम> णिक्कम, चतुष्क> मा० चउक्क, शौ० चदुक्क। दृष्टि> दिट्ठि, सुष्ठु> सुट्ठु। पुष्प> पुप्फ, निष्फल> निप्फल। स्तन> थण, अस्ति> अत्थि, हस्त> हत्थ, अवस्था> अवत्था, दुस्तर> दुत्तर। स्पर्श> फंस, स्फटिक> फलिह।

३८—स्पर्श के बाद ऊष्म (श ष स) हो तो च्छ होता है। अक्षि> अच्छि। ऋक्ष> रिच्छ, क्षुधा> छुहा, मत्सर> मच्छर, वत्स> वच्छ, अप्सरा> अच्छरा, जुगुप्सा> जुगुच्छा।

३९—क्ष को साधारणतया क्ख होता है। दक्षिण> दक्खिण, अक्षि> अक्खि। क्षत्रिय> खत्तिअ, क्षिप्त> खित्त, निक्षेप्तुम्> णिक्खिविदुम्, शिक्षित> सिक्खिद।

कभी-कभी बोलियों में च्छ तथा क्ख में परस्पर भिन्नता पाई जाती है—इक्षु> शौ० इक्खु मा० उच्छु, कुक्षि> मा० कुच्छि शौ० कुक्खि, प्रेक्षते> मा० पेच्छइ शौ० पेक्खदि।

४०—त्स या त्स को स्स होता है या पूर्वस्वर को दीर्घ और स। पर्युत्सुक> पज्जुस्सुअ, उत्सव> ऊसव।

४१—स्पर्श के बाद व हो तो पूर्वसवर्ण। पक्व> पक्क। उज्ज्वल> उज्जल। सत्त्व> सत्त। द्विज> दिअ। लेकिन उद्विग्न> उव्विग्ग।

४२—स्पर्श के बाद य हो तो पूर्वसवर्ण। योग्य> जोग्ग। चाणक्य> चाणक्क, सौख्य> सोक्ख, अभ्यन्तर> अब्भन्तर।

४३—यदि दन्त्य और य हो तो दन्त्य को तालव्य और पूर्वसवर्ण। सत्य> सच्च, अद्य> अज्ज, सन्ध्या> संझा, नेपथ्य> णेवच्छ, अत्यन्त> अच्चन्त, रथ्या> रच्छा, उपाध्याय> उवज्झाअ, मध्य> मज्झ।

४४—र् और स्पर्श हो तो र् को स्पर्श का सवर्ण अक्षर हो जाएगा। चक्र> चक्क, मार्ग> मग्ग, चित्र> चित्त। तर्कयामि> तक्केमि, ग्राम> गाम, निर्बन्ध> णिब्बन्ध, पत्र> पत्त, अर्थ> अत्थ, भद्र> भद्द, समुद्र> समुद्द, अर्ध> अद्ध। अपवाद—अत्र को अत्थ तथा तत्र को तत्थ होता है।

४५—ङ् और ण् के बाद म हो तो दोनों को अनुस्वार। न्+म्=म्म्, म्+न=ण्ण। दिङ्मुख> दिमुह, उन्मुख> उम्मुह, निम्न> णिण्ण। प्रद्युम्न> पज्जुण्ण।

४६—अनुनासिक के बाद ऊष्म हो तो अनुनासिक को अनुस्वार। यदि ऊष्म के बाद अनुनासिक हो तो ऊष्म को ह होता है और स्थानपरिवर्तन होता है। श्न> ण्ह, श्म> म्ह, ष्ण> ण्ह, ष्म> म्ह, स्न> ण्ह, स्म> म्ह। स्नान> ण्हाण, कृष्ण> कण्ह। प्रश्न> पण्ह, काश्मीर> कम्हीर, उष्ण> उण्ह, ग्रीष्म> गिम्ह, अस्मे> अम्हे, विस्मय> विम्हअ।

अपवाद—(१) रश्मि का सदैव रस्सि होता है।

(२) प्रारम्भ के श्म को म होता है—श्मशान> मसाण।

(३) स्नेह तथा स्निग्ध को क्रमशः णेह तथा णिद्ध होता है या सिणेह, सिणिद्ध रूप बनता है।

(४) सर्वनामों में सप्तमी एक० के ष्मिन् को म्मि तथा स्मिन् को म्मि या स्सिं होता है। एतस्मिन्> शौ० एदस्सिं, मा० एअस्सिं या एअम्मि।

४७—अनुनासिक के साथ अन्तःस्थ हो तो अन्तःस्थ अनुनासिक का सवर्ण हो जाएगा। पुण्य> पुण्ण, अन्य> अण्ण। कर्ण> कण्ण, धर्म> धम्म, सौम्य> सोम्म, अन्वेषणा> अण्णेषणा।

४८—ऊष्म के साथ अन्तःस्थ हो तो अन्तःस्थ ऊष्म का सवर्ण होगा। पार्श्व> पास, मनुष्य> मणुस्स। श्लाघनीय> साहणीअ, अश्व> मा० आस, शौ० अस्स,

अवश्यम्> अवस्सं, परिष्वजते> परिस्सअदि, रहस्य> रहस्स, वयस्य> वअस्स, तस्य> तस्स, सहस्र> सहस्स, सरस्वती> शौ० सरस्सदी, स्वागतम्> साअदं।

४९—दो अन्तःस्थ हों तो बलवान् अन्तःस्थ प्रबल होगा। इनका क्रम है—ल व र य। मूल्य> मुल्ल, काव्य> कव्व। दुर्लभ> दुल्लह, परिव्राजक> परिब्वाजअ, सर्व> सव्व। अपवाद—र्य में य् को ज् होता है, अतः यह ज्ज हो जाता है। आर्य> अज्ज, कार्य> कज्ज। मागधी को छोड़कर अन्य प्राकृतों में य्य को ज्ज होता है।

५०—(क) क ख प फ से पूर्व विसर्ग ऊष्म के तुल्य माना जाता है। दुःख> दुक्ख। अन्तःकरण> अन्तक्करण। ऊष्म से पूर्व भी विसर्ग को ऐसा ही होता है। चतुःसमुद्र> चदुस्समुद्द, दुःसह> दुस्सह। (ख) जब ह् के बाद अनुनासिक या ल् आता है तो ह्न आदि शब्द परस्पर स्थानपरिवर्तन करके ण्ह आदि हो जाते हैं। अपराह्न> अवरण्ह, मध्याह्न> मज्झण्ह, गृह्णाति> मा० गेण्हइ, शौ० गेण्हदि, ब्राह्मण> बाम्हण। ह्य में अन्तःस्थ को ज् होता है तथा पूरा शब्द ज्झ बनता है—सह्य> सज्झ, अनुग्राह्य> अणुगेज्झ। ह्व को भ् या ह होता है—विह्वल> विब्भल, जिह्वा> जीहा। दन्त्य वर्ण कभी-कभी मूर्धन्य हो जाते हैं—मृत्तिका> शौ० मट्टिआ, वृद्ध> वुड्ढ, ग्रन्थि> गण्ठि।

अध्याय ५

स्वर-विचार

५१—प्राकृत में ऋ ऌ स्वर नहीं हैं।

५२—संस्कृत के ऋ के स्थान पर ये आदेश होते हैं। (क) रि, ऋषि> रिसि। (ख) अ, कृत> कद। (ग) इ, दृष्टि> दिट्ठि। (घ) उ, पृच्छति> पुच्छदि।

५३—ऐ औ के स्थान पर क्रमशः ए ओ होते हैं। कौमुदी> कोमुदी।

५४—दीर्घ स्वर के बाद एक व्यञ्जन ही रह सकता है, अतः संयुक्ताक्षरों से पूर्व ह्रस्व स्वर ही होगा।

५५—ह्रस्व स्वर को दीर्घ होता है, यदि बाद में र् + व्यञ्जन हो या ऊष्म + य र व या ऊष्म हो। कर्तुम्> कादुं, कर्तव्य> कादव्व, अश्व> आस।

५६—कहीं पर दीर्घ न करके स्वर को सानुस्वार कर देते हैं। दर्शन> दंसण।

५७—कहीं पर सानुस्वर न करके दीर्घ कर देते हैं। सिंह> सीह।

५८—स्वर-परिवर्तन। अ के स्थान पर ये स्वर होते हैं। (क) अ को इ, पक्व> पिक्क। (ख) अ को उ, प्रलोकयति> पुलोएदि। (ग) आ को इ या ए, मात्र> मेत्त।

५९—इ को उ, यदि उ बाद में हो तो। इक्षु> उच्छु। ई को ए, ईदृश> एरिस।

६०—उ को अ। मुकुल> मउल। उ को इ, पुरुष> पुरिस। उ को ओ, पुस्तक> पोत्थअ। ऊ को ओ, मूल्य> मोल्ल।

६१—ए को इ । वेदना> विअणा, एतेन> एदिणा ।

६२—ओ को उ । अन्योन्य> अण्णुण्ण ।

६३—स्वरलोप । अनुदात्त स्वर का लोप होता है । अनुस्वार के बाद अपि> पि, स्वर के बाद वि । अनुस्वार के बाद इति> ति, स्वर के बाद त्ति । खलु> ख ।

६४—सम्प्रसारण । य् को इ, व को उ होता है । अय अव को क्रमशः ए ओ होते हैं । कथयतु> कधेदु, नवमालिका> णोमालिआ, लवण> लोण ।

अध्याय ६

सन्धि-विचार

(क) व्यञ्जनसन्धि

६५—प्राकृत में अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है, अतः व्यञ्जन-सन्धि भी बहुत कम शेष रही है । स्वर से पूर्व कुछ व्यञ्जन पुनर्जीवित हो जाते हैं । यदस्ति> जदत्थि । दुर् और निर् शेष रहता है । म् भी कुछ स्थलों पर शेष रहता है । एकैकम्> एक्कमेक्कं ।

६६—म् शेष वाले शब्दों के रूप चलते हैं । एक्कमेक्के । अङ्गे-अङ्गे> अंगमंगे ।

६७—समस्त पदों में पूर्वपद के अन्तिम वर्ण को उत्तरपद के साथ परसवर्ण हो जाता है । कभी-कभी दोनों पदों को पृथक् भी माना जाता है । दुर्लभ> दुल्लह ।

(ख) स्वर सन्धि

६८—प्राकृत में प्रकृतिवद्भाव (सन्धि का अभाव) सामान्यतया होता है, किन्तु समस्त-पदों में पूर्व और उत्तर पद के स्वरों में सन्धि होती है । राजर्षि> राएसि, जन्मान्तरे> जम्मन्तरे ।

६९—यदि समस्त पद का उत्तरपद इ या उ से प्रारम्भ होता हो और उसके बाद संयुक्ताक्षर हों, या ई ऊ हों तो पूर्वपद के अन्तिम अ या आ का लोप हो जाता है । गजेन्द्र> गइन्द, वसन्तोत्सव> वसन्तूसव ।

७०—मध्यगत वर्णों के लोप होने पर सन्धि नहीं होती । वाक्य में भी शब्दों में सन्धि नहीं होती ।

अध्याय ७

शब्दरूप-विचार

७१—संस्कृत के शब्दरूपों से प्राकृत के शब्दरूपों में दो कारणों से ही मुख्य अन्तर है-(क) पूर्वोक्त ध्वनि-सम्बन्धी नियम तथा अन्य नियम, जिनसे शब्दरूपों पर प्रभाव पड़ता है, (ख) साम्य के आधार पर शब्दरूपों का सरलीकरण तथा शब्द को

एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित करना। प्राकृत में शब्दरूपों को सरल बनाना ही मुख्य कार्य है।

७२—द्विवचन का अभाव हो गया है। चतुर्थी का षष्ठी विभक्ति में ही समावेश हो गया है। प्राकृत के नियमों के कारण व्यंजनान्त शब्द प्रायः नहीं रहे हैं। अधिकांश शब्दों के रूप निम्नलिखित रूप से चलते हैं:—

१. पुंलिंग या नपुंसक लिंग शब्द अकारान्त।

२. पुंलिंग या नपुं० शब्द इ या उ अन्तवाले।

३. स्त्रीलिंग शब्द आ, इ, ई, उ, ऊ अन्तवाले।

७३—अकारान्त पुंलिंग पुत्त = पुत्र शब्द के रूप।

शौरसेनी			माहाराष्ट्री	
एक०	बहु०		एक०	बहु०
पुत्तो	पुत्ता	प्रथमा	पुत्तो	पुत्ता
पुत्तं	पुत्ते	द्वितीया	पुत्तं	पुत्ता, पुत्ते
पुत्तेण	पुत्तेहिं	तृतीया	पुत्तेण (णं)	पुत्तेहि (हिं)
पुत्तादो	पुत्तेहिंतो	पंचमी	पुत्ताओ	पुत्तेहि
पुत्तस्स	पुत्ताणं	षष्ठी	पुत्तस्स	पुत्ताण (णं)
पुत्ते	पुत्तेसु (सुं)	सप्तमी	पुत्ते, पुत्तम्मि	पुत्तेसु (सुं)

माहाराष्ट्री में चतुर्थी एक० पुत्ताअ रूप भी मिलता है।

७४—अकारान्त नपुंसक फल शब्द। इसके रूप पुत्त के तुल्य चलते हैं, केवल प्र० द्वि० में एक० में फलं और प्र० द्वि० के बहु० में फलाइं रूप बनेगा।

७५. इकारान्त पुंलिंग अग्गि = अग्नि शब्द के रूप।

	एक०	बहु०
प्र०	अग्गी	अग्गीओ, अग्गीणो (मा० अग्गी, अग्गीणो)
द्वि०	अग्गिं	अग्गीणो
तृ०	अग्गिणा	अग्गीहिं (मा० अग्गीहि)
ष०	अग्गिणो (मा० अग्गिस्स)	अग्गीणं (मा० अग्गीण)
स०	अग्गिम्मि	अग्गीसु (सुं)

चतुर्थी और पंचमी का साधारणतया प्रयोग नहीं होता है।

७६—इकारान्त नपुंसक दहिं = दधि शब्द। अग्गि के तुल्य रूप चलेंगे, केवल प्र० द्वि० एक० में दहिं या दहि और बहु० में दहीइं।

७७—उकारान्त पुं० और नपुं० के रूप इकारान्त के तुल्य ही चलते हैं। उकारान्त पुं० वाउ = वायु शब्द। एक० और बहु० में रूप। प्र० वाऊ, वाउणो (मा०

वाऊ); द्वि० वाउं, वाउणो; तृ० वाउणा, वाऊहि (हिं); प० वाउणो (मा० वाउस्स), वाऊण (णं); स० वाउम्मि, वाउसु (सुं)।

नपुं० महु = मधु शब्द। प्र० द्वि० एक० महु (हुं), बहु० महूइं।

७८—स्त्रीलिंग शब्दों के रूप। तृ०, प० और स० एक० में एक ही रूप होता है। आ ई ऊ अन्तवाले शब्दों के रूप समान होते हैं।

	माला		देवी		वहू = वधू	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०
प्र०	माला	मालाओ, माला	देवी	देवीओ	वहू	वहूओ
द्वि०	मालं	मालाओ, माला	देविं	देवीओ	वहुं	वहूओ
तृ०	मालाए	मालाहि (हिं)	देवीए	देवीहि (हिं)	वहूए	वहूहि (हिं)
पं०	मालादो	मालाहिंतो	देवीदो	देवीहिंतो	वहूदो	वहूहिंतो
	(मा० मालाओ)		(मा० देवीओ)		(मा० वहूओ)	
प०	मालाए	मालाण (णं)	देवीए	देवीण (णं)	वहूए	वहूण (णं)
स०	मालाए	मालासु (सुं)	देवीए	देवीसु (सुं)	वहूए	वहूसु (सुं)
सं०	माले		देवि		वहु	

	७९—भत्तु = भर्तृ		पिउ = पितृ	
	एक०	बहु०	एक	बहु०
प्र०	भत्ता	भत्तारो	शौ० पिदा, मा० पिआ	शौ० पिदरो मा० पिअरो
द्वि०	भत्तारं	—	पिदरं मा० पिअरं	पिदरो, पिदरे, पिअरो, पिउणो
तृ०	भत्तुणा	भत्तारेहिं	पिदुणा, मा० पिउणा	पिऊहिं
प०	भत्तुणो	भत्ताराण (णं)	पिदुणो मा० पिउणो	पिऊणं
स०	शौ० भत्तारे	भत्तारेसु		पिऊसु (सुं)

८०—अन्नन्त शब्द न् का लोप होने से अकारान्त हो जाते हैं।

	राअ = राजन्		शौ० माग० अत्त, मा० अप्प = आत्मन्	
प्र०	राआ	राआणो	अत्ता	अप्पा
द्वि०	राआणं	राआणो	अत्ताणअं	अप्पाणं
तृ०	रण्णा (राइणा)	राईहिं	—	अप्पणा
प०	रण्णो, राइणो	राईणं	अत्तणो (माग० अत्तानअस्स)	अप्पणो
स०	राइम्मि, राएम्मि, राए	—	—	—
सं०	राअं	—	—	—

८१—इन् अन्त वाले शब्द कुछ अंश में इकारान्त हो जाते हैं और कुछ अंश में संस्कृत के तुल्य इन्नन्त रहते हैं।

८२—अत् अन्त वाले अत् मत् वत् अकारान्त होकर अन्त मन्त वन्त हो जाते हैं। पुत्त के तुल्य रूप चलेंगे।

८३—स् अन्त वाले अस् इस् उस् स् लोप होने से अ इ उ अन्त वाले हो जाते हैं। उसी प्रकार इनके रूप चलेंगे।

८४—अस्मद् युष्मद्

	एक०	बहु०	एक०	बहु०
प्र०	अहं, हं	अम्हे	तुमं, मा० तं	तुम्हे
द्वि०	मं, मा० ममं	अम्हे, णो	तुमं, ते	तुम्हे, वो
तृ०	मए	अम्हेहिं	तए, तुए	तुम्हेहिं
पं०	(ममाओ)	(अम्हेहिंतो)	(तुमाहिंतो)	(तुमाहिंतो)
ष०	मम, मे, मह	अम्हाणं, णो	तुह, ते	तुम्हाणं
स०	मइ	अम्हेसु	तइ	(तुम्हेसु)

८५—तत् (स या त) शब्द के रूप।

	पुंलिंग		नपुं०		स्त्रीलिंग	
प्र०	सो	ते	तं	ताइं	सा	ताओ, ता
द्वि०	तं	ते	तं	ताइं	तं	ताओ, ता
तृ०	तेण (णं)	तेहि (हिं)	तेण (णं)	तेहि (हिं)	ताए, तीए	ताहि (हिं)
ष०	तस्स	तेसिं, ताणं	तस्स	तेसिं, ताणं	ताए, तीए	तासिं, ताणं
स०	तस्सि, तम्मि	तेसु	तस्सिं, तम्मि	तेसु	ताए, तीए	तासु

अध्याय ८

धातुरूप-विचार

८६—प्राकृत में शब्दरूपों की अपेक्षा धातुरूपों में अधिक अन्तर हुआ है। ध्वनि-नियमों के कारण व्यंजनान्त धातुएँ प्रायः समाप्त हो गई हैं। धातुरूप भी प्रायः एक ही ढंग से चलते हैं। रूपों की संख्या भी कम हो गई है। द्विवचन का अभाव हो गया है। आत्मनेपद प्रायः समाप्त हो गया है। लिट्, लिङ्, लुङ् भी प्रायः नष्ट हो गए हैं। भूतकाल का बोध कृदन्त प्रत्ययों से कराया जाता है। उसके साथ सहायक धातु कभी रहती है, कभी नहीं। संस्कृत के धातुरूपों में से केवल ये शेष रहे हैं—लट्, लोट्, विधिलिङ्, लृट्, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य, कृत् प्रत्यय—क्त, क्तवतु, तुम, क्त्वा, ल्यप्, शतृ, शानच्।

१० गणों के स्थान पर दो गण ही शेष रहे हैं—(१) भ्वादिगण, (२) चुरादिगण। दोनों गणों के रूप समान ही चलते हैं।

८७—भ्वादिगण (लट्) चुरादिगण (लट्)

			शौ०	मा०	शौ०	मा०
शौ० पुच्छदि, मा० पुच्छइ	पुच्छन्ति					
पुच्छसि	शौ० पुच्छध		कधेदि	कहेइ	कधेन्ति	कहेन्ति
	मा० पुच्छह		कधेसि	कहेसि	कधेध	कहेह
पुच्छामि	पुच्छामो		कधेमि	कहेमि	कधेमो	कहेमो

८८—भ्वादिगण (लोट्) चुरादिगण (लोट्)

शौ० पुच्छदु, मा० पुच्छउ	पुच्छन्तु	कहेदु	कहेन्तु
पुच्छ, पुच्छसु	शौ० पुच्छध, मा० पुच्छह	कहेहि, कहेसु	कहेह
(पुच्छामु)	पुच्छम्ह	(कहेमु)	कहेम्ह

८९—विधिलिङ् का प्रयोग अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में अधिक प्रचलित है, अन्य प्राकृतों में इसका प्रयोग बहुत कम है।

९०—लट् में भ्वादिगण और चुरादिगण के रूप समान ही चलेंगे।

एक०	बहु०
शौ० पुच्छिस्सदि, मा० पुच्छिस्सइ	पुच्छिस्सन्ति
शौ० पुच्छिस्ससि, मा० पुच्छिहिसि	शौ० पुच्छिस्सध, मा० पुच्छिस्सह
पुच्छिस्सं	पुच्छिस्सामो

९१—कर्मवाच्य में संस्कृत य का ज्ज होता है या य रहता ही नहीं है। कभी-कभी लट् के तुल्य रूप चलते हैं। भ्वादिगण परस्मैपदके ही तिङ् अन्त में लगते हैं।

कर्मवाच्य

शौ०	मा०
पुच्छीअदि	पुच्छिज्जइ
पुच्छीअसि	पुच्छिज्जसि
पुच्छीआमि	पुच्छिज्जामि (इसी प्रकार बहु० में)

९२—प्रेरणार्थक णिजन्तरूप। इसमें संस्कृत अय का ए रूप शेष रहता है। जैसे—हासयति > हासेइ, निर्वापयति > णिव्वावेदि।

९३—शतृ और शानच् प्रत्यय। (क) शतृ प्रत्यय—
वर्तमान—पुं० पुच्छन्तो, स्त्री० पुच्छन्ता, नपुं० पुच्छन्तं।
भविष्यत्—पुं० पुच्छिस्सन्तो, स्त्री० पुच्छिस्सन्ता, नपुं० पुच्छिस्सन्तं।
(ख) शानच्—वर्तमान—पुं० पुच्छमाणो, स्त्री०—माणा,—माणी, नपुं०—माणं।
भविष्यत्—पुं० पुच्छिस्समाणो, स्त्री०—माणा, नपुं०—माणं।

९४—तुमुन् प्रत्यय। संस्कृत का तुम् शौरसेनी और मागधी में दुं हो जाता है

तथा माहाराष्ट्री में उं। धातु के बाद तुम् लगता है, सेट् धातु में बीच में इ लगेगा। कर्तुम् > शौ० कादुं, मा० काउं; प्रष्टुम् > शौ० पुच्छिदुं, मा० पुच्छिउं।

९५—**क्त्वा प्रत्यय**। कृत्वा > कदुअ, गत्वा > गदुअ, पृष्ट्वा > शौ० पुच्छिअ, मा० पुच्छिऊण, नीत्वा > णइअ।

९६—**क्त प्रत्यय**। संस्कृत तः का दो या ओ प्राकृत शेष रहता है। गतः > गदो, गओ; कृतः> किदो, कओ। इसके बहुत से अनियमित रूप भी हैं। जैसे— आज्ञप्त> आणत्त, उक्त> उत्त, गृहीत> शौ० गहिद मा० गहिअ, दृष्ट> दिट्ठ, दत्त > दिण्ण, भूत> हुअ।

९७—**तव्य, अनीय, य प्रत्यय**। तव्य का दव्व शेष रहता है। प्रष्टव्य> पुच्छिदव्व, गन्तव्य> गच्छिदव्व। अनीय का अणीअ रहता है। करणीय> शौ० माग० करणीअ, मा० करणिज्ज। य> ज। कार्य> कज्ज।

अध्याय ९

मागधी की विशेषताएँ

९८—पहले जो उदाहरणादि दिए गए हैं, वे शौरसेनी और माहाराष्ट्री के मुख्य रूप से है। मागधी की मुख्य विशेषताएँ ये हैं।

(१) स के स्थान पर श का प्रयोग। शौ० भविस्सदि> भविश्शदि, पुत्तस्स> पुत्तश्श। (२) र के स्थान पर ल का प्रयोग, मुख्यतः शब्द के प्रारम्भ में। राज्ञः> लाआणो, शौ० पुरिसो> पुलिशे, समरे> शमले। (३) य शेष रहता है और ज के स्थान पर भी य हो जाता है। सं० यथा> यधा, जानाति> याणदि, जायते> यायदे। (४) द्य, र्ज्, र्य् के स्थान पर य्य होता है। शौरसेनी में इन स्थानों पर ज्ज् होता है। अद्य और आर्य> अय्य, मद्य> मय्य। (५) ण्य, न्य, ज्ञ, ञ्ज को ञ्ञ हो जाता है। पुण्य> पुञ्ञ, अन्य> अञ्ञ, राज्ञः> लाञ्ञो, अञ्जलि> अञ्ञलि। (६) मध्यगत च्छ को श्च होता है। गच्छ> गश्च, इच्छति> इश्चीअदि। (७) ष्क > स्क या श्क, ष्ट> स्ट या श्ट, ष्प ष्फ> स्प स्फ। शुष्क> शुस्क, कष्ट> कस्ट। (८) र्थ को स्त होता है। तीर्थ> तिस्त, अर्थः> अस्ते।

---

५. पारिभाषिक-शब्दकोश

सूचना—(१) संस्कृत-व्याकरण को ठीक-ठीक समझने के लिए आवश्यक एवं अत्युपयोगी सभी पारिभाषिक शब्दों का यहाँ पर संग्रह किया गया है। विद्यार्थी इन शब्दों को बहुत सावधानी से स्मरण कर लें। (२) पारिभाषिक शब्दों के साथ उनके *मूल-नियम पाणिनि के सूत्र आदि के रूप में दिए गए हैं।* (३) इस शब्दकोश में सभी शब्द अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।

(१) **अकर्मक**—अकर्मक वे धातुएँ होती हैं, जिनके साथ कर्म नहीं आता। अकर्मक की साधारणतया पहचान यह है कि जिनमें किम् (किसको, क्या) का प्रश्न नहीं उठता। निम्नलिखित अर्थों वाली धातुएँ अकर्मक होती हैं:—लज्जासत्तास्थिति-जागरणं, वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्। शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थं, धातुगणं तमकर्मकमाहुः॥ लज्जा, होना, रुकना या बैठना, जागना, बढ़ना, घटना, डरना, जीना, मरना, सोना, खेलना, चाहना, चमकना। 'फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्। फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वम् अकर्मकत्वम्। फल से भिन्न आधार में व्यापार का वाचक होना सकर्मकता है। फल से अभिन्न (एक) आधार में व्यापार का वाचक होना अकर्मकता है। 'धातोरर्थान्तरे वृत्तेधात्वर्थेनोपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया॥" इन कारणों से सकर्मक धातु भी अकर्मक हो जाती है:—धातु का अर्थान्तर में प्रयोग, धातु के अर्थ में ही कर्म का संग्रह, प्रसिद्धि तथा कर्म की अविवक्षा।

(२) **अक्षर**—(अक्षरं न क्षरं विद्यात्, अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्) अविनाशी और व्यापक होने के कारण स्वर और व्यंजन वर्णों को अक्षर कहते हैं।

(३) **अघोष**—खय् प्रत्याहार अर्थात् वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर, जिह्वामूलीय ≍ क, उपध्मानीय ≍ प, विसर्ग और श, ष, स, ये अघोष वर्ण हैं।

(४) **अच्**—(अचः स्वराः) स्वरों को अच् कहते हैं। वे हैं—अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ, लृ, ए ऐ, ओ औ।

(५) **अजन्त**—(अच्+अन्त) स्वर अन्त वाले शब्द या धातु आदि।

(६) **अध्याहार**—(सूत्रे अश्रूयमाणत्वे सति अर्थप्रत्यायकत्वम्) सूत्र में जो शब्द या अर्थ नहीं है और वह शब्द या अर्थ अर्थवशात् लिया जाता है तो उस अंश को अध्याहार कहते हैं।

(७) **अनिट्**—(न+इट्) जिन धातुओं में साधारणतया बीच में 'इ' नहीं लगता। जैसे—कृ, गम् आदि। इनका विशेष विवरण सूत्र ४७४ की व्याख्या में देखो। जैसे-कृ> कर्ता, कर्तुम् आदि।

(८) **अनुदात्त**—(नीचैरनुदात्तः, १।२।३०) जिस स्वर को तालु आदि के नीचे भाग से बोला जाता है, या जिस पर बल नहीं दिया जाता, उसे अनुदात्त कहते हैं।

वेद में अक्षर के नीचे लकीर खींचकर अनुदात्त का संकेत किया जाता है। स्वरित के बाद अनुदात्त का चिह्न नहीं लगता। बाद में उदात्त होगा तो अनुदात्त रहेगा।

(९) अनुनासिक—(मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः, १।१।८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों के मेल से होता है, उन्हें अनुनासिक कहते हैं। वर्गों के पंचमाक्षर ङ, ञ, ण, न, म अनुनासिक ही होते हैं। अच् और य व ल अनुनासिक और अनुनासिक-रहित दोनों प्रकार के होते हैं।

(१०) अनुबन्ध—प्रत्ययों आदि के प्रारम्भ और अन्त में कुछ स्वर या व्यंजन इसलिए जुड़े होते हैं कि उस प्रत्यय के होने पर गुण, वृद्धि, सम्प्रसारण, कोई विशेष स्वर उदात्तादि या अन्य कोई विशेष कार्य हो। ऐसे सहेतुक वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। ये 'इत्' होते हैं अर्थात् इनका लोप हो जाता है। जैसे—क्तवतु में क् और उ। शतृ में श् और ऋ। अतः क्तवतु को कित् कहेंगे, शतृ को शित् या उगित्।

(११) अनुवृत्ति—पाणिनि के सूत्रों में पहले के सूत्रों से कुछ या पूरा अंश अगले सूत्रों में आता है, इसे अनुवृत्ति कहते हैं। तभी अगले सूत्र का अर्थ पूरा होता है। विरोधी बात होने पर अनुवृत्ति नहीं होती। कुछ अधिकार-सूत्र होते हैं, उनकी पूरे प्रकरण में अनुवृत्ति होती है। जैसे—प्राग्दीव्यतोऽण् (४।१।८३), तस्यापत्यम् (४।१।९२)।

(१२) अन्तरङ्ग—प्राथमिकता का कार्य। (धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्, अन्यद् बहिरङ्गम्) धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग अर्थात् मुख्य होता है।

(१३) अन्तस्थ—(यरलवा अन्तस्थाः) य र ल व को अन्तस्थ कहते हैं।

(१४) अन्वादेश—(किंचित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः) पूर्वोक्त व्यक्ति आदि के पुनः किसी काम के लिए उल्लेख करने को अन्वादेश कहते हैं। जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय (इसने व्याकरण पढ़ा है, इसे छन्द पढ़ाओ)।

(१५) अपवाद—विशेष नियम। यह उत्सर्ग (सामान्य) नियम का बाधक होता है।

(१६) अपृक्त—अपृक्त एकाल्प्रत्ययः, १।२।४१) एक अल् (स्वर या व्यंजन) मात्र शेष प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं। जैसे—सु का स्, ति का त्, सि का स्।

(१७) अभ्यास—(पूर्वोऽभ्यासः, ६।१।४) लिट् आदि में धातु के जिस अंश को द्वित्व होता है, उसके प्रथम भाग को अभ्यास कहते हैं। जैसे—चकार में च, ददर्श में द।

(१८) अलुक्—सुप् विभक्ति या सुप् का लोप न होना। अलुक् समास में पूर्व पद की सुप् विभक्तियों का लोप नहीं होता है। जैसे—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, उरसिजम्।

(१९) अल्पप्राण—(वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यरलवाश्चाल्पप्राणाः) वर्गों के प्रथम तृतीय और पंचम अक्षर तथा य र ल व अल्पप्राण कहे जाते हैं। जैसे—कवर्ग में क ग ङ। च ज ञ, ट ड ण, त द न, प ब म, य र ल व।

(२०) अवग्रह—(सूत्रेण विधीयमानकार्यस्य बोधकं चिह्नम्) सूत्र से किए गए कार्य के बोधक चिह्न को अवग्रह कहते हैं। ऽ=अ। ऽ यह संकेत अ हटा है, इसका बोधक है। पदों या अवयवों के विच्छेद को भी अवग्रह कहते हैं।

(२१) अव्यय—(स्वरादिनिपातमव्ययम्, १।१।३७) स्वर् आदि शब्द तथा सभी निपात अव्यय होते हैं। अव्यय वे हैं, जिनके रूप में कभी परिवर्तन या अन्तर नहीं होता। जैसे–प्र परा सम् आदि उपसर्ग और उच्चैः, नीचैः आदि निपात।

(२२) अष्टाध्यायी—पाणिनि के व्याकरण ग्रन्थ को अष्टाध्यायी कहते हैं। इसमें आठ अध्याय हैं, अतः अष्टाध्यायी नाम पड़ा। प्रत्येक अध्याय में चार पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में कुछ सूत्र। सूत्र के आगे निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः यह भाव है–(१) अध्याय की संख्या, (२) पाद की संख्या, (३) सूत्र की संख्या। यथा–१।१।१, अध्याय १, पाद १ का पहला सूत्र।

(२३) असिद्ध—(पूर्वत्रासिद्धम्, ८।२।१) किसी विशेष नियम की दृष्टि में किसी नियम या कार्य को न हुआ सा समझना। जैसे–सवा सात अध्याओं की दृष्टि में अन्तिम तीन पाद असिद्ध हैं और तीन पाद में भी पूर्व के प्रति पर नियम असिद्ध हैं।

(२४) आख्यात—धातु और क्रिया को आख्यात कहते हैं। नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च।

(२५) आगम—शब्द या धातु के बीच या अन्त में जो अक्षर या वर्ण और जुड़ जाते हैं, उन्हें आगम कहते हैं। जैसे–पयस्>पयांसि में न् का बीच में आगम है।

(२६) आत्मनेपद—(तङानावात्मनेपदम्, १।४।१००) तङ् (ते, एते, अन्ते आदि), शानच्, कानच्, ये आत्मनेपद होते हैं। जिन धातुओं के अन्त में ते, एते अन्ते आदि लगते हैं, वे धातुएँ आत्मनेपदी कहलाती हैं। जैसे–सेव् धातु। सेवते सेवेते०।

(२७) आदेश, एकादेश—किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नये प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे–आदाय में क्त्वा को ल्यप् आदेश। पूर्व और पर दो के स्थान पर एक वर्ण होना एकादेश है। जैसे–रमेशः में आ+ई को ए गुण।

(२८) आमन्त्रित—(सामन्त्रितम्, २।३।४८) सम्बोधन को आमन्त्रित कहते हैं। हे अग्ने!

(२९) आम्रेडित—(तस्य परमाम्रेडितम्, ८।१।२) द्विरुक्ति वाले स्थानों पर उत्तरार्ध को आम्रेडित कहते हैं। जैसे–कान्+कान्=कांस्कान्, में बाद वाला कान्।

(३०) आर्धधातुक—(आर्धधातुकं शेषः, ३।४।११४) तिङ् (ति तः अन्ति आदि और ते एते अन्ते आदि) और शित् (श् इत् वाले, शतृ आदि) से भिन्न, धातुओं में जुड़ने वाले प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं। (लिट् च, ३।४।११५), लिङाशिषि, ३।४।११६) लिट् और आशीर्लिङ् के स्थान पर होने वाले तिङ् भी आर्धधातुक होते हैं।

(३१) इट्—(आर्धधातुकस्येड्वलादेः, ७।२।३५) इट् का इ शेष रहता है। यह धातु और प्रत्यय के बीच में होता है। वलादि आर्धधातुक को इट् 'इ' होता है। जैसे—पठिष्यति, पठितुम्। इस इट् (इ) के आधार पर ही धातुएँ सेट् या अनिट् कही जाती हैं। जिन धातुओं में साधारणतया इट् (इ) होता है, उन्हें सेट् (स + इट्) अर्थात् इ-वाली धातुएँ कहते हैं। जिनमें इट् (इ) नहीं होता, उन्हें अनिट् (न + इट्) कहते हैं।

(३२) इत्—(तस्य लोपः, १।३।९) जिसको इत् कहेंगे, उसका लोप हो जाएगा। अनुबन्धों को इत् कहते हैं। गुण आदि के लिए प्रत्ययों के आदि या अन्त में ये लगे होते हैं। बाद में ये हट जाते हैं। जैसे—शतृ में श् और ऋ। शतृ में श् हटा है, अतः इसे शित् कहेंगे। जो अक्षर हटा होगा, उसके आधार पर प्रत्यय कित् (क् + इत्), पित् (प् + इत्) आदि कहे जाते हैं। इत् होने वाले अक्षर ये हैं:—(१) हलन्त्यम् (१।३।३) अन्तिम व्यंजन इत् होता है। (२) उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१।३।२) उच्चारण में अनुनासिक संकेत वाला स्वर। (३) चुटू (१।३।७) प्रत्यय के आदि में चवर्ग और टवर्ग। (४) लशक्वतद्धिते (१।३।८) तद्धित प्रकरण को छोड़कर प्रत्यय के आदि के ल श और कवर्ग। (५) षः प्रत्ययस्य (१।३।६) प्रत्यय के आदि का ष् इत्यादि।

(३३) उणादि—(उणादयो बहुलम्, ३।३।१) धातुओं से उण् आदि प्रत्यय होते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर व्याकरण में इस प्रकरण को उणादि प्रकरण कहते हैं।

(३४) उत्सर्ग—साधारण नियमों को उत्सर्ग कहते हैं। विशेष को अपवाद।

(३५) उदात्त—(उच्चैरुदात्तः, १।२।२९) जिस स्वर को तालु आदि के उच्च भाग से बोला जाता है या जिस स्वर पर बल दिया जाता है, उसे उदात्त कहते हैं।

(३६) (क) उपपद-विभक्ति—किसी पद (सुबन्त, तिङन्त) को मानकर जो विभक्ति होती है उसे उपपद-विभक्ति कहते हैं। जैसे—गुरवे नमः में नमः पद के कारण चतुर्थी है। (ख) कारक-विभक्ति—क्रिया को मानकर जो विभक्ति होती है, उसे कारक-विभक्ति कहते हैं। जैसे—पाठं पठति में पठति क्रिया के आधार पर द्वितीया विभक्ति है।

(३७) उपधा—(अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा, १।१।६५) अन्तिम अल् (स्वर या व्यंजन) से पहले आने वाले वर्ण को उपधा कहते हैं। जैसे—लिख् धातु में उपधा में इ है।

(३८) उपध्मानीय—(कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च, ८।३।३७) प फ से पहले अर्ध विसर्ग के तुल्य ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। जैसे—नृ ≍ पाहि। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(३९) उपसर्ग—(उपसर्गाः क्रियायोगे, १।४।५९) धातु या क्रिया से पहले लगने वाले प्र, परा आदि को उपसर्ग कहते हैं। ये २२ हैं—प्र, परा, अप, सम्, अनु,

अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप।

(४०) उभयपद—परस्मैपद (ति, तः आदि) और आत्मनेपद (ते एते आदि) इन दोनों पदों के चिह्नों का लगना। जिन धातुओं में ये चिह्न लगते हैं, उन्हें उभयपदी कहते हैं।

(४१) ऊष्म—(शपसहा उष्माणः) श, ष, स, ह को ऊष्म वर्ण कहते हैं।

(४२) ओष्ठ्य—(उपूपध्मानीयानामोष्ठौ) उ, ऊ, पवर्ग और उपध्मानीय, इनका उच्चारण स्थान ओष्ठ है, अतः ये ओष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४३) कण्ठ्य—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) अ, आ, कवर्ग, ह और विसर्ग (:), इनका उच्चारण-स्थान कण्ठ है। अतः ये कण्ठ्य वर्ण कहलाते हैं।

(४४) कर्मप्रवचनीय—(कर्मप्रवचनीयाः, १।४।८३) अनु, उप, प्रति, परि आदि उपसर्ग कुछ अर्थों में कर्मप्रवचनीय होते हैं। इनके साथ द्वितीया आदि होती हैं।

(४५) कारक—प्रथमा, द्वितीया आदि को कारक या विभक्ति कहते हैं। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से कारक ६ हैं। सम्बोधन प्रथमा के अन्तर्गत है।

(४६) कृत्—(कर्तरि कृत्, ३।४।६७) धातु से होने वाले क्त क्तवतु शतृ शानच् आदि को कृत् प्रत्यय कहते हैं। क्त और खल् को छोड़कर शेष कृत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होते है। घञ् प्रत्यय कर्ता से भिन्न कारक तथा भाव अर्थ में होता है।

(४७) कृत्य—(तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः, ३।४।७०) धातु से होने वाले तव्य, अनीय, य आदि को कृत्य प्रत्यय कहते हैं। ये भाव और कर्मवाच्य में होते हैं।

(४८) कृदन्त—जिन शब्दों के अन्त में कृत् प्रत्यय लगे होते हैं, उन्हें कृदन्त कहते हैं।

(४९) क्रिया—धातुवाच्य और धातुरूप को क्रिया कहते हैं। जैसे—पचनम्, पठनम्, पचति, पठति।

(५०) गण—धातुओं को दस भागों में बाँटा गया है, उन्हें गण कहते हैं। जैसे—भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादिगण आदि।

(५१) गणपाठ—कतिपय शब्दों से एक ही प्रत्यय लगता है। ऐसे शब्दों को एक गण (समूह) में रखा गया है। ऐसे शब्द-संग्रह को गणपाठ कहते हैं। जैसे—नद्यादिभ्यो ढक् (४।२।९७)।

(५२) गति—(गतिश्च, १।४।६०) उपसर्गों को गति कहते हैं। कुछ अन्य शब्द भी गति हैं।

(५३) गुण—(अदेङ् गुणः, १।१।२) अ, ए, ओ को गुण कहते हैं। गुण कहने पर ऋ ॠ को अर्, इ ई को ए, उ ऊ को ओ हो जाता है।

(५४) गुरु—(संयोगे गुरु, १।४।११; दीर्घं च, १।४।१२) संयुक्त वर्ण बाद में हो तो ह्रस्व वर्ण गुरु होता है। सभी दीर्घ अक्षर गुरु होते हैं।

(५५) घ—(तरप्तमपौ घः, १।१।२२) तरप् और तमप् प्रत्ययों को घ कहते हैं।

(५६) घि—(शेषो घ्यसखि, १।४।७) ह्रस्व इ और उ अन्त वाले शब्द घि कहलाते हैं, स्त्रीलिङ्ग शब्दों और सखि शब्द को छोड़कर।

(५७) घु—(दाधा घ्वदाप्, १।१।२०) दा और धा धातु को तथा दा और धा रूपवाली अन्य धातुओं (दाण्, धेट् आदि) को घु कहते हैं, दाप् को छोड़कर।

(५८) घोष—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार अर्थात् वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पंचमवर्ण और ह, य, व, र, ल घोष हैं।

(५९) जिह्वामूलीय—(कुप्वोः ≍क ≍पौ च, ८।३।३७) क ख से पहले ≍ अर्धविसर्ग के तुल्य ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। क ≍ करोति। यह विसर्ग के स्थान पर होता है।

(६०) टि—(अचोऽन्त्यादि टि, १।१।६४) शब्द के अन्तिम ओर से जहाँ स्वर मिले, वह स्वर और आगे यदि व्यंजन हो तो वह व्यंजन सहित स्वर टि कहलाता है। जैसे—मनस् में अस्, धनुष् में उष् टि है।

(६१) तपर—(तपरस्तत्कालस्य, १।१।७०) किसी स्वर के बाद त् लगा देने से उसी स्वर का ग्रहण होगा, अन्य दीर्घ आदि का नहीं। जैसे—अत् का अर्थ है ह्रस्व अ। आत् का अर्थ है दीर्घ आ।

(६२) तद्धित—शब्दों से पुत्र आदि अर्थों में होने वाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

(६३) तालव्य—(इचुयशानां तालु) इ ई, चवर्ग, य, श का उच्चारण-स्थान तालु है, अतः इन्हें तालव्य वर्ण कहते हैं।

(६४) तिङ्—धातु के बाद लगने वाले ति, तः आदि और ते एते आदि को तिङ् कहते हैं।

(६५) तिङन्त—ति तः आदि से युक्त पठति आदि धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं।

(६६) दन्त्य—(लृतुलसानां दन्ताः) लृ, तवर्ग, ल, स का उच्चारण-स्थान दन्त है। अतः इन्हें दन्त्य वर्ण कहते हैं।

(६७) दीर्घ—आ ई ऊ ॠ को दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ कहने पर ह्रस्व के स्थान पर ये स्वर होते हैं।

(६८) द्वित्व—किसी वर्ण या वर्णसमूह को दो बार पढ़ने को द्वित्व कहते हैं। पपाठ में पठ् को द्वित्व हुआ है।

(६९) द्विरुक्ति—किसी शब्दरूप या धातुरूप को दो बार पढ़ना। स्मारं स्मारम्, स्मृत्वा स्मृत्वा।

(७०) धातु—भू, पठ्, कृ आदि क्रियावाचक शब्दों को धातु कहते हैं।

(७१) धातुपाठ—भू आदि धातुओं को १० गणों के अनुसार संग्रह किया गया है। इस धातु-संग्रह को धातुपाठ कहा जाता है। इसमें धातुओं के साथ उनके अर्थ आदि भी दिये गए हैं।

(७२) नदी—(१) (यू स्त्र्याख्यौ नदी, १।४।३) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द नदी कहलाते हैं। (२) (ङिति ह्रस्वश्च, १।४।६) इकारान्त उकारान्त स्त्री-लिङ्ग शब्द भी ङित् विभक्तियों में विकल्प से नदी कहलाते हैं।

(७३) नपुंसक लिङ्ग—यह तीनों लिंगों में से एक लिंग है। फल, वारि, मधु आदि नपुंसक लिंग शब्द हैं।

(७४) नाद—अच् (स्वर) और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय चतुर्थ पञ्चम वर्ण, ह य व र ल) नाद वर्ण हैं।

(७५) नाम—प्रातिपदिक या संज्ञा-शब्दों को नाम कहते हैं। 'नामाख्यातोपसर्ग-निपाताश्च' निरुक्त।

(७६) निपात—(चादयोऽसत्त्वे, १।४।५७) च वा ह आदि को निपात कहते हैं। (स्वरादिनिपातमव्ययम्, १।१।३७) सभी निपात अव्यय होते हैं, अतः ये सदा एकरूप रहते हैं, इनके रूप नहीं चलते हैं।

(७७) निष्ठा—(क्तक्तवतू निष्ठा, १।१।२६) क्त और क्तवतु प्रत्यय को निष्ठा कहते हैं।

(७८) पद—(१) (सुप्तिङन्तं पदम्, १।४।१४) सुप् (ः औ अः आदि) से युक्त शब्दों और तिङ् (ति तः अन्ति आदि) से युक्त धातुरूपों को पद कहते है। जैसे—रामः, पठति। (२) (स्वादिष्वसर्वनामस्थाने, १।४।१७) सु (स्) आदि प्रत्यय बाद में हों तो शब्द को पद कहते हैं। ये प्रत्यय बाद में होंगे तो नहीं—सु आदि प्रथम पाँच सुप्, यकारादि और स्वर आदि वाले प्रत्यय। भ्याम्, भिः, भ्यः, सु (स. ३) आदि बादमें होने पर शब्द की पदसंज्ञा होती है। पदसंज्ञा होनेसे शब्दके अन्तिम न् का लोप आदि कार्य होते हैं।

(७९) पदान्त—नियम ७८ में उक्त पद के अन्तिम अक्षर को पदान्त कहते हैं। जैसे—रामम् में म् पदान्त है।

(८०) पररूप—(एङि पररूपम्, ६।१।९४) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को मिलाने पर अगले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पररूप कहते हैं। जैसे—प्र + एजते = प्रेजते। अ और ए को ए।

(८१) परस्मैपद—(लः परस्मैपदम्, १।४।९९) लकारों के स्थान पर होने वाले ति, तः, अन्ति आदि प्रत्ययों को परस्मैपद कहते हैं। ये जिनके अन्त में लगते हैं, उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं। ते, एते, अन्ते आदि को आत्मनेपद कहते हैं। शतृ प्रत्यय परस्मैपद में होता है।

(८२) परिभाषा—विधिशास्त्र की प्रवृत्ति और निवृत्ति के नियामक शास्त्र को परिभाषा कहते हैं।

(८३) पुंलिंग—यह तीन लिंगों में से एक है। जैसे—रामः, हरिः।

(८४) पूर्वरूप—(एङः पदान्तादति, ६।१।१०९) सन्धि-नियमों में दो स्वरों को मिलाने पर पहले स्वर के तुल्य रूप रह जाने को पूर्वरूप कहते हैं। जैसे—हरे + अव = हरेऽव। ए और अ को ए।

(८५) (क) प्रकृति—शब्द या धातुरूप जिससे कोई प्रत्यय होता है, उसे प्रकृति कहते हैं। इसका दूसरा पारिभाषिक नाम अंग है। जैसे—रामः में राम प्रकृति है और पठति में पठ्। (ख) प्रकृति-विकृति—शब्द या धातु के मूलरूप के स्थान पर जो नया आदेश होता है, उसे प्रकृति-विकृति या विकार-भाव कहते हैं। जैसे—उवाच में प्रकृति 'ब्रू' धातु है, उसको विकृति विकार या आदेश 'वच्' हुआ है। यह पूरे शब्द या धातु को भी होता है और कहो पर उसके एक अंश को भी।

(८६) प्रकृतिभाव—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, ६।१।१२५) प्रकृतिभाव का अर्थ है कि वहाँ पर कोई सन्धि नहीं होती। प्लुत और प्रगृह्य वाले स्थानों पर प्रकृति-भाव होता है। वहाँ पर शब्द या धातु का रूप जैसा का तैसा रहता है।

(८७) प्रगृह्य—(ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्, १।१।११) प्रगृह्य वाले स्थानों पर कोई सन्धि नहीं होती। ई ऊ ए अन्त वाले द्विवचनान्त रूप प्रगृह्य होते हैं, अतः सन्धि नहीं होगी। जैसे—हरी + एतौ। (२) (अदसो मात्, १।१।१२) अदस् के म् के बाद ई ऊ होंगे तो कोई सन्धि नहीं होगी। जैसे—अमी ईशाः। अमू आसाते।

(८८) प्रत्यय—(प्रत्ययः, ३।१।१) शब्दों और धातुओं के बाद लगने वाले सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित प्रत्यय आदि को प्रत्यय कहते है। कुछ प्रत्यय पहले (बहुच् आदि) और बीच में (अकच् आदि) भी लगते हैं। बहुपटुः। उच्चकैः। प्रत्ययों में विशेष कार्य के लिए अनुबन्ध भी लगे होते हैं।

(८९) प्रत्याहार—(आदिरन्त्येन सहेता, १।१।७१) प्रत्याहार का अर्थ है संक्षेप में कथन। अच्, हल्, सुप्, तिङ् आदि प्रत्याहार है। अच् हल् आदि के लिए पहला अक्षर अइउण् आदि १४ सूत्रों में ढूँढें और अन्तिम अक्षर उन सूत्रों के अन्तिम अक्षर में। जैसे—अच्=अइउण् के अ से लेकर ऐऔच् के च् तक, पूरे स्वर। सुप्=सु से सुप् के प् तक, अर्थात् सारे सु आदि प्रत्यय। तिङ्=तिप् से महिङ् तक, अर्थात् सारे परस्मैपदी (ति आदि) और आत्मनेपदी (ते आदि) प्रत्यय।

(९०) प्रयत्न—वर्णों के उच्चारण में जो प्रयत्न (मनोयोगपूर्वक प्राण का व्यापार) किया जाता है—उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का है—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर ४ प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत, संवृत। बाह्य ११ प्रकार का है—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित।

(९१) प्रातिपदिक—(१) (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, १।२।४५) सार्थक शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं। यही विभक्ति (सु आदि) लगने पर पद बनता है। (२) (कृत्तद्धितसमासाश्च, १।२।४६) कृत् और तद्धित-प्रत्ययान्त तथा समास-युक्त शब्द भी प्रातिपदिक होते हैं।

(९२) प्रेरणार्थक—दूसरे से काम कराना। जैसे—लिखना से लिखवाना। इस अर्थ में णिच् प्रत्यय होता है। लिखति>लेखयति।

(९३) प्लुत—ह्रस्व स्वर से तिगुनी मात्रा । अक्षर के आगे तीन अंक लिखकर इसका संकेत करते हैं। जैसे—देवदत्त ३ ।

(९४) बहिरङ्ग—गौण नियम । धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होता है और शेष कार्य बहिरङ्ग होते हैं।

(९५) बहुलम्—विकल्प या ऐच्छिक नियम को बहुलम् कहते हैं।

(९६) भ—(यचिभम्, १।४।१८) यकारादि और स्वर आदि वाला प्रत्यय बाद में हो तो उससे पहले के शब्द को 'भ' कहते हैं। सु औ आदि प्रथम पाँच सुप् बाद में हो तो नहीं। जैसे—राज्ञः, राज्ञा आदि में भ-स्थानों में उपधा के अ का लोप है।

(९७) भाष्य—पतंजलि-रचित महाभाष्य को संक्षेप में भाष्य कहते हैं।

(९८) मत्वर्थक प्रत्यय—मतुप् प्रत्यय 'वाला' या 'युक्त' अर्थ में होता है। इस अर्थ में होने वाले सभी प्रत्ययों को मत्वर्थक प्रत्यय कहते हैं। जैसे—धनवान्, धनी।

(९९) महाप्राण—(द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः) वर्गों के द्वितीय चतुर्थ अक्षर और श ष स ह महाप्राण वर्ण कहलाते हैं। जैसे—ख घ, छ झ, ठ ढ, फ भ आदि।

(१००) मात्रा—स्वरों के परिमाण को मात्रा कहते हैं। ह्रस्व या लघु अक्षर की एक मात्रा मानी जाती है, दीर्घ या गुरु की दो, प्लुत की तीन।

(१०१) मुनित्रय—(यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्) पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि इन तीनों को मुनित्रय कहते हैं। मतभेद होने पर बाद वाले मुनि का कथन प्रामाणिक माना जाता है।

(१०२) मूर्धन्य—(ऋटुरषाणां मूर्धा) ऋ ॠ, टवर्ग, र ष का उच्चारण-स्थान मूर्धा है, अतः इन्हें मूर्धन्य कहते हैं।

(१०३) योगरूढ—योगरूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिसमें यौगिक अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय का अर्थ निकलता है, परन्तु वे किसी विशेष अर्थ में रूढ या प्रचलित हो गये हैं। जैसे—पङ्कज का अर्थ होता है—कीचड़ में होने वाला, पर वह कमल अर्थ में रूढ है।

(१०४) योगविभाग—पाणिनि के सूत्रों को कात्यायन आदि ने आवश्यकतानुसार विभक्त करके एक सूत्र (योग) के दो या तीन सूत्र बनाए हैं। इस सूत्र-विभाजन को योग-विभाग कहते हैं। जैसे—एतदोऽन् के दो सूत्र 'एतदः' और 'अन्'।

(१०५) यौगिक—यौगिक उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ निकलता है। जैसे—पाचकः = पच् + अकः = पकाने वाला।

(१०६) रूढ—रूढ उन शब्दों को कहते हैं, जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ नहीं निकलता है। जैसे—मणि, नुपूर आदि।

(१०७) लघु—(ह्रस्वं लघु, १।४।११) ह्रस्व अ इ उ ऋ को लघु वर्ण कहते हैं।

(१०८) लिङ्ग—संस्कृत में तीन लिंग हैं—पुंलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग।

(१०९) लुक्—(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, १।१।६१) प्रत्यय के लोप का ही दूसरा नाम लुक् है।

(११०) लुप (श्लु)--(प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः) प्रत्यय के लोप को श्लु और लुप् भी कहते हैं।

(१११) लोप—(अदर्शनं लोपः, १।१।६०) प्रत्यय आदि के हट जाने को लोप कहते हैं।

(११२) वचन—संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन और तीन या अधिक के लिए बहुवचन।

(११३) वर्ग—व्यंजनों के कुछ विभागों को वर्ग कहते हैं—जैसे--कवर्ग—क से ङ तक, चवर्ग—च से ञ तक, टवर्ग—ट से ण तक, तवर्ग—त से न तक, पवर्ग—प से म तक।

(११४) वर्ण—अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन, ये सभी वर्ण हैं।

(११५) वाक्य—सार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

(११६) वाच्य—संस्कृत में तीन वाच्य (अर्थ) होते है। (१) कर्तृवाच्य, (२) कर्मवाच्य (३) भाववाच्य। सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है। कर्मवाच्य में कर्म और भाववाच्य में क्रिया। सकर्मक से भी भाव में घञ् प्रत्यय होता है।

(११७) वार्तिक—कात्यायन और पंतजलि द्वारा बनाए गये नियमों को वार्तिक कहते हैं।

(११८) विकल्प—ऐच्छिक (लगना या न लगना) नियम को विकल्प कहते हैं।

(११९) विभक्ति—(विभक्तिश्च, १।४।१०४) सु औ आदि कारक-चिह्नों को विभक्ति या कारक कहते हैं। सम्बोधन सहित ८ विभक्तियाँ हैं—प्रथमा, द्वितीया आदि।

(१२०) विभाषा—(न वेति विभाषा, १।१।४४) किसी नियम के विकल्प से लगने को विभाषा कहते हैं। इसी अर्थ में वा, अन्यतरस्याम्, बहुलम् शब्द आते हैं।

(१२१) विवार—वर्गों के प्रथम द्वितीय अक्षर (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग, श ष स, ये विवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२२) विवृत—(विवृतमूष्मणा स्वराणां च) स्वरों और ऊष्मों (श ष स ह) का आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है और इनके उच्चारण में मुख-द्वार खुला रहता है।

(१२३) विशेषण—विशेष्य (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताने वाले गुण या द्रव्य के बोधक शब्दों को विशेषण कहते हैं। विशेषण को भेदक भी कहते हैं।

(१२४) विशेष्य—जिस (व्यक्ति या वस्तु आदि) की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं।

(१२५) वीप्सा—द्विरुक्ति अर्थात् दो बार पढ़ने को वीप्सा कहते हैं। जैसे—स्मृत्वा, स्मृत्वा स्मारं स्मारम्।

(१२६) वृत्ति—(१) सूत्रों की व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। (२) (परार्थाभिधानं वृत्तिः) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सन् आदि से युक्त धातुरूपों को वृत्ति कहते हैं।

(१२७) वृद्धि—(वृद्धिरादैच्, १।१।१) आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं। वृद्धि कहने पर इ, ई को ऐ होगा, उ ऊ को औ और ऋ ॠ को आर्, ए को ऐ और ओ को औ।

(१२८) व्यञ्जन—क से लेकर ह् तक के वर्णों को व्यंजन या हल् कहते हैं।

(१२९) व्यधिकरण—एक से अधिक आधार या शब्दादि में होने वाले कार्य को व्यधिकरण कहते हैं। वि = विभिन्न, अधिकरण = आधार। एक आधार वाला समानाधिकरण होता है, अनेक आधार वाला व्यधिकरण।

(१३०) शब्द—सार्थक वर्ण या वर्णसमूह को शब्द या प्रातिपदिक कहते हैं।

(१३१) शिक्षा—वर्णों के उच्चारण आदि की शिक्षा देने वाले ग्रन्थों को 'शिक्षा' कहते हैं। जैसे—पाणिनीयशिक्षा आदि ग्रन्थ। वैदिक शिक्षा और व्याकरण के ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं।

(१३२) श्लु—प्रत्यय के लोप का ही एक नाम श्लु है। जुहोत्यादि में श्लु होने पर द्वित्व होता है।

(१३३) श्वास—वर्गों के प्रथम द्वितीय (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ), विसर्ग श ष स, ये श्वास वर्ण हैं। इनके उच्चारण में श्वास बिना रगड़ खाए बाहर आता है।

(१३४) षट्—(ष्णान्ताः षट्, १।१।२४) ष् और न् अन्त वाली संख्याओं को षट् कहते हैं।

(१३५) संज्ञा—व्यक्ति या वस्तु आदि के नाम को संज्ञा कहते हैं।

(१३६) संयोग—(हलोऽनन्तराः संयोगः, १।१।७) व्यञ्जनों के बीच में स्वर वर्ण न हों तो उन्हें संयुक्त अक्षर कहते हैं। जैसे—सम्बद्ध में म् और ब, द् और ध।

(१३७) संवार—स्वर और हश् प्रत्याहार (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण, ह य व र ल) संवार वर्ण हैं। इनके उच्चारण में मुख द्वार कुछ संकुचित (सिकुड़ा) रहता है।

(१३८) संवृत—ह्रस्व अ बोलचाल में संवृत (मुख-द्वार संकुचित) होता है।

(१३९) संहिता—(परः सन्निकर्षः संहिता, १।४।१०९) वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। संहिता अवस्था में सभी सन्धि-नियम लगते हैं। एक पद में, धातु और उपसर्ग में, समास युक्तपद में संहिता अवश्य होगी। वाक्य में संहिता ऐच्छिक है।

संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

(१४०) सकर्मक—जिन धातुओं के साथ कर्म आता है, उन्हें सकर्मक धातु कहते हैं।

(१४१) सत् —(तौ सत्, ३।२।१२७) शतृ और शानच् प्रत्ययों को सत् कहते हैं।

(१४२) सन्—(धातोः कर्मणः०, ३।१।७) इच्छा अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय होता है। कृ > चिकीर्षति।

(१४३) सन्धि—स्वरों, व्यञ्जनों या विसर्ग के परस्पर मिलने को सन्धि कहते हैं।

(१४४) समानाधिकरण—एक आधारवाले को समानाधिकरण कहते हैं।

(१४५) समास—समास का अर्थ है संक्षेप। दो या अधिक शब्दों को मिलाने या जोड़ने को समास कहते हैं। समास होने पर शब्दों के बीच की विभक्ति हट जाती है। समासयुक्त शब्द को समस्तपद कहते हैं। समस्त शब्द एक शब्द होता है। समास के ६ भेद हैं—१. अव्ययीभाव, २. तत्पुरुष, ३. कर्मधारय ४. द्विगु ५. बहुव्रीहि और ६. द्वन्द्व।

(१४६) समासान्त—समासयुक्त शब्द के अन्त में होने वाले कार्यों को समासान्त कहते हैं।

(१४७) समाहार—समाहार का अर्थ है समूह। समाहार द्वन्द्व में प्रायः नपुं० एकवचन होता है। कभी स्त्रीलिंग भी होता है।

(१४८) सम्प्रसारण—(इग्यणः सम्प्रसारणम्, १।१।४५) य् को इ, व् को उ, र् को ऋ, ल् को ऌ हो जाने को सम्प्रसारण कहते हैं। सम्प्रसारण कहने पर ये कार्य होंगे।

(१४९) सर्वनाम—(सर्वादीनि सर्वनामानि, १।१।२७) सर्व, यत्, तत्, किम्, युष्मद्, अस्मद् आदि शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। इनका सम्बोधन नहीं होता है।

(१५०) सर्वनामस्थान—(सुडनपुंसकस्य, १।१।४३) प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के पहले पाँच सुप् (कारक-चिह्न, स् और अः, अम् औ) को सर्वनामस्थान कहते हैं, नपुंसकलिंग में नहीं।

(१५१) सवर्ण—(तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, १।१।९) जिन वर्णों का स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न मिलता है, उन्हें सवर्ण कहते हैं। जैसे—इ, चवर्ग या श तालव्य और स्पृष्ट हैं, अतः सवर्ण हैं।

(१५२) सार्वधातुक—(तिङ्शित्सार्वधातुकम्, ३।४।११३) धातु के बाद जुड़ने वाले तिङ् (ति तः आदि) और शित् प्रत्यय (श् इत् वाले शतृ आदि) सार्वधातुक कहलाते हैं। शेष आर्धधातुक होते हैं।

(१५३) सुप्—(स्वौजस...सुप्, ४।१।२) शब्दों के अन्त में लगने वाले प्रथमा से सप्तमी तक के कारक-चिह्न (स्, औ, अः आदि) सुप् कहलाते हैं।

(१५४) सुबन्त—सुप् (स् औ आदि) जिन शब्दों के अन्त में होते हैं, उन्हें सुबन्त कहते हैं।

(१५५) सूत्र—शब्दों के संस्कारक नियमों को सूत्र कहते हैं। इनके बाद निर्दिष्ट संख्याओं का क्रमशः भाव यह है-(१) अध्याय-संख्या, (२) पाद-संख्या, (३) सूत्र संख्या।

(१५६) सेट्—जिन धातुओं के बीच में प्रत्यय से पहले इ लगता है, उन्हें सेट् (इट्-वाली) कहते हैं। जैसे—पठ्, लिख्। पठिष्यति, लेखिष्यति।

(१५७) स्त्री-प्रत्यय—स्त्रीलिङ्ग के बोधक टाप् (आ), ङीप् (ई) आदि स्त्री-प्रत्यय कहलाते हैं।

(१५८) स्त्रीलिङ्ग—यह तीनों लिङ्गों में से एक लिङ्ग है। स्त्रीत्व का बोध कराता है। जैसे—स्त्री, नदी, वधू आदि स्त्रीलिंग शब्द हैं।

(१५९) स्थान—(अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः) उच्चारणस्थान कण्ठ तालु आदि का संक्षिप्त नाम स्थान है। जैसे—अ, कवर्ग, ह और विसर्ग का स्थान कण्ठ है।

(१६०) स्पर्श—(कादयो मावसानाः स्पर्शाः) क से लेकर म तक (कवर्ग से पवर्ग तक) के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ कण्ठ, तालु आदि को स्पर्श करती है।

(१६१) स्वर—(अचः स्वराः) अचों (अ, आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ, ए ऐ, ओ औ) को स्वर कहते हैं।

(१६२) स्वरित—(समाहारः स्वरितः, १।२।३१) उदात्त और अनुदात्त के मध्यगत स्थान से उत्पन्न स्वर को स्वरित कहते हैं। यह मध्यगत स्थान से बोला जाता है। (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः, ८।४।६६) वेद में उदात्त स्वर के बाद वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है। साधारण नियम यह है कि उदात्त से पहले अनुदात्त अवश्य रहेगा। अन्यत्र उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित होगा।

(१६३) हल्—क से ह तक के वर्णों को हल् कहते हैं। इन्हें व्यंजन भी कहते हैं।

(१६४) हलन्त—हल् अर्थात् व्यंजन जिनके अन्त में होता है, ऐसे शब्दों या धातुओं आदि को हलन्त कहते हैं।

(१६५) ह्रस्व—(ह्रस्वं लघु, १।४।१०) अ इ उ ऋ ऌ को ह्रस्व स्वर कहते हैं।

परिशिष्ट

सूत्रों की अकारादिक्रम सूची

(२) वार्तिकों की अकारादि क्रम सूची

(३) पारिभाषिक शब्द (Technical Terms)

१. वर्ण–Letters, वर्णमाला–Alphabet, स्वर–Vowels, ह्रस्व–Short, दीर्घ–Long, मिश्रित स्वर–Diphthongs, व्यंजन–Consonants, कवर्ग, कण्ठ्य–Gutturals, चवर्ग, तालव्य–Palatals, टवर्ग, मूर्धन्य–Cerebrals, तवर्ग, दन्त्य–Dentals, पवर्ग, ओष्ठ्य–Labials, अन्तःस्थ–Semi-vowels, ऊष्म–Sibilants, स्पर्श–Mute, श्वासवर्ण–Surd, नाद वर्ण–Sonant, अनुनासिक–Nasal, महाप्राण–Aspirate, उदात्त–Accented, अनुदात्त –Unaccented, स्वर चिह्न लगाना–Accentuation, संख्याशब्द–Numeral.

२. वचन–Number, एक वचन–Singular, द्विवचन–Dual, बहुवचन–Plural, लिंग–Gender, पुंलिंग–Masculine, स्त्रीलिंग–Feminine, नपुंसकलिंग–Neuter.

३. कारक–Government, विभक्ति–Case, प्रथमा–Nominative, द्वितीया–Accusative, तृतीया–Instrumental, चतुर्थी–Dative, पंचमी–Ablative, षष्ठी–Genitive, सप्तमी–Locative, संबोधन–Vocative.

४. पुरुष–Person, प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) Third Person, मध्यम पुरुष–Second Person, उत्तम पुरुष–First Person.

५. लकार–Tense & Mood, लट्–Present, लोट्–Imperative, लङ्–Imperfect, विधिलिङ्–Potential, Optative, लृट्–First Future, लुट्–Periphrastic Future, आशीर्लिङ्–Benedictive, लृङ्–Conditional (Second) Future, लिट्–Perfect, लुङ्–Aorist, लेट्–Subjunctive, अडागम-रहित लङ्, लुङ्–Injunctive.

६. शब्द या पद–Word, वाक्य–Sentence, शब्दरूप चलाना–To decline, शब्दरूप–Declension, प्रत्यय–Suffix, सुप्–Case-endings, धातु–Root, धातुरूप चलाना–To Conjugate, धातुरूप–Conjugation, तिङ्–Termination, व्युत्पत्ति बनाना–To derive, व्युत्पन्न–Derivation—, Derivative.

७. पद-विभाजन–Parts of speech, संज्ञाशब्द–Noun, सर्वनाम–Pronoun, विशेषण–Adjective, क्रिया–Verb, क्रिया-विशेषण–Adverb, उपसर्ग–Preposition, संयोजक शब्द–Conjunction, विस्मयसूचक शब्द–Interjection, अव्यय–Indeclinable.

८. समास–Compounds, अव्ययीभाव समास–Adverbial C., तत्पुरुष–Determinative C., कर्मधारय–Appositional C., द्विगु–Numeral Appositional C., बहुव्रीहि–Attributive C., द्वन्द्व–Copulative C.

९. कृत् प्रत्यय–Primary Affixes, क्त–Past Passive Participle, क्तवतु–Past Participle, तुमुन्–Infinitive, क्त्वा, ल्यप्–Gerund, शतृ, शानच्–Present Participle, तव्य, अनीय–Potential Participle, तद्धित प्रत्यय–Secondary Affixes.

१०. वाच्य–Voice, कर्तृवाच्य–Active Voice, कर्मवाच्य–Passive Voice, भाववाच्य–Impersonal Voice, सन्धि–Combination, सन्धि करना–To join, सन्धि-विच्छेद करना–To disjoin.

विषयानुक्रमणिका

सूचना—विषयानुक्रमणिका में दी गई संख्याएँ पृष्ठ-बोधक हैं।